Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Upanyason Mein Saampradayikta Virodhi Swar (1990-2000)

A Thesis submitted during 2011 to the University of Hyderabad in partial fulfillm-
ent of the award of a ph.D. degree in Department of Hindi, School of Humanities.

BY

BONDYALU BANOTHU

06HHPH03

2011

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

(P.O.) Central University, Gachibowli

Prof- C. R. Rao Road

Hyderabad–500 046

Andhra Pradesh

INDIA

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000)

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2011

शोधार्थी

बोंद्यालु बानोतु

06HHPH03

विभागाध्यक्ष
डॉ. रवि रंजन
प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद–500 046

निर्देशक
डॉ. वी. कृष्ण
प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद–500 046

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled " Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Upanyason Mein Saampradayikta Virodhi Swar (1990-2000)" "बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000)" submitted by BONDYALU BANOTHU bearing Regd.No. 06HHPH03 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

The thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

//Countersigned//

Head of the Department

Dean of the School

DECLARATION

I, BONDYALU BANOTHU hereby declare that this thesis entitled“Beesveen Sadi Ke Antim Dashak Ke Hindi Upanyason Mein Saampradayikta Virodhi Swar(1990-2000)”

(“बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) ”)

submitted by me under the guidance and supervision of Professor-V.Krishna is bonafide research work. I also declare that it has not been submitted Previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma

Date : 28/12/2011 Name : BONDYALU BANOTHU

(Signature of the Student)

Regd. No. 06HHPH03

विषयानुक्रमणिका

भूमिका 1-7

अध्याय–एक 1-79

1. बीसवीं सदी के अंतिम दशक का भारतीय परिवेश : साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत

विषय प्रवेश

1. धर्म, सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिकता

1.1. धर्म : अर्थ एवं स्वरूप

1.1.1. व्यापक अर्थ

1.1.2. संकीर्ण अर्थ

1.1.3. संक्षिप्त स्वरूप

1.2. सम्प्रदाय : अर्थ एवं स्वरूप

1.2.1. सम्प्रदाय का अर्थ

1.2.2. सम्प्रदाय का स्वरूप

1.3. साम्प्रदायिकता : अर्थ एवं स्वरूप

1.3.1. साम्प्रदायिकता का अर्थ

1.3.2. साम्प्रदायिता का स्वरूप

1.4. सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिकता में अंतर

1.5. साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत

1.5.1. बीसवीं सदी के साम्प्रदायिकता की ऐतिहासिक घटनाएं

1.1.विज्ञान बनाम धर्म

1.2 निहित स्वार्थ की पूर्ति : साम्प्रदायिकता

1.3. आर्थिक विवाद और साम्प्रदायिक दंगे

1.4. मुसलमानों का आक्रमण

1.5. साम्प्रदायिकता का विरोध

1.6. बांटो और राज करो

1.7. 1903 में बम्बई दंगा

1.8. लॉर्ड कर्जन की नीति

1.9. 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना

1.10. 1909 में मोरली–मिन्टो सुधार

1.11. 1919 में मान्टेगु–चेम्सफर्ड विधेयक

1.12. 1930 में मुस्लिम लीग का सम्मेलन

1.13. 1917 और 1934 के साम्प्रदायिक दंगे

1.14. 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध

1.15. 1946 अक्टूबर का नोआखाली दंगा

1.16. गाँधी जी की हत्या और 1950 में संविधान लागू

1.17. पंचवार्षिक योजनाओं की विफलता और साम्प्रदायिक मार्ग की सफलता

1.18. 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन

1.19. 1977 में वामपंथियों की विजय

1.20. जनता दल और प्रशासन

1.6. अंतिम दशक का भारतीय परिवेश

1.6.1. सामाजिक

1.6.2. राजनीतिक

1.6.3. आर्थिक

1.6.4. संस्कृतिक

1.7. हिन्दी उपन्यास : साम्प्रदायिकता

1.8. साम्प्रदायिकता और उपन्यास (1954--2000)

1.9. निष्कर्ष

अध्याय–दो 80-161

2. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सामाजिक सन्दर्भ

2.1. हिन्दू देव, धर्म, वर्ण बनाम राक्षस, दलितशूद्र, एवं जातिगत व्यवस्था

2.1.1. देवता बनाम राक्षस

2.1.2. हिन्दू वर्णाश्रम धर्म

2.1.3. दलित शूद्रवंशी शंबूक

2.1.4. दलित को मन्दिर में पूजा करना मना

2.1.5. गोरे बनाम काले

2.1.6. वर्ण–व्यवस्था उन्मूलन

2.2. हिन्दू वर्णाश्रम धर्म और जातिगत व्यवस्था

2.2.1. गाँव–शहर–जाति

2.2.2. जाति–पाँति से ऊपर सोच

2.2.3. ऊँची जाति की मानसिकता

2.2.4. पिछले जन्म–कर्म

2.2.5. हिन्दू धर्म–गुरु दक्षिणा

2.2.6. बच्चे और जाति

2.2.7. आरक्षण

2.3. इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय और जातिगत समाज

2.3.1. शिया बनाम सुन्नी

2.3.2. हिन्दू धार्मिक कलाकार

2.3.3. मुसलमान, चमार और राजनीति

2.3.4. धुनिया–चुड़िहार और ऊँची जाति के मुसलमान

2.3.5. इस्लाम–रोटी–बेटी का रिश्ता

2.3.6. जन्म से आदमी बड़ा नहीं होता

2.3.7. इस्लाम और ऊँच–नीच

2.3.8. बाबा एवं जाति

2.3.9. नीची जाति बनाम ऊँची जाति

2.4. धर्म(हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और छुआछूत समाज

2.4.1. हिन्दू–मुसलमान और छुआछूत

2.4.2. स्त्री–पुरुष संबंध और छुआछूत

2.4.3. शादी–दावत और छुआछूत

2.4.4. म्लेच्छ–छुआछूत

2.4.5. रेडिमेंट कप–होटेल और छुआछूत

2.4.6. शुद्धीकरण

2.5. धर्म (हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और स़्त्री समाज

4.5.1. सुकून और मज़हबी समाज

2.5.2. स्त्री और आसक्त

2.5.3. आध्यात्मिक स्त्री

2.5.4. महायुद्ध के दौरान महिला

2.5.5. ब्याह का नाटक और भारतीय मुस्लिम स्त्री

2.5.6. बुरका और स्त्री

2.5.7. निरक्षरता और मुस्लिम लड़कियाँ

2.5.8. तलाक

2.5.9. औरत की दुश्मन औरत ही है !

2.5.10. नारीवाद बनाम पुरुषवाद

2.6. धर्म सम्प्रदाय(हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और अन्ध विश्वास

2.6.1. इस्लाम धर्म बनाम धर्मान्ध

2.6.2. भूत–प्रेत और अन्ध विश्वास

2.6.3. धर्म–सम्प्रदाय और समाज का बदलाव

2.6.4. झूठ हजारों सच पर भारी

2.6.5. आगे की बजाय पीछे ले जाती है मज़हब

2.6.6. ईश्वर, अल्लाह, खुदा और मूर्ख़

2.7. साम्प्रदायिक दंगे और अल्पसंख्यक समाज

2.7.1. अल्पसंख्यकों का अपमान

2.7.2. असुरक्षा भाव में अल्पसंख्यक युवक

2.7.3. मिलावट–गिरावट

2.7.4. साम्प्रदायिक दंगे

2.7.5. मज़हबों के जन्म से पहले भी समाज था

2.8. भारतीय(हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और भाई चारा

2.8.1. धर्मांतरित मुसलमान

2.8.2. हिन्दू–मुस्लिम भाईचारा

2.8.3. सहिष्णुता–उदारता–विश्वबंधुता

2.8.4. प्रेम और सद्भावना

2.9. निष्कर्ष

अध्याय–तीन 162-267

3. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : राजनीतिक सन्दर्भ

3.1. हिन्दू, हिन्दुत्व एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.1.1. हिन्दू देवता बनाम साम्प्रदायिक लोग

3.1.2. भाइयों की लड़ाई है महाभारत

3.1.3. राजनीति के लिए मन्दिर का दुरूपयोगः

3.2. प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.2.1. व्यायाम

3.2.2. खेल–कूद

3.2.3. सैनिक ड्रिल

3.2.4. जातिवाद

3.2.5. व्यापारी वर्ग

3.2.6. रिश्वतखोरी

3.2.7. वोट की राजनीति

3.2.8. देश प्रेम

3.2.9. राष्ट्रीयता एवं आनंद मठ

3.2.10. विविध प्रतिक्रियावादी संगठन

3.2.11. प्रतिक्रियावादी राजनीति एवं मुसलमान

3.2.12. हिन्दू–साम्प्रदायिकता

3.2.13. साम्प्रदायिक राजनीति

3.2.14. तनाव

3.3. राजनीति के लिए कुरान का इस्तेमाल

3.3.1. मुस्लिम लीग और साम्प्रदायिकता

3.3.2. धर्मांतरिक प्रेम विवाह–इस्लाम

3.3.3. धर्मांतरिक प्रेम विवाह–साम्प्रदायिक दंगे

3.3.4. शिया–सुन्नी का भेद एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.3.5. व्याक्तिगत झगडें और मज़हब

3.3.6. जिहाद बनाम व्यापार

3.3.7. इस्लाम और तालिम

3.4. देश विभाजन एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.4.1. विभाजन के दुस्परिणाम

3.4.2. भौतिक रूप से बँटा, मानसिक रूप से है लगाव

3.4.3. जितने देश बँटेंगे उतने मनुष्य बँटेंगे

3.4.4. भारत–पाकिस्तान : साम्प्रदायिक राजनीति

3.4.5. विभाजन एवं हिंसा

3.4.6. उदार, नास्तिक बनाम कट्टर साम्प्रदायिक

3.5. अलगाववादी साम्प्रदायिक राजनीति

3.5.1. पाकिस्तान से पाकिस्तान

3.5.2. अलगाववाद

3.5.3. मूलनिवासी

3.5.4. बिहारी बनाम बंगाली

3.6. धर्म–सत्ता का हथियारा और साम्प्रदायिक राजनीति

3.6.1. धर्म का दुरूपयोग

3.6.2. दिमाग़ी बुखार

3.6.3. झूठी खबरें

3.6.4. साम्प्रदायिक वायरस को फैलाना

3.6.5. गुनेहगार और धर्म

3.6.6. धर्म

3.6.7. गाय और राजनीति

3.6.8. राम मन्दिर

3.7. हिन्दू–मुस्लिम, शिया–सुन्नी और साम्प्रदायिक राजनीति

3.7.1. हिन्दू–मुस्लिम, शिया–सुन्नी

3.7.2. सत्ता के होड़ में...

3.7.3. भड़काउ भाषण

3.7.4. हिन्दू–मुस्लिम भाई भाई

3.7.5. मुल्ला, पादरी और पण्डित

3. 8. साम्प्रदायिक भाषण, दंगे, तोड़–फोड़

3.8.1. साम्प्रदायिक भाषण

3.8.2. शख़्स हिटलर

3.8.3. दंगे एवं पुलिस

3.8.4. ज़मीन पर कब्जा

3.9. साम्प्रदायिकता, अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की राजनीति

3.9.1. अल्पसंख्यक

3.9.2. जनसंख्या

3.10. गोत्र, नस्ल, खानदान, बिरादरी, जाति एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.10.1. गोत्र

3.10.2. रिश्ता

3.10.3. रोज़गार

3.10.4. मीडिया एवं खबरें

3.10.5. अपनी रोटी सेकना

3.10.6. वोट खरीदना

3.10.7. आरक्षण

3.11. गाँधी और धर्मनिरपेक्षता

3.11.1. गाँधी एवं धर्मनिरपेक्षता

3.11.2. धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता

3.11.3. अपने अपने ईश्वर

3.12. निष्कर्ष

अध्याय–चार 268-317

4. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : आर्थिक सन्दर्भ

4.1. धन–दौलत लूट, युद्ध और आर्थिक संस्कृति

4.1.1. युद्ध

4.1.2. धन–दौलत और मज़हब

4.1.3. खजाना और मन्दिर

4.2. धर्म(हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और आर्थिक हैसियत

4.2.1. गरीबी और धर्मांतरण

4.2.2. गरीब हिन्दू और सेवा

4.2.3. हिन्दुत्व और भारतीय

4.2.4. भूखमरी–नौकरी और भगवान

4.2.5. बहुपत्नी–इस्लाम

4.2.6. अमीरी–ग़रीबी और धर्म

4.2.7. जन्नत और आर्थिक स्थिति

4.2.8. हिन्दू–मुस्लिम और आर्थिक हैसियत

4.2.9. सुन्नी–शिया और गरीबी

4.2.10. मुसलमान और नौकरी

4.2.11. मुसलमान–दहेज और आर्थिक स्थिति

4.3. चुनाव, वायदे, दंगे और आर्थिक राजनीति

4.3.1. नौकरी और राजनीतिक नेता

4.3.2. चुनाव–वायदे

4.3.3. दंगे और गरीब–बेरोज़गार

4.4. गरीब–पिछड़ा, बेरोजगार–उद्योग और सरकारी आर्थिक योजना

4.4.1. गरीब–पिछड़ा वर्ग

4.4.2. बेरोजगार–उद्योग

4.4.3. सिपाही–लूटना

4.5. राजनीतिक नेता–पूँजी पति और गरीब जनता

4.5.1. एक रोटी बेल रहा है, दूसरा रोटी से खेल रहा है

4.6. रिश्वत खोरी आर्थिक व्यवस्था

4.6.1. पहले दाम, पीछे काम

4.6.2. बड़े–बूढ़े और पेंशन

4.7. तालीम–नौकरी और आर्थिक विकास

4.7.1. अंग्रेजी तालीम–नौकरी

4.7.2. हिन्दू–मुस्लिम और तालीम–नौकरी

4.8. सूखा–भूखा और आर्थिक परिस्थिति

4.8.1. सूखा एवं कृषि

4.9. गाँव से शहर की ओर पलायन और आर्थिक परिस्थिति

4.9.1. बेरोजगार एवं गाँव

4.9.2. दलितों की आर्थिक स्थिति

4.10. धर्म जनमानस का अफीम है और गरीबी–आर्थिक व्यवस्था

4.10.1. रोटी की पुकार

4.11. निष्कर्ष

अध्याय–पाँच 318-403

5. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सांस्कृतिक सन्दर्भ

5.1. हिन्दुत्व साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

5.1.1. देव संस्कृति और मनुष्य संस्कृति में अंतर

5.1.2. ब्राह्मणवादी सभ्यता और मिस्र सभ्यता

5.1.3. उपनिषद् और बदलाव

5.1.4. वैदिक सभ्यता

5.1.5. वर्णवाद और जन्म

5.1.6. वैदिक आर्य बनाम बौद्ध

5.1.7. बौद्ध–जैन बनाम शैव सम्प्रदाय

5.1.8. भक्ति और चिंता

5.1.9. गायन–भजन और प्रदूषण

5.1.10. धर्मांतरण एवं विवाह

5.1.11. दिन–रात प्रवचन

5.1.12. धर्म और संस्कृति

5.1.13. यूनिफ़ॉर्म कोड़

5.1.14. हिन्दू और मुसलमान

5.1.15. सम्प्रदाय और मांसाहार

5.1.16. स्त्री और हिन्दू धार्मिक

5.2. धार्मिक साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

5.2.1. धार्मिक कट्टरता

5.2.2. धर्म और बच्चे

5.2.3. संस्कार और ऊँच–नीच

5.3. इस्लाम साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

5.3.1. इस्लाम (शिया–सुन्नी–सूफी)

5.3.2. बच्चों के संस्कार

5.3.3. धर्मनिरपेक्षता और भारतीय मुसलमान

5.3.4. दावत और भारतीय संस्कृति

5.3.5. शिया–सुन्नी

5.3.6. परिवार नियोजन

5.3.7. विदेशी मुसलमान–भारतीय मुसलमान

5.3.8. अपनी अपनी संस्कृति

5.3.9. परिवार नियोजन और इस्लामिक धर्म–सम्प्रदाय

5.4. हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति बनाम बहुला भारतीय संस्कृति

5.4.1. हिन्दुस्तान और देश विभाजन

5.4.2. इस्लाम–धर्म परिवर्तन

5.4.3. मन्दिर–मस्जिद

5.4.4. सहिष्णुता का मार्ग सूफी

5.4.5. अपने अपने दुःख और अपने अपने ईश्वर

5.4.6. हिन्दी एवं उर्दू और भारतीय भाषा

5.4.7. रिश्ता एवं भारतीय संस्कृति

5.4.8. प्रेम विवाह

5.4.9. शैव बनाम बौद्ध

5.4.10. मिट्‌टी से है लगाव

5.4.11. हर धर्म–सम्प्रदाय के दो रूप

5.4.12. इस्लाम बनाम दरगाह संस्कृति

5.4.13. छुआछूत

5.4.14. पूजा सामग्री–मुसलमान

5.4.15. हिन्दू–मुस्लिम एवं भेद–भाव

5.4.16. धर्मनिरपेक्षता और उर्दू भाषा

5.5. मिश्रित भारतीय संस्कृति बनाम आर्य संस्कृति

5.5.1. पुनर्जन्म

5.5.2. अंतिम संस्कार

5.5.3. मिली–जुली संस्कृति

5.5.4. होली और मुहर्रम

5.5.5. अंध विश्वास

5.5.6. शिया–सुन्नी और रोटी–बेटी का रिश्ता

5.5.7. जलाना–दफनाना

5.5.8. भीख माँगना और कबीर

5.6. बाजारी पूँजीवादी संस्कृति बनाम संगठित भारतीय संस्कृति

5.6.1. संगठित संस्कृति और विभाजित संस्कृति

5.7. वैज्ञानिक संस्कृति बनाम हिन्दू धार्मिक संस्कृति

5.7.1. भगवान बनाम विज्ञान

5.8. निष्कर्ष

उपसंहार 404-413

संदर्भ ग्रन्थ सूची 414-425

आधार ग्रन्थ

सहायक ग्रन्थ

पत्र–पत्रिकाएं

शब्द कोश

भूमिका

कहा जाता है कि अच्छे कार्य करना ही धर्म है। लेकिन हमारे भारतीय समाज में 'धर्म' के नाम से अच्छे कार्यों से ज्यादा बुरे कार्य ही किये गये हैं और किये जा रहे हैं। जितने भी सामाजिक बुरे कार्य हैं, जैसे जाति, अंधविश्वास, ऊँच–नीच, छुआछूत...आदि धर्म के नाम से ही अपनाये गये हैं। उसी धर्म की आड़ में ये लोग अपनी राजनीति भी करते रहे हैं। अन्धविश्वास, ऊँच–नीच और छुआछूत के कारण हमारा देश आर्थिक रूप से विकसित नहीं हो पाया। उदाहरण के लिए एक अछूत आदमी दूध का व्यापार करे तो उसके पास से उस गाँव में दूध कोई नहीं खरीदेगा अर्थात् जाति के कारण वह व्यापार नहीं कर पाता है। वैसे ही संस्कृति को भी 'धर्म' प्रभावित करता है। जिनका धर्म–सम्प्रदाय है उनकी संस्कृति श्रेष्ठ मानी जाती है। वही धर्म हमारे समाज में जाति व्यवस्था का कारण बनी है। कुछ जाति के लोगों को मुख्य धारा से दूर रखा गया और निकृष्ट ठहराए गये हैं। उनकी संस्कृति को भी निकृष्ट घोषित किया गया है।

धर्म के कार्य सम्प्रदाय के माध्यम से किये जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि धर्म विश्वव्यापी है लेकिन सम्प्रदाय काल और क्षेत्र के अनुसार रहता है। सम्प्रदाय एक महा पुरुष के द्वारा स्थापित किया जाता है। इस दुनिया में अनेक सम्प्रदाय हैं। इनके अपने विधि–विधान रहते हैं। इनके अपने धार्मिक विधि–विधान के धर्म ग्रन्थ भी रहते हैं। इन सम्प्रदायों के अपने अनुयायी रहते हैं। कुछ लोग अपने सम्प्रदाय की रक्षा के लिए तन–मन–धन से समर्पित होते हुए काम करते हैं। इनको ही सम्प्रदायिक कहते हैं। हर सम्प्रदाय अपने सत्कार्यों के द्वारा समाज में फैलने और फैलाने की कोशिश करता है। इस क्रम में एक सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा दूसरे सम्प्रदाय और उनके अनुयायियों पर हमला, दंगे और उनको नीचा दिखाना और गलत व्याख्या करना...आदि ही साम्प्रदायिकता होती है। इस साम्प्रदायिकता के अनेक कारण होते हैं। इनमें से चार कारण महत्वपूर्ण माने जाते हैं जैसे सामाजिक स्रोत, राजनीतिक स्रोत, आर्थिक स्रोत और सांस्कृतिक स्रोत।

साम्प्रदायिकता के कारण ही भारत का विभाजन हुआ। इसके बाद अलगाववाद जोर पकड़ा। ऐसा माना जाता कि भारत और पाकिस्तान के अलग होने के बाद भारत में साम्प्रदायिकता मिट जाएगी। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, आजाद भारत में भी साम्प्रदायिकता पनपता रहा। साम्प्रदायिकता को फैलाने वाले संगठन बने हैं। हिन्दू और हिन्दुत्ववादी के नाम पर चलने और चलाने वाले लोग हैं। आर. एस .एस, हिन्दू महासभा, विश्व हिन्दू–परिषद, शिवसेना, यूथ फार ईक्वैलिटी, भारत स्वाभिमान...आदि ऐसी ही संगठन हैं। इनकी रक्षा करनेवाली राजनीतिक पार्टी है भाजपा। मुसलमानों के भी साम्प्रदायिक संगठन हैं। मुस्लिम लीग, तालीबान, सिमी, इंडियन मुजाहिद्दीन, लश्करेतोयबा,...आदि मुस्लिम चरमपंथी दल हैं। सिखों के भी अकालीदल जैसे साम्प्रदायिक संगठन हैं। ईसाई भी कुछ कम नहीं हैं।

1990 में पूर्व प्रधानमंत्री वी. पी सिंह ने इस देश के पिछड़ेवर्ग के लिए आरक्षण देने के लिए 'मंडल कमीशन' की सिफारिश का अनुमोदन किया। लेकिन उसको अमल में नहीं आने दिया गया। भाजपा के मुख्य नेता लालकृष्ण आडवाणी ने मंडल का विरोध किया। उस समय इन्होंने 'मंडल बनाम कमंडल' की साम्प्रदायिक राजनीति किया। आरक्षण का विरोध करते हुए सोमनाथ से अयोध्या तक रथ यात्रा किये। इसके बाद भी अपनी साम्प्रदायिक राजनीति जारी रखे हुए हैं। 1992 में अयोध्या में ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया। इसमें हजारों–लाखों कारसेवकों ने भाग लिया। ये सब के सब आर. एस. एस. और हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक संगठनों से जुडें हुए हैं। इस घटना के बाद अयोध्या में दिन–प्रतिदिन उनका व्यापार और कारोबार बढ़ने लगा। वहाँ के छोटे–मोटे धंधा करने वाले आज बड़े बड़े व्यापारी बन गये हैं। पहले उनके पास साइकिल भी नहीं होती थी, आज वही लोग कारों में घूमने लगे हैं। इसके दौरान समाज में जहाँ–तहाँ साम्प्रदायिक दंगे–फसाद होते रहे हैं। साम्प्रदायिकों ने गुजरात को हिन्दुत्व का प्रयोगशाला बना दिया है। 2002 में गुजरात में गोधरा काण्ड हुआ। पूरा गुजरात साम्प्रदायिकता से उथल–पुथल हुआ। साम्प्रदायिक दंगों में दो हजार मुसलमान मारे गये। अमानवीय घटनाएँ घटीं, मुस्लिम गर्भवती औरतों को भी नहीं छोड़ा गया। रातों रात मुस्लिम संस्कृति को ध्वंश किया गया और हिन्दू संस्कृति का निर्माण किया गया। इन दंगों में

सरकार भी शामिल थी। भाजपा सत्ता में थी और आज भी है। नरेन्द्र मोदी मुख्यमंत्री थे। उपरोक्त समस्यागत विषयों को मैंने शोध के विषय के रूप में लिया है।

अध्याय–एक "बीसवीं सदी के अंतिम दशक का भारतीय परिवेश : साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत" है। इसमें बीसवीं सदी के अंतिम दशक के भारतीय परिवेश को लेकर अनुसंधान किया गया है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में साम्प्रदायिकता पराकाष्ठा पर पहुँची। भारतीय समाज साम्प्रदायिकता से उथल–पुथल हो रहा था। साम्प्रदायिकता पनपने के पीछे और साम्प्रदायिकता को जन्म देने वाले कई स्रोत हैं, जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि। इन विषयों की चर्चा इस अध्याय में किया गया है।

इस अध्याय में अनुसंधान करते समय विविध समस्याओं से अवगत हुआ। 'धर्म' शब्द के विविध अर्थ एवं स्वरूप को जान पाया हूँ जिसकी चर्चा की गई है। 'सम्प्रदाय' के कई अर्थ हैं। इसका अपना स्वरूप है। सम्प्रदाय और साम्प्रदायिकता में अंतर को लेकर विचार किया गया। बीसवीं सदी में साम्प्रदायिकता के क्रमिक विकास की कई ऐतिहासिक घटनाएं हैं, जिन पर विचार किया गया है। साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत को लेकर विस्तार रूप से चर्चा किया गया है। साम्प्रदायिकता के मुख्य स्रोत या कारण या हेतु चार हो सकते हैं। ये सामाजिक स्रोत, राजनीतिक स्रोत, आर्थिक स्रोत और सांस्कृतिक स्रोत हैं। इसके बाद हिन्दी साहित्य और साम्प्रदायिकता को लेकर चर्चा किया गया है। साम्प्रदायिकता और उपन्यास (1954-2000) तक की सूची दी गयी है। उपरोक्त समस्याओं को लेकर प्रथम अध्याय में चर्चा किया गया है।

अध्याय–दो "बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सामाजिक सन्दर्भ" है। इसके अंतर्गत पूरा का पूरा सामाजिक दृष्टि को लेकर अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में अनुसंधान किया गया है। विश्व समाज पूरा का पूरा सम्प्रदायों में विभाजित है। भारतीय समाज भी सम्प्रदायों में विभाजित है। हमारे भारत देश में एक सम्प्रदाय के अंतर्गत अनेक जातियाँ हैं। अर्थात् भारतीय समाज पूरा का पूरा जाति और उप–जातियों में विभाजित है। इनमें कुछ जातियाँ श्रेष्ठ हैं, तो कुछ जातियाँ निकृष्ट । कुछ

जातियाँ ऊँची हैं, तो कुछ जातियाँ नीची। कुछ जातियाँ पिछड़ी हैं, तो कुछ जातियाँ अगड़ी। कुछ जातियों की परछाईं पड़ने मात्र से निर्जीव पदार्थ थाली–लोटा...आदि तक अपवित्र हो जाते हैं। इन जातियों में एकता की भावना नहीं है। एक जाति दूसरी जाति के प्रति घृणा, द्वेष और नफरत रखती है। एक जाति के लोग दूसरी जाति को नीचा दिखाते हैं और उसकी गलत व्याख्या करते हैं। तब इनके बीच लड़ाई, झगड़े और दंगे होते हैं। यह भी विशेष तरह की साम्प्रदायिकता ही हैं। भारत देश में कई सम्प्रदाय हैं। कुछ सम्प्रदायों के मूल में जाति व्यवस्था की भावना नहीं हैं, बावजूद इसके इन पर हिन्दू धर्म का प्रभाव है। जब हिन्दू धर्म का प्रभाव है तो उसमें जाति व्यवस्था मौजूद होता है क्योंकि हिन्दू धर्म जाति व्यवस्था पर आधारित है।

विश्व में आधी आबादी स्त्रियों की है। महिलाएँ विविध सम्प्रदाय या मजहबों में विभाजित होने पर भी, आखिर महिला तो महिला ही है। इनकी अपनी समस्याएं हैं। हाँ, इनमें भी एक ऊँची जाति की महिला की समस्या और निम्न जाति की महिला की समस्या एक जैसी नहीं हो सकती। वैसे ही हिन्दू सम्प्रदाय की महिला की समस्या और मुस्लिम सम्प्रदाय की महिला की समस्या अलग–अलग हो सकते हैं। रंग–भेद की भी समस्या अलग–अलग हो सकते हैं। इतनी अनेकता होते हुए भी इनमें कहीं न कहीं एकता और भाईचारा की भावना भी है। अर्थात् अनेकता में एकता है। उपरोक्त समस्याओं को लेकर, इस अध्याय में चर्चा किया गया है।

अध्याय–तीन “बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : राजनीतिक सन्दर्भ” है। इस अध्याय के लिए साम्प्रदायिक राजनीति यानी साम्प्रदायिकता होने में राजनीति अपना पात्र किस तरह निभाती है इसको लेकर उपन्यासों में अनुसंधान किया गया है। राजनीति और राजनीति के नेता लोग किस तरह चीजों का इस्तेमाल करते हैं सत्ता में बने रहने के लिए और सत्ता में आने के लिए, ये किस तरह साम्प्रदायिकता को फैलाते हैं... आदि विषयों को प्रस्तुत किया गया है।

कुछ हिन्दू या हिन्दुत्व की राजनीति करते हैं। इस तरह की राजनीति करनेवालों में सबसे आगे 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' है। इसके साथ और भी साम्प्रदायिक संगठन हैं विश्व

हिन्दू–परिषद, शिवसेना आदि भाजपा की जितनी भी शाखाएं हैं वे सब–के–सब हिन्दुत्व की राजनीति करते हैं। ये अपनी स्वार्थ परक राजनीति के लिए धर्म को इस्तेमाल करते हैं। दूसरी तरफ मुसलमान भी इस्लाम के नाम पर राजनीति करते हैं। वे इसके लिए कुरान का इस्तेमाल करते हैं। इन दोनों के अपनी स्वार्थपूर्ण साम्प्रदायिक राजनीति के कारण भारत का विभाजन हुआ था। विभाजन के साथ–साथ ही अलगाववाद आया। हर धर्म के लोग 'धर्म' को सत्ता का हथियार मानने लगे हैं। हिन्दू–मुस्लिम और शिया–सुन्नी के बीच साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं। साम्प्रदायिक भाषण देते हैं और तोड़–फोड़, दंगे–फसाद करते हैं। इनकी हरकतों को देखके अल्पसंख्यक भयभीत हो जाते हैं। ये अपनी गोत्र, नस्ल, खानदान, बिरादरी आदि का इस्तेमाल भी करते हैं। बावजूद इसके इस साम्प्रदायिकता का विरोध करनेवाली धर्मनिरपेक्ष राजनीति भी है, जो साम्प्रदायिकता का कड़ा विरोध करती है। इस अध्याय में इन समस्याओं को लेकर चर्चा किया गया है।

अध्याय–चार “बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : आर्थिक सन्दर्भ” है। इस अध्याय के लिए अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक विषयों को लेकर अनुसंधान किया गया है। किस तरह राजनीतिक नेता और सरकार आर्थिक विकास पर ध्यान नहीं देती है। लोगों को इसका आभास भी नहीं होने देती है। इसके लिए समाज में हमेशा साम्प्रदायिक दंगे करवाते रहते हैं। धर्म, सम्प्रदाय, जाति, नस्ल, खानदान, बिरादरी...आदि के नाम पर लोगों को लड़ाते रहते हैं ताकि वे अपने आर्थिक हैसियत यानी समस्या को भी भूल जाए। खासकर मुसलमान दलित एवं आदिवासी को आर्थिक बहिष्कार किस तरह करते हैं आदि समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

यह एक तरह की आर्थिक संस्कृति ही होती थी। क्योंकि युद्ध करने का उद्देश्य यह होता था कि दूसरे देश से धन–दौलत लूट लाएँ। मुसलमान का भारत पर युद्ध करने का मकसद भी वही था कि भारत का धन–दौलत लूट के ले जाएँ। लेकिन कालांतर में वे वापस नहीं गये, यहीं बस गये। इनके साथ अपनी संस्कृति तो रहती ही है। कई सालों तक भारत पर राज किये। आजाद भारत में सत्ता में सभी यानी प्रत्येक सम्प्रदाय, जाति आदि के लोग

सत्ता में भागीदार हुए, बावजूद इसके हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...आदि के आर्थिक विकास में ज़मीन आसमान का फर्क हैं। चुनावों में राजनीतिक नेता अनेक वायदे और वादे करते हैं कि उद्योग खुलवाएंगे, रोजगार...आदि दिलवाएंगे। लेकिन राजनीतिक नेता और पूँजीपति दोनों मिल जाते हैं। आर्थिक विकास की जगह साम्प्रदायिकता की विकास करवाते हैं। समाज में दंगे–फसाद करवाते हैं। समाज में रिश्वतखोरी बढ़ते जा रहे हैं। लोगों को शिक्षा नहीं है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने से नौकरी मिलती है। एक तरफ राजनीतिक नेता और दूसरी तरफ सरकार भी इनके आर्थिक विकास के लिए कोई योजना नहीं बनाती है, इसके साथ–साथ प्रकृति भी इनको साथ नहीं देती है। सूखा पड़ जाता है। लोग भूखे मरते हैं। भूख मिटाने हेतु अपना गाँव छोड़ देते हैं। इन सभी समस्याओं का कारण धर्म है, इसलिए मार्क्स ने कहा है कि 'धर्म जनमानस की अफीम है'। उपरोक्त समस्याओं का अनुसंधान इस अध्याय में किया गया है।

अध्याय–पाँच "बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सांस्कृतिक सन्दर्भ" है। इस अध्याय में अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में सांस्कृतिक विषय को लेकर अनुसंधान किया गया है। समाज में साम्प्रदायिकता दिन–प्रति–दिन बढ़ने में संस्कृति भी एक स्रोत है। किस तरह संस्कृति साम्प्रदायिकता को बढ़ाने और करवाने में सहायक होती है इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ संस्कृति साम्प्रदायिकता का स्रोत बनती है तो, दूसरी तरफ संस्कृति साम्प्रदायिकता का विरोध करती है, आदि...समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

भारत देश कोई एक संस्कृति का देश नहीं है। इस देश में अनेक संस्कृतियाँ आदि से हैं। अनेक ग्रन्थों के अनुसार भारत की मूल संस्कृति नाग संस्कृति यानी द्रविड़ संस्कृति है। लेकिन वैदिक आर्य संस्कृति बाहर से आयी हुई संस्कृति है। यह वैदिक आर्य, हिन्दू व हिन्दुत्व संस्कृति हमेशा भारतीय मूल नाग यानी द्रविड़ संस्कृति पर सांस्कृतिक हमला करती आ रही है। उतने ही अनुपात में उस साम्प्रदायिक हिन्दू संस्कृति का विरोध भारतीय मूल द्रविड़ संस्कृति करती आ रही है। इस्लामिक साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर आधार ग्रन्थों में मिलते हैं। हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति को, बहुला भारतीय संस्कृति पर लागू करना चाहते हैं।

मिश्रित भारतीय संस्कृति के ऊपर, आर्य संस्कृति हमला करती हुई दिखाई देती है। बाजारीवादी पूँजीवादी संस्कृति, संगठित भारतीय संस्कृति को तक्सीम करती है। बल्कि वैज्ञानिक संस्कृति ही इन समस्याओं का समाधान कर सकती है। उपरोक्त समस्याओं का अनुसंधान इस अध्याय में किया गया है।

अनुसंधान कार्य का सीमातीत दायित्व होता है। इनमें गुरूजनों की सहायता अनिवार्य होती है। उनमें सर्वप्रथम मेरे गुरु एवं निर्देशक प्रो. वी. कृष्ण जी के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने सहनशीलता एवं एकाग्रता के साथ विषय चयन से लेकर शोधकार्य के संपन्न होने तक मेरा निर्देशन किया। उनके सहयोग, प्रोत्साहन तथा स्नेहमयी फटकार के लिए मैं शाब्दिक आभार प्रकट करना शब्दों के साथ समझौता करना समझता हूँ। तत्पश्चात मैं विभागाध्यक्षा प्रो. रविरंजन जी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनका सकारात्मक सहयोग मुझे मिला।

मैं हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ, उनका इस शोधकार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग मिलता रहा। गुरुजनों के अलावा हिन्दी भाषी मित्रों का सहयोग एवं स्नेह मिला जिनके प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ।

अपने पिता एवं माँ के प्रति मैं चिरऋणी रहूँगा जिन्होंने सदैव प्रेरणा और उत्साह दिया, कठिन समय में हमेशा मुझे भावनात्मक संबल प्रदान किया। उनके आशीर्वाद के बिना मेरी विद्या–आराधना कभी शेष नहीं होगी। इसके अतिरिक्त मित्र एवं सहयोगी, जिनके कारण यह शोध कार्य पूर्ण हो पाया उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

–बोंग्यालु बानोतु

अध्याय—एक

अध्याय–एक

1.बीसवीं सदी के अंतिम दशक का भारतीय परिवेश : साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत

विषय प्रवेश

1. धर्म, सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिकता

1.1. धर्म : अर्थ एवं स्वरूप

1.1.1. व्यापक अर्थ

1.1.2. संकीर्ण अर्थ

1.1.3. संक्षिप्त स्वरूप

1.2. सम्प्रदाय : अर्थ एवं स्वरूप

1.2.1. सम्प्रदाय का अर्थ

1.2.2. सम्प्रदाय का स्वरूप

1.3. साम्प्रदायिकता : अर्थ एवं स्वरूप

1.3.1. साम्प्रदायिकता का अर्थ

1.3.2. साम्प्रदायिता का स्वरूप

1.4. सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिकता में अंतर

1.5. साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत

1.5.1. बीसवीं सदी के साम्प्रदायिकता की ऐतिहासिक घटनाएं

1.1.विज्ञान बनाम धर्म

1.2 निहित स्वार्थ की पूर्ति : साम्प्रदायिकता

1.3. आर्थिक विवाद और साम्प्रदायिक दंगे

1.4. मुसलमानों का आक्रमण

1.5. साम्प्रदायिकता का विरोध

1.6. बांटो और राज करो

1.7. 1903 में बम्बई दंगा

1.8. लॉर्ड कर्जन की नीति

1.9. 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना

1.10. 1909 में मोरली–मिन्टो सुधार

1.11. 1919 में मान्टेगु–चेम्सफर्ड विधेयक

1.12. 1930 में मुस्लिम लीग का सम्मेलन

1.13. 1917 और 1934 के साम्प्रदायिक दंगे

1.14. 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध

1.15. 1946 अक्टूबर का नोआखाली दंगा

1.16. गाँधी जी की हत्या और 1950 में संविधान लागू

1.17.पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता और साम्प्रदायिक मार्ग की सफलता

1.18. 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन

1.19. 1977 में वामपंथियों की विजय

1.20. जनता दल और प्रशासन

1.6. अंतिम दशक का भारतीय परिवेश

1.6.1. सामाजिक

1.6.2. राजनीतिक

1.6.3. आर्थिक

1.6.4. सांस्कृतिक

1.7. हिन्दी उपन्यास : साम्प्रदायिकता

1.8. साम्प्रदायिकता और उपन्यास (1954--2000)

1.9. निष्कर्ष

1.बीसवीं सदी के अंतिम दशक का भारतीय परिवेश : साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत

विषय प्रवेश

भारत देश के इतिहास में बीसवीं सदी का बहुत बड़ा महत्व है। बीसवीं सदी के इतिहास में अंतिम दशक का भी विशेष महत्व है। क्योंकि बीसवीं सदी में भारत आजाद हुआ है, परिणामस्वरूप विदेशी अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। लेकिन वे जाते–जाते भारत को साम्प्रदायिकता के आधार पर विभाजित करके गये। परिणामस्वरूप भारत और पाकिस्तान का जन्म हुआ। भारत देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु बने थे। नेहरु एवं अन्य राजनीतिज्ञों ने यह सोचा था कि अब हमारे देश में साम्प्रदायिक–समस्या नहीं होगी और इस तरह के गतिविधियों को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा। 11 अगस्त 1954 को अखिल भारतीय समाचारपत्र संपादकों का नयी दिल्ली में सम्मेलन हुआ था, जिसमें नेहरु मौजूद थे। उस सम्मेलन में नेहरु जी ने भाषण देते हुए कहा था–

“हम साम्प्रदायिकता की आलोचना और निंदा करते हैं क्योंकि यह सहिष्णुता की व्यापक अवधारणा और भारत की भावनात्मक एकता के विरुद्ध है। साम्प्रदायिकता का एक दूसरा चेहरा जातिवाद का है। मुझे नहीं लगता कि जातिवाद की बुराई और इसके प्रभाव पर हमने गहराई से और पर्याप्त विचार किया है। हमने इस पर ध्यान नहीं दिया है और कई बार इसे इस डर से प्रोत्साहित भी किया है कि कहीं इस या उस जाति के वोट गंवाने नहीं पड़ें। जहां तक मेरा सवाल है मैं भारत का हर चुनाव हारने के लिए तयार हूं, पर साम्प्रदायिकता और जातिवाद को तनिक भी प्रश्रय देने के लिए नहीं ” [1]

उक्त बातों से यह मालूम पड़ता है कि यह साहस अकेले नेहरु ही कर सकते थे, क्योंकि वे पढ़े–लिखे विद्वान थे। इनके पास विचार था और दृष्टि भी थी। देश को गलत रास्ते पर चलाना नहीं चाहते थे। चाहेतो वे चुनाव हारने को भी तैयार रहते थे, लेकिन राजनीति में धर्म, साम्प्रदायिकता और जाति का इस्तेमाल नहीं करना चाहते थे।

लेकिन उनके बाद वही काँग्रेस पार्टी और राजनीतिक नेता यह सोचने लगे कि सत्ता में बने कैसे रहें ? इसके लिए काँग्रेस पार्टी को भी साम्प्रदायिकता और जाति का सहारा लेना पड़ा। हिन्दू महासभा, आर. एस. एस, विश्वहिन्दू परिषद, शिवसेना, जन संघ, जन संघ से भाजपा और भाजपा की शाखाएं...आदि, आजादी से आज तक साम्प्रदायिकता और जातिवाद को बढ़ाने और फैलाने में तथा राजनीतिक सत्ता हासिल करने में व्यस्त रहें हैं। आजादी से 1999 तक जो साम्प्रदायिकता हुई थी, वह एक है। तो 1990 से 2000 और 2002 तक के जो साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं, वह बीसवीं सदी के अंतिम दशक के महत्व को दर्शाते हैं। 1990 में जब के प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह ने मंडल कमीशन लागू करने का आदेश दिया, तब उसे काटने के लिए, भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या तक रथयात्रा किया। यह यात्रा आरक्षण विरोधी था और पिछड़ी जातियों के विरोध में निकाला गया यात्रा था। इस आंदोलन को धर्म का रंग लगा दिया गया, 'कहा गया कि हिन्दू धर्म संकट में है, अभी आरक्षण की ज़रूरत नहीं है, पहले हिन्दू धर्म की रक्षा करो'। इस विवाद के साथ कई समस्याएं जुड़ गईं जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक। इसके बाद 1992 में हजारों और लाखों, आर. एस. एस और विविध साम्प्रदायिक संघों के कार्य–कर्ता और कारसेवक अयोध्या पहुँचे और ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद को तोड़ दिया। इस घटना में कई लोग मारे गये। हिन्दू और मुसलमानों के बीच की दूरी और ज्यादा हो गई। एक दूसरे के प्रति द्वेष, नफरत, घृणा बढ़ने लगा। इन दंगों में कई समस्याएं उत्पन्न हुए जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याएं शामिल हैं। भाजपा और साम्प्रदायिक संगठन के लोग हिन्दुत्व की

---

[1] पृष्ठ संख्या, 47, सबलोग, (सं.), किशन कालजयी, अप्रैल 2009

प्रयोगशाला की तलाश में थे। उन्होंने गुजरात को हिन्दुत्व की प्रयोगशाला के लिए चुना, क्योंकि वहां मुसलमानों की संख्या ज्यादा होने के साथ–साथ मुसलमान आर्थिक रूप से भी विकसित थे। 2002 में गुजरात में साम्प्रदायिकता का भीषण तांडव हुआ। अमानवता का प्रदर्शन हुआ। लगभग दो हजार मुसलमान मौत के घाट उतारे गये । मुस्लिम महिलाओं पर अत्याचार किया गया। उनकी दुकानें लूटी गईं। उन के घर तोड़े गये। उनकी संस्कृति के प्रतीक सूफी दरगाहें तोड़े गये। उपरोक्त कारणों से बीसवीं सदी के अंतिम दशक का परिवेश विचारणीय है।

"शायद इधर की राजनीति में विश्वनाथ प्रताप सिंह, वामपंथियों को छोड़कर, अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने नैतिक मूल्यों के लिए सत्ता से कभी समझौता नहीं किया। वे संवेदनशील कवि और चित्रकार हैं और आज की दुनिया में आउट साइडर। मैं यह मानता हूँ कि पिछले सत्तावन सालों में वे दूसरे प्रधानमत्री रहे हैं जिन्होंने व्यवस्था को बदलने की कोशिश की–वरना सारे प्रधानमंत्रियों ने या तो व्यवस्था से समझौता कर लिया, या उसका दुरुपयोग किया। जवाहरलाल नेहरू पहले व्यक्ति थे जिनके पास देश और व्यवस्था को लेकर एक सपना (विज़न) था, दूसरे विश्वनाथ प्रताप हैं जिन्हें अचानक ही एक विज़न ने अपने गिरफ़्त में ले लिया और मंडल कमीशन के लिए उन्हें सत्ता छोड़नी पड़ी–यह बिल वे उसी तरह लाए जैसे अस्तित्व–संकट से निपटने के लिए अब्राहम लिंकन 'एंटी स्लेवरी बिल' लाए थे। ज़ाहिर है देश के सत्ताधारी वर्ग में भयानक हंगामा तो होना ही था। उसकी काट के लिए लालकृष्ण आडवाणी को सोमनाथ से रामरथ यात्रा निकालनी पड़ी और हिंदुत्ववादी शक्तियों को बाबरी–मस्जिद तोड़नी पड़ी। मगर उसी मंडल का नतीजा है कि आज पंद्रह साल बाद ब्यूरोक्रैसी, शिक्षा और दूसरे सामाजिक क्षेत्रों में हमें ऐसे नाम दिखाई देने लगे हैं जिनकी पहले वहाँ होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। सवर्ण वर्चस्व के इस जातिवादी 'कोढ़' के लिए मंडल कैसी कैटलिस्टिक परिघटना थी इसे आज राजनीति और समाजविज्ञान के विद्यार्थी ज़्यादा गहराई से जानते हैं। वैसे मैं अब भी मानता हूँ कि उनकी

यह निजी नैतिकता राजनैतिक विचारधारा के साथ जुड़कर कहीं अधिक प्रभावशाली हो सकती है तो निश्चय ही वह वाम विचारधारा है....'' [2]

इससे यह समझ में आता है कि साम्प्रदायिकता के कई कारण होते हैं। जैसे धर्म, सम्प्रदाय, जाति, राजनीति, आर्थिक स्थिति और संस्कृति...आदि।

1. धर्म, सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिकता

1.1. धर्म : अर्थ एवं स्वरूप

“दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि जातिवाद हिंदू धर्म की आत्मा है और जो व्यक्ति किसी मान्यता प्राप्त हिंदू जाति से संबद्ध नहीं है, वह हिंदू हो ही नहीं सकता”[3]

'धर्म' शब्द अपने आप में महान है। इस का अर्थ भी व्यापक है। जैसे दया, यानी किसी के प्रति दया करना। किसी भूखे आदमी को खाना खिलाना। किसी गरीब की मदद करना। सामाजिक सत्कार्य करना। इन कार्यों में कोई भेद नहीं रहता है। अर्थात् ये सत्कार्य सबके लिए होते हैं। इसमें कोई भी भाग ले सकता है। लेकिन कालांतर में इसका अर्थ रूढ़ हो गया है, संकीर्ण हो चुका है। जैसे जो भी कार्य धर्म के नाम पर करते हैं, वह किसी न किसी सम्प्रदाय तक ही सीमित होता है। जैसे धर्म के नाम पर वैष्णव सत्कार्य करते हैं तो वह वैष्णव सम्प्रदाय तक ही सीमित रहता है। इस का स्वरूप भी बदल गया है।

1.1.1. व्यापक अर्थ

“ सभी धर्मों के मूल में दया, करुणा, परोपकार और सौहार्द्र है।”[4]

---

[2] पृष्ठ संख्या 9, हंस, सं., राजेन्द्र यादव, प्रकाशन नई दिल्ली, अगस्त, 2005

[3] पृष्ठ संख्या 21, बाबा साहेब डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड 8, आश्विन1916 (3 अक्तूबर, 1995)

[4] पृष्ठ संख्या 46, –सबलोग, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी, अप्रैल 2009

धर्म शब्द का अर्थ जितना व्यापक है उतना यह अनेकार्थ बोधक भी है। जैसे धर्म भगवान के नाम पर किए जाने वाले सत्कार्य होते हैं। किसी गरीब की मदद करना। किसी भूखा आदमी को खाना खिलाना। धर्म यानी अपना–अपना कर्म भी हो सकता है। अमर कोश में धर्म के पाँच नाम है।

''स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यं श्रेयसी सुकृतं वृषः'' [5]

(अतः धर्म, पुण्यम्, श्रेयः, सुकृतम्, वृषः, ये धर्म के पाँच नाम हैं।)

धर्म शब्द का कोशगत विविध अर्थ इस प्रकार है–

1. धर्म किसी वस्तु या शक्ति में सदा रहने वाली उसकी मूल वृत्ति, प्रकृति, स्वभाव, मूल गुण।
2. गुण , वृत्ति
3. स्वर्गादि शुभ फल देने वाले कार्य
4. किसी जाति, वर्ग... आदि के लिए निश्चित किया हुआ कार्य व व्यवहार जैसे क्षत्रिय का धर्म, सेवक का धर्म।
5. सदाचार
6. पुण्य, सत्कर्म

इसी ही तरह 'बृहद् हिन्दी कोश' में भी धर्म शब्द के अनेक अर्थ बताए गये हैं।

आज धर्म शब्द को सीमित दायरे में बाँध दिया गया है। जब हम धर्म का नाम लेते हैं तो पूजा–पाठ, अनुष्ठान, प्रार्थना, उपासना आदि ही याद आता है। लेकिन धर्म शब्द या धर्म की गरिमा ऐसी नहीं थी। धर्म का अर्थ सदाचार था। सदाचार में बहुत ही व्यापकता था। किसी गरीब को खाना खिलाना, वह अपना धर्म माना जाता था। मनुष्य को मनुष्य के रुप में पहचानना, गौरव देना उनका अपना 'धर्म' मानता था। सभी सत्कर्मों के समाहार था 'धर्म' शब्द में।

---

[5] अमर कोष– 1–4–24

बुद्ध के समय में भी 'धर्म' शब्द का प्रयोग हुआ था। अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, दया, क्षमा आदि को ही, 'धर्म' माना गया था। बुद्ध के द्वारा स्थापित किया गया बौद्ध धर्म को 'संघ' कहा जाता था। इसलिए उन्होंने कहा कि 'संघम शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि' उक्त उद्धरण और बातों से यह समझ में आ जाता है कि 'धर्म' शब्द का महत्व बहुत बड़ा है।

1.1.2. संकीर्ण अर्थ

'धर्म' शब्द का गहन अनुशीलन, करने के बाद लगता है कि 'धर्म' शब्द रूढ़ हो गया। सीमित हो गया। जबकि 'धर्म' शब्द प्राचीन काल से मध्य काल तक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था। 'धर्म' शब्द के बहुत सारे अच्छे लक्षण पाये जाते थे। यथा दया, करुणा, क्षमा, सदाचार आदि। बावजूद इसके प्राचीन काल में, हमारे भारत के पुराणों में, इतिहासों में, रामायण और महाभारत में, 'धर्म' शब्द को अन्याय, अनाचार के लिए प्रयुक्त किया गया है। धर्म के नाम से ही इस देश में जातियों का प्रार्दुभाव हुआ है। 'धर्म' के नाम से ही ऊँच–नीच की भावना का उद्‌भव हुआ है।

'धर्म' शब्द को या धर्म को खास एक वर्ग व जाति के लोगों ने सिर्फ अपने फायदे के लिए प्रयोग किया है। उसका प्रयोग करके अपना सुख भोग किया और दूसरों को दबाने का कार्य किया। 'मनु' ने धर्म के आधार पर पूरे मनुष्यों को विभाजित किया। भारत के मनुष्यों को चार भागों में बांट दिया गया। वे हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। ये इसी क्रम में ब्रह्मा के शरीर में से जन्में हैं। उसी क्रम में इनको अपना अपना स्तर निश्चित किया गया है। धर्म के अनुसार शूद्रों को कोई हक नहीं है। इन का काम है उन तीनों वर्णों की सेवा करना।

इस प्रकार अगर हम 'धर्म' के लक्षण देखें तो बहुत ही अच्छे हैं। परन्तु 'धर्म' शब्द को आदि से या जब 'धर्म' शब्द का उद्‌भव हुआ तब से एक खास वर्ग या जाति ने बुरे कार्यों के लिए ही प्रयुक्त किया। इसीलिए उसमें अच्छी चीजें होने के बावजूद, कई बुरी चीजें

उभरकर सामने आयी हैं। उसी के प्रभाव से मध्य युग से आज के समय तक 'धर्म' शब्द बुरे अर्थों के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है और संकुचित किया गया है। 'धर्म' शब्द को सम्प्रदाय के पर्याय के अर्थ में प्रयुक्त करना, इसको और संकुचित बनाने के सिवाय और कुछ नहीं है।

1.1.3. संक्षिप्त स्वरूप

"सभी धर्मों के मूल में दया, करुणा, परोपकार और सौहाद्र है। लेकिन धर्म को जब से राजनीति का उपकरण बनाया जाने लगा है उसका व्यावहारिक स्वरूप बिगड़ता जा रहा है। धर्म का यह दुरुपयोग पूरी दुनिया के लिए खतरनाक है।"[6]

धर्म का मर्म अगर जानना है, तो सदगुरु की ज़रूरत को जरूरी माना गया है। कई जगह पर महाकवि कबीरदास भी सदगुरु की बात करते हैं। इसीलिए हमारे देश में गुरुओं की मान्यताएं ज्यादा हैं। उनको सबसे ज्यादा महत्व देते हैं। भगवान के समान देखते हैं। लेकिन वे गुरु, पुजारी, बाबा आदि लोगों ने, धर्म के नाम पर क्या क्या नहीं कर रहें हैं ? वे लोग मठों में स्त्रियों के साथ, दुर्व्यवहार करते हैं। उन्हें गर्भवती करते हैं। उसके बाद उसे छोड़ देते हैं। किसी की पत्नी उन्हें सुंदर लगी तो उसे अपने जाल में फँसाने के लिए, धर्म का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे मामलों में कई बार हत्या तक की खबरें भी मिलती हैं, जिसमें मंदिरों–मठों के लोग ही शामिल पाए जाते हैं।

"कर्नाटक के एक स्वामी को एक प्रतिष्ठित भारतीय राजनैतिक की चार बच्चों वाली पत्नी को धार्मिक अंधविश्वास का शिकार बनाकर उससे न सिर्फ विवाह कर लिया था,

बल्कि उसे जान से मारकर घर में ही दफनाकर दिया था, जिसके आरोप में उस स्वामी को अभी हाल ही में फाँसी की सजा सुनाई गई।"[7]

---

[6] पृष्ठ संख्या 46, –सबलोग, सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक किशन कालजयी, अप्रैल 2009

धर्म के नाम पर बहू के साथ बलात्कार, किसी के ऊपर बलात्कार करके कहते हैं–कि इसकी वजह को पूर्व जन्म से जोड़ देते हैं। " मुजफ्फरनगर (यू . पी) की इमराना नामक एक महिला को उसके ससुर अली मुहम्मद ने, संभोग का शिकार बनाया। धर्म और नैतिकता की दुहाई देते हुए गाँव की पंचायत ने फरमान जारी किया कि अब वह बलात्कार के बाद अपने पति को बेटे के रूप में स्वीकार करते हुए ससुर की ही पत्नी बनकर रहे। बाद में दार–उल–उलूम की इस्लामी कोट ने 26 जून 2005 को फ़ैसला दिया कि इमराना अब धर्म के अनुसार किसी की भी पत्नी नहीं हो सकती, साथ ही बलात्कारी ससुर को निर्दोष छोड़ दिया गया।"[8]

सन 1997 में न्यू मेक्सिको स्थित सेंटाफे जूनियर हाई स्कूल के रोज़र कात्ज़ नाम के एक अध्यापक ने एक 14 वर्षीय छात्र के साथ जबरन बलात्कार किया। इस बलात्कारी ने कोर्ट में जज के सामने बयान दिया कि वह उस छात्र को सन् 640 ई0 से जानता है तथा उस समय वह तिब्बत में एक बौद्ध भिक्षु था, जिस पर विरोधी धर्म वाले एक घुड़सवार ने जान से मारने के लिए तीर चला दिया, किन्तु उस समय यह छात्र वहाँ एक युवती थीं, जिसने उस तीर को अपने सीने पर ले लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। अतः रोजर ने आगे कहा

" मैंने 640 ई0 में इस महिला द्वारा अपनी बलि देकर मेरी जान बचाने के बदले में उसके उस प्यार और समर्पण के ऋण को चुकाने के लिए मैंने इस छात्र के साथ बलात्कार किया था। अतः मैं निर्दोष हूँ। " [9]

---

[7] पृष्ठ संख्या, 25–हंस, अगस्त 2005

[8] पृष्ठ संख्या, 25, हंस, अगस्त–2005

[9] पृष्ठ संख्या, 25, हंस, अगस्त–2005

उपरोक्त प्रकार से धर्म के स्वरूप को देख सकते हैं। यही नहीं और भी बहुत सारे रूप हमें मिलते हैं। धर्म के अधिकतर बाह्य रूप, धर्म के नाम पर आडम्बर बन जाते हैं। बाह्याडम्बरों के कारण ही आज धर्म सबसे उपेक्षित वस्तु बन गया है। बाह्याडम्बर एवं अंधविश्वास ही समस्त धार्मिक विवादों के मूल हैं। हर एक धर्म के अनुयायी को अपने धर्म का सम्पूर्ण ज्ञान न होने के कारण तथा–धर्म के बाह्य रूपों को ही धर्म समझने के कारण विवाद उत्पन्न करते हैं। इसलिए प्रत्येक धर्मानुयायियों को अपने धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर धर्म का सच्चा स्वरूप जान लेना चाहिए। धर्म के जितने भी बाह्य रूप हैं, वे सब सच्चे धर्म न होकर उस तक पहुँचने के प्राथमिक सोपान हैं। यदि मानव जीवन भर प्रथम सोपान में ही रहकर, उसी को इति मानकर रहे तो सच्चे धर्म का बोध भी आजीवन नहीं हो सकता है। सच्चा धर्म प्राणी मात्र से स्नेह करना सिखाता है। एक दूसरे के प्रति घृणा व द्वेष रखना धर्म नहीं अधर्म है। धर्म को धर्म की ही जगह में रखना है। धर्म को राजनीति में लाना, राजनीति को धर्म के नाम से जनता को भड़काना, दंगे करना, आदि धर्म नहीं होता, वह केवल अधर्म की राजनीति होता है।

आज के समय में अंग्रेजी, रिलिजन शब्द के अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेकिन यह धर्म का वास्तविक अर्थ नहीं है। भारतीय परिदृश्य में जब हम धर्म पर विचार करते हैं, तो अंग्रेजी रिलिजन उसका पर्यायवाची नहीं ठहरता है। बल्कि उसका अंग्रेजी अर्थ 'राइटकन्डक्ट' (सदाचार) से ही व्यक्त हो सकता है। 'रिलिजन' तो लैटिन भाषा का शब्द Religare शब्द से व्युत्पन्न हुआ, जिसका अर्थ होता है 'बाँधना'। जब ईसाई लोग भारत में अपने ईसाई मत का प्रचार कर रहे थे, तो उन्होंने 'रिलिजन' का भारतीय भाषा में पर्यायवाची शब्द 'धर्म' बना दिया। जबकि 'रिलिजन' का पर्यायवाची शब्द 'मत' या 'सम्प्रदाय' होता है। अपने दीर्घ कालीन यात्रा के बाद, सदाचार, मर्यादा, विधान का वाचक धर्म, एक संकीर्ण अर्थ में मत (Religion) या सम्प्रदाय बन गया।

1.2. सम्प्रदाय : अर्थ एवं स्वरूप

सम्प्रदाय का अंग्रेजी भाषा में पर्यायवाची शब्द 'Religion' होता है। कार्ल मार्क्स ने कहा है कि "Religion is the opium of the people" [10] यानी धर्म या सम्प्रदाय जनता की अफीम है।

कोई भी वस्तु अपने आप में बुरी नहीं होती है। बल्कि उसका उपयोग करने वालों पर यह निर्भर करता है।

1.2.1. सम्प्रदाय का अर्थ

सम्प्रदाय शब्द का कोशगत अर्थ है– " परम्परा से चला आया हुआ ज्ञान, मत सिद्धान्त, गुरु परम्परा से मिलने वाला उपदेश, मंत्र, किसी धर्म के अन्तर्गत कोई विशिष्ट मत या सिद्धान्त। उक्त प्रकार के मत व सिद्धान्त को मानने वालों का वर्ग या समूह यथा शैव, वैष्णव आदि किसी विचार, विषय या सिद्धांत के सम्बन्ध में एक ही तरह के विचार या मत रखने वाले लोगों का वर्ग। किसी मत के अनुयायियों की मंडली, फिरका, मार्ग, पंथ, परिपाटी, रीति, चाल को सम्प्रदाय कहते हैं।"[11]

अर्थात उक्त उद्धरण के अनुसार सम्प्रदाय गुरु परम्परागत अथवा आचार्य परम्परागत संघटित संस्था है।

1.2.2. सम्प्रदाय का स्वरूप

धर्म और सम्प्रदाय को अलग करके देखना या समझना मुश्किल है। धर्म और सम्प्रदाय एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। धर्म के प्रति भारतीय दृष्टिकोण बहुत व्यापक मानी जाती है।

---

[10] to critique of Hegal's 'philosophy of Right', Introduction Chapter, karl Marx-1844, progressive publishers, Masco, Russia-1959

[11] हिन्दी शब्द सागर–श्याम सुन्दरदास, नागरी प्रकाशन सभा

समस्त पृथ्वी पर धर्म एक ही माना जाता है। लेकिन सम्प्रदाय अनेक माने जाते हैं। धर्म समस्त भूतल पर व्याप्त है। अतः धर्म की कोई सीमा नहीं हैं। सम्प्रदाय अपने–अपने देश काल की सीमाओं में निबद्ध होते हैं। धर्म शाश्वत है। लेकिन सम्प्रदाय समय के अनुसार संस्थापित होते हैं। सम्प्रदाय किसी महापुरुष के द्वारा संस्थापित होता है। इनमें देश काल के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के कारण एक सम्प्रदाय में अनेक शाखाओं का प्रार्दुभाव होता है। उनमें वाद–विवाद भी जन्म लेने लगता है। इसका कारण यह है कि पवित्र या विशुद्ध 'सम्प्रदाय' शब्द कालांतर में चलकर मनुष्य के प्रदूषित भावनाओं का शिकार हो जाता है।

सम्प्रदाय शब्द अपने आप में भले ही पवित्र हो, लेकिन उसको स्थापित करने वाला तो पवित्र होना चाहिए। क्योंकि सम्प्रदाय तो किसी महापुरुष के द्वारा ही स्थापित किया जाता है। वे भी अपने अपने देश–काल परिस्थितियों के अनुसार प्रस्थापित किया जाता है। खास कर हमारा भारत देश आदि से ही यानी जब से सभ्यता का विकास शुरू हुआ तब से, जाति, वर्ण, वर्ग, प्रधान देश है। इनमें से कुछ वर्ण, वर्ग, जाति वालों को तो इस तरह के सम्प्रदाय की स्थापना करने का अधिकार ही नहीं था। कुछ वर्णों से तो महापुरुषों का जन्म ही नहीं हो सकता था। माहापुरूषों का जन्म तो कुछ ही जातियों में या वर्णों में होता था। जाहिर सी बात है कि एक खास जाति या वर्ण के महापुरुष एक सम्प्रदाय की प्रस्थापना करेगा तो, वह केवल उनके खास जाति या वर्ण के हित के लिए ही, विधि–विधान बनाएंगे। और कहा जायेगा कि ये जो विधि–विधान हैं, सब के हित के लिए हैं जबकि वे कुछ ही लोगों के हित के लिए बनाये गये हैं। इसलिए सम्प्रदाय शब्द अपने आप में कितना पवित्र, विशुद्ध रहने पर भी बेकाम है। सम्प्रदाय शब्द सार्थक तभी होगा जबकि उस की स्थापना करने वाला पवित्र होगा।

आज कोई भी सम्प्रदाय हो, उस के प्रवर्तक अपने फायदे के लिए उसका उपयोग करने लगे हैं। इस उपयोग के पीछे उनका निजी स्वार्थ छुपा हुआ है। आखिर ये स्वार्थ क्या हो सकता है ? इस स्वार्थ का कारण यह है कि 'हमारा भला हो', हमारे लोगों को नौकरी मिले, हमारे लोग सबसे ज्यादा श्रेष्ठ हों, हमारी वर्ण पवित्र हो, हमारी जाति ही सबसे ज्यादा

योग्य हो। हमारा सम्प्रदाय ही सभी सम्प्रदायों से श्रेष्ठ हो। ये उक्त भावनाएँ उनके स्वार्थ में छिपा है।

इस लिए जब जब उनको खतरा लगता है तब तब अपने हाथों से बनाया हुआ सम्प्रदाय को गलत उपयोग करते हैं। अर्थात एक सम्प्रदाय के अनुयायी, अन्य सम्प्रदाय एवं अनुयायियों के प्रति घृणा, द्वेष, नफरत आदि भावनाएँ प्रकट करते हैं। अन्य सम्प्रदायों की गलत व्याख्या करते हैं। नीचा दिखाते हैं। तब दोनों पक्ष के लोग उग्र रूप धारण कर लेते हैं। साम्प्रदायिक बन जाते हैं। एक सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक और दूसरे सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक, एक दूसरे पर प्रत्यक्ष रूप से हमला करते हैं। तब साम्प्रदायिकता उत्पन्न होती है।

1.3. साम्प्रदायिकता : अर्थ एवं स्वरूप

"सीधे–सीधे कहें तो साम्प्रदायिकता का आधार ही यह धारणा है कि भारतीय समाज कई ऐसे संप्रदायों में बंटा हुआ है जिनके हित न सिर्फ अलग हैं बल्कि एक–दूसरे के विरोधी भी हैं। साम्प्रदायिकता के जन्म के पीछे का विश्वास यह भी है कि राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक इरादों के लिए लोगों को सिर्फ धर्म की रस्सी से ही बांधकर आंका जा सकता है।"[12]

इस धरती पर जितने भी ज्वलंत समस्याएं हैं, इसका कारण क्या हो सकता है ? यह लगता है कि इन तमाम ज्वलन्त और गम्भीर समस्याओं का कारण अपने–अपने निहित स्वार्थ ही हैं।

1. 3.1. साम्प्रदायिकता का अर्थ

'साम्प्रदायिकता' शब्द की उत्पत्ति सम्प्रदाय से है। कोई एक विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी, उसी सिद्धान्त को अनुगमन करने वाले, अन्य सम्प्रदाय के प्रति द्वेष, रखने वाले,

[12] पृष्ठ संख्या 3, साम्प्रदायिकता एक प्रवेशिका, विपिन चन्द्रा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2008(शक 1930)

साम्प्रदायिक कहलाते हैं। इन अनुयायियों के क्रियाओं से 'साम्प्रदायिकता' जैसा शब्द दूषित हो जाता है। समाज में उसको सभी कलंकित समझने लगते हैं। 'साम्प्रदायिकता' 'साम्प्रदायिक' से बनता है। विश्व सूक्ति कोश –खण्ड–पाँच में भी 'साम्प्रदायिकता' के दूषित तत्व को देखा जा सकता है।

"साम्प्रदायिक :

1. अरे बंधु। अपने बंधु को हृदय से लगा, जहाँ साधुता है वही ईश्वर की शान्ति है।

2. अल्पाहार में, दिव्य शान्ति में और लोक संसर्ग के त्याग में साधुता रही है।

साम्प्रदायिक :

अपने मताग्रह में जो दूसरे से विद्वेष ठान लेता है, उसे अपने मत–सम्प्रदाय से ग्रस्त और इसलिए साम्प्रदायिक माना जा सकता है।

साम्प्रदायिकता :

1. इत्तहाद के वृहद विटप की छाया से है दूर भागते।
विधर्मियों के प्राण चुराने को हैं ये दिन–रात जागते।।

2. खूँ बहाया जा रहा इन्सान का, सींग वाले जानवर के प्यार में।
कौम की तकदीर फोड़ी जा रही , मस्जिदों की ईंट की दीवार में।।"[13]

उक्त प्रकार से साम्प्रदाकिता के विविध अर्थों को समझ सकते हैं।

---

[13] पृष्ठ संख्या 51, विश्व सूक्ति कोश–खण्ड पाँच, प्रकाशक आर्य बुक डिपो

1.3.2.साम्प्रदायिकता का स्वरूप

'साम्प्रदायिकता' शब्द की उत्पत्ति सम्प्रदाय से है। सम्प्रदाय के बारे में या उसकी उत्पत्ति और स्वरुप के बारे में चर्चा हो चुकी है। कोई एक विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी, उसी सिद्धान्त का अनुगमन करने वाले, अन्य सम्प्रदाय के प्रति द्वेष रखने वाले, साम्प्रदायिक कहलाते हैं। इन अनुयायियों के क्रियाओं से 'साम्प्रदायिकता' जैसा शब्द दूषित हो जाता है। समाज में उसको सभी कलंकित समझते हैं। 'साम्प्रदायिकता' 'साम्प्रदायिक' से बनता है। विश्व सूक्ति कोश–खण्ड–पाँच में भी 'साम्प्रदायिकता' के दूषित तत्व को पाया जा सकता है।

लोग अपने सम्प्रदाय को श्रेष्ठ और दूसरों के सम्प्रदाय को निकृष्ट मानते हैं। एक सम्प्रदाय वाले दूसरे सम्प्रदाय वाले से घृणा करते हैं। वे एक दूसरे से अलग होकर रहना चाहते हैं। उसी का परिणाम है अलगाववाद। अतः अखण्ड भारत का विभाजन हुआ।

"two centuries back, communalism had a connotation of identity based on community. In the post colonial discourse, communalism is understood as an antagonistic collective mobilization on the basis of religion leading to the partition of the subcontinent into India and Pakistan and recurrence of communal conflicts"[14]

साम्प्रदायिकता के बारे में अच्छी तरह से जानने वाले जैन मालूम पड़ते हैं। भगवान महावीर साम्प्रदायिकता के खतरे को पहले से ही जानते थे। उन्होंने साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिए बहुत कोशिश किया। महावीर ने असाम्प्रदायिक संस्कृति की स्थापना की कोशिश की। साम्प्रदायिक जैसी बुरी भावना के बारे में उपदेश दिये हैं। साम्प्रदायिकता के बारे में मुनि दुलहराज ने, अपनी किताब 'जैन दर्शन मनन और मीमांसा' में लिखते हैं।

[14]maheswari 200; pg no 192, Religion, power& violence, Edited by Rampuniyani

“साम्प्रदायिकता एक उन्माद–रोग है। उसके आक्रमण का ज्ञान तीन लक्षणों से होते हैं : 1. सम्प्रदाय और मुक्ति का अनुबन्ध :

मेरे सम्प्रदाय में आओ, तुम्हारी मुक्ति होगी अन्यथा नहीं होगी।

2.प्रशंसा और निंदा :

अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा और दूसरे सम्प्रदायों की निंदा।

3.ऐकान्तिक आग्रह :

दूसरों के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न न करना।”[15]

इस प्रकार अपने सम्प्रदाय के प्रति कट्टरता का भाव बन जाता है और वे साम्प्रदायिक बन जाते हैं। तभी से साम्प्रदायिक शब्द भी बदनाम हो जाता है। साम्प्रदायिक शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'कम्यूनल' है। कम्यूनल शब्द भी अपने उद्भव काल में किसी संगठन का सहभागी होने से ही है। कम्यूनल शब्द कम्यून शब्द से बनता है। कम्यूनल से कम्यूनलिज्म बनता है।

ईसाई मजहब में धार्मिक कार्यों में सहभागी होने के लिए 'कम्यूनिअन' शब्द का कई स्थलों पर प्रयोग हुआ है। कम्यूनिअन शब्द की व्युत्पत्ति भी कम्यून से ही है। लेकिन जहाँ कम्यून शब्द केवल सामाजिक जीवन में प्रयुक्त था, वही 'कम्यूनियन' शब्द ईसाई मत या मजहब या सम्प्रदाय में धार्मिक जीवन से सम्बद्ध हो गया। अंग्रेजी विश्वकोश में कम्यूनियन शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

“ communion –Holy– A name given to the christion institution (one of the sacrament) which commemorates the last supper jesus

---

[15] पृष्ठ संख्या, 52, जैन दर्शन : मनन और मीमांसा

with his disciples. It is also the lords supper or the lucharist which means thanks giving because according to the gospels of st. Mathew st. Mark and st luke jesus gave thanks before he broake and distributed the bread. The name holy communion emphsises the fact that the sacrament is a means of communion or fellowship with Christ himself and with all those whether living or departed who member of his body the church communion of sants this expression which is a translation of the latin communion same tarum is the third close of the third secter of the apostles creed in its present form that is to say of the common cread of western christendom "[16]

एक सम्प्रदाय का अनुयायी अपने सम्प्रदाय को ही श्रेष्ठ और दूसरे सम्प्रदाय को हीन मानता है। किसी भी सम्प्रदाय के अनुयायी होने से वे अपने सम्प्रदाय के प्रति साम्प्रदायिक होते हैं। अन्य सम्प्रदायों को दूषित करते हैं। अपनी सम्प्रदाय की प्रशंसा करते हैं। अपने ही हित के लिए सोचते हैं। जब अपनी ही सम्प्रदाय के ही हित के लिए सोचते हैं, तो कट्टर हो कर ही सोचते हैं। अतः साम्प्रदायिक बनकर साम्प्रदायिकता को फैलाते हैं

इस तरह के कट्टरपन केवल सम्प्रदायों में हीं नहीं अपितु समाज के हरेक स्तर पर देखने को मिलता है। यथाः जातियों के बीच, वर्गों के बीच, वर्णों के बीच, उपजातियों के बीच भी कट्टरता पाई जाती है। इन सबके बीच साम्प्रदायिकता की गन्दगी फैली हुई हैं।

"भारत में साम्प्रदायिकता के सबसे बड़े डिब्बे के अन्दर साम्प्रदायिकता के अनेक छोटे डिब्बे विद्यमान हैं, और फिर छोटे–छोटे डिब्बे के अन्दर और निचली साम्प्रदायिकता के

---

16 Page no. 113, An Incyclopaedia of religion, M.A. canneg- Nag Publishers Delhi-7.

भी और अधिक छोटे डिब्बे क्रमशः विद्यमान हैं। धार्मिक संस्कृति पर आधारित जातिवादी, उपजातिवादी, भाषा वादी व क्षेत्र वादी इत्यादि साम्प्रदायिकताएं। इस प्रकार की अधिक छोटी साम्प्रदायिकताएं हैं।"[17]

1.4. सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिकता में अंतर

सम्प्रदाय किसी गुरु परम्परा का देन है। सम्प्रदाय किसी महापुरुष के द्वारा प्रस्थापित किया जाता है। सम्प्रदाय अनेक होते हैं। सम्प्रदाय अपने अपने देश, काल परिस्थिति के अनुसार जन्म लेते हैं। हर सम्प्रदाय का अपना विधि–विधान रहता है। हर सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं। जिसे उसके अनुयायी अपने सम्प्रदाय के विधि–विधान का अनुगमन करते हुए, उसकी रक्षा के लिए सोचते हैं, उसकी रक्षा करने में अपने आप की कुर्बानी देने के लिए तत्पर रहते हैं, वे ही साम्प्रदायिक कहलाते हैं। साम्प्रदायिक से साम्प्रदायिकता का उत्पन्न होता है। अतः सम्प्रदाय से साम्प्रदायिक, साम्प्रदायिक से साम्प्रदायिकता का जन्म होता है।

1.5. साम्प्रदायिकता के विविध स्रोत

साम्प्रदायिकता के कईं कारण होते हैं। बल्कि मुख्य रुप से कुछ ऐसे कारण होते हैं, जो साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में अपनी मुख्य भूमिका निभाते हैं। इन कारणों को हम आदि काल से आज के आधुनिक कम्प्यूटर युग तक में भी देख सकते हैं। इन में सबसे पहला कारण है, अधिकार या आधिपत्य या आज के प्रजातन्त्र में राजनीति, जिसका सत्ता में आने के लिए उपयोग किया जाता है। उसी सत्ता को पाने के लिए संस्कृति का भी इस्तेमाल किया जाता है। सामाजिक समस्याएं, राजनीतिक समस्याएं, आर्थिक समस्याएं और सांस्कृतिक समस्याएं भी साम्प्रदायिकता को फैलाने में कारणभूत होते हैं। साम्प्रदायिकता की ऐतिहासिक घटनाओं को देखने से और स्पष्ट रुप से समझ में आता है।

---

[17] पृष्ठ संख्या, 24, साम्प्रदायिकता और भारतीय समाज, आर. एस. यादव

1.5.1. बीसवीं सदी के साम्प्रदायिकता की ऐतिहासिक घटनाएं

1.1.विज्ञान बनाम धर्म

बीसवीं सदी एक ऐसी सदी है जिसमें एक ओर यदि विज्ञान और तकनीकी का विकास हो रहा है तो दूसरी ओर मानवीय मूल्यों का पतन भी होता दिखाई देता है। एक ओर हम नये–नये आविष्कार कर रहे हैं। ज्ञान रूपी शिखर पर चढ़ते जा रहें हैं। दूसरी ओर उतने ही अनुपात में हिंसा और क्रूरता रूपी खाई में भी गिरते जा रहें हैं। इस आधुनिक युग में भी अंधायुग की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। क्योंकि आदमी की परिभाषा उसकी आदमियत से होनी चाहिए बल्कि ऐसा न होकर धर्म, राष्ट्र, जाति, भाषा, प्रांत और क्षेत्र के आधार पर होती है और हो रही है। इसको परखना होगा कि बीसवीं सदी के आदमी पर यह कौन सा नशा छा गया है कि आदमी, आदमी के खून का प्यासा हो गया है। दरअसल में समाज आदमियों के समूहों से बनता है। इनको शिक्षा इसलिए दी जाती है कि आदमी, आदमी से जुड़े और विकास के पथ पर आगे बढ़े। लेकिन यह कौन सी शिक्षा, कैसा विकास, कैसे संबंध है जो आदमी को आदमी से जोड़ने के बजाय एक दूसरे से दूर करता जा रहा है।

1.2 निहित स्वार्थ की पूर्ति : साम्प्रदायिकता

मनुष्य अकेला जीवन यापन नहीं कर सकता है। आदिकाल से आज के आधुनिक काल तक की मनुष्य की समाजिक विकास को परखने से, हमें यह पता चलता है कि मनुष्य में संगठित रहने की प्रवृत्ति है। आदिकाल में मनुष्य पर प्राकृतिक बाधा थी। इसके खिलाफ संघर्ष करने के लिए नेतृत्व करने वाला चाहिए था। इस नेतृत्व के लिए नेता को शरीरिक तथा वैचारिक शक्ति का प्रमाण देना पड़ता था। नेतृत्व का यह दायित्व धीरे–धीरे सत्ता के रूप में बदलता गया। सत्ता के रूप ने मानव समुदाय को दो मूल वर्गों में बाँट दिया, पहला शासक और दूसरा शासित। समाज विकास के क्रम में कई चरण हैं। वस्तु जगत है। अज्ञात जगत भी है। इस अज्ञात शक्ति पर मनुष्य के विश्वास का ही देन है

ईश्वर और धर्म। भिन्न–भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की भिन्न–भिन्न परिस्थितियों ने अलग अलग ईश्वर और धर्म को जन्म दिया। धर्म के इस विश्वास को एक दूसरे पर थोपने की कोशिशे भी हुई और जन्म लिया साम्प्रदायिकता ने।

साम्प्रदायिकता भारतवर्ष के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी है। आम धारणा के विरुद्ध, सच्चाई यह है कि साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्म नहीं है। निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिए हमेशा धर्म को हथियार बनाया गया है। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शक्ति को हथियाने के लिए इसका खुलकर प्रयोग होता आया है। यह समाज के ऊपर के तबके के लोगों के दिमाग की ऊपज है, जिसके सहारे वे अपने–अपने सम्प्रदाय के लोगों को गोलबन्द करके दूसरों के खिलाफ एक शक्ति के रूप में उनका इस्तेमाल करते हैं।

1.3. आर्थिक विवाद और साम्प्रदायिक दंगे

साम्प्रदायिक दंगें होते हैं तो न केवल मनुष्यों के जान जातें हैं बल्कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक नुकसान भी होते हैं। इस नुकसान का सही अंदाजा लगाना मुश्किल होता है। बहुत सारी लाशें गायब कर दी जाती हैं। उन आर्थिक सम्पत्ति का मूल्यांकन पुरानी कीमत के आधार पर होता है।

दंगा हमेशा पूर्वनियोजित तरीके से किया जाता है। वास्तव में यह राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विवाद का रूप है। यह क्षमता छीनने की लड़ाई का एक हिस्सा है। सम्भल (उ.प्र.) में अफीम चोरों की प्रतिस्पर्धा, मुरादाबाद में पीतल के बर्तन के निर्यात पर आधिपत्य, अलीगढ़ का ताला उद्योग पर नियंत्रण, राउरकेला में व्यवसायिक प्रतिद्वन्दिता, आदि दंगों के कारण रहे हैं। धर्म यदि दंगें का कारण होता तो बम्बई–भिवन्डी के दंगों में मुस्लिम इलाके में बसे हिन्दू मालिकों के कपड़े के मिल सुरक्षित नहीं बचते, ये मिल उन इलाकों के मुसलमानों के रोजी–रोटी के सवाल से जुड़े थे इसलिए दंगे के बावजूद वे सुरक्षित रहे।

1.4. मुसलमानों का आक्रमण

ई. 712 में मुहम्मद–बिन–अल–कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया। फिर अरब,तुर्क, अफगान और मुगल भारत पर आक्रमण करते रहे। इस दौरान ये मन्दिरों को तोड़ते, धर्मांतरण करते हुए अपना राज्य विस्तार करते रहे। 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के लड़ाई में अफगानों को हराकर मुगल साम्रज्य की स्थापना की। अंग्रेज के आने तक मुगल शासनकाल चलता रहा। इस शासनकाल में दोनों सम्प्रदायों में असंतोष और असहिष्णुता शिखर पर था। बाबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब के काल में अकबर द्वारा लाये प्रीतिपूर्ण अवस्था का पुनः पतन हुआ। उसने बलपूर्वक धर्मान्तरण करवाये और मंदिर ढहाये गये।

1.5. साम्प्रदायिकता का विरोध

इन साम्प्रदायिक शक्तियों से अलग, इसी काल में कुछ ऐसे लोग भी आए जिन्होंने इस नफरत वाली दूरी को कम करने की कोशिश की। कबीर, नानक, तुकाराम, चैतन्य, धर्म–निरपेक्ष रूप से मानवता के सन्देश को देश के कोने–कोने में फैलाते रहे। कट्टर हिन्दूवाद के विरोध, वैष्णववाद तथा मुस्लिमवाद के विरोध में ही सूफीवाद का जन्म हुआ। परन्तु प्रचंड संघर्ष और शत्रुता की आग पूरी तरह बुझाई नही जा सकी।

इस समय दोनों सम्प्रदायों की संस्कृति एक दूसरे से प्रभावित भी हुई थी। वेश–भूषा, खान–पान, भाषा, कला, साहित्य तथा विशेषकर स्थापत्य कला पर इसका ज्यादा प्रभाव हुआ। पर यह केवल धनी तथा ऊँचे वर्ग के लोगों में ही हुआ। साधारण तथा आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े वर्ग के लोगों में विभेद बना ही रहा। हिन्दू मुसलमान को ''म्लेच्छ'' कहते थें और आज भी कह रहे हैं। मुसलमान हिन्दू को ''काफिर'' कहते थे और आज भी कह रहे हैं। हजार वर्ष साथ रहकर भी वे एक दूसरे से मिल नही पाये। दरअसल दोनों सम्प्रदायों के संस्कृतियों में कुछ बुनियादी फर्क थे जो रह गये।

मुसलमान एक ही ईश्वर में विश्वास करते हैं तो हिन्दू बहु देवताओं में विश्वास करते हैं। मुसलमान निराकार ईश्वर के उपासक तो हिन्दू आकार या मूर्ति के उपासक हैं। मुसलमान सब मिलकर, सामूहिक प्रार्थना करते हैं। हिन्दू व्यक्तिगत ध्यान और पूजा में विश्वास करते हैं। हिन्दू गाय की पूजा करते हैं। मुसलमान गोमांस खाते हैं। इसी तरह सूरज–चाँद, पूर्व–पश्चिम, कुर्बानी–झटका, मातृ प्रधान परिवार ये सारे बुनियादी फर्क रह ही गये।

1.6. बांटो और राज करो

भारतवर्ष विभिन्न जाति–धर्म–वर्ण–सम्प्रदायों का एक महासंघम है। सदियों से लोक अपनी–अपनी विशिष्टता के साथ यहां एक साथ रह रहे हैं। यह देश विश्व भर में ''अनेकता में एकता'' के लिए प्रशंसित है। हिन्दू–मुस्लिम–सिख–इसाई–जैन–बौद्ध–यहूदी यहां अपने–अपने धार्मिक विश्वास के साथ रहते आए हैं। 1984 के बोकारो, कानपुर व दिल्ली में हुए सिख दंगे को अपवाद के रूप में छोड़ दिया जाय तो भारत देश में दंगे मूलतःहिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच ही होते हुए दिखाई देते हैं। क्यों होते हैं, इसको सोचा जाना चाहिए। दरअसल धर्म को लेकर विरोध इसका कारण नहीं है। इसका कारण है एक दूसरे के प्रति अज्ञानता, असहिष्णुता, श्रेष्ठतावाद तथा राजसत्ता छीने जाने का आक्रोश। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम इसे समझा तथा ''बांटो और राज करो'' की नीति चलाकर इस विरोध और दूरी को बढ़ा दिया। आज भी उसी परम्परा का निर्वाह हो रहा है। साम्प्रदायिक उत्तेजना दिन व दिन आग की तरह फैलती जा रही है। इसका अध्ययन इतिहास के आलोक में किया जाय तो स्थिति और स्पष्ट हो जाएगी।

1.7. 1903 में बम्बई दंगा

भारत में सब से पहले संगठित दंगा बम्बई में 1903 ई. में हुआ। मुहर्रम के दौरान हिंसोन्मान्ध जनता ने कठियाबाढ़ में कुछ मंदिर तोड़े, बदले में बम्बई में दंगा फैल गया। सेना के बुलाने पर धीरे–धीरे शान्ति का माहौल कायम हुआ।

1.8. लॉर्ड कर्जन की नीति

अंग्रेजों की ''बाँटो और राज करो'' वाली नीति साम्प्रदायिक भावना को भड़काकर पूरे देश पर अपना सरकार चलाने में सहायक सिद्ध हुई। 1905 ई. में लॉर्ड कर्जन की बंग–भंग की नीति इसी साजिश का परिणाम थी। पूरे देश में इसके विरोध में आंदोलन हुआ। कहीं–कहीं हिंसा भी भड़क उठी। दरअसल भाषा के आधार पर भौगोलिक सीमा को बाँटने की आड़ में यह राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की शक्ति को बाँटने की कोशिश थी। परन्तु जनता के विरोध के कारण उन्हें 1911 में यह निर्णय वापस लेना पड़ा।

1.9. 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना

दिसम्बर 30, 1906 को ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। काँग्रेस और मुस्लिम लीग शुरू में भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में साथ–साथ हिस्सा लेने लगे पर 1909 में उन मुस्लिम नेताओं की विजय हुई जो राष्ट्रीय आन्दोलन से मुसलमानों को दूर रख़ना चाहते थे। लेकिन राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता जैसे बदरूद्दीन तैयबजी, रहमत अल्लाह, काँग्रेस के साथ रहे। 1916 ई. में काँग्रेस मुस्लिम लीग के बीच लखनऊ समझौता हुआ जिसमें दोनों दलों ने अंग्रेंजी सरकार के विरोध में इकठ्ठा होकर लड़ने की योजना बनाई गई।

1.10. 1909 में मोरली–मिन्टो सुधार

दूसरी कोशिश 1909 ई. में मोरली–मिन्टो सुधार के तहत की गई। इसके अनुसार ''अलग वोटाधिकार'' द्वारा सम्प्रदायों के आधार पर जनादेश को बाँटने की चाल चली गई। ''अलग वोटाधिकार'' में हिन्दू केवल हिन्दू प्रतिनिधि का चुनाव कर सकते हैं। मुस्लिम, मुस्लिम प्रतिनिधि का चुनाव कर सकते हैं। अर्थात धर्म को प्रत्यक्ष रूप से राजनीति के साथ जोड़ा गया।

1.11. 1919 में मान्टेगु–चेम्सफर्ड विधेयक

मान्टेगु–चेम्सफर्ड विधेयक 1919 में लाया गया। 1935 के तहत हिन्दू और मुस्लिम के अलावा सिख, भारतीय ईसाई तथा यूरोपियन, महिलाएं तथा कुछ भाग अस्पृश्य जातियों के लिए वोटाधिकार प्रयोग की सुविधा अलग–अलग रूप से प्रदान कर भारतीय राजनीति पर साम्प्रदायिकता का बीज बो दिया गया।

1.12. 1930 में मुस्लिम लीग का सम्मेलन

मुस्लिम लीग का 1930 इलाहाबाद सम्मेलन के समय मुहम्मद इकबाल की अध्यक्षता में मुस्लिमों के लिए अलग पाकिस्तान का स्वरूप सामने रखा गया। 1934 में जिन्ना ने इसे और आगे बढ़ाया। गैर लीगी राष्ट्रीयतावादी मुसलमान गांधी जी के असहयोग आंदोलन से जुड़े लेकिन मुस्लिम लीग ने जमकर विरोध किया।

1.13. 1917 और 1934 के साम्प्रदायिक दंगे

1917 का पिरो (भोजपुर) दंगें में लगभग पाँच हजार (5000) लोग मारे गए। इससे फिर तनाव पैदा हुआ, फिर अलग होकर अपना कार्य करने लगे। लेकिन जालियाँवाला बाग की घटना ने दोनों दलों को फिर से इकठ्ठा होकर लड़ने को मजबूर किया। इसके बाद स्वतन्त्रता आंदोलन के दौरान1917 से 1934 के बीच पूरे देश में सैकड़ों दंगे हुए। इसी समय में काँग्रेस हिन्दुओं की प्रमुख राजनैतिक दल के रूप में उभरकर सामने आई। इसी दौरान मुस्लिम लीग भी मुसलमानों की प्रमुख राजनैतिक दल के रूप में उभरकर सामने आई। यद्यपि काँग्रेस का स्वतंत्रता आंदोलन राष्ट्रवादी आंदोलन था, बल्कि मुस्लिम लीग के नेता काँग्रेस के आंदोलन को हिन्दू राष्ट्रवादी आंदोलन के रूप में समझने में सफल हो गये। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ''भारतमाता'' तथा '' वन्दे मातरम्'' को हिन्दूवाद के साथ जोड़ा गया, फलस्वरूप ज्यादातर मुसलमान मुस्लिम लीग या कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ गए।

1.14. 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध

द्वितीय विश्वयुद्ध 1939 जिन्ना के लिए अच्छा अवसर साबित हुआ। काँग्रेस ने सभी प्रदेश से अपनी सरकारें भंग कर दी तथा मुस्लिम लीग ने अंग्रेजों की मदद के लिए प्रस्ताव पारित किया। 1942 में काँग्रेस ने अंग्रेज सरकार के विरोध '' भारत छोड़ो'' का आंदोलन छेड़ा। लीग ने उसका विरोध किया। 1946 में नेहरू ने कोई अन्तरिम सरकार बनाने से इन्कार किया और जिन्ना ने जिहाद छेड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि चारों ओर साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठे।

1.15. 1946 अक्टूबर का नोआखाली दंगा

1946 अक्टूबर का नोआखाली दंगा हिंसा और उन्मत्तता की चरम सीमा थी। पूरे देश में मुस्लिम अल्पसंख्यक क्षेत्र से उन्हें उखाड़ फेकने की सारी योजना तैयार हो गई। 1925 में गठित हिन्दू महासभा हिन्दू शक्ति का प्रमुख स्रोत था। अंग्रेज सरकार गाँधी जी के हस्तक्षेप से यह नरमेध यज्ञ रोकने में सफल हुए।

1.16. गाँधी जी की हत्या और 1950 में संविधान लागू

स्वतंत्रता की लड़ाई में काँग्रेस का जो राष्ट्रवादी इतिहास था, सत्ता में आने के बाद वह धीरे–धीरे बदलने लगा। विभाजन गाँधीजी के लिए चरम हार थी। अतः उन्होंने प्रत्यक्ष राजनीति से सन्यास ले लिया। सत्ता की बागडोर अब नेहरू और पटेल के हाथों में चली गयी। काँग्रेस का लक्ष्य ही सत्ता पर बने रहना हो गया। आजादी का सम्मिलित लक्ष्य पूरा हो जाने पर राष्ट्रीय नेताओं का व्यक्तिगत राजनीतिक मतादर्श सरकार पर प्रभावी होना प्रारंभ हुआ। नेहरू प्रजातांत्रिक समाजवाद में विश्वास रखते थे। सरदार पटेल चरम दक्षिण पंथी थे। दोनों सरकार में अपनी–अपनी समर्थकों की संख्या बढ़ाने में जुट गए हैं। इसी दौरान गाँधीजी की हत्या हो गई। 1950 में संविधान द्वारा बहुदलीय संसदीय गणतंत्र लागू किया गया फलस्वरूप अब केवल काँग्रेस में ही नही बल्कि पूरे संसद में बहुमत के लिए विभिन्न राजनैतिक दलों से भी समझौता शुरू हो गये। काँग्रेस अपना आदर्श साथ में

रखकर कहीं कम्युनिस्ट पार्टी से गठबंधन करने लगी तो कहीं सोशलिस्ट पार्टी से और कहीं–कहीं मुस्लिम लीग से। अर्थात सत्ता में बने रहने के लिए अंग्रेज की बाँटों और राज करो की नीति जरी रखी गई। राजनीति में पैसा और भुजबल का प्रभाव बढ़ने लगा, जिससे आकर्षित होकर समाज विरोधी और गुण्डा–तत्त्व खुलकर सामने आये। काँग्रेस राष्ट्रहित से दूर और दूर ही होती गयी।

1.17. पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता और साम्प्रदायिकता का मार्ग सफल

स्वतंत्र भारत को विकास के पथ पर चलाने के लिए पंचवार्षिक योजनाएं बनाई गई। प्रथम पंचवार्षिक योजना तक साधारण जनता में सरकार के प्रति विश्वास रहा कि अब तक मिली आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक अधिकार सरकार उन्हें दे पायेगी। लेकिन लगातार योजनाएँ सफल होने की जगह विफल होती रही। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक विसंगतियाँ बढ़ती रहीं। काँग्रेस नेहरू सोशलिज्म से प्रजा को भुला नहीं पायी। उसे सत्ता के लिए अंत में साम्प्रदायिकता का मार्ग ही अपनाना पड़ा। दंगे कराए गये ताकि लोगों का ध्यान बँटा रहे। वे यह चाहते थे कि कोई भी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आंदोलन उभरकर न आए। जनता को धर्म के नाम पर बाँट दिया जाए। इमरजेंसी के दौरान दंगों की घटनाएं बहुत कम हुई। क्योंकि दोनों उग्रवादी साम्प्रदायिक संगठन आरएसएस तथा जमायत–ई–इस्लाम इस दौरान प्रतिबंधित थे। अर्थात सरकार यदि चाहती तो इन साम्प्रदायिक संगठनों पर पहले ही अंकुश लगा सकती थी। लेकिन इनको राजनैतिक फायदा उठाना था तो राजनैतिक फायदे के लिए सरकार यह संघर्ष जारी रखना ही बेहतर समझती थी। विभाजन के बाद सभी पार्टियों ने बँटवारे के लिए काँग्रेस को ही दोषी ठहराया। दंगे ग्रस्त क्षेत्र तथा पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान से उजड़े हुए लोगों में जो रोष था उसे काँग्रेस विरोधी पार्टियों ने अपने फायदे के लिए उकसाए रखा। भारत–चीन तथा भारत–पाकिस्तान की लड़ाई के बाद देश की आर्थिक स्थिति एकदम से टूट गई। यह मौका लेफ्ट पार्टियों के अपने प्रसार के लिए सर्वोत्तम था। पहले से ही काँग्रेस विरोधी

काफी लोग इनके पास थे। फलतः वामपंथी आंदोलन जोर पकड़ता गया। जनता में आशा की नई किरणें फूटने लगी।

1.18. 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन

1964 ई. में कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन हुआ और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। इस पार्टी ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में वामपंथी आंदोलन की बात की। विदेशी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव से अपने आपको मुक्त रखने की घोषणा की। मजदूर, किसानों के साथ–साथ बुद्धिजीवियों की एक बड़ी जमात को भी इसके राष्ट्रवादी तेवर अच्छे लगे, और राष्ट्रवादी लोगों का एक बहुत बड़ा समुदाय जो काँग्रेस के अवसरवादी चरित्र का विरोध करते थे, इसमें शामिल हो गए।

कार्ल मार्क्स ने धर्म के बारे में कहा है कि ''धर्म जन–मानस का अफीम है''। वामपंथी पार्टियां इस तत्व का प्रचार करने में व्यस्त हो गयी। लेकिन भारत की कम्युनिस्ट पार्टियां धर्म शब्द को ''साम्प्रदायिकता'' के स्थान पर प्रयोग करती रही। इन दलों की साम्प्रदायिकता विरोधी छवि के जगह धर्म विरोधी छवि ज्यादा प्रकट होती गयी। परिणामस्वरूप पारम्परिक धर्म को मानने वाले लोग इसे स्वीकार नही पाये। बेहतर संभावनाओं के बावजूद भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन कभी भी पूरे जनता को अपने साथ ला नहीं पाया।

1.19. 1977 में वामपंथियों का विजय

1977 के आम चुनाव में भारत के कुछ राज्यों में वामपंथियों की सरकार बनी थी। खासकर पश्चिम बंगाल तथा केरल में वामपंथियों की विजय हुई। इन दोनों राज्यों में सत्ता में आते ही काँग्रेस की ही तरह इनका भी रूप बदलने लगा। धर्म विरोध में व्याख्यान जो होता था वह ज्यादातर हिन्दू धर्म के ही विरोध में होते रहे। स्वाभाविक रूप से ही मुस्लिम सम्प्रदाय इन दलों के प्रति ज्यादा आकर्षित हुए। बांग्लादेश में राजनैतिक अस्थिरता होती रहती है। इस के कारण बहुत संख्या में मुसलमान शरणार्थी चोरी छिपे सीमा पार करते हुए

पश्चिम बंगाल में आते गये जिनको वामपंथी दलों ने अपने वोट बैक के रूप में लिया। संतुलन अब क्रमशः बिगड़ता जा रहा है। ये घुसपैठिये स्थानीय समाज और राजनैतिक मसलों में प्रभावशाली होते जा रहे हैं। फलस्वरूप सीमा स्थित बहुसंख्यक हिन्दू असुरक्षित महसूस करते हुए क्रमशः संगठित होते जा रहे हैं। वामपंथी क्षेत्र हिन्दू साम्प्रदायिक शक्ति की बढ़ती जनप्रियता इस बात का संकेत करता है कि ये जो वामपंथी पार्टियाँ अल्पसंख्यकों की साम्प्रदायिकता को जानते हुए भी उन्हे राजनैतिक स्वार्थों के कारण अनदेखा कर रही है, या फिर उनकी सरकार पनपती साम्प्रदायिक भावनाओं को दबाने में असमर्थ और असफल है। एक घटना का जिक्र करने से यह और स्पष्ट होगा। पिछले दिनों एक वामपंथी दल के सक्रिय सदस्य के साथ इलाके के कुछ मुस्लिम युवकों का व्यक्तिगत विवाद हो गया। उन्होंने उस क्षेत्र के विधायक के पास इस घटना की चर्चा किया। जिनको जिताने में और उस इलाके में पार्टी का प्रभाव बढ़ाने में इनका योगदान बहुत था। विधायक महोदय ने हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया। क्योंकि उस इलाके में मुसलमानों को काफी वोट मिले थे। पार्टी के वरीय सदस्य भी इस पचड़े से दूर रहे। मुसलमान युवकों को इसका पता चला तो इन पर जानलेवा हमला हुआ। लोग तमाशा देखने लगे। अन्ततः स्थानीय भा. ज.पा. के लड़कों ने इनकी जान बचाई। अब वह वामपंथी सदस्य उस इलाके में भा.ज.पा. के काफी प्रभावशाली कार्यकर्ता हैं।

इस घटना से आम जनता को साम्प्रदायिक संगठनों की ओर धकेलने में वामपंथी दलों का क्या योगदान है इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। कम्युनिस्ट पार्टियों ने बुर्जुआ पार्टियों के साथ समझौता कर लिया है। वे इसलिए समझौता कर लिए कि इनके सहारे निकट भविष्य में सत्ता में आने का संभावना नजर आती है। 1977 के चुनाव में पश्चिम बंगाल में इसका प्रयोग सही हुआ है। लेकिन सत्ता हथियाने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर यह समझौता घातक रहा है। इस मार्ग पर चलकर वामपंथी पार्टियाँ वैज्ञानिक समाजवाद के रास्ते से सम्पूर्ण भटक गयी है। संसदीय प्रजातंत्र के साँचे में ढलकर इनमें भी दिन पर दिन बुर्जुआ दलों का प्रभाव बढ़ रहा है। इसका नेतृत्व करने वाले अवसरवादी होते जा रहे हैं।

1.20. जनता दल और प्रशासन

जनता दल तो इनसे भी एक कदम आगे बढ़ गयी। इसने धर्म के नाम पर ही नहीं बल्कि जाति के नाम पर हिन्दुओं में भी स्पष्ट विभाजन की रेखा खींच दी। ''आरक्षण'' के नाम पर जातिवाद को जिस तरह बढ़ावा दिया गया वह एक गंभीर समस्या में बदल गया है। देश के अन्दर एक ऐसा गंभीर संकट पैदा हो गया है कि कब किस रूप में इस बारूद का विस्फोट हो कहना मुश्किल है।

देश में शांति और कानून की स्थिति बनाये रखने के लिए पुलिस तथा प्रशासन को नियुक्त किया जाता है। पर आम जनता को पुलिस से अब न तो डर है न उस पर विश्वास। साम्प्रदायिक दंगों में पुलिस विफल रहती है। साम्प्रदायिक दंगों को सुलझाने के लिए सेना या अर्द्धसैनिक सुरक्षा बलों की जरूरत पड़ती है। इसकी मुख्य वजह यह है कि पुलिस तथा प्रशासन के नाम के नीचे ही सारी साजिशें रची जाती हैं। पुलिस सारी साजिशों को सबकुछ जानते हुए भी कुछ नहीं कर पाती है। इसलिए नहीं कर पाती कि साम्प्रदायिक उग्रवादी संगठन पुलिस से ज्यादा ताकतवर और संगठित होते हैं। अतः बहुधा प्रशासन उनका कुछ नहीं कर पाती। इन साम्प्रदायिक शक्तियों का राजनीतिज्ञों के साथ गहरा सम्बन्ध रहता है। राजनीतिक प्रभाव से प्रशासन उन पर हाथ डालने से पहले सोचती है। पुलिस खुद भी साम्प्रदायिक भावना से जुड़ी होती है। दंगे के समय वह अक्सर दंगाइयों से भी अधिक भयंकर रूप धारण कर लेती है। जमशेदपुर में बी.एम.पी., मेरठ में पी.ए.सी. तथा दिल्ली में दिल्ली पुलिस आदि की भूमिका इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इन उक्त सारी बातों से यह स्पष्ट होता है कि जब–जब राष्ट्रीयता की भावनाएं लोगों में कम होती जाती है, साम्प्रदायिकता की भावना तेज होती रहती है। यह साम्प्रदायिकता धर्मों की देन नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शक्ति को हथियाने के लिए तथा सत्ता में बने रहने के लिए अवसरवादियों के साजिशों की देन है। जब तक तथाकथित धर्म–निरपेक्ष दलों के सही लोग अपने दायरे से बाहर आकर बहुजन राष्ट्रीयता की भावना को जनता में जागृत नही करेंगे तब तक साम्प्रदायिक दंगों का सिलसिला नही

रूकेगा। भिंडरवाले की मदद से सिख आतंकवाद का जन्म हुआ। गुलाम मुहम्मद शाह की मदद से कश्मीर की वर्तमान स्थिति को काँग्रेस ने पैदा किया है। उससे अब और कुछ उम्मीद करना बेकार है। वामपंथी दलों से अभी भी कुछ उम्मीद की जा सकती है। धर्म निरपेक्ष समाज की स्थापना के लिए, सभी लोगों को दल–मत की सीमाओं से बाहर निकलकर आना चाहिए। सभी को संगठित कर स्वार्थियों, अवसरवादियों का विरोध किया जाए, तभी हमारा सपना साकार हो सकता है।

1.6. अंतिम दशक का भारतीय परिवेश

बीसवीं सदी के अंतिम दशक का भारतीय परिवेश कुछ ज्यादा ही दुःख दायक था। यह दशक इसलिए दुःखदायक था, कि 1983 का नेल्ली जनसंहार देखें या 1984 के सिख विरोधी दंगे, 1989–भागलपुर दंगे, 1990 में मंडल कमीशन के विरोध में कमंडल राजनीति, 1992 में बाबरी मस्जिद तोड़ी गयी, 1993 के मुंबई दंगे, 2002 में गुजरात की राज्य समर्थित हिंसा आदि बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हुए।

“December sits uneasily in contemporary Indian history. It was in December that a deadly gas enveloped the unsuspecting town of Bhopal to kill and impair thousands of people in 1984. On December 6, 1992, a mosque in Ayodhya that was part of india’s collective heritage, was destroyed with vulgar enthusiasm, under the watchful eyes of leading BJP politicians- some of whom rule india today but lack the courage to face the punishment for their involvement in this unforgivably shameful act.

It was in December 2001 that India’s parliament was attacked by terrorist groups. It was also in December 2002 that a Chief Minister in

an Indian State led the BJP back to power on the basis of an unscrupulous campaign founded on communalism, and built on carnage, mayhem and the massacre of the Muslims."[18]

1992 की स्थिति क्या है ? 6 दिसंबर को बाबरी मस्जिद कोई चोरी–छुपे नहीं, बल्कि खुलेआम लाखों लोगों की स्वीकृति के साथ ध्वस्त की गयी। उसी के साथ ध्वस्त कर दी गयीं– सारी लोकतांत्रिक मर्यादाएँ और हिंदू सहनशीलता की मिथकीय अवधारणाएँ। इस विध्वंस के लिए माहौल भी घुमा–फिरा कर या दबे छुपे नहीं, बल्कि खुलेआम बायकायदा राजनीतिक अभियान के रूप में पिछले कई बरसों से बनाया जा रहा था। इस अभियान के खतरों के प्रति लापरवाह रहने का नतीजा अब सामने हैं। 6 दिसंबर को जब मस्जिद और उसके साथ संवैधानिक मर्यादा, सूचना के अधिकार और लोकतांत्रिक मूल्यों पर हमला हुआ तो व्यापक हिंदू समाज में क्या हो रहा था ? एक दिन तो एक हतप्रभ–सा सन्नाटा छाया रहा, ऐसा सन्नाटा कि संघ परिवार को भी लगने लगा कि 'काम बिगड़ गया', 'दुर्भाग्यपूर्ण काम' या 'दुर्घटना' हो गयी। लेकिन दूसरे ही दिन से मस्जिद को खंडित करनेवालों की समझ में आने लगा कि उनके पक्ष में 'अभूतपूर्व सामाजिक राजनीतिक ध्रुवीकरण' हुआ है। संघ परिवार की लगातार बढ़ती निर्लज्जता और आक्रामकता इसी एहसास की परिणति है। इस पापकर्म के प्रति स्वयं हिंदू समाज में जैसी वितृष्णा और अस्वीकृति की उम्मीद थी, उसके स्थान पर एक महाभयानक उद्दंडता और औचित्य निरूपण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है। लग रहा है कि व्यापक हिंदू समाज ने साम्प्रदायिकता की राक्षसी विचारधारा को इस हद तक आत्मसात कर लिया है कि उसे अयोध्या में हुए पाप का कोई बोध तक नहीं है। हालत यह है कि बहस और संवाद की तो बात क्या, सीधा–सादा संप्रेषण तक फिलहाल असंभव दीख रहा है।

[18] page no. 144, Communalism, Civil Society and the State, Reflections on a Decade of Turbulence, (Rewriting Secular governance: 1992-2002, by Rajeev Dhavan) Edited by KN Pannikkar and Sukumar Muralidharan, published by safdar Hashmi Memorial Trust, 2002

इन अमानवीय साम्प्रदायिक संघटनाओं के कई कारण हो सकते हैं, जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक।

1.6.1. सामाजिक

"प्रत्येक हिंदू का यह मूल विश्वास है कि हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था दैवीय है। इस दैवीय व्यवस्था के तीन आधार हैं। प्रथम, समाज चार वर्णों में विभक्त है–1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, और 4. शूद्र। द्वितीय, चारों वर्णों की स्थिति एक– दूसरे से जुड़ी है। उसमें चरण–दर–चरण असमानता है। ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि है। क्षत्रिय ब्राह्मणों के नीचे हैं, परन्तु वैश्यों और शूद्रों से ऊपर हैं। वैश्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों से नीचे हैं, परन्तु शूद्रों से ऊपर हैं। शूद्र सबसे नीचे हैं। तृतीय चारों वर्णों का व्यवसाय निश्चित है। ब्राह्मणों का व्यवसाय अध्ययन–अध्यापन है। क्षत्रियों का कार्य लड़ना है। वैश्यों का कार्य व्यापार है और शूद्रों का शारीरिक श्रम से तीनों वर्णों की सेवा करना है। यह हिन्दुओं की वर्ण–व्यवस्था कहलाती है। यह हिन्दू धर्म की आत्मा है। वर्ण–व्यवस्था को छोड़कर हिन्दुओं में ऐसा कुछ नहीं है, जिसमें वे अन्या धर्मों से भिन्न हों। इस कारण यह आवश्यक है कि इस बात का विवेचन किया जाए कि वर्ण–व्यवस्था का प्रचलन कैसा हुआ ?''[19]

हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जो जाति व्यवस्था के नींव पर ''हिन्दू धर्म'' नामक चार स्तरों का सुन्दर राज भवन निर्माण किए हुए है। जिसमें सबसे ऊपर ब्राह्मण, दूसरे स्तर पर क्षत्रिय, तीसरे स्तर पर वैश्य, चौथे स्तर पर शूद्र और पंचमों को इस भव्य भवन के नींव में डाल दिया गया है। आखिर मनुष्य तो सब मनुष्य ही होते हैं, फिर भी इन में इतने स्तर भेद क्यों है ? इन स्तरों के बीच ऊँच–नीच की भावना क्यों है ? इन सवालों को परखने पर, हम को यह पता चलता है कि, इनकी जड़ें हिन्दू धर्म शास्त्रों में मिलती हैं।

[19] बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्मय खंड 8, पृष्ठ संख्या 194; प्रकाशक : डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठानकल्याण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली

हिन्दुओं का धर्म ग्रन्थ 'मनुस्मृति' है। यह हिन्दुओं का कानून ग्रन्थ भी है। यह मनु के द्वारा लिखा गया है। इन के ही अनुसार समाज को वर्णों में, जातियों में बाँटा गया है। इन के अनुसार, इन मनुष्यों की सृष्टि भगवान ब्रह्मा ने की। ब्रह्मा के मुख या सिर से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट या नाभी से वैश्य और पैरों या पैरों के तलवे से शूद्र जन्में हैं। इन के जन्म के साथ–साथ इन की व्यवसाय भी तय की गयी है। ब्राह्मण का काम है, वेदों को पढ़ना–पढ़ाना, पुरोहितों का मन्दिरों का देखभाल करना। क्षत्रियों का काम है युद्ध करना, देश और प्रजा की रक्षा करना। वैश्यों का है खेती–बारी करना और व्यापार करना है। इन में शूद्र वर्ण के लिए कोई व्यवसाय ही नहीं तय की गयी है। तो ये जो लोग संख्या में भी उक्त लोगों से ज़्यादा ही है। तो ये क्या काम करके जीए ? इनको कहा गया है कि ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करें। इनको धन कमाने का एवं धन जमा करने का कोई हक नहीं दिया गया है। इसी के कारण धर्म के नाम पर 80 प्रतिशत लोगों को गरीब खाने में रखा गया है। धर्म और ईश्वर वाली व्यवस्था ही ऊँच–नीच की व्यवस्था को बरकरार रखने में कामयाब हुई है। इसी के कारण समाज में कलह, युद्ध, विनाश होता है। तो यह धर्म होने का अर्थ क्या हो सकता है ? इस विषय पर पेरियार ने इस प्रकार कहा है–

"वास्तव में धर्म और ईश्वर की संस्था ही समाज में अमीर–गरीब, ऊँच–नीच, साधारण के विशिष्ट के भेदभाव को बनाए रखने के लिए ईजाद की गई है। इन धर्मों के कारण संसार में कलह, युद्ध तथा विनाशलीला अगर होती है तो यह कौन सा धर्म है? "[20]

इस शूद्र वर्ण में भी कालांतर में कई जातियों का निर्माण हुआ है। वर्ण वाली सीढ़ी में चार ही स्तर दिखाई देते हैं। वही वर्ण से जाति का उत्पन्न हुआ। इस जाति वाली सीढ़ी का लगता है अंत ही नहीं है। इन शूद्रों में भी ऊँची जाति की निर्मिति की गयी है। स्तर या दर्जा के आधार पर एक के बाद एक कई जातियों का निर्माण हुआ है। इन जातियों में छुआछूत की भावना को फैलाए और समाज में लागू किया गया है। इनके बीच रोटी–बेटी

---

[20] पृष्ठ संख्या, 116, पहल, संपादक, ज्ञानरंजन, Feb—Dec, 1997

का रिश्ता नहीं है। यह रिश्ता अपने ही जाति के अंतर्गत ही तय किया गया है। इसको यदि वैज्ञानिक ढ़ंग से सोचा जाए तो, यह बिल्कुल अवैज्ञानिक ठहरता है। क्योंकि हरेक आद्मी के शरीर में खून ही तो रहता है, फिर ये सब अमानवीय व्यवहार क्यों और कैसा ? इस पर सोचने से यह पता चलता है कि धर्म और ईश्वर के नाम पर समाज में अंधविश्वासों को फैलाया गया है। वर्ण, जाति एवं छुआछूत आदि अंधविश्वास के ही आधार पर निर्माण किया गया है। अर्थात् वर्ण, जाति एवं छुआछूत अवैज्ञानिक और अंधविश्वास पर आधारित हैं। जिसके विरोध में समाज सुधारने के लिए निरंतर संघर्ष करना होगा।

“धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वासों पर धर्म और ईश्वर रूपी संस्था का निर्माण हुआ है। इन अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करना समाज सुधार के क्षेत्र से बाहर नहीं है। समाज के पुनर्निर्माण का अर्थ अंधविश्वासों का विध्वंश है। उसके बाद ही समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित समाज का निर्माण संभव हो सकता है। उसके लिए साहस की आवश्यकता है, क्योंकि अंधविश्वासों को नष्ट करने के लिए कट्टरपंथी हिन्दुओं से संघर्ष करना पड़ेगा और अंधविश्वासों पर आधारित पुरानी परंपराओं को भी नष्ट करना पड़ेगा। यदि उन परंपराओं का अस्तित्व बना रहा तो सुधार असफल हो जाएगा, जैसा कि मध्यकाल में हुआ। ”[21]

हिन्दू धर्म में स्त्री को बहुत ही कम दर्जा दिया गया है। इनको आर्थिक स्वावलम्बन नहीं दिया गया है। कहा गया है कि एक स्त्री होने के नाते जीवनांत तक पुरुष के ऊपर निर्भर हो कर जीवन–यापन करना चाहिए। जैसे जब तक बेटी बनकर रहती है तब तक उन को पिता के ऊपर निर्भर हो कर जीना चाहिए। शादी के बाद अपने पति पर निर्भर होना। वृद्धावस्था में अपने बेटे पर निर्भर हो कर जीना चाहिए। स्त्री को अपनी जिन्दगी में जन्म से लेकर मृत्यु तक कहीं भी आत्मनिर्भरता से जीने का मौका ही नहीं दिया गया है। ईश्वर और धर्म के नाम पर स्त्री को दबाया गया है। उन के सारे हक छीन लिए गये हैं।

---

[21] पृष्ठ संख्या, 116, पहल, Feb—Dec, 1997

कहना अनुचित नहीं होगा कि स्त्री और दलित में कोई फर्क नहीं दिखाई देता है। कहा जाता है कि पूरी दुनिया का आधी आबादी है। तो स्त्री को इस तरह दबाके रखने के कारण क्या हो सकते हैं? इस पर विचार करने से यह पता चलता है कि पितृ सत्ता के कारण ही आधी आबादी यानी स्त्रियों के साथ अन्याय हो रहा है। यह पितृसत्ता का आधार ही हिन्दू धर्म माना जाता है।

इन स्त्रियों में विविध वर्ग एवं जातियों के स्त्री के समस्याएं अलग–अलग हैं। ऊँची जाति की स्त्रियाँ एक ही समस्या को झेलती हैं, बल्कि दलित महिलाओं को दो दो समस्याएं झेलनी पड़ती है। जैस दलित होने के नाते ऊँच–नीच भावना को भोगना होता है। दूसरा स्त्री होने के नाते पुरुषाधिपत्य को झेलना पड़ता है। पुरुषाधिपत्य दलितों में भी है। दलितों का इतिहास अगर देखा जाए तो ये द्रविड़ परिवार के लगते हैं। द्रविड़ों में पितृसत्ता व्यवस्था नहीं था। मातृसत्ता व्यवस्था ही थी। आर्यों में पितृसत्ता व्यवस्था थी। आर्य जब इस देश में आए थे, तब से उनकी पितृसत्तात्मक संस्कृति का प्रभाव, इन मातृसत्तात्मक द्रविड़ियन संस्कृति पर पड़ा है। इसी के कारण आज दलित महिलाएं भी पितृसत्ता को झेल रही है। इसको और बढ़ाने के लिए हिन्दूवादी शक्तियाँ जी तोड़ मेहनत कर रही है। जो प्रथाएं थे और आज भी प्रचलित हैं जैसे जातिगत भेदभाव, जातीय दमन, अस्पृश्यता, दहेज, सती, अत्याचार, बंधुआ मजदूरी इन आदि को बरकरार रखना चाहते हैं। यदि इन प्रथाओं को बरकरार रखना है तो इस भारत देश को 'हिन्दू राष्ट्र' बनाना होगा अन्यथा यह साध्य नहीं हैं। इसके लिए भाजपा के साथी संगठन, आरएसएस, बजरंगदल, शिवसेना, विश्व हिन्दू परिषद आदि हिन्दू राष्ट्र बनाने के लिए दिन–रात मेहनत कर रहे हैं। यह इस उद्धरण से और स्पष्ट हो जाता है।

" होना यह चाहिए था कि 'हिन्दू राष्ट्र' की असलियत बताई जाती। जनता को धैयपूर्वक विश्वास में लिया जाता, ताकि वे समझ सकें कि जिस 'हिन्दू राष्ट्र' की संघ परिवार बात कर रहा है, जातिगत भेदभाव, जातीय दमन, अस्पृश्यता की घृणित प्रथा, दहेज, सती जैसी क्रूर प्रथा सहित औरतों पर अत्याचार की अनेक प्रथाएं, बंधुआ मजदूरी इत्यादी उसकी आंतरिक संरचना के अंग हैं। इस 'हिन्दू राष्ट्र' का मतलब पहले से ही विशेषाधिकार

प्राप्त मुठ्टी भर लोगों का सामाजिक–राजनीतिक वर्चस्व है, जिसे बचाए एवं बनाए रखने के लिए वे ' हिन्दू–हिन्दू' चिल्ला रहे हैं। पर इस विमर्श के पास सीधे संवाद का इतना धैर्य नहीं था और इसने प्रायः कुछ पुस्तिकाओं एवं पर्चों तक ही अपने को सीमित रखा। इन्हें भी सांगठनिक तौर पर आम लोगों तक न पहुंचाया जा सका। इस स्थिति में अपने से अलगाव महसूस करती जनता पर वे 'गुर्राते' रहे कि उसकी चेतना 'निम्न' है या स्वयं भौंचक हो हकलाते रहे। इसी स्थिति से एक दूसरी समस्या पैदा हुई। उन्होंने सीधे संवाद में अपने कैडरों एवं स्वयं को असमर्थ पाकर साम्प्रदायिक शक्तियों से बहस तक ही अपने को सीमित कर दिया, जबकि साम्प्रदायिक शक्तियाँ जनता से रू–ब–रू रहीं। नतीजतन, रामजन्मभूमि बाबरी मस्जिद–विवाद के संदर्भ में हिंदू मानस पर सांप्रदायिक शक्तियों की पकड़ और मजबूत होती गई।"[22]

6 वीं सदी में इस्लाम का उद्‌भव हुआ है। इस्लाम यानी कुरआन ही है। कुरआन ग्रन्थ मुहम्मद साहब के द्वारा लिखा गया है। इसके अनुसार जाति प्रथा और ऊँच–नीच की भावना नहीं है। इस्लाम के उद्‌भव के कुछ ही सालों के बाद भारत में आया था अर्थात् 7 वीं सदी में भारत में आया था। भारत में आते ही वे भारत के राजा बने थे। इनके साथ अपनी धर्म या मजहब भी आई थी। मुसलमानों के राज में मुस्लिमों को कुछ ज़्यादा फायदा हो रहा था। इन फायदों को प्राप्त करने के लिए, यहाँ के ऊँची जाति के लोग जैसे ब्राह्मण, बनिया, क्षत्रिय और ऊँची जाति के शूद्र भी इस्लाम को कुबुल किए हैं। हिन्दू धर्म में जाति, छुआछूत और ऊँच–नीच की प्रथा ज़्यादा होने के कारण यहाँ के नीची जाति के लोग भी इस्लाम को कुबूल किये हैं। अर्थात् यहाँ के ऊँची जाति के लोग और नीची जाति के लोग भी इस्लाम को कुबूल किये हैं। तो भारतीय मुसलमानों में ज़्यादा लोग वही है जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ी जाति के हैं। अर्थात् हिन्दू के ऊँची के और नीची जाति के भी इस्लाम में आये। अतः इस्लाम या मुसलमानों में भी हिन्दू वाली जाति प्रथा आ गयी है, भले ही कुरआन के अनुसार जातिगत व्यवस्था का समर्थन न हो।

---

22 पृष्ठ संख्या, 115, पहल, Feb—Dec, 1997

अर्थात् भारतीय मुसलमानों भी जाति, ऊँच–नीच की भावना, छुआछूत जो जो हिन्दुओं में प्रचलित हैं, वे सब भारतीय मुसलमानों में हैं। जैसे लद्धाफ मुसलमान, बोरे वाला आदि हैं।

मुसलमानों में भी तीन सम्प्रदाय हैं। वे सब अल्ला को ही मानते हैं फिर भी इनके बीच थोड़ा सा भेदभाव भी है। जैसे सुन्नी, शिया और सूफी। इनके बीच भी रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं है। सूफियों ने ही भारत में हिन्दू और मुसलमानों को आपस में मिल–जुल कर रहने का संदेश दिया है। दरगाह संस्कृति ही भारत में सभी जाति के लोगों को एक जगह पर लाया है।

एक आलोचक ने कहा है कि मुस्लिम औरत बाँधी हुई पोटली है। बुरका वाली प्रथा के कारण मुस्लिम औरतें घर से बाहर नहीं निकलती हैं। इनको तालीम भी नहीं दिया जाता है। अगर दिया भी जाता है तो वह बहुत कम दिया जाता है, जिसके कारण मुस्लिम औरतें बाहर की दुनिया से बहुत कम परिचित हैं। इनको नौकरी करने लिए इजाजत नहीं देते हैं। केवल मर्द को ही कमाने का हक समझते हैं जिस के कारण मुसलमान का परिवार गरीबी झेलता है। इन को मजहबी हक भी नहीं दे रहे हैं। इन के पूरे हक छीन लिए गए हैं। औरतों के हक के बारे में असगर अली इंजीनियार का कथन है कि–

“ एक ओर जहाँ मेरा मिशन साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए कोशिश करना है, दूसरा मिशन औरतों के हकूक के लिए लड़ना है। सामान्यतः सभी स्त्रियों के लिए और खासकर मुस्लिम औरतों के लिए। मैंने कुरान और हदीस को लेकर काफ़ी शोध भी की। तीन किताबें तो इस सवाल को लेकर छप चुकी हैं। कई लेख भी हैं। चौथी किताब अभी प्रेस में है (कुरान, विमेन एंड मॉर्डनिटी)। मैं सतत इस सवाल से जूझ रहा हूँ। मेरी कोशिश है कि उनको बराबर का हक मिले लेकिन खुद मुस्लिम औरतों में इतनी कम अवेयरनस है कि उन्हें यही पता नहीं कि मज़हब ने उनको क्या अधिकार दिए हैं। जो उलेमा है, मस्जिद के इमाम या मुल्ला हैं, उनका दृष्टिकोण बदला नहीं है। वे इस अज्ञानता का फायदा उठाते हैं। मुस्लिम पर्सनल लॉ में परिवर्तन लाने के लिए एक सेमिनार भी पिछले दिनों किया था। उसको लेकर उर्दू पत्रों ने मुझ पर आक्रमण भी किए लेकिन कई मुस्लिम औरतें आईं। यह

प्रयत्न जारी रखने होंगे। तभी चेतना बदलेगी और तब्दीली के आसार होगें। मैं इस संदर्भ में मज़हब को छोड़कर बिल्कुल चलना नहीं चाहता। मुझे लगता है कि 'रिलिजस फ्रेमवर्क' में तब्दीली ज़्यादा आसान है बजाय ' सेक्युलर लॉज़' के ज़रिए। इसलिए तसलीमा नसरीन से मेरा इत्तफाक नहीं है। क्योंकि फिर ऐसे लोग नास्तिक बनाकर खारिज कर दिए जाते हैं। एक रिफार्मर को यथार्थवादी होना चाहिए। वह अगर अपने समाज को नहीं समझता तो बदलेगा क्या ? 'नास्तिकता' भी एक धर्म है मेरे नज़दीक। मैं उसका आदर करता हूँ, पर उनसे भी आस्थावान के प्रति आदर की अपेक्षा रखता हूँ। संवाद हो सकता है, कन्डेमनेशन नहीं होना चाहिए। मैंने देखा है कि उनमें डॉयलाग की सहुलियत भी नहीं। वे उतने ही आक्रामक हैं जितने मज़हबी होते हैं।" [23]

ईसाई मजहब अंग्रेजों के साथ आयी है। अंग्रेज शुरूआत में इस देश में व्यापार करने के लिए आये थे। इन के साथ अपना मजहब या धर्म को भी लाये थे। कालांतर में मिशनरीज की स्थापना हुई । इन के माध्यम से लोगों की सेवा करने लगे। ईसाइयों ने अछूत जातियों के पास भी जाके उनकी सेवा की। कालांतर में भारत में राज करने लगा था। इस दौर में ईसाई लोगों को ज़्यादा फायदा होता था, जिस फायदा को प्राप्त करने के लिए, यहाँ के ऊँची जाति के लोग ईसाई बने। ईसाइयों ने जाति, ऊँच–नीच, छुआछूत की भावना की जगह बराबर की भावना को प्रबोधित करने लगे। उन को शिक्षा में प्रवेश दिये। नौकरी में लगाये। बहुत सारे इन निचले तबके के लोग ईसाई धर्म को कुबूल किये हैं। अर्थात् इस में भी सबसे ऊँची जाति के और सबसे नीची जाति के लोग आये या ईसाई कुबूल किये हैं। तो भारतीय ईसाइयों में हिन्दू धर्म में आने वाली जाति व्यवस्था बरकरार है। इसी के हेतु भारतीय ईसाइयों में खासकर आन्ध्रप्रदेश में रेड्डी ईसाई, कम्मा ईसाई, माला ईसाई, मादिगा ईसाई आदि नामों से प्रचलित हैं। ईसाई महिलाएं ईसाई के वजह से, हिन्दू महिलाओं की भांति कुछ ज़्यादा ही स्वतंत्र हैं, फिर भी वही दबाव है जो हिन्दू धर्म में है। ऊँची जाति के लोग अपने फायदे के लिए ईसाई बने थे, बल्कि नीची जाति के लोग आत्म

[23] पृष्ठ संख्या, 35–36, पहल, Jan-May, 2002

गौरव, इनसानियत, मानवीयता, बराबरी हक आदि पाने के लिए ही ईसाई बने थे। क्योंकि इनको हिन्दू धर्म में जानवरों से भी नीचा दर्जा दिया गया है। इस संदर्भ में विवेकानंद ने कहा है।

"मुझे नीच जाति वालों के प्रति उच्च जातिवालों के अत्याचारों के कैसे–कैसे अनुभव मिले हैं। ...क्या वह धर्म है जो गरीबों के दुःख को दूर नहीं करता और मनुष्यों को देवता नहीं बनाता ? क्या तुम समझते हो, हमारा धर्म 'धर्म' कहलाने लायक है ?...त्रावणकोर में, जहाँ पुरोहितों की प्रबलता भारतवर्ष में सबसे अधिक है, जहाँ भूमि का प्रत्येक टुकड़ा ब्राह्मणों के हाथ में है,...लगभग एक चौथाई लोग ईसाई हो गए हैं। और मैं उनको दोष नहीं देता, वे और कर ही क्या सकते थे। कब, प्रभो ! कब मनुष्य मनुष्य को भाई मानेगा ?"[24]

बौद्ध धर्म के बारे में यदि विचार किया जाय तो बौद्ध धर्म का जन्म ही आम आदमी के दुःख एवं दर्द को दूर करने के लिए हुआ है। इस सनातन भारत देश में एक आम अदमी का दुःख एवं दर्द क्या हो सकता है ? यदि इस सवाल को लेकर सोचा जाय तो इस सनातन भारत में, आम आदमी के दुःख का कारण जाति व्यवस्था है। दो सम्प्रदायों के लोगों के बीच कुछ मानवीय रिश्तें हो सकते हैं, बल्कि किसी भी दो जातियों के लोगों के बीच कोई मानवीय सुगंध या रिश्तें नहीं थे वही स्थिति आज आधुनिक समाज में भी दिखाई देती है। इस ब्राह्मणीय हिन्दू मज़हब या धर्म का आधार ही जाति व्यवस्था है। इस जाति व्यवस्था में चार वर्णों के साथ–साथ कई जातियाँ निर्मित की गयी हैं। इन जातियों के बीच ऊँच–नीच, छुआछूत की भावना फैली हुई है। एक आदमी अपने साथी आदमी को जानवर से नीचा समझता है। कुछ ही लोग पूरे समाज पर अपना अधिकार चलाना चाहते हैं। पूरे समाज में 85 प्रतिशत लोगों के हक को छीन लिये हैं। लोगों को यानी नीची जाति के लोगों को हर सुविधा से दूर कर दिये गये हैं। यहाँ तक कुछ जाति के लोगों को तो गाँव

---

[24] पृष्ठ संख्या, 118, पहल, Feb—Dec, 1997

या समाज से दूर रखे गये हैं। इन समस्याओं से दुःख एवं दर्द को झेल रहे थे। बुद्ध ने इन समस्याओं से झेलते हुए लोगों को देख के, वे अपने अंदर भी दुःख का अनुभव किये हैं। बुद्ध ने सोचा कि इन समस्याओं का हल कैसा किया जाए ? इस की खोज में ज्ञान प्राप्त करने के लिए तपस्या भी किए हैं। आखिर ज्ञान प्राप्त कर लिये। अपना एक मार्ग बताया था, जिससे सभी के दुःख दूर किया जाए।

गौतम बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त करने के बाद, गरीब और जाति ग्रस्त लोगों के दुःख को दूर करने के लिए अपना पंथ की स्थापना की। उसी को संघ भी कहा जाता है। इस संघ में कई समाज सेवकों को लिया गया हैं। बुद्ध ने उनको अपना मार्ग बताया। उनको दीक्षा दिया है। जो जो दीक्षा लिए वे बौद्ध भिक्षु कहलाते हैं। इन भिक्षुओं का काम है कि समाज में जाके दुःखी लोगों से मिल के दुःख के विविध हेतुओं को बता के उस दुःख को दूर करना है। बौद्ध भिक्षु जात–पांत, भेद–भाव नहीं रखते थे। अमीरों के घर जाते थे और गरीब के घर भी जाते थे। सबसे ऊँची जाति के घर जाते थे और सबसे नीची जाति अश्पृश्य के घर भी जाते थे। इनके घरों में भोजन ग्रहण करते थे, जल ग्रहण करते थे। यहाँ तक की अछूत महिलाओं को भी बुद्ध ने अपने संघ में लिए और भिक्षुणी बनाया है। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने सभी को बराबरी का दर्जा दिया। इस उद्धरण से और स्पष्ट हो जाता है–

“जिस प्रकार बादल बिना किसी भेद–भाव के सर्वत्र वर्षा करते हैं, वैसे ही तथागत भी सभी पर अनुकंपा करते हैं। ऊँच और नीच के प्रति उनकी वही समान भावना रहती है, जो ज्ञानी और अज्ञानी के प्रति, जो शीलवान के लिए वही दुश्शील के लिए। उनका शिक्षण इतना पवित्र है कि वह ऊँच और नीच तथा धनी और दरिद्र में भेद नहीं करता। यह उस जल की तरह है जो सभी को स्वच्छ करता है। यह उस अग्नि की तरह है जो पृथ्वी से आकाश तक छोटी–बड़ी जितनी भी चीजें हैं, सभी को आत्मसात् कर लेती है। ये उस आकाश की तरह है जहाँ छोटे–बड़े सभी का स्वागत करने के लिए पर्याप्त स्थान है,

स्त्री–पुरुषों के लिए, लड़के–लड़कियों के लिए और शक्ति संपन्न तथा दुर्बल लोगों के लिए भी। ”[25]

मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिसके कारण बौद्ध धर्म भारत में फैल गया था, नतीजा यह हुआ कि ब्राह्मणों को और उनके धर्म को संकट सा होने लगा। चढ़ावे कम हो गये। ब्राह्मणों ने यह सोचा कि बौद्ध से ब्राह्मणों को और ब्राह्मण हिन्दू धर्म को खतरा है। इसलिए बौद्धों के ऊपर हमला किये। बौद्ध भिक्षुओं को जिंदा जलाया गया। बौद्ध आश्रमों को तोड़ के मंदिरें बनाए गए। यह आज भी हो रहा है। ऊँची जाति के लोग नीची जाति के लोगों पर हमला करते हैं। बलात्कार करते हैं। अर्थात् जातियों में भी साम्प्रदायिकता होती है। इतनी जातियों के निर्माण इसलिए किये हैं कि इनके बीच एकता न हों। अतः अपना वर्चस्व बरकरार रखना चाहते हैं।

1.6.2. राजनीतिक

“जब तक यह नहीं होता, हमारे देश में स्वस्थ राजनीति का विकास नहीं हो सकता। धर्म जब साम्प्रदायिक द्वेष उभाड़ कर राजनीति पर हावी होने की कोशिशि करता है, तो राजनीति की दिशा भ्रष्ट हो जाती है। राजनीति का क्षेत्र इहलोक है और धर्म का परलोक। दोनों का घालमेल नहीं होना चाहिए। वैसे धर्म और राजनीति को पूर्णतया अलग करना असंभव होता है। मनव जाति के इतिहास में कभी ऐसी स्थिति नहीं दिखाई देती। धर्म अपने वर्चस्व की स्थापना के लिए राजनीति का इस्तेमाल करता रहा है और राजनीति भी अपने वर्चस्व के लिए धर्म का इस्तेमाल करती रही है। राजनीति– निरपेक्ष धर्म और धर्म–निरपेक्ष

[25] पृष्ठ संख्या, 105, बौद्ध धर्म का सार, –'दि इसैन्स ऑफ बुद्धिझम' का हिन्दी अनुवाद, –दिव्यांश पब्लिकेशन्स

राजनीति का अर्थ इतना ही है कि धर्म राजनीति से शासित न हो और राजनीति धर्म से शासित न हो। हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना का यही अर्थ है।"[26]

चाहे किसी भी क्षेत्र व व्यवस्था को लीजिए, उसमें हमें दो तरह के लोग मिलेंगे। एक तरह के ऐसे लोग मिलेंगे जो कि जिस व्यवस्था से जुड़ें हैं उसकी परवाह न करके निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करते हैं। दूसरे, ऐसे लोग मिलेंगे कि अपने अर्थात् सम्प्रदाय, वर्ण, वर्ग, के फायदे या भलाई के लिए व्यवस्था से समझौता कर लेते हैं। पहले तरह के लोगों में से हैं, वी. पी. सिंह जो कवि, रचनाकार और संवेदनशील चित्रकार हैं। अब्राहम लिंकन भी इनके कोटी में आते हैं। वी. पी. सिंह एक बड़े सपने के साथ प्रधानमंत्री बने थे। ऐसे ही सपने भारत के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू के पास थे। वी. पी. सिंह ने अपने सपने को साकार करने के लिए मंडल कमीशन को लागू करने का आदेश दिया था। उनको पता था, इससे देश में हल्ला मचेगा। फिर भी, इस व्यवस्था को बदलना है, सैकड़ों सालों से पिछड़े हुए, पिछड़े जाति के लोगों को शिक्षा, रोजगार मिले, इसके लिए मंडल कमीशन को लागू करने के सिवाय और दूसरा चारा उनके सामने नहीं था। अब्राहम लिंकन ने भी गुलामों के लिए 'ऐंटी स्लेवरी' बिल लाया था।

भद्रवर्गीय जनता ने इस बदलाव को बर्दाश्त नहीं किया क्योंकि वे यह नहीं चाहते कि स्थित व्यवस्था में बदलाव आ जाए और पिछड़े, गरीब, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों को आरक्षण मिल जाए एवं वे भी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से उनके बराबरी का अनुभव करें। इस के दौरान कईं आरक्षण विरोधी आंदोलन चलाए गए। मंडल कमीशन का विरोध करते हुए लालकृष्ण आडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या तक रामरथ यात्रा निकाली। इस का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुत्ववादी शक्तियों ने बाबरी मस्जिद को तोड़ दिया। साम्प्रदायिकता को भड़काया। भाजपा दरअसल ब्राह्मण–बनियों की पार्टी है। हिन्दूवादी सिद्धांत से काम करती है। यह जातिवाद और हिन्दूवाद जैसी साम्प्रदायिकता को भड़का कर, सत्ता में आना चाहती है।

---

[26] पृष्ठ संख्या 112, अयोध्या और उससे आगे (लेख– 'धर्म, साम्प्रदायिकता और राजनीति' मस्तराम कपूर) सम्पादक राजकिशोर, वाणी प्रकाशन 1993

इससे वी .पी. सिंह को राजनीति से हमेशा दूर रहना पड़ा। लेकिन मंडल कमीशन लागू होने के बाद पंद्रह सालों में कईं लोगों के जीवन में बदलाव आया। केवल ऊँची जाति के ही लोगों के लिए बनी–बनाई उस ब्यूरोक्रैसी में इन लोगों का जाना मंडल के बिना नहीं होता था। जिसे वी. पी सिंह ने करके दिखाया।

"शायद इधर की राजनीति में विश्वनाथ प्रताप सिंह, वामपंथियों को छोड़कर, अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने नैतिक मूल्यों के लिए सत्ता से कभी समझौता नहीं किया। वे संवेदनशील कवि और चित्रकार हैं और आज की दुनिया में आउट साइडर। मैं यह मानता हूँ कि पिछले सत्तावन सालों में वे दूसरे प्रधानमत्री रहे हैं जिन्होंने व्यवस्था को बदलने की कोशिश की–वरना सारे प्रधानमंत्रियों ने या तो व्यवस्था से समझौता कर लिया, या उसका दुरुपयोग किया। जवाहरलाल नेहरू पहले व्यक्ति थे जिन के पास देश और व्यवस्था को लेकर एक सपना (विज़न) था, दूसरे विश्वनाथ प्रताप हैं जिन्हें अचानक ही एक विज़न ने अपने गिरफ़्त में ले लिया और मंडल कमीशन के लिए उन्हें सत्ता छोड़नी पड़ी–यह बिल वे उसी तरह लाए जैसे अस्तित्व–संकट से निपटने के लिए अब्राहम लिंकन 'एंटी स्लेवरी बिल' लाए थे। ज़ाहिर है देश के सत्ताधारी वर्ग में भयानक हंगामा तो होना ही था। उसकी काट के लिए लालकृष्ण आडवाणी को सोमनाथ से रामरथ यात्रा निकालनी पड़ी और हिंदुत्ववादी शक्तियों को बाबरी–मस्जिद तोड़नी पड़ी। मगर उसी मंडल का नतीजा है कि आज पंद्रह साल बाद ब्यूरोक्रैसी, शिक्षा और दूसरे सामाजिक क्षेत्रों में हमें ऐसे नाम दिखाई देने लगे हैं जिनकी पहले वहाँ होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। सवर्ण वर्चस्व के इस जातिवादी 'कोढ़' के लिए मंडल कैसी कैटलिस्टिक परिघटना थी इसे आज राजनीति और समाजविज्ञान के विद्यार्थी ज़्यादा गहराई से जानते हैं। वैसे मैं अब भी मानता हूँ कि उनकी यह निजी नैतिकता राजनैतिक विचारधारा के साथ जुड़कर कहीं अधिक प्रभावशाली हो सकती है तो निश्चय ही वह वाम विचारधारा है...." [27]

---

[27] पृष्ठ संख्या, 9, हंस, अगस्त, 2005

छठें दशक के प्रारम्भ में जन्मी भाजपा की पूर्वज जनसंघ के समक्ष इतनी जटिल चुनौतियाँ नही थीं, जितनी कि उसकी वर्तमान संतान के सामने हैं। जनसंघ और भाजपा की संयुक्त यात्रा पर नज़र डाली जाये, तो यह कटु सत्य है कि उसका राजनीतिक विस्तार तभी हुआ है जब वे राष्ट्र की राजनीति की मुख्यधारा में शामिल हुई हैं। 1952 से 1971 तक जनसंघ की विकास गति अत्यंत मंथर थी, लेकिन जयप्रकाश आंदोलन में शामिल होने और आधुनिक राजनीतिक दलों के सम्पर्क में आने के पश्चात इसका रूप निखरा। इसकी नयी पहचान बनी। 1977 में जब यह जनता पार्टी में विलीन हो गयी तो इसका वोट, प्रतिशत बढ़ा। पार्टी दस्तावेज के अनुसार जनता पार्टी को प्राप्त 295 सीटों में 103 सीटें इसे प्राप्त हुई थीं। 1971 की तुलना में जनसंघ के मत प्रतिशत में 7 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई थी। 1977 में जनता पार्टी का घटक बनना जनसंघ के जीवन में गुणात्मक बदलाव की शुरुआत थी। इसके बाद इसने पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा। हालांकि नये रूप में जन्मी भाजपा को 1984 में करारा झटका लगा। पर 1989 में इसने अपनी पूरी भरपाई की, तब से ही इसकी विकास–यात्रा सफलता की ओर अग्रसर रही। इस यात्रा की विशेषता यह थी कि जहां इसने संघ परिवार के एजेण्डे को लागू करने में प्रभावशाली राजनीतिक कौशल का परिचय दिया, वहीं उसने गैर–संघी समाजिक शक्तियों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया। 1996 में और 1998 के चुनाव–पूर्व परिदृश्यों में भाजपा ने ऐसे सैकड़ों लोगों को प्रवेश दिया, जिनका संबंध संघपरिवार से कभी नहीं रहा। भाजपा नेतृत्व समझ चुका था कि केवल संघीय शुद्धता के आधार पर चुनाव नहीं जीता जा सकता, अब भाजपा के दरवाजे खोलने पड़ेंगे और राजनीतिक फिसलन को अपनाना पड़ेगा।

“ आज भाजपा का प्रमुख द्वंद्व यह है कि वह अपना आधुनिकीकरण कैसे करे ? वह एक स्वतंत्र राजनीतिक दल का आकार कैसे ले ? वह संघ पराश्रिता से मुक्ति कैसे ले या न ले ? भाजपा की तीव्र उत्कंठा कांग्रेस का विकल्प बनने की है। उसकी यह जन्मजात यानी जनसंघ युग से चली आ रही महत्वाकांक्षा तभी पूरी हो सकती है, जब वह एक स्वस्थ व स्वतंत्र राजनीतिक दल के रूप में व्यवहार करे। जब तक वह अन्य दलों की तरह

व्यवहार नहीं करेगी, तब तक उसे आधुनिक राजनीतिक पार्टी के रूप में अखिल भारतीय स्वीकृति नहीं मिलेगी। ”[28]

भाजपा की नीव ही इसके विविध संगठन हैं। हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, हिन्दू जागरण मंच, शिवसेना आदि भाजपा के साथी संगठन हैं। ये अपने अपने समय पर अपना धर्म निभाते रहते हैं। इन में आरएसएस का मुख्य पात्र होता है। यह बाकी संगठनों को विचार देती है और कार्य प्रणाली बनाके निर्देश करती है। वे भारत को एक हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते हैं। इसके लिए हिन्दुत्व भावना को जनता में प्रचार प्रसार करना चाहते हैं। इन का उद्देश्य न केवल हिन्दुत्व का प्रचार प्रसार करना है बल्कि इसके माध्यम से सत्ता प्राप्त करना इनका मुख्य उद्देश्य हैं। इस कार्य के लिए सबसे पहले उनको जनता का नेता बनना ज़रूरी है। इसके लिए कुछ न कुछ समस्या को लेकर, किसी न किसी रूप में संघर्ष करना होता है। धर्म के नाम पर दंगे, फ़साद करवाते हैं। हिन्दू और मुसलमानों के बीच झगड़े का माहौल पैदा कर देते हैं। तब भाजपा अपना विस्तार करना चाहती है। इसी क्रम में भाजपा के नेता लालकृष्ण आडवाणी धर्म की रक्षा के लिए सोमनाथ से अयोध्या तक राम रथ यात्रा किये थे।

कालान्तर में हिन्दुत्व का जादू नहीं चल रहा था। यह विषय भाजपा और उसके साथी संगठनों को पता चल गया। शिवसेना के हरकतों से बहुसंख्यक हिन्दू भी नाराज हैं। अयोध्या, काशी, मथुरा के आधार पर हिन्दुओं को गोलबंद नहीं कर सकते हैं। क्योंकि भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दौरान नया समृद्ध और मध्यवर्ग का जन्म हुआ है। इनको मन्दिर–मस्जिद से कुछ लेना देना नहीं हैं। इन को चाहिए राजनीति में स्थायित्व। अनिवासी भारतीयों, भारत में पूँजी निवेश के लिए आमंत्रित किया जाएगा तो वे भारत की राजनीति में एवं स्थायित्व में हिस्सा लेना चाहेंगे। वे यह भी चाहेंगे की राजनीतिक स्थिरता हो। लेकिन भाजपा और उसके साथी संगठनों जैसे संघपरिवार, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, हिन्दू

[28] पृष्ठ संख्या, 20, वसुधा 43–44, संपादक, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी 1998–99

जागरण मंच आदि के एजेण्डों के स्वीकार कर के भाजपा सरकार देशी और विदेश के पूँजी पतियों को राजनीतिक स्थिरता का आश्वासन नहीं दे सकती है। इस लिए भाजपा जब सत्ता से ज़्यादा दूर रहती तो साम्प्रदायिकता को फैलाती। जब सत्ता प्राप्त कर लेती तो साम्प्रदायिक कार्यों से थोड़ा दूर रहती दिखाई देती है। अतः जब जब भाजपा संकट में रहता तब तब धर्म और साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल करती हैं। इस उद्धरण से और स्पष्ट हो जएगा–

"भाजपा नेतृत्व यह भी समझ चुका है कि अब बाबरी मस्जिद का कार्ड दुबारा नही फेंका जा सकता। अयोध्या के अलावा मथुरा एवं काशी के आधार पर हिन्दुओं को गोलबंद नहीं किया जा सकता। आज शिवसेना की असभ्य हरकतों को लेकर हिन्दू भी नाराज हैं। अतः बहुसंख्यक समाज की भावनाओं को भड़काकर भाजपा अपना विस्तार नहीं कर सकती। यह खेल खतरनाक भी है और अब हिन्दू इसके लिए तैयार भी नहीं हैं, क्योंकि भूमंडलीकरण और उदारीकरण ने नवसमृद्ध एवं नवमध्यवर्ग पैदा कर दिया है जिसे स्थायित्व चाहिए, मंदिर–मस्जिद के फसाद नहीं। जब अनिवासी भारतीयों को देश में पूँजी निवेश के लिए आमंत्रित किया जाएगा तो वे राजनीतिक स्थायित्व से जरूर ही आश्वस्त होना चाहेंगे। संघ, विहिप, बजरंग दल, हिन्दू जागरण मंच, शिवसेना जैसे संगठनों के एजेण्डों को स्वीकार कर भाजपा–सरकार राजनीतिक स्थिरता का आश्वासन देशी एवं विदेशी पूंजीपतियों को नहीं दे सकती। गुजरात में चर्चों पर हमलों से ही सरकार की छवि को काफी धक्का लगा है।"[29]

मंडल कमीशन सिफारिस जब लागू होने जा रहा था तो धर्मवादी ,परम्परावादी एवं ब्राह्मणवादी यह सोचने लगे कि इसको कैसा काटा जाए। इस आधुनिक समाज में भी मध्ययुगीन सामंती संस्कृति का प्रदर्शन करते हैं। समाज को फिर से उस संस्कृति का एहसास दिलाते हैं। इसके साथ यह भी दिखाना चाहते हैं कि कितना आधुनिक हैं। अर्थात

---

[29] पृष्ठ संख्या, 22–23, वसुधा 43–44, 1998–99

मध्ययुगीन सामंती रथ में आधुनिक ईंधन पेट्रोल है। इससे हमको यह मालूम पड़ता है कि मध्ययुग में धर्म वादी और परम्परावादी की ही सत्ता होती थी, आधुनिक युग में भी धर्मवादी एवं परम्परावादी की ही सत्ता चलेगी। लेकिन मंडल कमीशन लागू होता तो 27 प्रतिशत सीटें पिछड़ों को देना पड़ता है और 22 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को पहले से ही हैं। ये अगर मिल जाते हैं तो ब्राह्मणों से सत्ता छूट जाती है। इसलिए भाजपा के नेता आडवाणी 1990 में सोमनाथ से अयोध्या का राम रथ यात्रा किया। 1992 में बाबरी मस्जिद को तोड़ा। इस दौरान साम्प्रदायिक भड़काव होते रहें। दंगे फ़साद होते रहें। लेकिन भाजपा की आँखे सत्ता की ओर रही।

"1990 में आडवाणीजी का सोमनाथ से अयोध्या यात्रा का राम रथ भाजपा की सम्पूर्ण बाह्य एवं आंतरिक काया का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरे शब्दों में, आडवाणी के रथ में आधुनिक ईंधन–पेट्रोल का भी प्रयोग हो रहा है और मध्ययुगीन सामंती वाहन 'रथ' के ढांचे को भी अपनाया गया है कि वह युग की चुनौतियों की वैज्ञानिक ढंग से पहचान करे और उसका सामना व समाधान करें।"[30]

इनको भारतीय लोगों की कमजोरी पता चल गयी है। हिन्दू और मुसलमान लोगों के धार्मिक भावनाओं को भड़का कर अपना फायदा किस तरह उठाते हैं और फायदे उठाने की जो श्रृंखला है जिसे हम समझ सकते हैं।

"22–23 दिसंबर 1949 की रात बाबरी मस्जिद में मूर्तियां रखवा कर विवाद की नींव डालने वाले; फैजाबाद के तत्कालीन जिलाधिकारी के. के. नैय्यर ने इससे भड़की साम्प्रदायिक भावनाओं का फायदा उठाकर, जनसंघ के टिकट पर लोकसभा तक की यात्रा की थी।"[31]

---

[30] पृष्ठ संख्या, 24, वसुधा 43–44, 1998–99

[31] पृष्ठ संख्या, 6, समकालीन जनमत, अक्टूबर 2010

1984 में विहिप ने तालों में बंद भगवान राम की मुक्ति के लिए नारे लगाई। भगवान राम को मुक्त करने के लिए, सीतामढ़ी से अयोध्या की रथ यात्रा की। इस विवाद के साथ कई समस्यएं आ जुड़े जैसे धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक। इसमें कुछ संघ परिवार के सुविधा के लिए तो कुछ तत्कालीन परिस्थितियों की देन थी। 1986 में फैजाबाद की जिला अदालत के आदेश पर ताले खोल दिए। 1989 में राममंदिर का शिलान्यास किया गया। वी. पी. सिंह व मुलायम के राज में मंडल आयोग की सिफारिशें लागू किये गये थें। लागू होने के बाद 1990 में उग्र कारसेवा आंदोलन हुआ। 1992 में बाबरी मस्जिद को ध्वंस किए हैं। इस प्रकार इन पहलुओं की श्रृखला 22–23 दिसम्बर 1949 से 6 दिसम्बर 1992 तक ही नहीं, यह 2000–2002 और 2010 से आगे भी जारी रहने का संभावना है।

हिन्दुत्ववादी इस देश को हिन्दू देश बनाना चाहते हैं। हिन्दू राष्ट्र घोषित करना चाहते हैं। लेकिन उनसे नहीं हो पा रहा है। क्योंकि इस देश में आदि से आज तक कोई एक खास संस्कृति नहीं रही है। इस धरती पर मिश्रित संस्कृति का देश कोई है तो वह है भारत। इसलिए भारत को उपमहाद्वीप कहते हैं। देश की संस्कृति का नाश करना उतना आसान नहीं है, फिर भी कालांतर में हो सकता है। इसको तेज़ करने के लिए, इतिहास में बदलाव लाना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए सत्ता में आना आवश्यक होता है। भाजपा सत्ता में जब थी तो आई. सी. एच. आर जो इतिहासकारों की संस्था है; में आरएसएस वालों को ज्यादा से ज्यादा भरा गया। आगे वे इतिहास, शिक्षा के संबंधित पाठ्यक्रम को बदल के अपनी साम्प्रदायिकता वाली विचार से लिखते हैं। इन कार्यों से मिली–जुली संस्कृति एवं समाज को नुकसान पहुँचता है। उन्होंने सत्ता में रहते हुए भी क्रिस्तानों पर हमला किया। गरीबी और बेरोजगारी को लेकर इन को कोई चिंता नहीं है। इन समस्याओं पर असगर अली इंजीनियर का मन्तव्य इस प्रकार है।

“मैं समझता हूँ सबसे बड़ा संकट साम्प्रदायिकता का है। साम्प्रदायिक ताकतें आज सत्ता में हैं। उन्होंने भारत की सम्मिश्र संस्कृति और मूल्य व्यवस्था के लिए खतरा पैदा कर

दिया है। भविष्य में साम्प्रदायिक ताकतें कमज़ोर ही होंगी ऐसी मुझे आशा तो है पर सत्ता में आकर वो नुकसान ज़रूर कर जाती हैं। जैसे क्रिस्तानों पर हमले, पाठ्य क्रमों को बदलना। लंबे समय तक यह खतरा बना रहेगा, क्योंकि इससे एक साम्प्रदायिक 'माइंड सेट' पैदा होगा। आई. सी .एच. आर. जो इतिहास पर शोध का काम करती है और इतिहासकारों की महत्वपूर्ण संस्था है, में आर. एस.एस. के लोग भरे गए। आई. सी. एस. एस. आर में, जो सामाजिक शोध की बॉडी है, में ऐसे लोग भरे गए। इससे हमारे समाज विज्ञानों, इतिहास को जो नुकसान पहुँचेगा, उसका अंदाज मुश्किल है। ग़रीबी, बेरोज़गारी भी बढ़ती जा रही है। यह भी बुनियादी प्रश्न है इंसान के जीवन के, भारत के आर्थिक संकट बना हुआ है, पर अफ़सोस यह कि बेकार के प्रश्न प्रधान हो गए हैं, बुनियादी प्रश्न पीछे रह गए हैं।"[32]

भारत देश आदि से आज आधुनिक तक कई संस्कृतियों का मिश्रण है। पहले भी साम्प्रदायिकता की भावना थी किन्तु वह उग्र साम्प्रदायिकता नहीं थी। आपस में मिल–जुल कर रहते थे। 19 वीं सदी से उग्र साम्प्रदायिकता की भावना दिखाई देती है। 1980 के दशक में साम्प्रदायिक आंदोलन बहुत चले, फिर भी जनता साम्प्रदायिक नहीं हुयी, लेकिन मध्यवर्ग ज़रूर हुआ। मध्यवर्ग इसलिए हुआ क्योंकि वे सत्ता में भाग लेना चाहते हैं। 1940–47 के बीच इस्लामिक साम्प्रदायिकता ज़्यादा थी। हिन्दू साम्प्रदायिकता हो या मुस्लिम साम्प्रदायिकता हो, इन दोनों में भी मध्यवर्ग के लोग ही शामिल होते हैं। इनकी साम्प्रदायिकता से आम मुसलमान और हिन्दू का संबंध नहीं होता है। पकिस्तान को भी मध्यवर्ग के मुसलमानों ने बनाया। क्योंकि इनमें सत्ता की होड़ थी। आज जो हिन्दू धर्म का इस्तेमाल करके राजनीति कर रहे हैं, वे भी हिन्दू मध्यवर्ग के ही लोग हैं। वे मन्दिर और मस्जिद के नाम से राजनीति करके सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं। इन मध्यवर्ग और साम्प्रदायिकता को लेकर प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता असगर अली इंजीनियर कहते हैं–

[32] पृष्ठ संख्या, 31, पहल, jan—may, 2002

“मैं नहीं समझता कि जनता ज़्यादा सम्प्रदायिक हुई है। जनता में हमेशा उदारवाद रहा है, मिश्रित संस्कृति का प्रभाव रहा है। इतने बड़े साम्प्रदायिक आंदोलन चले, अस्सी का दशक सबसे खतरनाक था। उसमें भी आम लोग कम्यूनलाइज़ नहीं हुए, मिडिल क्लास हुआ। सांप्रदायिकता समस्या ही मध्यवर्ग की है। 19 वीं सदी से लेकर (जब से सांप्रदायिकता पैदा हुई) आज तक उसमें पूरी भूमिका मध्यवर्ग की है। चाहे वो मुस्लिम सांप्रदायिकता हो या हिन्दू सांप्रदायिकता या पाकिस्तान बनने का सवाल हो। पाकिस्तान आम मुसलमान ने नहीं बनाया, मिडिल क्लास के मुसलमानों ने बनाया। वे सत्ता की होड़ में थे। उनको परेशानी थी कि सत्ता में कितनी साझेदारी मिलेगी। इसी पर पाकिस्तान बना। वरना और किसी को खतरा नहीं था कि इस्लाम हिंदुस्तान में ज़िंदा नहीं रहेगा। आज 'टू नेशन थ्येरी' बिल्कुल नाकाम साबित हो चुकी है। आज हिंदुस्तान में उतने ही मुसलमान हैं जितने पाकिस्तान में। और वहाँ आम मुसलमानों की जो हालत हो रही है, फ्युडलिज्म उतना ही मज़बूत है जितना 1947 में था। इसी तरह भाजपा द्वारा राजनीति में धर्म का इस्तेमाल भी हिंदू मध्यवर्ग तक सीमित था। मैं समझता हूँ कि चालीस से सैंतालीस के बीच मुस्लिम मध्यवर्ग सबसे ज़्यादा सांप्रदायिक हुआ और अस्सी के दशक में हिंदू मध्यवर्ग में सांप्रदायिकता सबसे ज़्यादा थी। राम जन्मभूमि विवाद को देशविभाजन के समानांतर ही देखता हूँ। पर आज भी हिंदू अवाम सांप्रदायिक नहीं है। सारा झगड़ा 'क्लैश ऑफ़ इंटरेस्ट' का है, 'क्लैश ऑफ़ रिलीजन' का नहीं । 'क्लैश ऑफ सिविलाईज़ेशन' को मैं बहुत बोगस थियरी मानता हूँ। हितों की टकराहट का संबंध मध्यवर्ग से है अतः ध्रुवीकरण भी मध्यवर्ग में हुआ है। ”[33]

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, भारत देश को हिन्दू मजहबी देश बनाना चाहती है। इस बहुजातीय या बहुजन राष्ट्र की जगह, ब्राह्मणीय हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहती है। इस कार्य साधन के लिए आरएसएस ने अपना एक मॉडल का प्रपोजल तैयार करके अपने पास रखा

---

[33] पृष्ठ संख्या, 34–35, पहल, जन–मई, 2002

है। इस मॉडल को बनाने के लिए, इनको सबसे पहले राजनीतिक सत्ता में आना होगा। राजनीतिक सत्ता में आने के लिए सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं में बदलाव लाना चाहते हैं। इसी संकल्प का परिणाम है रामजन्मभूमि वाली साम्प्रदायिकता। बाबरी मस्जिद का ध्वंस करके मुख्यधारा की संस्कृति को नुकसान पहुँचाया है। नतीजतन हिन्दू और मुसलमानों में घृणा और नफरत की भावना को बढ़ावा दिया है। उनके हिसाब से हिन्दू कहे जाने वाले भारतीयों के बीच भी एक दूसरे के प्रति घृणा और नफरत की भावना जरूरी है। साम्प्रदायिकता को उकसा के गुजरात और कुछ राज्यों में सत्ता भी प्राप्त कर लिया भाजपा ने। केन्द्र में भी सत्ता में आ गयी थी। आरएसएस और भाजपा को अपना मॉडल वाला स्टेट बनाना था। इसके लिए गुजरात राज्य को चुना गया। गुजरात में हिन्दुत्व की प्रयोगशाला में पड़ रही दरारों से निष्पक्ष लोग भी चिंतित होने लगें हैं।

केसूभाई सरकार के कुशासन को लेकर जनता में गुस्सा व्याप्त हुआ। जनता भाजपा का विरोध करने लगी। नगरपालिका चुनाओं में भाजपा को सत्ता से दूर भगाया। बाद में हुए सांबरकांठा विधानसभा के उपचुनाव में भी भाजपा को हरा दिए। गुजरात में हिन्दू मॉडल स्टेट बनाने में विफल हुए। इस स्थिति को ठीक करने के लिए गुजरात को नरेन्द्र मोदी को सौंप दिया भाजपा ने। इस उद्धरण से और स्पष्ट हो जाता है।

“अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए कि गोधरा काण्ड के चन्द रोज पहले तक निष्पक्ष राजनीतिक विश्लेषक ही नहीं हिन्दुत्व की सियासत से हमदर्दी रखने वाले विचारकों के लिए भी गुजरात में हिन्दुत्व की प्रयोगशाला में पड़ रही दरारें चिंता का विषय बनी थीं। केसूभाई सरकार के कुशासन को लेकर जनता में व्याप्त गुस्से के प्रतिबिंब के तौर पर 23 में से 21 नगरपालिकाओं में भाजपा को करारी हार झेलनी पड़ी थी। लोगों का भाजपा के प्रति तथा गुजरात को संघ की दृष्टि से मॉडल स्टेट बनाने के प्रति गुस्सा इतना प्रचण्ड था कि एक ही झटके में नगरनिकायों पर उनका नियंत्रण 90 फीसदी से घटकर 15 फीसदी तक पहुँचा था। यहाँ तक कि बाद में हुए सांबरकांठा विधानसभा के उपचुनाव में जो उसका गढ़ समझा जाता रहा था, वहाँ भी उसे मात खानी पड़ी थी। इस मॉडल स्टेट में अपनी

स्थिति बेहतर बनाने के इरादे से ही भाजपा के आलाकमान ने केशुभाई पटेल के स्थान पर नरेन्द्र मोदी को प्रदेश का जिम्मा सौंपा था।"[34]

राम के नाम पर भाजपा और साथी संगठन राजनीति करते हैं। आखिर ये राम के नाम पर ही क्यों करते हैं ? राम तो एक कथाकथित भगवान माना जाता है। अतः अगर कोई भगवान का नाम लेता है तो वह इसलिए लेता है कि उसको भगवान का अनुग्रह मिले या तो पुण्य मिले, पापों से मुक्ति मिले और स्वर्गादि प्राप्त हो जाए। वैसे ही राम तो कभी भी सत्ता प्राप्त करने के लिए राजनीति करते हुए नहीं दिखाई देते हैं। राम वनवास के दौरान चित्रकूट में विराजमान थे। जहाँ भरत रामचन्द्र के राज्याभिषेक के लिए पहुँचते हैं तो राम मना कर देते हैं। इन राम मन्दिर का नाम लेने वालों को ईश्वर के पास जाना है ? मुझे नहीं लगता कि इनको ईश्वर के पास जाना है। इनको तो राम मन्दिर पर राजनीति कर के दिल्ली जाना है। लोकसभा में बैठना है। इसलिए वे गरीबों, पिछड़ों, बेरोजगारों के हक के लिए नहीं लड़ते हैं। वे हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिकता फैलाना चाहते हैं। धर्मनिरपेक्षता को नाकाम ठहराते हैं। इन समस्यओं को इस उद्धरण में भी देख सकते हैं।

"राम के नाम पर जब भाजपाई राजनीति करते हैं तो यहाँ तक भूल जाते हैं कि राम राज्य के लिए या सत्ता के लिए कभी पड़ते लड़ते। चित्रकूट में जब भरत रामचन्द्र के राज्याभिषेक का जल लेकर पहुँचते हैं तो राम टाल देते हैं। आखिर राम की खड़ाऊँ लेकर भरत बुझे मन से चले जाते हैं। राज्य को ढेले की तरह भरत भी ठुकराते हैं और राम भी। यहाँ तो राम मन्दिर के नाम पर आँखे दिल्ली की कुर्सी पर लगी हैं। इन रामभक्तों को ईश्वर के पास तो जाना नहीं है। जाना है दिल्ली। इसलिए गरीब जनता से वह कहते

[34] पृष्ठ संख्या, 10–11, पहल, जन–मई, 2002

हैं–महँगाई से मत लड़ो बाबर से लड़ो। बेरोजगारी से मत लड़ो, औरंगजेब से लड़ो। गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई सब धर्मनिरपेक्ष हैं। ये धर्म से पैदा नहीं हुई है।" [35]

कुल मिलाकर मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि किसी को सत्ता में आना हो, इस देश की गद्दी पर बैठना हो तो क्या करना चाहिए ? इनको यह करना चाहिए कि जनता के पास जाएं। उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समस्याओं को समझें। इन समस्याओं को हल करने के लिए अपनी योजना बनाएं और अपना एजेंडा रखें। ये यह नहीं करना चाहते हैं। ये अपनी धर्म की रक्षा करना चाहते हैं। सामंती व्यवस्था को बरकरार रखना चाहते हैं। मस्जिदों को तोड़ना चाहते हैं। मन्दिर बनाना चाहते हैं। इसके लिए रथ यात्रा निकालते हैं। हजारों लोगों का कत्ल करते हैं। सत्ता पाने के लिए जो करना है, उसे नहीं करते। जो नहीं करना है उसे करते हैं। भगवान अलग है और राजनीति अलग है। राजनीति में भगवान को इस्तेमाल करना गलत है। हमारा देश धर्मनिरपेक्ष देश है। इसलिए धर्म व्यक्तिगत है और राजनीति का सीधा संबंध जनतंत्र या प्रजातंत्र से है।

1.6.3. आर्थिक

"भाजपा का प्रधानमंत्री बने, इसके लिए भाजपा नेताओं में जितनी आतुरता होगी, संघ परिवार के अन्य घटकों के नेताओं में उतनी आतुरता नहीं होगी। उनकी आतुरता सिर्फ इसलिए होगी कि देश में एक खास प्रकार की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थितियाँ पैदा हों। अगर कांग्रेस की आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक

---

[35] पृष्ठ संख्या, 42, पहल, Aug—Sep, 2002

तनाव बढ़ते हैं, पूरी व्यवस्था में ब्राह्मण–बनिया वर्चस्व भी बढ़ता है, तो संघ परिवार के नेतृत्व में कांग्रेस के साथ सहअस्तित्व का एक विचार भी पैदा हो सकता है।”[36]

अयोध्या में पहले–पहले कारसेवकों का आना शुरू हुआ था। इनको देख के वहाँ के राम भक्त और संत बहुत ही खुश थे। वे इसलिए खुश थे कि अब तक आस–पास के या उत्तर प्रदेश के या बिहार के गाँवों से आते थे। वे भी छोटे–मोटे कस्बों व किसानों और दुकानदारों के लोग आते थे। इन के चढ़ावे से अपना जीवन गुजर–बसर मुश्किल से करते थे। अयोध्या में अमीर कारसेवकों का आना दिन पर दिन बढ़ रहा था, इनके आने से उनका बाजार भी बढ़ रहा था और चढ़ावा भी। इसके लिए वहाँ के व्यापारी विश्व हिन्दू परिषद के प्रति कृतज्ञ भाव से रहते थे, क्योंकि उसी के नाते पूँजी का प्रवाह अयोध्या की ओर हुआ था। इसके दौरान कई मठों को गिराया गया। कई अखाड़े और छावनियां चमक उठीं। न सिर्फ उनका जीर्णोद्धार हुआ बल्कि उनमें कई मंजिलें भी जुड़ीं। अयोध्या में नए निर्माणों की झड़ी सी लग गई। पहले जो संत–महंत एक दो रुपयों के लिए रिक्शे वालों से किच–किच करते व उलझते दिखते थे, वे लक्जरी कारों में नजर आने लगे और सशस्त्र सुरक्षा गार्डों के पहरे में निकलने लगे। यह बाजार पर्यटकों व नेताओं के अलावा पत्रकारों के एक समुदाय को भी सुभीते का लगता था। धीरे–धीरे टूटी–फूटी बेंचों वाली चाय की दुकानें; श्रीराम फास्टफूड आउटलेट्स में बदल गईं।

हवन पूजन की सामग्री, नारियल, चुनरी, रामदाना, इलायची दाना, लड्डू, जनेऊ, खड़ाऊ, कंठीमाला, सिंदूर और सुहाग की चीजें बेचने वालों की दुकानों के ऊपर भगवा व केसरिया झंडे फहराने लगे और उन पर राम नहीं जयश्रीराम लिखे गमछे, दुपट्टे और पट्टियों की धुंआधार बिक्री होने लगी। यह सिलसिला आगे चलकर रक्त रंजित इतिहास की पुस्तकों में, कारसेवा के दौरान हुई पुलिस फायरिंग के अलबमों में, कैसेटों और सीडियों

---

[36] पृष्ठ संख्या 149, अयोध्या और उससे आगे (लेख– 'धार्मिक राष्ट्रीयता बनाम आर्थिक राष्ट्रवाद', किशन पटनायक) सम्पादक राजकिशोर, वाणी प्रकाशन 1993

तक जा पहुँचा। इस बाजार को, मारे गए कारसेवकों की लाशों के वीडियो के प्रदर्शन से भी माल कमाने में संकोच न हुआ। यह पहले से होता हुआ 1992 में बाबरी मस्जिद के तोड़ने तक से गुजरात के गोधरा काण्ड तक जो भी दंगे हुए हैं जिसके पीछे आर्थिक कारण ही हैं। इनके साथ खास बात यह है कि भूमंडलीकरण और बाजारोन्मुख आंधी के कारण लोग सामूहिकता से अलग थलग हो गये हैं। प्रगतिशील आंदोलन से दूर हो गये हैं। व्यक्ति यह सोचने लगा कि अकेले में ही हित है। इनके भीतर की कुंठा और गुस्सा को साम्प्रदायिक शक्तियाँ अपने फायदे के लिए इस्तेमाल की या इसको बाजार का रूप दे दिया गया। इन उक्त समस्याओं को और स्पष्ट यह उद्धरण कर देता है।

"1992 में बाबरी मस्जिद के ध्वंस तक, इन पहलुओं की एक लंबी श्रृंखला है जो एक तरफ कांग्रेस द्वारा भाजपा से उसका हिंदू कार्ड छीनने की विफलता की कहानी कहती है तो दूसरी ओर भूमंडलीकरण की बाजारोन्मुख आंधी के अनर्थों तक भी जाती है; जिसके तहत धर्म का बाजार भी खासा बढ़ा। गौर करने की बात है कि यह बाजार जैसे–जैसे खुला और उदार हुआ, मनुष्य की सामूहिक मुक्ति की भावनाएं कमजोर पड़ती गईं और नए, प्रगतिशील व लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों की चिंता के बजाय, खास जोर मनुष्य को अलग थलग व अकेला कर, उसकी नाराज भीड़ें खड़ी करने व उसकी कुंठाओं व भयों को भुनाकर लाभ उठाने पर हो गया। कट्टरता और साम्प्रदायिकता इस बाजार का अभिन्न अंग बन गई।"[37]

उक्त प्रकार धर्म, भगवान, रामजन्मभूमि के नाम पर अपना धंधा, व्यापार करते हैं और हिन्दू मुसलमानों को लड़ाते हैं। एक तरफ दोनों मजहब को लड़ा के धन कमा रहे हैं तो दूसरी ओर दंगे, फसाद करके किस तरह धन–दौलत लूटते हैं, हम देख सकते हैं।

---

[37] सुनिल यादव (सं.), समकालीन जनमत, इलाहाबाद, अक्टूबर, 2010, पृष्ठ संख्या–6

यदि कहीं साम्प्रदायिकता पनपी तो वहाँ दंगे, फसाद ही तो होते हैं। ये वहाँ होते हैं जहाँ अल्पसंख्यक अधिक संख्या में निवास करते हैं। दंगे होते समय दंगाई केवल मार–काट ही नहीं करते हैं, उनके कत्ल के साथ–साथ उनके घरों को भी लूटते हैं। घर में जो भी मिला उसे उठा ले जाते हैं। ऐसा कर देते हैं कि दंगे के बाद उस परिवार में कोई जिन्दा हो तो उनके लिए बुनियादी चीजें जो रोटी, कपड़ा, मकान से भी वंचित हो जाएं। अर्थात् वह जिन्दा बचे भी तो हुये भी मुर्दा के बराबर रहे। इसके दौरान उनके महिलाओं पर अत्याचार करते हैं। मासूम लड़कियों की इज्जत लूटते हैं। इस दौरान वे यह भी करते हैं कि जिस दंगे के स्थान के आस–पास सरकारी ऑफिस या दफ्तर हो तो उसे भी लूट लेते हैं और उसको तोड़–फोड़ देते हैं। आखिर ये कौन लोग हैं जो लूट–पाट एवं दंगे में शामिल हैं ? इस बात पर गौर करने से यह पता चलता है कि ये लोग मध्यमवर्ग के खाए–पीए अघाए घराने के लोग हैं। जाहिर सी बात है कि मध्यमवर्ग के आदमी उच्चवर्ग में जाने के सपने देखता रहता है। बल्कि उच्चवर्ग में तब्दील होना उतना आसान नहीं है। इनके मन में एक तरह का कुंठा या असंतोष घर कर लेता है, जिसको साम्प्रदायिक शक्तियाँ पकड़ लेती हैं। ये उनसे कहते हैं कि ' तुम्हारे सपने साकार न होने की वजह हैं मुसलमान, आरक्षण'। अतः इनके खिलफ संघर्ष करो कहकर, मुसलमानों और अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के खिलाफ उकसाते हैं। दंगे एवं लूट के समय में, लूटे गये सामान को लाने के लिए अपना परिवार भी कारें एवं अन्य साधनों के साथ वहाँ पहुँचते हैं। यह समस्याएं दिए गए उद्धरण से अधिक समझ में आता है–

"वैसे इन दंगों के बारे में ऐसे तथ्य भी हैं जो ज़्यादा चिन्ताजनक हैं। गुजरात में इस बार मध्यमवर्ग के लोगों ने या उनके परिवार के नौजवानों ने न केवल दंगों में हिस्सा लिया बल्कि दंगों में हुई लूटपाट में भी अपना हाथ साफ किया। बड़े बड़े डिपार्टमेंटल स्टोरों के तोड़े जाने या उनके लूटे जाने की ख़बरें उन्होंने एक दूसरे को तत्परता से पहुँचायी तथा देखते ही देखते लूटे जा रहे स्थानों पर कारों तथा अन्य साधनों के साथ

लोग सपरिवार पहुँचे। यह भी रपट सामने आयी है कि इनमें से कई सारे दण्ड का भागी बनने से बचने के लिए लूटा गया सामान लौटा भी रहे हैं।"[38]

उक्त प्रकार लूट–पाट, अत्याचार करके एक वर्ग को गरीब बनाते हैं, और लुटेरे अमीर या धनी बनते हैं और कई तरह के आर्थिक शोषण करते रहते हैं। यह शोषण इन गरीब और शोषित लोगों को पता न लग जाए, इसलिए इनको धर्म और मजहब के नाम पर हमेशा गोल– बंद किया जाता रहता है।

हमारे देश में जहाँ–तहाँ कई धर्माश्रम हैं। अच्छे अच्छे गुरुओं के, बाबाओं के, साधु–साध्वियों के नाम पर, ये आश्रम चल रहे हैं। इनके स्वदेश में और विदेशों में भी हजारों–लाखों संख्या में भक्त हैं। किसी के आश्रम में राम के बारे में और राम कथा सुनाते–पढ़ाते हैं तो और किसी के आश्रम में शिव को, कृष्ण को, काली माता को, तो किसी के आश्रम में सर्वधर्म का सार आदि सुनाया–पढ़ाया जाता है। इस में लोगों को और भी चीजें सुनाई–पढ़ाई जाती है कि राजा भगवान के बराबर है। भगवान के ही कृपा से राजा बन सकते हैं। अतः राजा भगवान के द्वारा भेजा गया है। राजा जो कुछ भी करता है वह भगवान के ही आदेश से ही करता है। राजा का विरोध करना भगवान का विरोध करना ही होता है। राम राज्य में राजा राम थे तो आज के दौर में राजा वे होते हैं जो एम एल ए, एम पी, मुख्यमंत्री, प्रधान मंत्री आदि हैं। एम एल ए, एम पी, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, प्रेसिडेंट वे सब जनता के वोटों से बनें हैं। लेकिन हमको आश्चर्य इस बात से लगता है कि वे जाके अपना माथा उन बाबाओं के पैरों में टेकते हैं। आशीर्वाद लेते हैं। ये ऐसा क्यों करते हैं ? इस पर विचार करने से यह पता चला है कि पूरी जनता इनके हाथों में गोल बंद हुई है। बड़े बड़े राजनीतिक नेता घोटाला करते हैं, प्रजाधन को लूटते हैं। उसमें से कुछ इन बाबाओं को भी पहुँचाते हैं। अर्थात बाबा लोग जनता का धार्मिक शोषण और आर्थिक शोषण करते हैं तो राजनीतिक नेता आर्थिक शोषण करते हैं। वे कहते हैं कि धर्म को राजनीति में

[38] पृष्ठ संख्या, 8, पहल, jan—may, 2002

नहीं लाना चाहिए। लेकिन वही लोग धार्मिक राजनीति करते हैं। जब धर्म और राजनीति मिश्रित होती है तो वहाँ साम्प्रदायिकता पैदा होती है।

चुनावों के समय में राजनीतिक नेताओं ने अपनी जाति, फिरका, खानदान, संस्कृति, मजहब, सम्प्रदाय आदि का इस्तेमाल करते हैं। यह गाँव के चुनाव में और ज़्यादा ही इस्तेमाल होता है। जब विधान सभा के लिए चुनौती होता है तो अपना खानदान और मजहब का इस्तेमाल करके चुनाव जीता जाता है। लेकिन उस क्षेत्र की आर्थिक विकास, सामाजिक विकास की बात ही भूल जाता है। वे युवकों को रोजगार, किसानों को सिंचाई के लिए पानी आदि के उपलब्ध कराने में सफल नहीं होते हैं। लेकिन शोषण करने में सफल होते हैं। इस उद्धरण को देखें—

“जो लोग धर्म को राजनीति कहने से गुरेज करते हैं, इतिहास में देखा गया है कि वे ही सबसे ज़्यादा धर्म की राजनीति करते हैं। क्योंकि उनका अस्तित्व जनता का धार्मिक शोषण करने में निहित है। असल में यह सारी प्रक्रिया जनता के आर्थिक शोषण को बरकरार रखने के लिए ही अपनाई गयी है। चूँकि सत्ताधारी इस बात से बहुत डरते हैं कि वहीं जनता अपने आर्थिक शोषण के खिलाफ उठ खड़ी न हो जाय, इसलिए उसे धर्म के रहस्यों में उलझाये रखा जाना जरूरी समझा जाने लगा। और सत्ताधारियों को मालूम है कि लगातार गरीब और पिछड़ते जा रहे भारत जैसे देशों में आम जनता की सहन—शक्ति किसी भी समय टूट सकती है, इसलिए उसे लगातार धर्म के घपले में फँसाये रखना, मौजूदा राजनीति का प्रमुख एजेंडा होता जा रहा है।”[39]

अर्थात् सत्ताधारी लोग अपना आर्थिक और धार्मिक शोषण बरकरार रखना चाहते हैं। इस शोषण के बारे में जनता को न पता चले इसलिए जनता को धर्म के नाम पर गोल बंद करने का काम बाबाओं को सौंपा गया है। इतना सब करने पर केवल हिन्दुओं यानी पिछड़ों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति और कुछ ऊँची जाति के गरीब लोगों को ही लूटने

[39] पृष्ठ संख्या, 33, पहल सं, 73, 2003

का मौका मिला था। लेकिन मुख्य रूप से तो ये अल्पसंख्यकों को लूटना चाहते हैं। मुसलमान और ईसाई इनके निशान में हैं।

1992 से अल्पसंख्यकों के खिलाफ चल रही क्रिया और प्रतिक्रिया गोधरा तक आके समाप्त सी लगती है। यह सुसंगठित, सुनियोजित एवं रक्तरंजित मुहिम था। जहाँ–जहाँ और जिन–जिन शहरों में दंगे होने का माहौल था, वहाँ–वहाँ कर्फ्यू लगा दिया गया था। लेकिन यह जो दंगे समाप्त वाली बात है वह सही नहीं है। क्योंकि दंगों के रूप बदले हैं बल्कि दंगे जारी रहे हैं। अर्थात किसी न किसी रूप में अल्पसंख्यकों पर दंगा जारी रहा है। यह रूप है अल्पसंख्यकों के आर्थिक बहिष्कार का। यहाँ पर हमारे मन में ऐसा सवाल पैदा होता है कि यह बहिष्कार क्या होता है और क्यों करते हैं ? इस सवाल पर गौर करने से, हमको यह प्रतीत होता है कि इसका एक लम्बा इतिहास है। वैदिक काल से भी कुछ खास लोग एक वर्ग का बहिष्कार करते आ रहे हैं। मनु के काल में आकर इस विषय को लेकर एक कानून ही स्थापित कर दिया गया। उसी का नाम है मनुस्मृति। मनुस्मृति के अनुसार पूरे समाज को चार वर्णों में बाँट दिया गया। सबसे उच्च वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ये तीनों मिलकर शूद्र वर्ण के लोगों का बहिष्कार किया है। इनका न केवल गाँव से बहिष्कार किया गया बल्कि सामाजिक, संस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों से भी बहिष्कार किया गया। अर्थात 85 प्रतिशत लोगों के हक को छीन लिया गया। सामाजिक बहिष्कार करके कई जातियों को जन्म दिया गया। इनमें छूत से लेकर अछूत जातियाँ भी मौजूद हैं। छूत और अछूत के कारण अपना व्यवसाय करने में दिक्कत होती थी। तो यह एक तरह का आर्थिक बहिष्कार ही है। सांस्कृतिक बहिष्कार यानी इनकी संस्कृति को नीचा दिखा के सांस्कृतिक जितने भी कलाएं हैं, उन से दूर किये गये हैं। राजनीतिक बहिष्कार करके सत्ता से दूर किये गये हैं। आर्थिक बहिष्कार करके इनको भिखारी बना दिया गया। अर्थात एक बार आर्थिक रूप से अर्थहीन हो गये तो, आदमी या वह समाज सबकुछ से हीन हो जाते हैं। उपरोक्त सब ब्राह्मणीय हिन्दू धर्म के अंदर हुआ है। इन सभी दबाओं से ग्रस्त दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग और गरीब लोगों ने ब्राह्णीय हिन्दू धर्म को छोड़ के ईसाई और इस्लाम को कुबूल किये। वे इसलिए कुबूल किये कि इन सम्प्रदायों में इनको सामाजिक,

संस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से बराबर का दर्जा मिले और समाज में आत्मगौरव या मान–सम्मान से जिएं।

आत्मगौरव या मान–सम्मान से जीने का जो सपना इनका था, क्या वह साकार हुआ ? इस पर गौर करने से लगता है कि नहीं, क्योंकि ब्राह्मणीय हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में जाति के नाम पर, ऊँच–नीच के नाम पर, छुआछूत के नाम पर सामाजिक, संस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक बहिष्कार किये गये हैं। आज वही लोग कोई ईसाई हैं तो कोई मुसलमान हैं। इनको अल्पसंख्यक का दर्जा दिया गया है। अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार सामाजिक, संस्कृतिक और आर्थिक रूपों से आत्मसम्मान के साथ–साथ अपने पैरों पर आत्मनिर्भरता से जी रहे हैं। इन लोगों का आत्मसम्मान से जीना हिन्दुत्ववादियों को बर्दाश्त नहीं हो रहा है। हिन्दुत्ववादी यह सोचने लगे कि इन भारतीय दलित, गरीब, अछूत, पिछड़े, आदिवासी मुसलमानों को कैसे दबाया जाये ? इसीका नतीजा है कि इनको विदेशी घोषित किया गया। इनके धर्म को विदेशी धर्म घोषित किया गया। यह भी कहा कि ये हमारे देश के दुश्मन हैं। दुश्मन को दबा के रखना हो तो सबसे जरूरी है आर्थिक स्वावलंबन पर चोट करना। इसलिए हिन्दुत्ववादी, हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए यानी हिन्दू राष्ट्रीय संस्कृति की स्थापना के लिए, घोषित करते हैं कि मुसलमान का आर्थिक बहिष्कार करो। मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करने के लिए किसी 'सच्चे हिन्दू देशभक्त' के नाम से पर्चे छपवा के वितरण करते हैं। जिसमें लिखा हुआ है कि कोई भी हिन्दू मुसलमान की फिल्में नहीं देखे या जिसमें मुसलमान हीरो है उसको न देखें। मुसलमान से शिक्षा न प्राप्त करें। उनके दुकान पर न जाएं। न उनको नौकरी पर लें। प्रेम के बारे में और ऐसे 10 चीजों को लेकर जिक्र किया गया है। यह पर्चा जैसे का तैसा गुजराती से हिन्दी में अनुवाद करके 'वसुधा–55, 2002' पत्रिका में छपा है। इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है–

"फिलवक्त गोधरा की कथित प्रतिक्रिया के तौर पर गुजरात में अल्पसंख्यकों के खिलाफ चली यह सुसंगठित, सुनियोजित रक्तरंजित मुहिम समाप्त सी प्रतीत हो गयी लगती है। (वैसे लिखे जाते वक्त भी बड़ौदा, भड़ौंच शहर में फैली दंगे की नयी वारदातें

रोकने के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया है) लेकिन यह कहना खुशफहमी में रहना होगा कि आग बुझ सी गयी है। इतने बड़े कत्लेआम के बाद भी हिन्दुत्व ब्रिगेड के हौसले पस्त हुए हों यह कतई नहीं दिखता। अहमदाबाद तथा अन्य इलाकों में मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करने के लिए किसी 'सच्चे हिन्दू देशभक्त' के नाम से छपे पर्चे बँट रहे हैं जिसमें खुल्लमखुल्ला आह्वान किया गया है कि मुसलमानों की कमर तोड़नी हो तथा देश के किसी भी हिस्से से उन्हें खदेड़ना हो तो उसके लिए उनका आर्थिक बहिष्कार जरूरी है। प्रस्तुत पर्चे में यह कसमें भी दिलायी गयी है कि हिन्दू न किसी मुसलमान के दुकान से कुछ खरीदे ना उसे नौकरी पर रखे।"[40]

उपरोक्त के अनुसार ये लोग जब हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में थे तब भी हर प्रकार से खदेड़े गये हैं, बहिष्कृत किये गये हैं। जब उन्होंने अपना सम्प्रदाय बदला तब भी अल्पसंख्यक के नाम से खदेड़े या बहिष्कृत किये जा रहे हैं। वे यह सब जानते हैं कि यह काम हिन्दुत्ववादी ही कर रहे हैं। लेकिन इसमें केवल हिन्दू या ऊँची जाति के लोग ही नहीं हैं। हाँ यह सही है कि हिन्दुत्ववादी विचार है। जैसे 'गीता' में कृष्ण भगवान ने कहा है कि 'जब जब धर्म संकटावस्था में हो, तो तब तब धर्म की रक्षा के लिए भगवान तरह तरह के रूपों में अवतार लेता है' उसी प्रकार ब्राह्मण हिन्दू धर्म वादियों को जब जब किसी जाति या किसी सम्प्रदाय के लोगों से संकट प्रतीत होता हो, तो तब–तब उस जाति या सम्प्रदाय के खिलाफ, उन ही जातियों में से किसी एक जाति का इस्तेमाल करता है। साम्प्रदायिक दंगों में मुसलमान के खिलाफ दलितों, पिछड़ों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को उकसा के इस्तेमाल किया है। इनको यह नहीं पता है कि मुसलमान भी कभी न कभी इनके भाई ही थे। उपरोक्त समस्याएं इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है–

"साम्प्रदायिक दंगों में किस तरह दलितों–पिछड़ों को मोहरा बनाया गया तथा उनको किस तरह मुसलमानों के खिलाफ इस्तेमाल किया गया उसकी एक झलक तो प्रोफेसर

---

[40] पृष्ठ संख्या, 10, पहल, Jan—May, 2002

केशवराम शास्त्री के साक्षात्कार में भी मिलती है जिसमें वे साफ–साफ बताते हैं कि दंगों में शामिल सभी विश्व हिन्दू परिषद के सदस्य नहीं थे। अनुसूचित जाति में गिनी जाने वाली बाघड़ी जाति के लोग तो गोधरा काण्ड के बारे में जानते भी नहीं थे लेकिन उन्होंने जोरदार काम किया है।"[41]

धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक देश में किसी सम्प्रदाय के लोगों का आर्थिक बहिष्कार करना कहाँ तक संभव है ? किसी जाति या सम्प्रदाय का आर्थिक बहिष्कार करना संभव नहीं होता है। क्योंकि यह कोई अंधा युग नहीं है। वेदों का काल नहीं है। मनु का युग तो बिल्कुल नहीं है। यह वैज्ञानिक आधुनिक युग है। हमारे संविधान (canstitution) में, हर एक भारतीय नागरिक को सुरक्षा दिलाया गया है। हमारा देश धर्मनिरपेक्ष देश है। ईमानदार सरकार को किसी एक सम्प्रदाय या जाति के प्रति ज़्यादा प्रेम और किसी के प्रति कम प्रेम या नफरत की भावना नहीं दिखाना चाहिए, अर्थात् सभी के प्रति बराबर की दृष्टिकोण होना चाहिए। हमारा देश केवल धर्मनिरपेक्ष ही नहीं है बल्कि प्रजातांत्रिक देश भी है। प्रजातांत्रिक देश में प्रजा या जनता ही मजबूत होती है। किसी सम्प्रदाय के लोग भी जनता ही है ना ? अतः जहाँ जनता मजबूत है तो वहाँ आर्थिक बहिष्कार की बात ही नहीं होती है। अर्थात् आर्थिक बहिष्कार नहीं किया जा सकता।

1.6.4. सांस्कृतिक

"जिन देशों में संस्कृति का सरकारीकरण करने का प्रयत्न किया गया, जिन्होंने विभिन्न संस्कृतियों को राज्य के खम्भे से बाँधकर उनका एक राष्ट्र बनाने की कोशिश की उसका परिणाम हम सोवियत रूस, युगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी और वियतनाम आदि राष्ट्रों में देख चुके हैं। जिन लोगों ने मजहब की भट्ठी में संस्कृति को राख करके भाषा और मजहब के आधार पर राष्ट्र बनना या बनाना चाहा उसका उदाहरण पाकिस्तान और

---

[41] पृष्ठ संख्या, 9, पहल, Jan—May, 2002

बाङ्ग्लादेश के रूप में हमारे सामने है। भारत और पाकिस्तान दोनों के विभाजन को इस संदर्भ में शामिल किया जा सकता है।"[42]

जब राजीव गाँधी प्रधानमंत्री थे, उसी काल में नई आर्थिक नीति का उद्घोष हुआ था, जिसके साथ विरोध भी हुआ था। सरकारी दूरदर्शन था। टेलीविजन के पूरे दर्शकों पर दूरदर्शन का ही अधिकार था। जनवरी 1987 में हर रविवार की सुबह रामायण धारावाहिक का प्रचार–प्रसार शुरु किया गया। इस धारावाहिक के कारण लोगों या श्रद्धालुओं में अन्धविश्वास प्रवृत्ति ज़्यादा ही होने लगी। इसे इस तथ्य से समझा जा सकता है कि अनेक श्रद्धालु अपने टी. वी. पर राम के नजर आने पर उनकी वैसे ही पूजा करने लगते थे, जैसे मंदिर में की जाती है। धारावाहिक देखने से पहले वे स्नान करके टी. वी. सेट पर फूल चढ़ाते। विश्व हिन्दू परिषद ने इस माहौल का अपने पक्ष में उपयोग किया। उसकी आड़ में आस्था का अपना खेल कुछ यों चलाया कि धर्म के उजले पक्ष नेपथ्य में चले गए। जो इस खेल में विश्व हिन्दू परिषद के साथ नहीं थे, उनके प्रति उनका घृणा का आलम था। वे उन्हें रावण की या फिर बाबर की संतानें कहा करते। हमारे परम्परा में 'जयसीताराम या राम राम' जैसे विनम्र अभिवादन है। इनको आज एक आक्रामकता के रूप में इस्तेमाल करने लगे हैं। जैसे विहिप के लोग किसी के ऊपर आक्रमण या हमला करते समय कहते हैं 'जयश्रीराम'। इसको विशाल जनता तक पहुँचाने वाला यही धारावाहिक या विश्व हिन्दू परिषद है। इस धारावाहिक के माध्यम से ऐसे राम को दिखाया गया जो कि इस भारत में कहीं नहीं मिलता। इस धारावाहिक को देखकर आकर्षित होने वालों में भी वही लोग थे जो ऊँची जातियों के और खाए–पिए–अघाए वर्ग के थे। वे कच्चे उम्र के थे। बेरोजगार थे। वे मंडल कमीशन लागू करने के विरोध में थे। इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है–

" 90–92 में विहिप के जो कारसेवक अयोध्या आए, उनमें से अनेक अयोध्या में वही धारावाहिक वाली अयोध्या तलाशते थे, जो वास्तव में कहीं नहीं थी। अयोध्या के मंदिर न वैसे चमकदार थे और न ही उतने आकर्षक। ऊपर से वे गंदगी से अटे पड़े थे। स्वाभाविक

[42] पृष्ठ संख्या 64, अयोध्या, भानुप्रताप शुक्ल, सम्पादक : डॉ. देवेश चन्द्र, विक्रम प्रकाशन, 1998

ही है कारसेवक इससे निराश होते थे। 1990 में उनके एक समूह ने, जो मेरठ से आया था; एक अंग्रेजी दैनिक के संवाददाता को बताया था कि उन्होंने भगवान राम के टेलीविजन अवतार से पहले कभी उनमें इतनी दिलचस्पी नहीं ली थी। कारसेवक में से अधिकांश ऊँची जातियों के और खाए–पीए–अघाए वर्ग के थे। उनमें से कई मंडल आयोग की सिफारिशें लागू किए जाने से नाराज थे। वे कच्चे उम्र के बेरोजगार थे, या फिर अपने रोजगार से असंतुष्ट।" [43]

सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि साम्प्रदायिक शक्तियों को इतना समर्थन कहाँ से मिल रहा है ? क्या यह भारतीय समाज में अंतर्धारा की तरह चलती किसी लंबी तैयारी की परिणति है ? विचार करने पर पता चलता है कि बुनियादी तौर पर यह पिछले लगभग 60 सालों की लगातार कोशिश का परिणाम है। स्वतंत्रता के पहले से ही हिन्दू महासभा आदि साम्प्रदायिक संगठनों के दौर से इसकी शुरूआत हो चुकी थी। आरएसएस, जनसंघ आदि द्वारा इसके लिए एक अटूट अभियान चलाया जाता रहा। आज के आरएसएस की विध्वंसक ताकत बुनियादी रूप से इन्हीं प्रयासों से पैदा हुई। इन लोगों के सामने लक्ष्य था–हिन्दू जनमानस को धार्मिक प्रतीकों के सहारे अपने अनुकूल बनाना एवं बहुसंख्यक के दुरुपयोग द्वारा सत्ता हासिल करना। इसके लिए इन लोगों ने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' अर्थात् 'हिन्दुत्त्व' का मॉडल रखा। अपने संदेश एवं परम्परा की अपनी विकृत व्याख्या को जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होंने एक संस्थागत बुनियादी ढांचा खड़ा किया। जीवन के हरेक क्षेत्र –शिक्षा, मीडिया, संगीत, कला आदि में इसके लिए संगठन खड़े किए गए। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि इन संगठनों की संख्या पूरे देश में 600 से ज्यादा है। इन संगठनों की शाखाएं देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में खोली गईं। इसमें एक बहुत ज़्यादा प्रभावशाली संगठन इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में चलाया। भिन्न–भिन्न नामों से पूरे भारत में इनके 10 हजार से ज़्यादा पाठशाला चल रहे हैं। इनमें सरस्वती शिशु मन्दिर, विद्या भारती, ज्ञान भारती, गीता विद्यालय, आदि इनके प्रमुख ब्रांड हैं। नैतिक मूल्य या

[43] पृष्ठ संख्या, 6, समकालिन जनमत, अक्टूबर 2010

शिक्षा के नाम पर यहाँ एक समानांतर शिक्षा दी जाती है। इस में धार्मिक कर्मकांडों के अलावा खासकर मुस्लिम शासकों के विरोध में हिन्दू शासकों की वीरता के किस्सों पर बल दिया जाता है। इन किस्सों के माध्यम से हिन्दू जनता के मन में रुढ़िवाद एवं मुसलमानों के बारे में नफरत से भरी भावनाएं पैदा करती हैं। ये भावनाएं धीरे–धीरे मुस्लिम–विरोधी संस्कार के रूप में जड़ जामा लेती है। शुरू से ही बच्चों के दिमाग पर कब्जा कर लेना चाहते हैं। उन्हें अपनी इच्छित दिशा में मोड़ना चाहते हैं। इस दौरान वे काफी फायदा प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रकार, अपने इस व्यापक नेटवर्क के जरिये संघ परिवार अपनी बात अपने लक्ष्य–समूह तक पहुँचाने में सफल हो जाता है। धर्मनिरपेक्षता के किसी भी संघर्ष में इन बातों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जबकि अब तक यही होता दिख रहा है।

बाबरी मस्जिद ढहाने के पहले धर्मनिरपेक्ष संघर्ष ने भारतीय परम्परा एवं इतिहास की पुनर्व्याख्या को अपना एक मुख्य एजेंडा बनाया था। खासकर कम्युनिस्ट विचार के वामपंथी लोगों ने इस क्षेत्र में साम्प्रदायिक शक्तियों का डटकर मुकाबला किया। वे बौद्धिक बहस में जीतते नजर आते हैं। मीडिया में भी जीतते हुए नजर आते हैं। लेकिन जनता के बीच हारे हुए नजरआते हैं। नतीजा बाबरी मस्जिद तोड़ दी गई। इसके क्या सबक हैं ? इसके कई सबक हैं और कोई भी गौण नहीं है। प्रथम बात कि यह समूह एक तरह से केवल प्रतिक्रिया कर रहा था। साम्प्रदायिक शक्तियों के द्वारा फैलाए गए जाल को काटने में ही इसकी सारी ऊर्जा चुकती रही। ऐसा इनके अपने ही पुराने तर्कों के कारण हुआ। धर्मनिरपेक्ष शक्तियों ने संस्कृति का मैदान बिल्कुल खाली छोड़ दिया था। वे देख रही थीं कि किस तरह साम्प्रदायिक शक्तियाँ वहाँ बेरोक–टोक खेल रही हैं। धर्मनिरपेक्षता समर्थन के संघर्ष की एक बहुत अधिक शक्तिशाली धारा, वामपंथी धारा है। वह अपनी ही विचारधारात्मक दुनिया में खोई थी। ऐसा नहीं है कि सारे के सारे एकदम से धर्म एवं संस्कृति को अछूत मानते थे। उलटे, ऐसा मानने वाले बहुत कम थे। पर वे इस क्षेत्र में अलग से हस्तक्षेप की जरूरत समझ नहीं पा सके। वे किसी स्वतंत्र सांस्कृतिक संगठन एवं आंदोलन को गंभीरता से न ले सके। इसका कारण यह यांत्रिक भौतिकवादी समझ थी कि आर्थिक परिवर्तन हो जाने पर ऊपरी ढांचे की इन चीजों में अपने आप परिवर्तन हो जाएगा।

इसके साथ जनता की चेतना उसके अनुरूप आधुनिक एवं वैज्ञानिक हो जाएगी। पर अब यह एहसास हुआ है कि ऐसा तो पूर्व समाजवादी देशों में भी नहीं हो सका। इस नई वैचारिक समझ से लैस होकर वे आज एक स्वतंत्र सांस्कृतिक आंदोलन की जरूरत महसूस करने लगे हैं। एक तरह से साम्प्रदायिक शक्तियों के विरोधी वैचारिक संघर्ष। यह इस समझ की पहली गंभीर व्यावहारिक अभिव्यक्ति थी। पर इस संघर्ष में जनता भाग न ले पायी। जनता के भाग न ले पाने के पीछे कई कारण है। संघ परिवार की दशकों पुरानी इस क्षेत्र में सांगठनिक तैयारी एवं अकूत संसाधनों का अचानक पूरी तरह मुकाबला संभव नहीं था, पर जितना हो सकता था, उससे भी कम हुआ। इस का एक कारण तो यह था कि अपनी पुरानी यांत्रिक भौतिकवादी समझ से न नेतृत्व, न ही निचली कतारें अपने को पूरी तरह मुक्त कर सकीं। नतीजे के तौर पर सांस्कृतिक–वैचारिक संघर्ष के लिए दलों एवं उनके जुड़े जनसंगठनों को अपेक्षित रूप से सक्रिय नहीं किया जा सका।

संस्कार जन्मजात नहीं हुआ करते। सैकड़ों सालों से आधिपत्य वर्ग अपने फायदे या स्वार्थ लायक विचारों को ही धर्मग्रंथ के रुप में समाज में लाए। इन धर्मग्रंथों और विभिन्न माध्यमों से उन विचारों को इतना प्रचारित करते रहे कि ये जनचेतना में जम से गए। जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, लोगों के इन 'संस्कारों' को उकसाकर सुविधा प्राप्त वर्ग अपना उल्लू सीधा करता रहा है। आज भी यह सिलसिला जारी है। कुछ 'हिन्दू संस्कारों' के बारे में एक विशेष बात यह भी है कि ये मुस्लिम–विद्वेष के सापेक्ष गढ़े गए हैं ताकि उस आधार पर बहुसंख्यक हिन्दू जनता का आवश्यकतानुसार भावदोहन किया जा सके। हिन्दू युवकों के संस्कार में और मन–मस्तिष्क में मुस्लिम विरोधी भावनाओं का प्रबोध कर दिया गया। राम मंदिर तोड़ के बाबरी मस्जिद बनाना और टीपू सुल्तान, औरंगजेब आदि के हिन्दू विरोधी होने की बातों का प्रचार करके, हिन्दू युवा पीढ़ी में यह प्रचारित किया गया कि मुसलमान बहुत कट्टर होते हैं।

धर्मनिरपेक्ष संघर्ष का यह दायित्व है कि केवल रस्मी एवं तात्कालिक तौर पर नहीं, एक व्यापक सांस्कृतिक–वैचारिक आंदोलन के तहत ऐसे गलत प्रचारों के विरुद्ध सही ऐतिहासिक जिससे अगली पीढ़ी को ऐसे संस्कारों से मुक्त किया जा सकता है। उदाहरण

के लिए, यह बताने की जरूरत है कि टीपू सुल्तान लगभग 156 मन्दिरों को हर वर्ष तोहफे और चढ़ावे भेजता था। खुद टीपू सुल्तान के किले के भीतर श्री रंगनाथ का मंदिर था। टीपू सुल्तान इस मन्दिर की देखरेख के लिए रोज वहाँ जाता था। हिन्दुओं के मन में औरंगजेब के प्रति नफरत की भावना जगाया गया। लेकिन उसी औरंगजेब ने कई हिन्दू मन्दिरों को जागीरें दी थी। जैसे महाकाल मन्दिर (उज्जैन), बालाजी मन्दिर (चित्रकूट), कामाख्या मन्दिर (गौहाटी), जैन मन्दिर (गिरनार), दिलवाड़ा मन्दिर (आबू), गुरूद्वारा रामराय (देहरादून) आदि को जागीरें दी थी। औरंगजेब ने इन मन्दिरों को जागीरें देते हुए यह हिदायत दी थी कि वे ठाकुर जी से इस बात की दुआ मांगें कि उसके खानदान में ताकायनात हुकूमत बनी रहे। इस प्रकार उसने हिन्दू देवी—देवताओं के प्रति सम्मान का भाव ही प्रकट किया था।

जिस बाबर के नाम पर इतना कोहराम मचाया जा रहा है, उस बाबर की असलियत तो हमारे दिल में उसके लिए बहुत ऊँची जगह जगह पैदा करती है। उसने अपनी हुकूमत को इसी बुनियादी उसूल पर कायम किया कि कौमों एवं मजहबों के आपसी झगड़े मिट जाएं। हमारा हिन्दुस्तान एक मुल्क की तरह आबाद रहे। कश्मीर के एक मन्दिर की दीवार पर खुदे बाबर के ये ख्याल एवं उसूल उसकी धार्मिक सहिष्णुता का अमिट दस्तावेज है—ऐ इलाही ! जिस घर को देखता हूँ उसमें तेरे खोजने वाले हैं। जिस जुबान को सुनता हूँ उसमें तेरी ही चर्चा है। कुफ्र और इस्लाम तेरे ही रास्ते पर दौड़ते हैं और कहते हैं—'' तू एक ही है। तेरा कोई साझीदार नहीं।'' मस्जिद है तो उसमें तेरी याद में नाराए कुहूस बुलंद होते हैं और गिरजा है तो तेरे ही प्रेम में घंटे बजते हैं।

"कभी मैं बुतखाने में बैठकर तेरी इबादत करता हूँ, कभी मस्जिद में, यानी कि तुझे ही घर—घर ढूंढ़ता हूँ। जो तेरे खुसूसी लोग हैं उन्हें न तो कुफ्र से मतलब है, न इस्लाम से। क्योंकि इन दोनों के लिए तेरी कुबूलियत के पर्दे में जगह नहीं।"[44]

---

[44] पृष्ठ संख्या, 118, पहल, Feb—Dec, 1997

महात्मा गाँधी बड़े नेता थे, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में शीर्षस्थान पर रहकर स्वतंत्र आंदोलन चलाया था। इस के दौरान इन्होंने कई महत्वपूर्ण बातें या सिद्धांत को स्थापित किया है, जैसे अहिंसा, सत्य आदि। सत्य के प्रयोग की शुरुआत गुजरात से हुई, जो पूरे भारत में सफलता से गूँज उठी। इसी प्रकार आरएसएस ने ''हिन्दुत्व के प्रयोग'' के लिए भी गुजरात को ही चुना। हिन्दू महासभा से लेकर कई अवतारों के बाद भाजपा का अवतार हुआ है। इस 60–70 साल की लम्बी अवधि में, आरएसएस ''हिन्दुत्व के प्रयोग'' के लिए कई क्षेत्रों में पहुँची है। वहाँ तक पहुँचे हैं, घने जंगलों में जहाँ आदिवासी रहते हैं। गाँव–गाँव तक चले गये हैं। शहर–शहर घूमे हैं और अपना हिन्दूवादी मानस का माहौल तैयार किये। हिन्दुत्व को लागू करने के लिए लालकृष्ण आडवाणी और आरएसएस ने गुजरात के सोमनाथ से अयोध्या तक रथ यात्रा निकाली। जिसके दौरान कई सालों का ऐतिहासिक संस्कृति का प्रतिबिम्ब बाबरी मस्जिद को तोड़ दिया। इसका परिणाम हिन्दू और मुसलमानों में, एक दूसरे के प्रति घृणा और नफरत की भावना फैल गयी। नतीजा कई प्रदेशों में साम्प्रदायिक दंगे भी हुये। उसी आग की चिनगारी गुजरात में फरवरी 2002 के अंतिम दिनों में, फिर से आग का गोला बनाके कई लोगों को मौत के घाट तक पहुँचाया था। आरएसएस ने ऐसी योजना बनायी कि गुजरात में अल्पसंख्यकों को लगभग खत्म कर दिया जाए। इस कार्य की सफलता के लिए, गुजरात की सरकार का योगदान भी कुछ कम नहीं था। आरएसएस के कार्यकर्ताओं ने तलवार और त्रिशूल से अल्पसंख्यक मुसलमानों का कत्ल किया। महिलाओं को भी तलवार और त्रिशूल दे कर उकसाया गया। इसमें कई गर्भवती महिलाएं मारी गयी। मशहूर शायर अहसान जाफ़री मारे गए। अच्छे लोगों के मजार को तोड़ा और ऊपर से सपाट सड़क बना दिया। कई घर लूटे गये। फिर यह रथ कब आएगा और कितने लोगों को अपने रथ के पहिया के तले रौंदेगा किसी को अंदाजा नहीं है। इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं–

"जो सुसज्जित रथ गुजरात में सोमनाथ से आतंक और उत्पात मचाता हुआ चला था, वह अयोध्या में बाबरी मस्जिद को ढहाता हुआ वर्षों बाद एक बार फिर गुजरात पहुँच

गया, जहाँ गाँधी के 'सत्य के प्रयोग' बरक्स विश्व हिन्दू परिषद ने पिछले दसेक वर्षों में आदिवासी अंचलों, गाँव–गाँव और शहर–शहर घूमकर ''हिन्दुत्व के प्रयोग'' किये थे। हिन्दुत्व के प्रयोगों का ही परिणाम था कि गुजरात में फरवरी 2002 के अंतिम दिनों में इस रथ के पहियों ने सब कुछ को रौंद डाला। अल्पसंख्यकों का संघ परिवार द्वारा आयोजित–प्रायोजित और राजग सरकार द्वारा समर्थित जनसंहार, संघ परिवार के पुरुषों ही नहीं, महिलाओं द्वारा भी तलवार त्रिशूल हाथ में लेकर की गयी मारकाट, गर्भवती मुस्लिम महिलाओं तक की बेरहमी से की गई हत्या, मशहूर शायर अहसान जाफ़री का कत्ल, वली दखिनी की मज़ार को नेस्त–नाबूद कर उस पर सपाट सड़क का निर्माण, लूटपाट, आगजनी, आदि इस बर्बरता के प्रमाण हैं। इस प्रकार लालकृष्ण आडवाणी की रथ–यात्रा का एक चक्र पूरा हो गया जिसे आज के समय के भारतीय इतिहास के रक्तरंजित पृष्ठ के रूप में हमेशा याद रखा जाएगा। अब जब की भय, नफरत और एक दूसरे पर अविश्वास के माहौल में हुए गुजरात विधानसभा के अभूतपूर्व चुनावों के परिणाम आ चुके हैं, यह अदृश्य रथ इस महादेश की धरती पर और भी तेजी से दौड़ने और उन्मत्त हाथी की भांति नए सिरे से उत्पात मचाने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं।"[45]

ज़मीन में कोई नयी फसल उगानी हो तो, पुराने फसल को काटना होगा। उसकी साफसफायी करनी होगी। उसमें नये फसल के बीज बोना होगा। यह प्रगति का एक सूचक माना जाता है। बल्कि एक सुविशाल देश की सुमिश्रित संस्कृति रूपी बगीचे को जड़ों से उखाड़ के फेंककर जिस ज़मीन पर कुसंस्कृति रूपी अफीम का बगीचा बोना चाहते हैं। इसके लिए 60–70 वर्षों से ज़मीन तैयार की गयी है। यह बगीचा यही है जो ''हिन्दुत्व के प्रयोग'' या ''हिन्दू राष्ट्रीय संस्कृति''। गुजरात को हिन्दुत्व के प्रयोग शाला बनाया गया है। इसके दौरान गुजरात की या भारतीय मिश्रित संस्कृति का ध्वंस किया जाता रहा है। इस साम्प्रदायिक हिंसा में कई लोगों को मार डाला गया, जिनमें अच्छे–अच्छे कवि, लेखक लोगों की भी हत्या की गयी है, जो मिश्रित भारतीय संस्कृति के जनक थे। उन की गज़लें, मज़ारें,

---

[45] पृष्ठ संख्या 5, पहल, सं, 73, 2003

शायरें, मिश्रित भारतीय संस्कृति के प्रतिबिम्ब हैं। ये सब भगवान श्रीराम के नाम पर किया गया है। ऐतिहासिक बौद्ध प्रतिमाओं को तोड़ने वाले उग्र तालिबानों में और उन्मादी राम भक्तों में कोई फरक नहीं दिखाई देता है। इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं–

" गुजरात में घटित क्रूरतम साम्प्रदायिक हिंसा में हत्या–लूट, विनाश, ध्वंस व इंसानी अस्मिता की अवमानना का जो भयानक ताण्डव हुआ, उसे शब्दों में बयान कर पाना बहुत कठिन है। इस प्रक्रिया में साझी संस्कृति तथा उदात्त मानवीयता के मूल्यवान प्रतीक सूफ़ी संतों–संगीतकारों–शायरों की मज़ारों–दरगाहों को भी पूरी निर्ममता से ध्वस्त कर दिया गया। इन मज़ारों में आधुनिक उर्दू ग़ज़ल के अग्रणी शायर तथा साझी सांस्कृतिक विरासत को जीवन व कविता में समान रूप से बिम्बित करने वाले सूफ़ी शायर वली दकनी की मज़ार (अहमदाबाद) भी शामिल है। गुजरात उसकी विशिष्ट बहुरंगी संस्कृति तथा वहाँ के लोगों के प्रति वली के बेपनाह बेलौस प्यार के बिम्ब उनकी शायरी में बिखरे पड़े हैं। गुजरात से अटूट प्यार की इतनी भयानक सज़ा उन्हें क्यों दी गयी ?

क्या फ़र्क है विश्व सभ्यता की अमूल्य धरोहर बौद्ध प्रतिमाओं को तोड़ने वाले उग्र तालिबानों और मक़बरों–मज़ारों को ध्वस्त करने वाले उन्मादी राम भक्तों में ?"[46]

भारतीय मिश्रित संस्कृति को तोड़ के अपनी हिन्दुत्व की संस्कृति की निर्माण में लगे हुए हैं, आरएसएस एवं भाजपा के अन्य साथी संगठन। इसके लिए रातों रात जहाँ–जहाँ मिश्रित संस्कृति के प्रतीक स्थलों का ध्वंस हुआ है, वहाँ–वहाँ हिन्दुत्व संस्कृति के प्रतीकों का निर्माण भी किया गया। इस में सुप्रसिद्ध गुजरात के मशहूर शायर वली की मज़ार को भी ध्वस्त किया गया। रातोंरात तोड़ी गयी मस्जिदों और मज़ारों के स्थान पर मंदिरें बनाई गईं। भारतीय मिश्रित संस्कृति का स्रोत ही सूफी संस्कृति है। उसे भी नुकसान पहुँचाया

[46] पृष्ठ संख्या 46, पहल, Aug—Sep, 2002

गया, जहाँ पर विभिन्न धर्मों के लोग मिल–जुल के रहते थे। ये सब इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है।

“यह भी समाचार मिले हैं कि गुजरात के इस ताज़ा वड़वानल में तोड़ी गयी मस्जिदों या मज़ारों को रातों रात मंदिरों का रूप दिया जा रहा है तथा वहाँ पूजा अर्चना शुरू की गयी है इसमें भी स्थानीय मध्यवर्ग की शिरकत साफ दिखती है। अपने–अपने इलाकों में तबाह की गयी मस्जिदों या इबादतगाहों का पुनर्निर्माण करना तो दूर रहा यहाँ तक कि गुजरात के मशहूर शायर वली गुजराती की ध्वस्त की गयी मज़ार को नये सिरे से बनवाना दूर रहा सरकार ने बिना ज्यादा वक्त गँवाये इन स्थानों पर पड़े मलबे को हटा दिया। जानकार बताते हैं कि सरकारी एजेन्सियों की यह कवायद अपने आप में एक अपराध है लेकिन कहते हैं ना मुद्दई भी वही, मुंसिफ भी वही, किससे शिकायत करें इसी दौरान पहली बार दंगाईयों ने ढेर सारी दरगाहों को भी जमींदोज किया। जहाँ तक गुजरात की सूफी परम्परा का सवाल है ये ऐसी जगहें रहीं हैं जो विभिन्न धर्मों के लोगों के मिलने जुलने का स्थान रही हैं।”[47]

मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमारा यह भारत देश सदियों से कई संस्कृतियों के लिए या बहुल या मिश्रित संस्कृति का प्रतीक है। उसी तरह बहुल जाति के लिए प्रसिद्ध है। इसी लिए भारत को उपमहाद्वीप कहते हैं। कई देश के लोग इस पवित्र भूमि पर आये हैं, साथ–साथ अपनी संस्कृति को भी लाये हैं। जैसे फारसी, मुस्लिम, ईसाई आदि बाहर से आये तो शैव, वैष्णव, सिख, बौद्ध, जैन....आदि साम्प्रदायिक संस्कृतियाँ इसी देश में जन्मी हैं। आज इन आदि संस्कृतियों को नाश या तोड़–फोड़ करके, हिन्दू राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करना चाह रहे हैं यह बिल्कुल गलत सोच है। भारतीय संस्कृति का अर्थ ही संसार के सभी संस्कृति के सम्मेलन या मिश्रित संस्कृति है।

[47] पृष्ठ संख्या 9, पहल, jan—may, 2002

1.7. हिन्दी उपन्यास : साम्प्रदायिकता

कहा जाता है कि साहित्य ही समाज का दर्पण है। अर्थात् पूरे समाज के विविध रूपों को साहित्य में यानी साहित्य के माध्यम से देखने या समझने को मिलता है। यहाँ पर एक सवाल मन में उठता है कि क्या साहित्य सचमुच समाज का दर्पण हो सकता है ? भारतीय समाज तो कई सम्प्रदायों और जातियों में बंटा हुआ है। क्या, वह साहित्य इन सभी जातियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है ? तो इस का जवाब होगा कि नहीं, यह साहित्य सभी जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है क्योंकि यह साहित्य इन जातियों में से कुछ एक ही जाति के लोगों के द्वारा लिखा गया है। जाति के साथ साथ अपना वाद भी साहित्य में व्यक्त होता है। अर्थात् जिस जाति के लेखक के द्वारा लिखा गया साहित्य में उस ही जाति का वाद रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य ब्राह्मण के द्वारा लिखा गया हो तो उसमें ब्राह्मणवाद रहता है और किसी दलित के द्वारा लिखा गया साहित्य में दलित या अम्बेडकरवाद रहता है। इसलिए साहित्य का भी विभाजन हुआ है जैसे ब्राह्मणवादी या सवर्णवादी साहित्य, जिसको मुख्यधारा का साहित्य भी कहते हैं, दूसरा है दलित या अम्बेडकरवादी साहित्य। इसी अम्बेडकरवाद को आधार बना के आदिवासी साहित्य आया है। दलित नारीवादी साहित्य आया है। अल्पसंख्यकवाद का भी साहित्य लिखा जा रहा है। मुस्लिम नारीवादी साहित्य भी आया है और आ रहा है। ये सभी मुख्यधारा साहित्य के विरोध में आया है क्योंकि अब तक लिखा गया साहित्य एक तरफा साहित्य कहा गया है। उनके अपने वाद, विचार को 80 प्रतिशत जाति समाज पर थोपा गया है। क्योंकि इनकी समस्याएं, इनके दुःख–दर्द, इनकी मान्यताएं, इनकी संस्कृति–सभ्यता, इनके खान–पान, रहन–सहन, वोड़–पहन...आदि, उनके द्वारा लिखा गया साहित्य में प्रतीत नहीं होता है।

इसको लेकर तरह–तरह के मतभेद हैं, बावजूद इसके साहित्य समाज का दर्पण ही है। बड़े बड़े साहित्यिक विद्वानों का मानना है कि साहित्य ही समाज का दर्पण है, अतः साहित्य समाज का दर्पण ही है। यह साहित्य कई विधाओं में लिखा जा रहा है। आधुनिक

काल से पूर्व काव्य शास्त्र ही साहित्य कहा जाता था। आधुनिक काल में आकर कई विधाओं का सृजन हुआ है। आधुनिक काल से पूर्व कविता एक विधा था। कुछ लिखना हो, दिल की बात कहना हो तो कविता के माध्यम से ही व्यक्त किया जाता था। आधुनिक काल में आकर गद्य का विकास हुआ है। इस में कहानी, एकांकी, आत्मकथा, जीवनी, उपन्यास आदि लिखे गये हैं। इनमें आज के दौर में दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य, भी लिखा जा रहा है। इनमें भी कविता, कहानी, एकांकी, आत्मकथा, जीवनी, उपन्यास आदि लिखे जा रहे हैं। दलित एवं आदिवासी साहित्य का स्रोत अम्बेडकरवाद है। भारतीय हिन्दू धर्म समाज का नींव जातिवाद है। जाति, निहितस्वार्थ और धर्म–सम्प्रदाय के वजह से ही साम्प्रदायिकता की भावना उत्पन्न हो रही है। देश को धर्मनिरपेक्ष रखना हो, तो धर्म–सम्प्रदाय, साम्प्रदायिकता का विरोध करना होगा। इसके लिए ब्राह्मणवाद का विरोध करना होगा।

> "जातिवाद तभी खत्म हो सकता है जब हम
> ब्राह्मणवाद को समाप्त कर सकें। ब्राह्मणवाद
> को साम्यवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, सामन्तवाद,
> संघवाद, हिन्दूवाद और गाँधीवाद खत्म नहीं
> कर सकता, क्योंकि ये सभी ब्राह्मणवाद के
> इर्द–गिर्द ही भ्रमण करते हैं। इतिहास और
> पिछले सामाजिक संघर्षों के आन्दोलन के
> अनुभव साक्षी हैं कि आम्बेडकरवाद ही सक्षम
> है–ब्राह्मणवाद को समाप्त करने में।"[48]

---

[48] पृष्ठ संख्या 40, युद्धरत आम आदमी, अंक–90, (सं.), रमणिका गुप्ता, जनवरी–मार्च, 2008

असगर अली इंजीनियर ने कहा है कि 'मुस्लिम महिलाओं को मज़हबी हुकूक भी नहीं मिल रही है'। मुस्लिम नारी को धर्म के नाम पर घर में क़ैद करते हैं। कहीं, कभी बाहर जाना हो तो अपने को बुरके में छुपा के घर से बाहर निकलना पड़ता है और इसके साथ कई समस्याएं हैं, इन आदि... के विरोध में संघर्ष कर रही है।

"और बिल आख़िर वे एक दिन।

अपने धर्म के विरुद्ध छेड़ेंगी जिहाद

जिस धर्म ने क़ैद कर दिया था उन्हें

एक बंद, घुटन और उमस से भरे

अंधेरे कमरे में।

पहले वे पालन करती थी 'सौमो—सलात' का

और अब वे उसी से टक्कर लेने निकल पड़ी हैं।"[49]

इन सभी विधाओं में से उपन्यास को ज़्यादा महत्व दिया जाता है। क्योंकि उपन्यास को महाकाव्य कहा जाता है। एक उपन्यास में कई समस्याओं का समावेश होता है। समस्या के आधार पर इनको बाँटा जा सकता है। जैसे नारीवादी उपन्यास, दलित उपन्यास आदि। साहित्य के जितने भी विधाएं हैं इन सभी में साम्प्रदायिक समस्या को लेकर लिखे गये हैं। जो साम्प्रदायिकता को लेकर भी कई उपन्यास लिखे गये। साम्प्रदायिकता आधुनिक काल में जन्मा है। तबसे इस समस्या को लेकर कई उपन्यास लिखें गये हैं।

---

[49] पृष्ठ संख्य 131, हंस, अगस्त, 2003,(भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य, विशेष अंक)

1.8. साम्प्रदायिकता और उपन्यास (1954-2000)

कठपुतली (1954)–देवेन्द्र सत्यार्थी, झूठा सच (1958)–यशपाल, लौटे हुए मुसाफिर(1961)–कमलेश्वर, काला जल (1965)–गुलशेर खाँ शानी, आधा गाँव (1966)– राही मासूम रजा, टोपी शुक्ला (1969)–राही मासूम रजा, हिम्मत जौनपुरी (1969)–राही मासूम रजा, ओस की बूँद (1970)–राही मासूम रजा, दिल एक सादा कागज (1973)–राही मासूम रजा, तमस (1973)–भीष्म साहनी, छाको की वापसी (1975)–बदीउज़्ज़माँ, सूखा बरगद (1986)–मंजूर एहतेशाम, झीनी झीनी बीनी चदरिया (1986)–अब्दुल बिस्मिल्लाह, शहर में कर्फ्यू (1988)–विभूति नारायण राय, ठीकरे की मँगनी (1989)–नासीरा शर्मा, मुसलमान (1990)–मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी, सिन्धुपुत्र (1991)–अमृतलाल मदान, उल्का साकेत (1991)–गौरी शंकर कपूर, पाकिस्तान मेल (अनुदित) (1991)–खुशवंत सिंह, मेरा लहूलुहान पंजाब (1993)–खुशवंत सिंह, जिन्दा मुहावरे (1993)–नासिरा शर्मा, वे वहाँ कैद हैं (1994)–प्रियंवद, सभा पर्व (1994)–बदीउज़्ज़माँ, त्रिशूल (1995)–शिवमूर्ति, और कितने अँधेरे(1995)–दीपचन्द निर्मोही, शीर्षक (1996)–चन्द्रकिशोर जायसवाल, टूटी हुई जमीन (1996)–हरदर्शन सहगल, मुखड़ा क्या देखे (1996)–अब्दुल बिस्मिल्लाह, सात आसमान (1996)–असगर वजाहत़, अपने अपने राम (1998)–भगवान सिंह, बयान (1998)–मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी, वाह कैम्प (1998)–द्रोणवीर कोहली, हमारा शहर उस बरस (1998)–गीतांजलि श्री, अनहदनाद (1999)–प्रताप सहगल, उन्माद (1999)–भगवान सिंह, काला पहाड़ (1999)–भगवानदास मोरवाल, कितने पाकिस्तान(2000) –कमलेश्वर, सोनबरसा (2000) –ज्योतिष जोशी।

1.9. निष्कर्ष

'धर्म' शब्द के कई अर्थ प्रचलित हैं। जैसे दया, करुणा, सत्कर्म, सत्कार्य आदि हैं। इन अर्थों में हमको कहीं भी बुरा नहीं लगता है। क्योंकि किसी के प्रति दयाभाव दिखाते हैं, किसी के प्रति करुणित होते हैं, किसी अच्छे काम यानी गरीबोद्धार, सामाजिकोद्धार, मिश्रित संस्कृतिकोद्धार के लिए कोई अच्छे कर्म या कार्य करते हैं तो यह कुछ गलत नहीं होगा। हमारे संतों ने और सूफियों ने कभी भी लोगों को बाँटने का काम नहीं किया। इनका धर्म मानव धर्म था। इनका धर्म मनुष्य का धर्म था। इन का धर्म सुसमाज की स्थापना करने का था। लेकिन कालांतर में धर्म का अर्थ–संकोच होता आया है। क्यों ऐसा हुआ है ? इस पर गौर करने से यह पता चलता है कि जब धर्म राजनीतिक अस्त्र बन गया तब से इस का महत्व ही घट गया है। अर्थात् इसका व्यापकार्थ, संकोचार्थ में बदल गया है। धर्म से सम्प्रदाय का संबंध जुड़ा है। धर्म के बिना सम्प्रदाय की कल्पना नहीं कर सकते हैं और सम्प्रदाय के बिना धर्म की भी कल्पना नहीं किया जा सकता है। इसलिए ये दोनों अभिन्न होते हुए भी, भिन्न है, क्योंकि धर्म सब के लिए एक है बल्कि सम्प्रदाय अनेक हैं। धर्म पृथ्वी है तो सम्प्रदाय रास्ते हैं। सम्प्रदाय किसी महापुरुष के द्वारा स्थापित होता है। सम्प्रदाय देश और काल के अनुसार अपने अपने देश में, अपने अपने महापुरुषों के द्वारा स्थापित होता है। हर सम्प्रदाय का अपना विधि–विधान होता है। हर सम्प्रदाय का अपना विधि–विधान का ग्रन्थ होता है। उस ग्रन्थ के अनुसार ही सभी को चलना पड़ता है। हर सम्प्रदाय के अनुयायी भी होते हैं। इन अनुयायियों को ही साम्प्रदायिक कहते हैं। साम्प्रदायिकों के दुष्कार्य ही साम्प्रदायिकता होती है यानी एक सम्प्रदाय के अनुयायी अन्य सम्प्रदाय के अनुयायियों पर हमला करना, गुस्सा करना, नीचा दिखाना, गलत व्याख्या करना, नफरत की भावना रखना, दंगे करना ही साम्प्रदायिकता होती है।

आखिर क्या कारण है जो साम्प्रदायिकता को उर्जा देती है या बढ़ावा देता है ? इस पर गहराई से सोचने पर यह पता चलता है कि कुछ खाए–पीए–अघाए मध्यमवर्ग के लोगों के निहित स्वार्थ ही सारे साम्प्रदायिकता के और साम्प्रदायिक दंगों के कारण या स्रोत हैं।

अभी अभी उभर के आ रहे इन मध्यमवर्ग के लोगों को राजनीति करने का या रजनीतिक पद प्राप्त करने का शौक है, जिसे साम्प्रदायिक संस्था, पार्टी के लोगों ने इनको अपना अस्त्र बनाना शुरु किया है। इन अस्त्रों को साम्प्रदायिकों ने अल्पसंख्यकों, गरीबों, महिलाओं और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के ऊपर इस्तेमाल करते हैं। वे धर्म के नाम पर राजनीति करते हैं। सत्ता में आना चाहते हैं। केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए ही वे क्या–क्या नहीं करते हैं। पूरे समाज को सम्प्रदाय में, जाति में बाँट देते हैं। हिन्दू के नाम से, इस्लाम के नाम से बाँट देते हैं। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बाँट देते हैं। परम्परा से आ रही मिश्रित संस्कृति का ध्वंस करना चाहते हैं। हिन्दुत्व राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए ऐतिहासिक एवं प्रसिद्ध बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया। गुजरात में कई सूफी दरगाहें तोड़े गये हैं, जिस पर दरगाह की जगह मन्दिरें और मठों के निर्माण किया गया। इस साम्प्रदायिकता के पीछे आर्थिक कारण छिपे हुए हैं। साम्प्रदायिक लोग मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करना चाहते हैं। इसलिए मुसलमानों के दुकानों पर, घरों पर, मस्जिदों पर, दरगाहों पर दंगे करते हैं और लूट–पाट करते हैं। इस प्रकार साम्प्रदायिक लोग राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से एक दूसरे पर हमला करते हैं। इन विविध समस्याओं को लेकर साहित्य लिखा गया है। साहित्य में उपन्यास एक मुख्य विधा माना जाता है। साम्प्रदायिकता को लेकर कई उपन्यास लिखे गये हैं। लेकिन बीसवीं सदी के अंतिम दशक का महत्व ज्यादा है, क्योंकि उसी दशक में ऐतिहासिक और मिश्रित संस्कृति के प्रतीक बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया। अंतिम दशक के अंत में और इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में गुजरात राज्य में गोधरा काण्ड हुआ है।

अध्याय–दो

अध्याय–दो

2. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सामाजिक सन्दर्भ

2.1. हिन्दू देव, धर्म, वर्ण बनाम राक्षस, दलितशूद्र, एवं जातिगत व्यवस्था

2.1.1. देवता बनाम राक्षस

2.1.2. हिन्दू वर्णाश्रम धर्म

2.1.3. दलित शूद्रवंशी शंबूक

2.1.4. दलित को मन्दिर में पूजा करना मना

2.1.5. गोरे बनाम काले

2.1.6. वर्ण–व्यवस्था उन्मूलन

2.2. हिन्दू वर्णाश्रम धर्म और जातिगत व्यवस्था

2.2.1. गाँव–शहर–जाति

2.2.2. जाति–पाँति से ऊपर सोच

2.2.3. ऊँची जाति की मानसिकता

2.2.4. पिछले जन्म–कर्म

2.2.5. हिन्दू धर्म–गुरु दक्षिणा

2.2.6. बच्चे और जाति

2.2.7. आरक्षण

2.3. इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय और जातिगत समाज

2.3.1. शिया बनाम सुन्नी

2.3.2. हिन्दू धार्मिक कलाकार

2.3.3. मुसलमान, चमार और राजनीति

2.3.4. धुनिया–चुड़िहार और ऊँची जाति के मुसलमान

2.3.5. इस्लाम–रोटी–बेटी का रिश्ता

2.3.6. जन्म से आदमी बड़ा नहीं होता

2.3.7. इस्लाम और ऊँच–नीच

2.3.8. बाबा एवं जाति

2.3.9. नीची जाति बनाम ऊँची जाति

2.4. धर्म(हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और छुआछूत समाज

2.4.1. हिन्दू–मुसलमान और छुआछूत

2.4.2. स्त्री–पुरुष संबंध और छुआछूत

2.4.3. शादी–दावत और छुआछूत

2.4.4. म्लेच्छ–छुआछूत

2.4.5. रेडिमेंट कप–होटेल और छुआछूत

2.4.6. शुद्धीकरण

2.5. धर्म (हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और स़्त्री समाज

4.5.1. सुकून और मज़हबी समाज

2.5.2. स्त्री और आसक्त

2.5.3. आध्यात्मिक स्त्री

2.5.4. महायुद्ध के दौरान महिला

2.5.5. ब्याह का नाटक और भारतीय मुस्लिम स्त्री

2.5.6. बुरका और स्त्री

2.5.7. निरक्षरता और मुस्लिम लड़कियाँ

2.5.8. तलाक

2.5.9. औरत की दुश्मन औरत ही है !

2.5.10. नारीवाद बनाम पुरुषवाद

2.6. धर्म सम्प्रदाय(हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और अन्ध विश्वास

2.6.1. इस्लाम धर्म बनाम धर्मान्ध

2.6.2. भूत–प्रेत और अन्ध विश्वास

2.6.3. धर्म–सम्प्रदाय और समाज का बदलाव

2.6.4. झूठ हजारों सच पर भारी

2.6.5. आगे की बजाय पीछे ले जाती है मज़हब

2.6.6. ईश्वर, अल्लाह, खुदा और मूर्ख़

2.7. साम्प्रदायिक दंगे और अल्पसंख्यक समाज

2.7.1. अल्पसंख्यकों का अपमान

2.7.2. असुरक्षा भाव में अल्पसंख्यक युवक

2.7.3. मिलावट–गिरावट

2.7.4. साम्प्रदायिक दंगे

2.7.5. मज़हबों के जन्म से पहले भी समाज था

2.8. भारतीय(हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और भाई चारा

2.8.1. धर्मांतरित मुसलमान

2.8.2. हिन्दू–मुस्लिम भाईचारा

2.8.3. सहिष्णुता–उदारता–विश्वबंधुता

2.8.4. प्रेम और सद्भावना

2.9. निष्कर्ष

अध्याय–दो

2. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सामाजिक सन्दर्भ

"गुण के आधार पर इस चातुर्वर्ण्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अनर्थकारी नामों से रखना–जिनसे जन्म के आधार पर सामाजिक विभाजन का संकेत मिलता है, समाज के लिए एक फंदे की तरह है।"[50]

समाज क्या है ? सामान्यतः समाज दो प्रकार के हो सकते हैं। एक तो वह जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य मिलकर रहते हैं। दूसरा वह है, जो पहाड़–जंगलों में रहने वालों का समाज है। जिसे आदिवासी समाज कहते हैं। भारतीय समाज तो जातियों में बँटा हुआ समाज है। हर एक जाति का अपना समाज है। पूरा विश्व समाज सम्प्रदायों या मज़हबों में बँटा हुआ है। हर एक सम्प्रदाय का अपना समाज है। और बँटे हुये हैं। जैसे आदिम समाज, ग्रामीण समाज, पूँजीवादी समाज, वर्गहीन समाज, सभ्य समाज, ईसाई समाज, इस्लामिक समाज, बौद्ध समाज, जैन समाज और हिन्दू समाज। पूरे समाज में स्त्रियों का आधा हिस्सा होता है। इसलिए स्त्री का भी अपना समाज है। इस हिन्दू समाज में कई वर्ण और जातियाँ हैं। सवर्ण समाज है और असवर्ण समाज है। जातियों में ऊँची जाति का समाज है, नीची जाति का समाज और दलित समाज भी है। इनमें छुआछूत वाली जाति समाज भी है। आसमान में आधी आबादी महिलाएं हैं। इनका भी अपना स्त्री समाज है। समाज में इतना अलगाव होने के बावजूद इनमें भाईचारा है, तभी तो भारतीय समाज भिन्नता में एकता है। तो यहाँ परखने वाली बात यह है कि, एक जाति की समाज दूसरी

---

[50] पृष्ठ संख्या 58–59, 'जाति व्यवस्था–निर्मूलन', डा. भीमराव अम्बेडकर, मूलनिवासी पब्लिकेशन ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण : 2010

जाति समाज के प्रति घृणा, द्वेष, नफरत करके, उन के ऊपर हमला करता है, तब वह जाति समाज साम्प्रदायिक जाति समाज बन जाता है। वह हमला कई प्रकार के होते हैं।

एक सम्प्रदाय के अनुयायियों के द्वारा, दूसरे सम्प्रदाय और उसके अनुयायियों के ऊपर हमल करना या उसकी गलत व्याख्या करना या उसको नीचा दिखाना...आदि करना ही साम्प्रदायिकता होती है। इस को 'समाज' के सन्दर्भ में देखें तो, एक जाति समाज के लोग या अनुयायी, दूसरे जाति समाज के लोग या अनुयायियों के प्रति, घृणा, द्वेश, नफरत प्रकट करना और उनकी सामाजिक, संस्कृतिक जीवन को नीचा दिखाना, उसकी गलत व्याख्या करना, उनके ऊपर हमला करना...आदि ही साम्प्रदायिकता होती है।

समाज एवं साम्प्रदायिकता का संबंध गहरा है। क्योंकि साम्प्रदायिक दंगे तो होते समाज में ही हैं। समाज के ही, कुछ सम्प्रदाय के या कुछ जाति समाज के लोग ही तो साम्प्रदायिक होकर दंगे और हमले करते हैं। कुछ जाति के लोग साम्प्रदायिक क्यों बनते हैं? वे इसलिए साम्प्रदायिक बनते हैं कि वे आदि से आज के युग तक पूरे समाज पर अपना आधिपत्य एवं वर्चस्व बनाए रखे हैं। अभी–अभी पिछड़ी एवं दलित जातियों की आर्थिक स्थिति में थोड़ा बदलाव आ रहा है। जिसके कारण पिछड़ी और दलित जातियाँ आत्म सम्मान से जी रही हैं। वे वर्ण व्यवस्था का विरोध, जातिवाद का विरोध, हर तरह के शोषण का विरोध कर रहे हैं। ये सब देख कर हिन्दूवादियों को बरदाश्त नहीं हो रहा है। फिर से इनके ऊपर आधिपत्य चलाना चाहते हैं। इसके लिए इनको आर्थिक और समाजिक रूप से कम जोर करना चाहते हैं। इसके लिए साम्प्रदायिकता को फैलाना चाहते हैं।

"भारतीय वर्ग–व्यवस्था में यों तो जातिवाद के स्पष्ट दर्शन होते हैं, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इनके कारण भी संभवतः प्रायः वे ही रहे होंगे, जो अन्य देशों में वर्गों के उदय और विकास के रहे हैं। इन कारणों में मुख्य आर्थिक रहे हैं, इसे स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए। यद्यपि आज शोषक तथा शोषित वर्गों की स्पष्ट छाप–दृष्टिगोचर

नही होती, तथापि सुदूर अतीत में वर्ण–व्यवस्था की पृष्ठभूमि में स्पष्ट आर्थिक कारण ही, सामाजिक व्यवस्था के जनक रहे हैं, इसमें संदेह नहीं।"[51]

समाज में साम्प्रदायिकता का विरोध किया गया है। इनमें कई बड़े बड़े लोग हैं। कई आंदोलन हुए हैं। साम्प्रदायिकता के विरोध में साहित्य भी रचा गया है। जैसे शंबुक, बुद्ध, कबीर, अम्बेडकर, दलित आंदोलन, वामपंथी आंदोलन, क्राँतिकारी आंदोलन, धर्मनिरपेक्ष आंदोलन तथा इन के सिद्धांत के आधार पर, साम्प्रदायिकता के विरोध में, कविताएं, कहानियाँ और उपन्यास लिखे गये हैं। अब हम बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के विरोध के प्रकारों को सामाजिक सन्दर्भ में देख सकते हैं।

2.1. हिन्दू देव, धर्म, वर्ण बनाम राक्षस, दलितशूद्र एवं जातिगत व्यवस्था

"जाति और जातिवाद तभी खत्म हो सकता है जब हम ब्राह्मणवाद को समाप्त कर सकें। ब्राह्मणवाद को साम्यवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, सामन्तवाद, संघवाद, हिन्दूवाद और गाँधीवाद खत्म नहीं कर सकता, क्योंकि ये सभी ब्राह्मणवाद के इर्द–गिर्द ही भ्रमण करते हैं। इतिहास और पिछले सामाजिक संघर्षों के आन्दोलन के अनुभव साक्षी हैं कि आम्बेडकरवाद ही सक्षम है– ब्राह्मणवाद को समाप्त करने में।"[52]

समाज पहले से ही विभाजित है। कहा जाता है कि सबसे पहले दो ही जातियाँ थीं देवता और राक्षस। इसके बाद कालांतर में इनके नाम बदल गए हैं, जैसे ब्राह्मण और शूद्र। आधुनिक युग में आके ऊँची जाति और दलित जाति...आदि नामों से समाज में जातियाँ प्रचलित हैं। इन जातियों के बीच हमेशा संघर्ष होता रहता है। देवता जाति के लोग राक्षस जाति के लोगों के साथ अन्याय किए हैं। ब्राह्मण जाति के लोग शूद्र जाति के लोगों के साथ अन्याय किए हैं। आज के आधुनिक और वैज्ञानिक युग में भी हिन्दू ऊँची

[51] पृष्ठ संख्या 18, आदिवासी सत्ता, संपादक., के. आर. शाह, जून 2011, रायपुर, छत्तीसगढ़

[52] पृष्ठ संख्या 42, युद्धरत आम आदमी, अंक–90,(सं.), रमणिका गुप्ता, जनवारी–मार्च, 2008

जाति के लोग दलित जाति के लोगों के साथ अन्याय कर रहे हैं। कहना गलत नहीं होगा कि यह एक जातिगत साम्प्रदायिकता है। इसके कई कारण होते हैं, जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक...।

2.1.1. देवता बनाम राक्षस

साम्प्रदायिक हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार आरम्भ में दो ही जातियाँ थीं। इन में एक अपनी यानी देवता और दूसरी जाति, परायी यानी राक्षस। तो इन धर्म शास्त्रों को रचने वाले कौन थें ? इन धर्म शास्त्रों को रचने वाले वही लोग थें, जिन्होंने वसुधैव कुटुंबकम का नारा देते थे। वसुधैव कुटुंबकम यानी सारे संसार के जनता एक परिवार के जैसा हो, बल्कि शुरु में ही पूरे के पूरे लोगों को दो जातियों में बाँट दिया गया है, जो अपना यानी देवता और जो पराया यानी राक्षस। तो वसुधैव कुटुंबकम अर्थात् अपना यानी देवता जाति ही हो सकती है। वसुधैव कुटुंबकम का नारा देकर राक्षस जाति को धोखा दिया गया है। यह वसुधैव कुटुंबकम का नारा देने वाले कौन होते हैं ? यह नारा उन्हीं के द्वारा दिया गया है, जिन के द्वारा साम्प्रदायिक हिन्दू धर्म शास्त्र लिखे गये हैं। आखिर कौन लिखे हैं ? और कौन लिख सकते हैं साम्प्रदायिक आर्य ब्राह्मणों के अलावा ? अर्थात् ब्राह्मण लोग ही लिखे हैं।

इन अपना यानी देवता, आर्य जाति के भगवान विष्णु है। कहने के लिए पूरी दुनिया का पालन करता है। लेकिन यह केवल आर्य देवता एवं ब्राह्मण जातियों के हित के लिए ही काम करते हैं। राक्षसों का राजा बली जगत प्रसिद्ध दानी को धोखा देकर उनका राज्य हड़प लेता है। इंद्र के हवाले कर देता है । देवताओं के राजा इंद्र हैं। ये अपने काम कार्य के लिए न रात न दिन देखते हैं। न बूढ़ी न जवानी को देखता है। इन्होंने ऋषि, मुनियों के पत्नियों को भी नहीं छोड़ा है। इससे पता चलता है कि इन साम्प्रदायिक आर्य देवता जाति को मनुष्य के रिश्तों में कोई नैतिकता नहीं है। ये अपने दरबार में विष कन्याओं या संदिग्ध चरित्र की कन्याओं को पालते हैं।

साम्प्रदायिक आर्य हिन्दू देवता जाति यानी आज के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और राक्षस/शूद्र जाति यानी आज के इस देश के मूलनिवासी (आदिवासी, दलित, पिछड़ें, अल्पसंख्यक) के बीच आधिपत्य के लिए युद्ध होता था, जिसमें देवता जाति के लोग हमेशा हार जाते थे। हर बार अपने रक्षक विष्णु के पास जाते थे। विष्णु अपनी जाति के लोगों के जीत के लिए अपनी पद की नैतिकता की भी परवाह नहीं करता है। इन्होंने हमेशा राक्षसों के साथ कपट और छल किया है। अंतिम जीत साम्प्रदायिक आर्य हिन्दू देवता जाति की ही होती थी। तो ये सभी देवताओं ने मिलकर यह सोचे कि 'इन राक्षस या शूद्र जाति के संगठित रूपी या एकता रूपी भावना को कैसा तोड़ा जाए ?' इसके लिए इस राक्षस जाति में फूट डाल के कई जातियों का निर्माण किया गया यानी चार हजार पांच सौ जातियों में बाँट दिया गया। इस में सैकड़ौ जातियाँ ऐसी हैं जिनकी परछाईं पड़ने मात्र से निर्जीव चीजें जैसे लोटा, थाली, कूप, बावड़ी तक अपवित्र हो जती हैं। एक जाति दूसरी जाति के साथ रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं है। एक जाति दूसरी जाति के प्रति हीन भावना रखती है। एक जाति दूसरी जाति को नीची मानती है। एक जाति दूसरी जाति के प्रति घृणा, नफरत करती है। एक जाति अन्य जाति के प्रति गलत व्याख्या करती है। लेकिन इन सभी राक्षस जातियों के प्रति या विरोध में गलत व्याख्या करती है साम्प्रदायिक आर्य हिन्दू देवता जाति। तब राक्षस, दलित जातियों पर, साम्प्रदायिक आर्य हिन्दू देवता जाति साम्प्रदायिकता करती है। इन आदि समस्याओं को निम्नोक्त उद्धरण में पा सकते हैं।

"शांत–शांत। वह भी सुनिए। इस नारे से ऊँचा कोई दूसरा नारा शायद ही हो दुनिया में। लेकिन अपने पुरखों के इस नारे में भाई लोगों ने ऐसी मिलावट की कि एक से बढ़कर हम साढ़े चार हजार हो गए। साढ़े चार हजार जातियाँ। इसमें भी सैकड़ों तो ऐसी जिनकी परछाईं पड़ने मात्र से निर्जीव लोटा, थारी, कूप, बावड़ी तक अपवित्र हो जाएँ। जितनी जाति–पाँति और छुआछूत बसुधैव कुटुंबकम का नारा देनेवालों ने फैलाया।...इनके आदमी तो आदमी, देवी–देवता और भगवान तक जातिवादी हैं। आज से नहीं अनादि काल से। जब उन्होंने केवल दो जातियाँ गढ़ी थीं अपनी यानी देवता और परायी यानी राक्षस। हम उनके लेखे राक्षस हैं। एक भगवान हुए हैं विष्णु। कहने को पूरी दुनिया के पालनकर्ता हैं,

लेकिन हैं केवल देवताओं के हितैषी। उनके अपने ही ग्रंथों के अनुसार सारे देवता राक्षसों की लात खाते ही राँड़ की तरह रोते विष्णु के पास पहुँचते हैं और विष्णु उनके लिए राक्षसों के खिलाफ बड़े–से–बड़ा छल करने से भी बाज नहीं आते। इसके लिए वे पद–कुपद नहीं देखते। सही–गलत नहीं देखते। देवताओं के राजा है इंद्र। और इंद्र का चरित्र जग जाहिर है। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े चुराता है। तपस्वियों की तपस्या भंग करने के लिए अपने दरबार में संदिग्ध चरित्र की औरतें पालता हैं। ऋषियों–मुनियों तक की घरवालियाँ नहीं बच पातीं उससे। इस काम के लिए न दिन देखता है न रात। न बूढ़ी देखता है न जवान। और जगप्रसिद्ध दानी राक्षस राजा बलि का राज धोखे से हड़प कर किसे देते हैं विष्णु ? उसी व्यभिचारी इंद्र को। कहीं ऐसा भी लिखा है कि राक्षसों पर कोई मुसीबत पड़ी हो और विष्णुजी दौड़े चले आए हों ? कहीं नहीं। भूलकर भी नहीं।"[53]

उपरोक्त प्रकार सदियों से आज के उत्तराधुनिकता तक कोई भी साम्प्रदायिक आर्य हिन्दू देवता जाति के देवताओं ने राक्षस–शूद्र, दलित जातियों की रक्षा के लिए कभी नहीं काम किये हैं। और ऊपर से दबाए हैं।

2.1.2. हिन्दू वर्णाश्रम धर्म

सबसे पहले दो ही जाति थी, एक देवता जाति और दूसरी राक्षस जाति। इनमें एक दूसरे से युद्ध में देवता जातियों को राक्षस जातियों से पराजित होना पड़ता था। यह सिलसिला मनु के समय तक चलता आया था। राक्षस–शूद्र जातियों की संगठित शक्ति को तोड़ने के लिए ही मनु ने अपने ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर वर्णाश्रम धर्म बनाया। इसे मनु ने लिखा इसलिए मनुस्मृति या मनु धर्म शास्त्र कहते हैं। इसके अनुसार मनुष्य माँ के पेट से जन्म नहीं लेता बल्कि भगवान ब्रह्मा के विविध अंगों से जन्म लेते हैं। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट या जांघों से वैश्य और पादों से शूद्र का जन्म हुआ है। इससे ब्रह्मा भगवान और माँ का अपमान किया है, ब्राह्मण मनु ने। क्योंकि भगवान को तो

[53] पृष्ठ संख्या, 71–72, त्रिशूल–शिवमुर्ति, प्रकाशन– राजकमल 1995

भगवान ही होना चाहिए। उनके कुछ अंगों को श्रेष्ठ और कुछ अंगों को निकृष्ट माना है मनु ने। जैसे सिर को श्रेष्ठ माना है इसलिए ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। भगवान के पैरों को निकृष्ट माना है, इसलिए शूद्रों को निकृष्ट ठहराया गया है। बीच के अंगों में से जन्में लोगों को बीच का स्तर दिया गया है। माँ का भी अपमान किया है मनु ब्राह्मण ने। कोई भी प्राणी अपनी माँ के पेट में से ही जन्म लेता है यह वैज्ञानिक है। इस सत्य को छोड़ के असत्य को सत्य ठहराने का काम किया है। ऐसा करके ये अपना अलग समाज का निर्माण कर लिए हैं जिसमें अन्य समाजों को प्रवेश नहीं हैं। यह उनका अपना साम्प्रदयिक समाज है। और स्पष्ट है निम्नोक्त उद्धरण से–

"–तुम्हारे ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर !...तुम ने अपना वर्णाश्रम धर्म बना लिया था–हर बच्चा माँ के पेट से पैदा होता है पर तुम्हारे ब्राह्मणों और उनके ग्रंथों ने माँ की कोख का अपमान करते हुए मनुष्य को ब्रह्मा के अलग–अलग अंगों से पैदा करने का सिद्धान्त पैदा किया ...आज के शब्दों में कहूँ तो तुम्हारे ब्राह्मणों ने अपना पाकिस्तान बना लिया..."[54]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार मनुष्य ब्रह्मा के विविध अंगों में से जन्म लिए मालूम पड़ते हैं। लेकिन क्या यह सम्भव है कि एक ब्रह्मा के शरीर के विविध अंगों से मनुष्य का जन्म लें, वह भी पुरुष के शरीर से ? मुझे लगता है कि यह असम्भव है क्योंकि मनुष्य का जन्म तो अपने माँ के गर्भ से होता है। ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो या दलित हो, वे सब एक ही मार्ग से जन्म लेते हैं।

2.1.3. दलित शूद्रवंशी शंबूक

साम्प्रदायिक हिन्दू ब्राह्मण वर्णाश्रम धर्म के अनुसार, वेदाध्ययन, धर्मशास्त्रों का अध्ययन और तप, साधना से मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों को ही था। शूद्र वर्ण को इनमें प्रवेश नहीं था। शूद्र वर्ण का धर्म या काम था नहीं, ज़बर्दश्ती से

---

[54] पृष्ठ संख्या, 103, कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, प्र., राजपाल एण्ड सन्स 2000

सौंपा गया था दास धर्म यानी उन तीनों वर्णों का सेवा करने का काम। यह जो नियम है वह एक वर्ण समाज अन्य या दूसरे वर्ण समाज पर साम्प्रदायिक हमला, नहीं तो और क्या हो सकता है ? उन्हीं के शास्त्रों में लिखा हुआ है कि भगवान के सामने सब बराबर हैं। वही लोग कहते हैं कि ज्ञान–विज्ञान और धन भी भगवान के द्वारा ही सृष्टि किया गया है। तो ज्ञान–विज्ञान और धन की प्राप्ति के लिए सब को बराबर हक है।

शूद्रवंशी शंबूक ने उस वर्णाश्रम धर्म को तोड़ा है। इन्होंने भी मोक्ष प्राप्त के लिए तपस्या और साधना किया। धर्मशास्त्रों का, वेदों का अध्ययन करने लगे। अपने शूद्र वर्ण समाज के हित के लिए काम करने लगे। यह साम्प्रदायिक ब्राह्मणों को बर्दाश्त नहीं हुआ था। शंबूक को मरवाने के लिए योजना बनायी गयी। इसके लिए वे शंबूक पर एक आरोप लगाये हैं कि एक शूद्र वंशी होते हुए धर्म के विरुद्ध तपस्या कर रहा है, जिसके कारण एक ब्राह्मण का पुत्र का देहांत हो चुका है। यह बात नारद राम से कहता है। तुरंत राम अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करता है यानी शंबूक का वध करता है। यह घटना उस समय शूद्र समाज पर साम्प्रदायिक दंगा है। इसी को आगे बढ़ाने का काम भाजपा और उसके साथी संगठन कर रहे हैं। राम के नाम पर राजनीति कर रहे हैं। इन समस्याओं को कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किये हैं, जो निम्नोक्त प्रकार हैं।

"–कारण मैं बताता हूँ ! तभी नारदजी ने हमेशा की तरह हाज़िर होकर राजा रामचन्द्र को बताया–महाराजाधिराज राम ! धर्मशास्त्रियों के अध्ययन, तप और साधना से मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकार केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्गों को है, लेकिन भगवान् ! आपके रामराज्य में एक महापातकी घटना घटी ! उसका कारण है शूद्रवंशी शंबूक ! जो अपने दास धर्म को त्याग कर मोक्ष के लिए साधना कर रहा है...इस महापाप के कारण ही ब्राह्मण–पुत्र की मृत्यु हुई है महाराज! नारदजी ने सूचना दी। बस फिर क्या था अदीबे आलिया! राजा रामचन्द्र जी ने क्षत्रिय धर्म पालन किया और ब्राह्मण धर्म की रक्षा के लिए

शूद्र शंबूक जैसे ऋषि और तपस्वी की गर्दन काट कर धड़ से अलग कर दी ...यह झंझावत और काली आँधियाँ रामराज्य के इसी जघन्य अपराध और पाप के कारण चल रही हैं !"[55]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार शूद्र वंशी लोगों को ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार नहीं दिया गया है। उनके विधि–विधान को विरोध करके, ज्ञानार्जन करना पड़ा है, शूद्र वंशी शंबूक को। परिणाम शंबूक मृत्यु घाट पहुँचाया गया है। आज भी वही हो रहा है दलित जातियों के साथ। शिक्षा व्यवस्था की निजीकरण की जा रही है, अर्थात् दलितों को शिक्षा से दूर किया जा रहा है। मन्दिर में प्रवेश और पूजा करना भी इन दलितों के लिए मना हैं।

2.1.4. दलित को मन्दिर में पूजा करना मना

इस दुनिया में कई समाजें देखने को मिलती हैं। हर पृथक समाज में भी कई स्तरें देखने को मिलती हैं। कुछ समाज के लोगों को कुछ ही काम करने का अधिकार हैं, यानी कोई भी काम करने का अधिकार नहीं है, जैसे शूद्रों को ज्ञान प्राप्त करने का हक नहीं है। इनका काम मात्र उन तीनों वर्णों का सेवा करना है। वैसे ही इनके लिए कुछ काम करने के लिए सीमाएँ भी रखी गयी हैं, जैसे वे शूद्र होते हुए भी भगवान की मूर्तियाँ गढ़ सकते हैं। इन्हीं के द्वारा गढ़ी गयी मूर्तियों को मन्दिर में प्रतिष्ठित करते हैं। लेकिन इन ही के द्वारा गढ़ी गयी मूर्ति का पूजा करने का भाग्य इनके नसीब में से छीन लिया गया है। पूजा की बात तो छोड़ो, इनके लिए मन्दिर प्रवेश का अधिकार भी नहीं हैं। इन समस्यओं को गीतांजलि श्री ने अपना उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में प्रस्तुत की है, जो निम्नोक्त उद्धरण है।

"तुम ही स्टूडेंट को बता रहे थे कि कितने स्तर हैं रिश्तों और भावनाओं के, इस समाज़ में। कि एक शूद्र जब उस भगवान की तस्वीर रँगेगा, जिसकी पूजा उस मंदिर में

---

[55] पृष्ठ संख्या, 19, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

वह ही नहीं कर सकता तो सोचो, रँगतें वक्त क्या–क्या उसका निकलता है–आनंद, गुस्सा.. ”[56]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह है कि दलितों को मन्दिर में प्रवेश नहीं हैं। इस का कारण क्या है ? कारण यह है कि इनका जन्म दलित जाति में होना। इसका मूल मनुस्मृति है। इसके अनुसार दलित जाति को कोई अधिकार नहीं हैं। इनका काम ऊँची जाति के लोगों को दास के रूप में सेवा करना ही है। धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, वर्ण के नाम पर सदियों से दबाए गए हैं। वैसे ही छुआछूत भी इनके साथ अपनाये हैं। काले और गोरे के भेद–भाव भी ये दिखाते हैं।

2.1.5. गोरे बनाम काले

ऐसा नहीं है कि इस संसार में सभी मनुष्य हैं, इसलिए पूरी दुनिया का एक ही समाज है, वही मनुष्य का समाज है। इस पृथ्वी पर जितने वर्ण हैं उतने उनके अपने समाज हैं। जितने रंगों में यानी काले, गोरे, साँवले...उतने उनके अपने समाज हैं। जितनी जातियाँ हैं, उतने उनके अपने समाज हैं। ये फिर अपने–अपने देश–काल के सीमाओं, वहाँ के भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार बँटे हैं। विविध सम्प्रदायों में भी बँटें हैं। सम्प्रदाय के अपने अनुयायी ही साम्प्रदायिक होता है। वैसे ही एक जाति समाज के अनुयायी ही उस जाति समाज के साम्प्रदायिक हो सकता है। ये अपने जाति समाज को श्रेष्ठ और दूसरी जाति समाज को निकृष्ट मानते हैं, उनकी गलत व्याख्या करते हैं, उन जाति समाज के प्रति घृणा, नफरत की भावना रखते हैं और उन पर हमला करते हैं तो वह उस जाति समाज का साम्प्रदायिकता है। ऐसा क्यों करना चाहते हैं। इसलिए करना चाहते हैं कि ये दूसरी जाति समाज पर अपना वर्चस्व कायम रखना चाहते हैं। उनके ऊपर अधिकार चलाना चाहते हैं। इस समस्या को कमलेश्वर जी ने अपना उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में दक्षिण अफ्रीका के काले और गोरों के बीच की लड़ाई और काले समाज के लागों पर गोरे समाज के लोगों के हमले को प्रस्तुत किये हैं। यह निम्नोक्त उद्धरण में द्रष्टव्य है।

---

[56] पृष्ठ संख्या, 118, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री, प्र., राजकमल पेपर बैक्स 1998

"–सर ! ये 39 लोग दक्षिण आफ्रीका के बोईपोतोंग इलाके से अभी–अभी मर कर आपकी अदालत में हाज़िर हुए हैं ! ये काले आफ्रीकी हैं जिन्हें गोरी चमड़ीवाली साउथ अफ्रीकी सरकार ने ही मरवाया है !"[57]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार सरकार तो उस देश की जनता सभी की होती है, चाहे वो काले हों या गोरे। लेकिन अफ्रीका में सरकार ही काले लोगों को मरवाया है। यह काले और गोरे वर्णों के बीच साम्प्रदायिक दंगे ही होते हैं। इससे पता चलता है कि काले और गोरे के बीच, एक दूसरे के प्रति कितना नफरत है। इनके बीच सहिष्णुता का अभाव के कारण ये सब हो रहा है।

2.1.6. वर्ण–व्यवस्था उन्मूलन

दरअसल समाज, संस्कृति और प्रकृति हमेशा परिवर्तन शील होता है। यह परिवर्तन समाज को आगे की ओर ले जाता है। परिवर्तन की गति को बढ़ाने और आगे की ओर ले जाने के लिए कुछ लोग काम करते रहते हैं और करना चाहिए। लेकिन कुछ सनातनी लोग जैसे भाजपा, आर एस एस, बजरंग दल, शिवसेना आदि संगठन के लोग रात–दिन मेहनत करते हैं। क्योंकि आगे की ओर गतिमान समाज को रोकना चाहते हैं, और पीछे की ओर ले जाना चाहते हैं। इस आधुनिक युग में भी वर्णाश्राम धर्म को लागू करना चाहते हैं, जिस के कारण ही यह देश आज तक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा हुआ है। आर एस एस के और उनके साथी संगठन के इतने प्रचारक हैं और कुछ विचारक भी हैं। ये केवल साम्प्रदायिक उन्माद को फैलाने में व्यस्त होते हैं। अगर ये ही लोग वर्ण एवं जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए काम किये होते, तो आज हमारा देश विश्व में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से सबसे ऊपर रहता था। इन समस्याओं को शिवमूर्ति जी ने अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किया है, जो निम्नोक्त प्रकार है।

---

[57] पृष्ठ संख्या, 86–87, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

“इतने प्रचारकों की फौज खड़ी हुई। काश, कुछ विचारक भी होते। इतना जोर साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने में लगाया जा रहा है। काश, इसे वर्ण–व्यवस्था के उन्मूलन में लगाया जा सकता”[58]

उपरोक्त उद्धरण में साम्प्रदायिकता को फैलाने के लिए कुछ विचारक भी हैं। यदि ये सचमुच समाज का भलाई चाहते हैं, तो इनको इतना जोर वर्ण एवं जाति उन्मूलन के लिए लगाना चाहिए। जाति रहित समाज का निर्माण करने में व्यस्त होना आवश्यक होना चाहिए। लेकिन ये ऐसा नहीं करना चाहते क्योंकि ये जाति व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं।

2.2. हिन्दू वर्णाश्रम धर्म और जातिगत व्यवस्था

“बचपन में जब जाति के संस्कार दिये जाते हैं तभी से मानवता के बीच एक खाई बन जाती है। इसीलिए जातियाँ परम्परागत कार्यों से भी जुड़ी हुई हैं। धर्म और संस्कृति के नाम पर जाति अपना काम धीरे–धीरे करती चलती है और आदमी को आदमी से दूर करती जाती है। जब तक व्यक्ति परम्परागत कार्यों से जुड़ा रहेगा, तब तक उसकी पहचान, उसके परम्परागत कार्यों से होती रहेगी। परम्परागत–कार्य जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था और मनुव्यवस्था की देन है।”[59]

मनुस्मृति मनु के द्वारा लिखा गया है। इसमें वर्णों की सृष्टि किया गया है। इसके अनुसार चार वर्ण हैं। इनमें सबसे ऊँचा वर्ण ब्राह्मण हैं। दूसरे स्तर पर क्षत्रिय हैं। तीसरे स्तर पर वैश्य हैं और चौथे स्तर पर शूद्र हैं। मनु के अनुसार इनका जन्म ब्रह्मा के विविध अंगों से हुआ है। पादों से शूद्र वर्ण का जन्म हुआ है, इसलिए इनको सबसे नीचा माना

---

[58] पृष्ठ संख्या, 44, त्रिशूल–शिवमूर्ति

[59] पृष्ठ संख्या 41, युद्धरत आम आदमी, अंक–90, रमणिका गुप्ता, जनवारी–मार्च, 2008

गया है। इनको कोई हक नहीं दिया गया है। इनका काम है उन तीनों वर्णों की सेवा करना। इन चार वर्णों से चार हजार पांच सौ जातियों का जन्म हुआ है। लेकिन ऊपर के तीनों वर्णों में से जातियाँ जन्मी हैं, वह बहुत कम हैं और इनका स्तर उसी वर्ण के अंतर्गत एक छोटी सी अपनी सीडी बना लिया है। इन चार हजार पांच सौ जातियों में 99 प्रतिशत जातियाँ शूद्र वर्ण में से जन्मी हैं। इन में हर एक जाति अपने से नीचे एक जाति को ढूँढ़ लेती हैं। अपने अपने जाति के लोग उनके अपने बच्चों के दिमाग में जातिगत भावना बचपन में ही चढ़ाते हैं। जाति का कारण कर्म से जोड़ते हैं। आधुनिक युग में गाँव से शहर आधुनिक लगता है। लेकिन शहर में भी जाति है। दिखने में थोड़ा अलग है। इसमें जाति के विविध रूपों, विविध क्षेत्रों में जाति इन आदि समस्याओं को लेकर इसमें चर्चा किया गया है।

2.2.1. गाँव–शहर–जाति

“The Indian Hindu village is known as republic and they are proud of its internal structure in which there is no democracy, no equality, no liberty, no fraternity. This is a republic of high castes for high castes. For untouchables, it is the imperialism of the Hindus. It is a colony for the exploitation of the untouchables where there are no rights for them. How polluted is the Hindu slaughter house…(Ambedkar, 2004) ”[60]

सबसे पहले इस पृथ्वी पर दो ही जातियों के बारे में विविध ग्रन्थों में देखने को मिलता है। 'त्रिशूल' उपन्यास में भी जिक्र किया गया है। एक देवता या ब्राह्मण जाति है, तो दूसरी जाति है राक्षस या असुर। इसके बाद मनु के समय में आकर इन दो में से चार वर्ण हुए हैं। यह मनु के द्वारा ही किया गया है। ये थें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आज इन चारों वर्णों में से चार हजार पांच सौ जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। कहा जाता है कि

---

[60] P no 42, ‘Fascinating Hindutva’ Saffron Politics and Dalit Mobilisation, Badri Narayan, SAGE Publications- 2009

भारत गाँवों का देश है। गाँव का बनावट यानी स्ट्रक्चर ही मनु स्मृति के आधार यानी अनुसार ही होता है। जिसमें ब्राह्मण जाति होती है, उसके बाद क्षत्रियों के मकान होते हैं, उसके बाद वैश्यों के मकान होते हैं, उसके बाद शूद्रों के मकान इनके बाद में अछूतों के की बस्ती रहती है। यह समाज एक सीढ़ी जैसा रहता है। गाँव में लोगों को मान–सम्मान की बात आती है, तो योग्य हों या न हों, जाति के आधार पर मान–सम्मान मिलता है। एक ब्राह्मण जाति के ब्राह्मण मूर्ख होने पर भी गाँव के सभी लोग नमस्कार करते हैं। लेकिन एक सामान्य ब्राह्मण एक नीची जाति के योग्य आदमी ही क्यों न हों प्रणाम नहीं करता है। यही गाँव के लोग शहर जाते हैं, तो उदार हो जाते हैं। जब भी फिर लौटते हैं तो फिर वही भावना मन में आ जाता है। यह आज के उत्तराधुनिक काल में भी वही स्थिति है गाँव में। इन समस्याओं को शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किये हैं। जैसे निम्नोक्त प्रकार है।

"कभी–कभी कोई बात इतनी छुपानेवाली होती है कि हम अपने मन में उसे सोचने से भी कतराते हैं। उसी तरह की सच्चाई यह भी है कि एक सामान्य ब्राह्मण एक नीची जाति को वह भी अपने ही गाँव में प्रणाम करे, यह...यह...अभी तो असंभव है। इसीलिए तो हम लोग कुटी पर नहीं जाते।...एक विचित्र बात और सुनिए। जैसे ही गाँव छोड़कर शहर जाता हूँ, सारे सोच और कर्म में उदारता आ जाती है। पर वे दकियानूसी विचार रास्ते में ही कहीं छिपे बैठे इंतजार करते रहते हैं। जैसे ही लौटता हूँ फिर कंधे पर सवार हो जाते हैं।...जब तक वापसी के लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं मिल जाता..."[61]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार एक सामान्य या दलित व्यक्ति को अपने ही गांव में मान–सम्मान नहीं मिलता है। लेकिन दूसरी तरफ यह कह रहे हैं कि इस आधुनिक समाज में कोई ऊँच–नीच की भावना नहीं हैं। बल्कि उक्त संदर्भ से यह स्पष्ट होता है कि आज

---

[61] पृष्ठ संख्या, 77, त्रिशूल–शिवमूर्ति

के कम्प्यूटर युग में भी पुराने सामाजिक मूल्य अपना रहे हैं। यह गांव में है और शहर में भी है, सिर्फ तरीका बदला।

2.2.2. जाति–पाँति से ऊपर सोच

समाज में लोग, संस्थाएँ, कुछ संगठन, राजनीतिक पार्टी, एनजीओ आदि समाज सुधार के लिए काम करते हैं। वे एक ऐसा समाज का निर्माण करना चाहते हैं कि जिस में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से सब बराबर हों। इसके लिए बड़े–बड़े भाषण देते हैं। वामपंथी पार्टी के लोग तो सुबह से शाम तक वही बोलते रहते हैं कि 'मनु स्मृति वाली जाति व्यवस्था को तोड़ो'। लेकिन इतने साल हुए, ये तोड़े कुछ नहीं। इनके कार्यों से पता चलता है कि ये तन–मन से सचमुच समाज को बदलने के लिए काम नहीं करते हैं। ये अपनी राजनीति करते हैं। यदि किसी को जाति–पाँति से ऊपर उठना हो तो वह सब से पहले यह करना होगा कि ऊँची जाति के लोग अपनी बेटी को नीची जाति के बेटों से शादी करवाने को तैयार हों और करके दिखाएँ। इसी विषय को शिवमूर्ति ने अपना उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किये हैं, जो निम्नोक्त प्रकार है।

"मैं तो जाति–पाँति से ऊपर उठकर सोचता हूँ।...लेकिन इसी बीच एक गड़बड़ फिर हो गई। एक दिन खूब छककर पीने के बाद क्लब में चावला साहब नें कह दिया कि जाति–पाँति से ऊपर उठा हुआ तो मैं उसे ही मान सकता हूँ जो अपनी बेटी चमार के बेटे से ब्याहने को तैयार हो। बोलिए, आप तैयार हैं ?"[62]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार अगर देखा जाए तो, यह समझ में आता है कि ऊँची जाति के लोग अपनी बेटी को नीची जाति के बेटे से शादी की बात को छोड़ो, लेकिन नीची जाति के लोगों को जान से न मारे तो वही इस समाज के लिए बड़ी बात हो सकती है। आज समाज में 'आनर किलिंग' हो रहे हैं। बावजूद इसके कुछ ऐसे लोग हैं जो ऊँची

---

[62] पृष्ठ संख्या, 83, त्रिशूल–शिवमूर्ति

जाति के होते हुए भी अपनी बेटी को दलित जाति के बेटे के साथ शादी करवाएं हैं। इन जैसे लोगों की स्वागत करना चाहिए।

2.2.3. ऊँची जाति की मानसिकता

हिन्दू धर्म वर्णाश्रम का पालन करती है। आज हिन्दू सम्प्रदाय में जितने भी जश्न, उत्सव और त्यौहार मनाए जाते हैं, वे सब किसी न किसी नीची या शूद्र जाति के नेता को वध करने के सन्दर्भ को लेकर ही मनाते हैं। रामायण में रावण का वध किया गया, इस संदर्भ को लेकर त्यौहार मनाते हैं। राक्षस या शूद्र जाति के राजा, जगदप्रसिद्ध दानी को देवता या ब्राह्मण जाति के ब्राह्मण ने ही ज़मीन में गाड़ दिया था। इस समय के संदर्भ में भी हर साल त्यौहार मनाते हैं। ब्राह्मण हिन्दू धर्म का विरोध करके, शूद्र वंशी शंबूक ने तपस्या किया था। धर्म शास्त्रों को पढ़ा, इसलिए ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ने मिल के शंबूक का वध किया। इस संदर्भ को लेकर भी जश्न, त्यौहार मनाते हैं। आज राम और राम मन्दिर के नाम पर राजनीति करके दंगे करवाते हैं। मस्जिद को तोड़ते हैं। गुजरात में हजारों मुसलमानों का कत्ल करते हैं। आदिवासी और दलित जातियों पर अत्याचार और बलात्कार करते हैं। ये सब हिन्दू वर्णाश्रम धर्म को आगे बढ़ाने के लिए ही किया जा रहा है। शंबूक वध को लेकर 'त्रिशूल' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नोक्त उद्धरण है।

"जश्न मनाओ–ओ...ओ...घी के दीप जलाओ–ओ...ओ...कि हमने शंबूक–वध कर दिया–आ–आ...हा–हा–हा–हा !"[63]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह समझ में आता है कि राम राज्य में क्षत्रिय राम के द्वारा, उस समय की दलित शूद्र जाति के विद्वान शंबूक की वध होने पर त्यौहार मनाते हैं।

[63] पृष्ठ संख्या, 118, त्रिशूल–शिवमूर्ति

महाभारत में आदिवासी एकलव्य की अँगूठा काट ली जाती है। आज के संदर्भ में दलितों पर अत्याचार करते हैं। उनके साथ छुआछूत अपनाते हैं और आनन्दित होते हैं।

2.2.4. पिछले जन्म–कर्म

कहा जाता है कि इस सनातन हिन्दू धर्म ही पूरा विश्व गुरु के स्थान पर था। तो दूसरी तरफ उसी देश में सामाजिक असमानताएं अधिक हैं, जैसे देवता जाति, राक्षस जाति। इसके बाद चार वर्णों का निर्माण किया गया हैं। वे हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। इन में से साढ़े चार हजार जातियों का निर्माण किया गया है। इन में सैकड़ों जातियों की परछाईं से ही निर्जीव पदार्थ तक अपवित्र हो जाता है। ऊँची जाति के छूने पर कोई भी चीज क्यों न हों वह परम पवित्र हो जाता है। हर जाति के लिए अपना काम निर्धारित है। जैसे कोई चर्मकार है तो चमार हो गया। कोई मंत्र पढ़ता, भगवान का पूजा करता तो वह ब्राह्मण हो गया। इसको कह सकते कि अपने कर्म के आधार पर उन की पहचान बन जाती है। इस को कहा गया है कि 'जो जस करइ सो तस फल चाका'।

एक तरफ कुछ ऊँची जाति के लोगों के पास धन–दौलत की कमी नहीं है। इनका खाया हुआ खाना हजम नहीं होता है और इसी के कारण बीमार हो कर मर जाते हैं। लेकिन दूसरी तरफ बहुत से लोग भूख से मारे जाते हैं। रहने को झोपड़ी भी नसीब में नहीं है। क्या ये मेहनत नहीं करते हैं ? ऐसा नहीं यही लोग मेहनत सबसे ज्यादा करते हैं। लेकिन इनका सब कुछ ऊँची जातियों और पूँजी पतियों के द्वारा शोषण किया जाता है। इनकी जिंदगी मुश्किलों से गुजरती हैं। यदि कोई पूछेंगे कि ऐसा क्यों है? तो जवाब मिलता है कि यह पूर्व जन्म का फल है। अर्थात् पूर्व जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भोगना या अनुभव करना है। यह सिद्धांत गरीबों का शोषण करने के लिए, हिन्दू धर्मियों ने बनाया है। इन समस्याओं को त्रिशूल उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नोक्त प्रकार है–

“धरम में मिलावट की कुछ बानगी देखिए...कहा गया करम प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाका। चौपाई तो बाद में लिखी गई। बात बहुत पुरानी है और

सोलह आना पक्की। ...लेकिन स्वार्थी लोगों, हराम की खाने वालों ने इस में एक पूँछ लगा दी–पिछले जनम की । पिछले जनम में जो करम किए हों उसका फल इस जनम में और इस जनम के करम का फल अगले जनम में। अब वे झूठ दगाबाजी करके इस जनम में आपकी कमाई खाकर डकारें और आप अगले जनम का इंतजार करें। आप पिछले जनम का बही खाता लेकर नहीं पैदा हुए लेकिन वे अपना बाँधकर लाए हैं। 'फराडिया' लोगों ने पुनर्जन्म की धोखे की टट्टी खाड़ी कर दी। जो जस करइ का 'महातम' गया रसातल में।"[64]

2.2.5. हिन्दू धर्म–गुरु दक्षिणा

वैदिक हिन्दू धर्म के अनुसार वेदाध्ययन करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को और क्षत्रिय एवं वैश्य को ही था। लेकिन अधिक संख्या में जो शूद्र थे, इनको वेद पढ़ने का अधिकार तो नहीं दिया गया है, साथ ही सुनने तक का अधिकार भी नहीं दिया गया है। यदि किसी शूद्र को वेद पढ़ने, ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा मन में आयी हो तो भी वह पूरा नहीं होता था। यदि शूद्र लोग वेद पढ़ लें या कहीं से सुन के वेद ज्ञान प्राप्त करले तो वह धर्म विरुद्ध कार्य होता था। इसलिए शूद्रों को वेद पढ़ने और सुनने से रोकने के लिए, कठिन से कठिन नियम बनाये गये हैं। जैसे कोई भी शूद्र यदि वेद पढ़ने का साहस करें तो उनकी जीभ काटली जाएगी। अगर किसी ब्राह्मण के वेद पढ़ने को शूद्र सुन लें तो उन के कान में शीशा डाला जाएगा। जो भी इस नियम के विरुद्ध चलें उनको वैसा ही किया गया है। इनमें कई शूद्रों की जीभ काट ली गयी है। कई के कानों में शीशा डाला गया है। राहु और केतु भी इनमें आ जाते हैं। स्वयं शंबूक ने तपस्या करके ज्ञान प्राप्त किया है। मात्र ज्ञान प्राप्त करने से ही ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिल के शंबूक का वध किये हैं। इसको शत–प्रतिशत साम्प्रदायिक दंगा ही तो कहेंगे। महाभारत काल की घटना है, एक जनजातिय युवक एकलव्य को बाण विद्या सीखने का मन किया। यह महार्षि द्रोणाचार्य के पास जाता

[64] पृष्ठ संख्या, 68, त्रिशूल–शिवमूर्ति

है और उनसे निवेदन करता कि धनुर्विद्या की शिक्षा दें। लेकिन द्रोणाचार्य मना कर देते हैं। इसलिए मना कर देता है कि यह एक जनजातिय आदमी है। जनजाति के लोगों को किसी भी तरह की शिक्षा, ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। तो वह स्वयं साधना करके धनुर्विद्या प्राप्त कर लेता है। द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य अर्जुन से कई गुना ज्यादा ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यह द्रोणाचार्य को बर्दाश्त नहीं हुआ था। एक गुरु होते हुए पढ़ाये नहीं और ऊपर से गुरु दक्षिणा के नाम से उन का अँगूठा काट लिया। ये घटनाएँ भी एक ऊँची जाति द्वारा एक नीची जाति के समाज पर साम्प्रदायिक दंगे से कोई कम नहीं हैं। इसी को आगे बढ़ाने के लिए ही आर. एस. एस और उनके साथी राजनीतिक संगठन, भगवान राम के नाम पर राजनीति कर रहे हैं। हिन्दू धर्म संस्कृति को फैलाने का काम कर रहे हैं। ये समस्याएं उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किये गये हैं। जो निम्नोक्त उद्धरण में है–

"सवाल किया है तो जवाब मिलेगा। बिना सवाल–जवाब के कैसी सभा ?...बड़के बाबूजी। जीभ काटने की कौन कहे मौका मिलने पर हमारा मूँड़ तक काटने से पीछे नहीं रहें हैं आप लोग। और आगे अगर मौका मिला और ताकत बची रह गई तो काटने से चूकेंगे नहीं। किसकी–किसकी बताएँ ? राहु की बताएँ कि केतु की ? कि शम्बूक की ? कि कल की ताजी घटना एकलव्य की। सिखाया–पढ़या एक दिन नहीं और दक्षिणा में कटवा लिया पूरा अँगूठा। यह मूँड़ काटने से कम है ? यही है गुरू का धरम ? नीच–से–नीच, महानीच जाति हमारी। और नीच से भी नीच, महानीच काम तुम्हारा।"[65]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह समझ में आता है कि इतिहास में दलित जब जब सवाल किए तब–तब उन के शरीर से कुछ न कुछ अंग काटे गए हैं और वध भी की गयी है। राहु और केतु से लेकर शंबूक, एकलव्य और अम्बेडकर तक यही हुआ है। ऐसा नियम ही था कि कोई दलित जाति या वर्ण के लोगों को वेद नहीं पढ़ना चाहिए और सुनना तक

---

[65] पृष्ठ संख्या, 71, त्रिशूल–शिवमूर्ति

मना था। यदि कोई उस नियम के विरोध में पढ़ें या सुनें तो उसका जीब काटी जाती थी और कान में शीशा डाला जाता था।

2.2.6. बच्चे और जाति

हमारा भारत महान है। आज 21वीं सदी में भी गाँवों का महत्व है, क्योंकि भारत में गाँव ही अधिक हैं। इसलिए भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। लेकिन गाँव का जो निर्माण का ढाँचा या स्ट्रक्चर है वह हिन्दू वर्णाश्रम धर्म के अनुसार होता है। गाँव में एक तरफ ऊँची जाति के लोगों के घर होते हैं। इनमें क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में ऊँची जातियों के मकान होते हैं। गाँव के बाहर दलितों की बस्ती रहती है। ये सभी एक ही गाँव में निवास करते हैं, फिर भी अपने–अपने जाति व समाज में बँटे हुए हैं। ये सब एक ही गाँव में निवास करते हुए भी एक दूसरे के प्रति ऊँच–नीच की भावना रखते हैं। इनके बच्चे भी होते हैं। एक महान व्यक्ति ने कहा है कि बच्चों का दिल–दिमाग कोरा कागज होता है। और कहा जाता है कि बच्चे भगवान के रूप होते हैं। जिनके कोरा कागज रूपी दिमाग पर कुछ भी लिख सकते हैं। तो एक ही गाँव में निवास करने के कारण या सब मिलके एक ही पाठशाला में पढ़ने के कारण, वे सब मिल–जुल कर रहना चाहते हैं। वे सब मिल–जुल कर खेलना चाहते हैं और खेलते हैं। लेकिन इनके माता–पिता को यह अच्छा नहीं लगता है। ये नहीं चाहते हैं कि इनके बच्चें नीची जातियों के बच्चों के साथ खेलें। इसलिए वे अपने बच्चों को समझाते हैं कि हमारी ऊँची जाति है, तो उन नीची जाति के बच्चों से नहीं खेलना चाहिए। अर्थात् लोग अपने बच्चों को बचपन में ही ऊँच–नीच की भावना और जातिगत बीज को उनके दिमाग में डाल देते हैं। जातिगत व्यवस्था को बरकरार रखना चाहते हैं। इन समस्याओं को बदीउज़्ज़माँ ने अपना उपन्यास 'सभा पर्व' में प्रस्तुत किये हैं, जो निम्नलिखित है–

"मुहल्ले में दो–चार लोग जो शरीफ़ और ऊँचे ख़ानदान के थे इन्हें कमीन, छोटी ज़ात के आदमी कहा करते थे। ये अपने बच्चों को हमेशा ताक़ीद करते थे कि इन कमीन ज़ात वाले के बच्चों के साए से बचें। लेकिन बच्चे आखिर को बच्चे थे। ऊँची ज़ात और

नीची ज़ात के फ़र्क की बातें उनकी समझ में इस हद तक न आती थीं कि वे इनके साथ खेलना–कूदना छोड़ देते। जो कुछ उनकी समझ में आता था वह इतना पायदार नहीं था कि हर समय उन्हें याद रहता। बुज़ुर्गों की नाफ़रमानी करने पर उन्हें अक्सर कड़ी सज़ाएँ दी ज़ाती थीं। लेकिन इन सज़ाओं के बावज़ूद वे कमीन ज़ात के बच्चों के साथ खेलने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते थे। "[66]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह समझ में आता है कि बच्चों को जाति का बोध अपने माता–पिता ही करवाते हैं। तथा जाति व्यवस्था को आगे बढ़ाते हैं।

2.2.7. आरक्षण

वेद काल से लेकर आज के आधुनिक यानी 21वीं सदी तक, एक जाति समाज या एक वर्ण समाज ने अन्य जाति समाज या अन्य वर्ण समाज के लोगों को हर एक सुविधा से वंचित रखा है। ये और कोई नहीं हैं बल्कि हिन्दू वर्णाश्रम धर्म के ही लोग हैं। इतिहास में कई लोग इनके द्वारा वंचित किये गये हैं जो हमको उदाहरण के रूप में मिलते हैं, जैसे राहु, केतु, शंबूक, जगद्प्रसिद्ध दानी राजा बली चक्रवर्ति, एकलव्य...आदि। इन शूद्र और अतिशूद्र लोगों को राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आदि सुविधाओं से दूर रखने के लिए, मनु ने एक कानून रूपी स्मिृति को लिखी है, उसे मनुस्मृति भी कहते हैं। इस देश में इस्लाम आया है, जो मनुष्य में बराबरी की बात की है। जबतक वंचित, शोषित, पीड़ित भारतीय मूलनिवासियों ने उस समानता या समरसता की ओर लौटे यानी मुसलमान बन गये। इसके बाद ईसाइयों का राज बना था। ईसाइयों ने कम्यूनल एवार्ड के नाम से यानी सम्प्रदाय के नाम पर ऊँची जाति के हिन्दू को और मुसलमानों को सबसे पहले आरक्षण दिया गया है, जबकि नीची जाति के लोगों को नहीं दिया गया है। स्वतंत्रता के बाद संविधान में अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ों को अपने राज्य(स्टेट) में आरक्षण दिया गया है। मंडल के विरोध में, आरक्षण विरोधी आँदोलन चलाए हैं। इसके लिए

[66] पृष्ठ संख्या, 21, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

धर्म को सामने लाये है। भाजपा और उसके साथी संगठन इस काम में व्यस्त हैं। आडवाणी सोमनाथ से अयोध्या रथ यात्रा निकाले हैं। 1992 में बाबरी को तोड़े हैं। 2002 में गुजरात गोधरा घटना में 2000 मुसलमानों को मौत का घट पहुँचाया गया है। इस प्रकार एक जाति समाज दूसरी जाति समाज पर साम्प्रदायिक दंगे करती आ रही है। इन समस्याओं को उपन्यास 'त्रिशूल' में देख सकते हैं, जो निम्नोक्त प्रकार है–

" 'आरक्षण के विरोध में सड़कों पर उतरनेवाले दगाबाज हैं। हमें इनसे सावधान रहना है वरना हमारी भी वही निहाद होगी जो उस चूहे की हुई थी। साँप और चूहेवाला किस्सा जानते हैं ?' "[67]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार, यह जाति की समस्या भारत में था और आज भी है। यह केवल हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में ही नहीं है, इस का प्रभाव भारत के अन्य सम्प्रदायों पर भी है। इसके कारण ईसाई, जैन, बौद्ध और इस्लाम में भी ऊँच–नीच एवं जाति की समस्या है।

2.3. इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय और जातिगत समाज

"अधिकांश ऐतिहासिक और मानवशास्त्र अध्ययन यह सिद्ध कर देंगे कि भारतीय मुसलमानों के संदर्भ में 95% से अधिक लोग धर्म–परिवर्तन करके इस्लाम अपनाने वाले स्थानीय लोगों के वंशज हैं। इनमें से ज्यादातर लोग हिन्दू समाज के निचले तबकों से आए हैं, जिन्होंने कड़े जातिवाद के कारण सदियों से हर तरह का भेद–भाव, तंगी और सामाजिक सम्मान की अस्वीकृति को झेला था। इस्लाम ने अन्य किसी चीज़ से ज्यादा उन्हें सामाजिक सम्मान की झलक दिखाई।"[68]

---

[67] पृष्ठ संख्या, 25, त्रिशूल–शिवमूर्ति

[68] पृष्ठ संख्या 28, हंस, (सं.), राजेन्द्र यादव, अगस्त, 2003, (भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य, विशेषांक)

कुरान के अनुसार इस्लाम में, शुरुआत में जाति और ऊँच नीच आदि भावनाएं नहीं हैं। इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय में शुरुआत में पहली बार नमाज़ पढ़ने का मौका एक काला अफ्रिकन को दिया गया है। इससे पता चलता है कि इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय के पास कितना सहिष्णुता है। लेकिन मुहम्मद सहाब के बाद, कालांतर में इस धर्म–सम्प्रदाय में फूट हुआ। सुन्नी–सम्प्रदाय और शिया–सम्प्रदाय में बँट गये हैं। इन्हीं में से तीसरा सूफी सम्प्रदाय का जन्म हुआ है। सातवीं सदी के प्रारम्भ में और छठी सदी के अंत में इस्लाम भारत में प्रवेश किया है। केवल इस्लाम ही नहीं इसके साथ मुसलमानों ने भारत के राजा बनें और राज करने लगे। जब तक भारत में हिन्दू वर्ण एवं जाति के कारण जानवरों से भी बदतर जिंदगी जी रहे लोगों को, समानता देने वाला, आत्मसम्मान देने वाला एक धर्म–सम्प्रदाय सामने दिखने लगा था। नीची जाति के लोगों ने इस्लाम कुबूल यह सोच कर किया कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से इनको समानता या बराबर का दर्जा मिले। इनके साथ ऊँची जाति के लोगों ने भी इस्लाम को कुबूल किया। इसलिए कि इनको मुसलमान के राज्य में भी राजनीतिक पद प्राप्त करना था। इस्लाम में भी हिन्दू के ऊँची जाति और नीची जाति के लोग आ गये। इस पर भी हिन्दू वर्ण एवं जाति का प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप इस्लाम में भी जातिगत भावना आ गयी। इनके बीच भी रोटी–बेटी के रिश्ते में भेदभाव आ गया।

2.3.1. शिया बनाम सुन्नी

इस्लाम सम्प्रदाय मुहम्मद साहब के द्वारा स्थापित किया गया है। यह यहूदी सम्प्रदाय के बुराइयों को विरोध करते हुए जन्मा मालूम पड़ता है। इस का मानना है कि भगवान का कोई रूप नहीं है, अर्थात् भगवान निराकार है। जिस के सामने मनुष्य सब बराबर हैं। किसी तरह की भेद–भाव नहीं है। सबसे पहले मस्जिद में नमाज़ पड़ने का अवसर एक काला यानी ब्लैक को दिया गया है, यही उस सम्प्रदाय का प्रमाण है कि सब लोग बराबर हैं। लेकिन हिन्दू वर्णाश्रम धर्म में इस तरह की समानता नहीं दिखाई देती है। लेकिन इस्लाम भारत में आने के बाद उस समानता को खो बैठा। इस पर हिन्दू वर्णाश्रम धर्म का प्रभाव पड़ा। इसके कारण इस्लाम में भी ऊँच–नीच की और जातिगत भावना फैल गयी। इस्लाम

सम्प्रदाय में फूट आ गया। परिणामस्वरूप तीन सम्प्रदाए हुए। जैसे सुन्नी, शिया और सूफी हैं। ये सब एक ही भगवान को मानते हैं। लेकिन इनमें रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं है। एक दूसरे का कहा सुनते नहीं और मानते भी नहीं है। एक दूसरे को अपना दुश्मन समझते हैं। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नोक्त उद्धरण है।

"का बतावें कैसे मुश्किल से जान छुड़ाके आए हैं। सब लटक गई थीं कुछ खैबे कारो। लाख कहें कि तबीयत ठीक ना है लेकिन काहे को मानिएँ सब। का करते एक–दो फ़ाक नारंगी खाए पड़ा। खाना खाने से तो बचे। कौन खइये खाना भाई शीया घर का। जाने का मिला दें उसमें।"[69]

"सुनते हो यह हरामी, सुअर का पिल्ला, शीया का बच्चा क्या कह रहा है। कहता है असे तबर्रा पढ़ने दिया जाए । यज़ीद की इन औलादों को सहा बाए कराम की तौहीन करने की इजाज़त दे दी जाए और हम सुन्नी मुसलमान इन हराम ज़ादों की बकवास सुनते रहें। हरामी के पिल्ले ये नहीं समझते कि हम चाहें तो इन सबको अभी फलगु के रेत में जिंदा गाड़ दे सकते हैं।"[70]

उपरोक्त दोनों उद्धरणों में सुन्नी और शिया की समस्या है। सुन्नी और शिया मुसलमान होते हुए भी, ये अलग अलग सम्प्रदाय के रूप में प्रचलित हैं। इन दोनों के बीच साम्प्रदायिकता उतनी ही है जितनी हिन्दू और मुसलमानों के बीच रहती है। इस को और ज्यादा बढ़ाने के लिए और इनके बीच का नफरत को बनाए रखने के लिए कुछ संगठन राजनीति करते रहते हैं।

---

[69] पृष्ठ संख्या, 325, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

[70] पृष्ठ संख्या, 327, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

2.3.2. हिन्दू धार्मिक कलाकार

"This led Muslims and Christians also to assert that although their religion was fundamentally different, and that theoretically it is opposed to caste, in practice their society was more or less caste-ridden…Muslims came forward to prove that except for the four upper castes, namely sheikh, Syed, Moghul and Pathan, all the other Muslim castes were inferior and backward. They told the Ministry of Education and the backward Classes Commission that caste is rampant among them"[71]

भगवान और उनकी मन्दिर एवं मन्दिर से संबंधित कोई भी चीज हो, वह सब ऊँची जातियों का ही खजाना माना जाता है। लेकिन उनके बनाने में, उनके गढ़ने में, उनके रंगने में छोटी जातियों का योगदान ही ज्यादा होता है। शुरुआत से अंतिम तक, सुबह से शाम तक और रात–दिन मेहनत करते हैं। इसमें जितना नीची जाति वालों का योगदान है उतना ही अन्य कौम वालों का योगदान है। जैसे मन्दिर का निर्माण करने में कई लोगों के हाथ लगते हैं। किसी मूर्ति को गढ़ने में और उसके लिए पत्थर को तोड़ने में पता नहीं कि कितने लोगों के, कितनी तरह की जाति के लोगों के हाथ उसमें लग जाते हैं। मूर्ति बनने के बाद उसको रंगना होता है, इसके रंगते समय कितने लोगों के हाथ लगते होंगे। तो इसका मतलब हुआ कि भगवान और उससे जुड़ी कोई भी चीज किसी एक कौम या किसी एक जाति की नहीं होती बल्कि वह सब का होता है। हिन्दू धर्म यानी भगवान से संबंधित चीजों की तैयारी करने वालों को धार्मिक कलाकार कहते हैं। इनमें कई जाति के और अन्य धर्म के लोग भी आते हैं। एक हिन्दू धर्म के संबंधित चीजों को एक मुसलमान तैयार करके बेचता है। तो इससे पता चलता है कि इनमें कितनी मिली–जुली और एकता की भावना है। जिस भावना को भड़का के अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। इन समस्याओं को 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में देख सकते हैं।

---

[71] P no 59-60, Communalism, Caste and Hindu Nationalism, Ornit Shani, Cambridge University Press-2007

"अच्छा, हमारे यहाँ न जाने कितनी एविडेंस हैं कि कभी नीची जाति वाले, कभी अलग कौमवाले, ऊँची जाति, दूसरी कौम के लिए धार्मिक कलाकारी यानी उनके भगवानों की कथा पेंट करना, मूर्ति गढ़ना आदि करते थे। सोचो, क्या इंटरैक्शन होगा, क्या भावनाएँ होंगी, मज़ेदार गुत्थमगुत्था है ! "[72]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार भारतीय समाज में ऊँच नीच की भावना और भगवान भी है। बावजूद इसके मिली–जुली संस्कृति भी है। लेकिन अपने स्वार्थ के लिए राजनीतिक लोगों ने मिश्रित समाज को जाति के नाम पर अलग–अलग करते हैं। छोटी जाति के लोगों को मुसलमान के वफादार ठहराते हैं।

2.3.3. मुसलमान–चमार और राजनीति

हिन्दू धर्म सम्प्रदाय ने चमारों को अछूत ठहराया है। आदि से आज की 21वीं सदी में भी वही भावना रखते हैं चमारों के प्रति। यह सही बात है कि मुसलमानों की और चमारों की खान–पान, रहन–सहन की संस्कृति एक जैसी लगती होगी। चमार और शूद्र इस देश के मूलनिवासी है। तो इन की संस्कृति विदेशी मुसलमान की संस्कृति से मेल कैसे खाती है ? इस पर सोचने से यह पता चलता है कि मुसलमान की संस्कृति विदेशी होने पर भी मूलनिवासी चमार को यानी अछूत चमार को अपने गोद में लिया है। यदि मान लिया जाय कि हिन्दू धर्म सम्प्रदाय सांस्कृतिक समाज देशी, होते हुए भी इन मूलनिवासी चमारों से न तो मिले न मिलाएं। ऊपर से इनको बदनाम करते हैं कि चमार मुसलमान के वफादार हैं। भारत स्वतंत्र देश है। पाँच साल में एक बार चुनाव आता है। जिसमें तो ज्यादातर ऊँची जाति के ही लोग ठहरते हैं। लेकिन नीची जाति के वोटों के बिना इनका जीतना मुश्किल हो जाता है। तो इनको अपने स्वार्थ को साकार करने के लिए, चमारों के वोट चाहिए। चुनाव के समय में वोटों को प्राप्त करने के लिए लोगों को खिलाते हैं, पिलाते हैं। जरूरत समझें तो कुछ रुपए–पैसे देते भी हैं। नीची जाति के लोग ईमानदार होते हैं। यदि किसी

[72] पृष्ठ संख्या, 32, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

के पास वोट के बदले रुपए लिये तो उसके लिए सोचते हैं। तन–मन से उसको वोट देते हैं। उसको मान–सम्मान देते हैं। जितना उस विधायक से लिये थे, उससे ज्यादा रुपए खर्चा करके माला खरीद के उनके गले में डाल देते हैं। अपना मन का बोझ हल्का कर लेते हैं। उनके प्रति इनका प्यार और इज्जत दिखाते हैं। इन समस्याओं को उपन्यास 'काला पहाड़' में दर्शाते हैं उपन्यास कार भगवानदास मोरवाल। जो निम्नोक्त प्रकार है–

"भई चाचा, मेरी समझ में तो बस एक ही बात आ री है....."किसनलाल ने इतना कहकर जगनी की बैठक में बैठे लोगों पर एक सरसरी नज़र दौड़ाई और फिर कहने लगा," वोट तो हमें मानक को ही देनी होगी और यही एक तरीका भी है अपने आपको बचाने का ......अगर मानक चंद हार जाता है तो यह मान कर चलो की यह बदनामी हमारे सिर आनी ही है, क्योंकि आज भी हम चिमार–चुहड़ों को ये लोग मुसलमानों का वफादार ही मानते हैं.....और अगर वह जीत जाता है तो इक्कीस सौ रुपए की माला हम उसके गले में डाल देंगे.....इस तरह हमरे मन से हजार रुपए की बोझ भी उतर जाएगा और उन्हें यह लगेगा कि देखो इन लोगों के अंदर हमारे लिए कितना प्यार और इज्जत है......मेरी समझ में तो यही एक बात आती है.....अगर किसी के दिमाग में कोई और बात है तो वह भी बता दे।"[73]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार, यह समझ में आता है कि चुनाव के समय में ऊँची जाति के हिन्दू राजनीतिक नेता, चमारों की बस्ती में जाते हैं वोट माँगने। ये वोट के लिए कुछ पैसे भी देना चाहते हैं। अर्थात् वोट खरीदना चाहते हैं। लेकिन दलित जाति के लोग ईमानदार होते हैं। ये वोट के बदले में पैसे नहीं लेना चाहते हैं, यदि राजनीतिक नेता जबर्दस्ती से दिये तो उसे किसी न किसी रूप में वापस कर देना चाहते हैं।

---

[73] पृष्ठ संख्या, 389, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

2.3.4. धुनिया–चुड़िहार और ऊँची जाति के मुसलमान

कहा जाता है कि इस्लाम में जातिगत भावना और ऊँच–नीच की भावना नहीं है। लेकिन ऐसा नहीं है, इसमें भी जातिगत भावना और ऊँच–नीच की भावना है। लेकिन हो सकता है कि हिन्दू धर्म की तुलना में कम। इसके साथ हरेक धर्म सम्प्रदाय में दो वर्ग तो रहते ही हैं। वो एक अमीर और दूसरा गरीब। मार्क्सवादी वर्ग दृष्टि से अगर देखें तो ये सभी अमीर वर्ग एक ही हैं यानी मिलके ही रहते हैं। ये चाहें किसी भी धर्म सम्प्रदाय के हों। ये जान बूझ के किसी भी अपने वर्ग के लोगों का विरोध, अपने सम्प्रदाय के गरीब लोगों के मदद के लिए नहीं करते हैं। अगर ये चाहें तो अपने सम्प्रदाय के गरीबों के घर आना–जाना छोड़ देते हैं। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में अपने सम्प्रदाय के गरीब को मदद करना छोड़ देते हैं। कहता है कि इन धुनियों–चुड़िहारों के वजह से उन पंडितों से दुश्मनी मोल नहीं लना चाहता हूँ। उनके घर आना–जाना भी छोड़ दिया जाय। इन समस्याओं को निम्नोक्त उद्धरण से समझ सकते हैं–

" 'देखो सत्तार की अम्माँ, मैं कहे देता हूँ तुमसे, इन धुनियों–चुड़िहारों के घर तुम न जाया–आया करो। इन्हें सिर पर चढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं है। तुम क्या समझती हो कि इस चुड़िहार की ज़ात के वास्ते मैं पंडितजी से दुश्मनी मोल लूँ ?' "[74]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह समझ में आता है कि इस्लाम सम्प्रदाय में भी जाति प्रथा है। कहा जाता है कि इस्लाम में जाति नहीं होती है। बल्कि इस्लाम में भी जाति और ऊँच–नीच वाली भावना के साथ–साथ वर्ग भी मौजूद है। कोई भी अपने वर्ग के लोगों से दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहते हैं, क्योंकि वे एक ही हैं।

[74] पृष्ठ संख्या, 32, मुखड़ा क्या देखे

2.3.5. इस्लाम–रोटी–बेटी का रिश्ता

इस्लाम के अंतर्गत तीन सम्प्रदायें हैं। जैसे सुन्नी, शिया और सूफी। इनमें भी कई वंश के नाम से और जाति के नाम से जाने जाते हैं, जैसे खाँ, सैयद, मुहम्मद, कुरैसी, कसाई, जुलाहा...आदि। 'सभा पर्व' उपन्यास में अब्दुल कसाई का बेटा कुरैसी जाति के लड़की से प्यार करता है। वह अपने पिता अब्दुल कसाई से कहता है कि ''बाबा हम कुरैसा से ब्याह करबी ''। यह सुन कर अब्दुल कसाई आगबबूला हो जाता है। अपने बेटे की पिटाई करता है। कहता है कि क्या अपन जात–बिरदरिया में लड़कियन सब मर गेलन। अर्थात् अब्दुल कसाई अपनी ही जाति की लड़की से शादी कर्वाना चाहते हैं। उनही अपनी सम्प्रदाय में दूसरी जाति की लड़की साथ शादी नहीं करने देता है। इस्लाम सम्प्रदाय में भी जातिगत समस्या के कारण रोटी–बेटी का रिस्ता नहीं है। इन समस्याएं 'सभा पर्व' उपन्यास में दर्शाते हैं।

"बाबा हम कुरैसा से ब्याह करबी।" अब्दुल क़साई के हाथ से हूक्के का नैचा छूट गया। उसने ज़ोर से एक लात खीं‍च कर मारी और दिलदार ज़मीन पर एक तरफ़ को लुढ़क गया। "ख़रैसा से ब्याह करबी !" अब्दुल क़साई जा अब उठ बैठा था चीख़ते हुए बोला–"सार को सरम–लहाज कुछु ना। अपन जात–बिरदरिया में लड़कियन सब मर गेलन। ऐही वास्ते जुलहवा का बेटिया से ब्याह करबे तू !"[75]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार इस्लाम में भी जाति प्रथा है। सभी मुसलमान एक ही अल्लाह को मानते हैं, फिर भी इन के बीच रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं हैं। वैसे ही हिन्दू समाज में पहले से ही जाति प्रथा मौजूद थी और आज भी है। इस हिन्दू सम्प्रदाय का प्रभाव इस्लाम पर है।

---

[75] पृष्ठ संख्या, 125, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

2.3.6. जन्म से आदमी बड़ा नहीं होता

हमारे धर्म–सम्प्रदायों में और संस्कृति के साथ यह भावना को जोड़ दिया गया है कि आदमी को जन्म से ही ज्ञान प्राप्त होता है। वह भी वर्ण एवं जाति पर निर्भर करता है। हमारे समाज में ऐसा मानते हैं कि ब्राह्मण जाति के लोग जन्म से ज्ञानवान होते हैं, क्योंकि वह मात्र ब्राह्मण जाति में पैदा हुए हैं इसलिए। वैसे ही बाकी ऊँची जाति में भी होता है। लेकिन यह सही नहीं है। जाति से ज्ञान का कोई संबंध नहीं है। कोई भी जाति के हों जब जन्म लेता है तो उनको कुछ नहीं पता होता है। जैसे–जैसे बड़ा होता है वैसे–वैसे उसको ज्ञान की प्राप्ती होती है। उस बच्चे पर समाज का प्रभाव ज्यादा पड़ता है। वैसे ही ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा, अमीर–गरीब...आदि भी जन्म से नहीं होते हैं। वह करम से होते हैं। इन ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा, छुआछूत...आदि के विरोध में गाँधी ने संघर्ष की है। इन समस्यओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में देख सकते हैं।

"हे त्तेरे की.....यार जगनी तोसू कितनी बार कह दी कि आज का जमाना में ना कोई छोटा है ना बड़ा, ना अमीर है ना गरीब......यार, जनम से आदमी बड़ा नहीं होता, करम से होता है......अरे, इसी छुआछूत और छोटे–बड़े के खिलाफ तो गाँधी जी ने संघर्ष किया था..... और तू अभी भी वैसी ही बात कर रहा है.....।"[76]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह है कि जन्म से ही कोई आदमी बड़ा या छोटा नहीं हो सकता है बल्कि कर्म से होता है। इस बात से मैं भी सहमत हूँ क्योंकि ऐसा नहीं कि किसी ने ऊँची जाति में जन्म लिया है तो वह सबसे ऊँचा या बड़ा है। इस बात को भी मान सकते हैं कि गांधी जी ने छुआछूत के विरोध में संघर्ष किया है बल्कि इन से भी ज्यादा अम्बेडकर ने किया है।

---

[76] पृष्ठ संख्या, 383, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

इस्लाम का जन्म ही ऊँच–नीच के विरोध में हुआ था। भारत देश में आते ही उसके स्वरूप में बदलाव आ गया है। हाँ यह बात सही है कि ये सब एक ही अल्लाह को मानते हैं। यह भी सही है कि नमाज़ के समय में एक करोड़पति मुसलमान और एक गरीब मुसलमान पास–पास में ही बैठ कर नमाज़ पढ़ते हैं। लेकिन इनमें फूट आने के बाद इनके मस्जिदें भी अलग अलग हो गई है। सुन्नी के मस्जिद अलग हैं और शिया के अलग हैं। सूफियों के लिए दरगाह हैं। सुन्नी लोग दरगाह को नहीं मानते हैं। ये दरगाह और दरगाह की संस्कृति को नीचा मानते हैं। बाहर से आये हुये मुसलमान अपने आप को ऊँचा समझते हैं, जो यहाँ से इस्लाम को कुबुल किये को दूसरे दर्जे के समझते हैं। कुल मिलाकर भारतीय इस्लाम में भी ऊँच–नीच की भावनाएं हैं।

2.3.7. इस्लाम और ऊँच–नीच

इस दुनिया में कोई भी मजहब क्यों न हो वह असमानता की नींव पर खड़ा होता है। लेकिन हाँ इस बात को मान सकते हैं कि कुछ मजहब में असमानताएं ज्यादा है और कुछ मजहब में असमनताएं बहुत कम हैं। तो इस्लाम मजहब में असमानताएं बहुत कम दिखाई देता हैं। अर्थात् अन्य मजहबों की तुलना में इस्लाम में असमानताएं नहीं के बराबर लगता है। दरअसल कुरान में वर्ण, जाति...आदि में मनुष्य को अलग अलग करके अपने–अपने खानों में बँटा हुआ नहीं दिखाई देता है। खासकर भारत के संदर्भ देखा जाए तो, भारत में हिन्दू वर्ण श्रम धर्म के वजह से लोगों को वर्णों में और जातियों में बाँटा गया है, जिस के वजह से छुआछूत की भावना फैलाई गयी है। तो इस्लाम भारत में आने के बाद यहाँ के अछूतों को और पिछड़ों को अपने सम्प्रदाय में मिला लिया और बराबर का मान–सम्मान दिया गया है। इस प्रकार इस्लाम भारत में ऊँच–नीच, बड़े–छोटे का जो फ़र्क़ को इस्लाम ने मिटाया है इसमें कोई शक नहीं। इन समस्याओं को नीचे दिये गये उद्धरण में देख सकते हैं–

"इस्लाम ही वह मज़हब है जो इन्सान को ख़ानों में नहीं बाँटता। उसकी नज़र में तमाम इन्सान बराबर हैं। इन्सानों में ऊँच–नीच और बड़े–छोटे का फ़र्क़ इस्लाम ने मिटा दिया है। "[77]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह समझ में आता है कि इन्सानों में ऊँच–नीच और बड़े–छोटे का फ़र्क इस्लाम ने मिटा दिया है। इसीलिए शुरुआत में कई हिन्दू के ऊँची और नीची जाति के भी इस्लाम कुबूल किए हैं। लेकिन इस्लाम में भी हिन्दू सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण, आज भारतीय मुसलमानों में जाति के और ऊँच–नीच के भावनाएं आ गए हैं।

2.3.8. बाबा एवं जाति

नरायण गुरु भी एक छोटी जाति के ही थे, जिन्होंने आध्यात्मिक प्रजातंत्र की स्थापना की। उनकी अपनी जाति के नाम से ही द्रविड़ संस्कृति का प्रतीक शिव लिंग को प्रतिष्ठित किया है। वैसे ही गुरु परम्परा में आदि से आज तक ऊँची जाति के गुरु, बाबा, ऋषि, मुनि...आदि के विरोध में, छोटी जाति के गुरु, बाबा, ऋषि, मुनि, ज्ञानी...आदि जन्में हैं और ऊँची जाति के कब्जें में बंद निर्गुण एवं निराकार भगवान को मुक्ति दिलाएं हैं। जैसे रामायण काल से आज तक यदि इनको देखा जाय तो, रावण, बालि, शंबूक, एकलव्य, भगवान बुद्ध, नारायण गुरु, पेरियार, रामस्वामि, रविदास, कबीरदास, सेवा लाल, हाथि राम बाबाजी, ज्योतिराव फूले, बाबा साहेब अम्बेडकर... आदि हैं। तो इन गुरु के अनुयायी भी छोटी जाति के ही होते थे और हैं। इन के कुटी पर ऊँची जाति के लोग नहीं जाते थे और नहीं जा रहें हैं। लेकिन रामवादी और हिन्दुत्ववादी लोग अभी–अभी इनके पास जाने लगे हैं। ये इसलिए उनकी कुटी पर जा रहें हैं कि इन छोटी जाति के लोगों को मस्जिद तोड़ने के लिए उकसाना चाहते हैं। उनकी अपनी रामवादी राजनीति के लिए यानी सत्ता प्राप्त करने के लिए इन छोटी जाति के बाबा, गुरु... आदि के अनुयायियों को इस्तेमाल करना चाहते हैं,

---

[77] पृष्ठ संख्या, 22, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

तथा इनको बदनाम करना चाहते हैं। इनको अपराधी ठहराना चाहते हैं। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देखा जा सकता है।

“नहीं, दिक्कत खास कुछ नहीं ! बात यह है कि बाबा छोटी जाति के हैं। उनके चेले भी छोटी जाति के हैं इसलिए हम लोग कभी जाते नहीं वहाँ। कोई मना ही नहीं है। बस एक अदृश्य आत्मवर्जना ! वे लोग भी शायद हम लोगों के जाने से असुविधा महसूस करें। खुश भी हो सकतें हैं। वैसे पिछले दिनों तो रामवादी पार्टी के लोग कई बार गए हैं कुटी पर। अयोध्या चलने के लिए भी निमंत्रित करने गए थे।...आइए घुमा लाएँ।”[78]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह है कि समाज में सद्‌गुरु, बाबा...आदि के भी जाति होती है। ये भी छोटी जाति के होते हैं और इनके शिष्य भी छोटी जाति के ही होते हैं। यह कोई आश्चर्य की नहीं है क्योंकि जब समाज में जाति है तो उन जाति के बाबा, गुरु तो होते ही हैं। यह जाहिर सी बात है कि ऊँची जाति के लोग इन नीची जाती के गुरु, बाबा के पास नहीं आते हैं। बल्कि जब चाहें तब इनका इस्तेमाल करते हैं।

2.3.9. नीची जाति बनाम ऊँची जाति

हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में वर्णाश्रम धर्म के वजह से, चार वर्णों का निर्माण किया गया हैं। इस वर्णाश्रम धर्म के अनुसार एक वर्ण समाज दूसरे या अन्य वर्ण समाज के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों से कोई संबंध नहीं रहता हैं। वैसे ही कालांतर में उसी वर्णों में से एक वर्ण शूद्र को सबसे नीचा माना जाता आया है। कालांतर में इस शूद्र वर्ण में भी कुछ लोग आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। वे जैसे–जैसे विकसित हुए वैसे–वैसे उन ऊँचा वर्ण का अनुकरण करते दिखाई देते है, सामाजिक स्तर के लिए। इस क्रम में अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हुआ प्रतीत होता है। तो इनमें जो जो जातियाँ ब्राह्मणों को अनुकरण नहीं किया था और

---

[78] पृष्ठ संख्या, 58, त्रिशूल–शिवमूर्ति

उसका विरोध जो जाति की थी उनको अछूत ठहराया गया। इन जातियों में कोई रिश्ता नहीं हैं। एक जाति दूसरी जाति में तब्दील भी नहीं हो सकती जैसे एक धर्म सम्प्रदाय के लोग दूसरे धर्म सम्प्रदाय को कुबूल कर सकते हैं। इस्लाम इस देश में आने के बाद, इस्लाम का जो मनुष्य की बराबरी सिद्धांत के तरफ, यहाँ के अछूत और नीची जाति के दलित, शूद्र इस्लाम सम्प्रदाय को कुबूल किये हैं। लेकिन वहाँ भी इन के साथ ऊँच–नीच और छुआछूत की भावना नहीं छूटी है। जैसे 'सभा पर्व' उपन्यास में बदीउज़्ज़माँ कहते हैं कि जुलहवन, दुसधवन वही रहेंगे, ये कभी भी सैयद, शेख, पठान नहीं बन पायेंगे, जैसे चमार–दुसधवन सब ब्राह्मण या कायस्थ नहीं बन सकते हैं। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देखा जा सकते हैं।

"लेकिन जुलहवन जुलहवन ही रहीएँ आउ दुसधवन दुसधवन ही रहीएँ। ई तो ना हो सके है कि जुलहवन सैयद शेख या पैठान बन जाअयें आउ दुसधवन–चमरवन सब बाम्हन या कायस्थ बन जाइयें, काहे डिप्टी साहेब ई हो सके है कभी ?"[79]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार इस्लाम में भी जाति और ऊँच–नीच की भावना मौजूद नजर आता है। मुसलमानों में भी कुछ ऐसी जातियां हैं जो अपने को ऊँची मानती हैं। जैसे सैयद, शेख और पठान...। ये जुलह, दुसधवान, चूड़ीहार...आदि जातियों को अपने से नीची मानते हैं।   हैं। हिन्दू में ब्राह्मण और दलित हैं। ये अभी तक अपनी जाति से दूसरी में तबदील नहीं हुए हैं। शायद आगे भी नहीं हो सकते हैं। ऊँची जाति के विरोध में दलित आंदोलन चल रहे हैं

2.4. धर्म(हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और छुआछूत समाज

छुआछूत की भावना किसी देश में और किसी समाज में नहीं हैं भारत देश के सिवाए। हाँ अनेक देशों में यह है कि काले और गोरे, गरीब और अमीर की समस्याएं हैं। केवल

[79] पृष्ठ संख्या, 297, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

भारत देश में ही छुआछूत क्यों है ? भारत देश में छुआछूत इसलिए हैं कि यहाँ वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया गया है। सबसे पहले दो ही जातियाँ हैं, जो एक राक्षस जाति और दूसरी देव जाति। इसके बाद में मनु ने मनुस्मृति लिखा है। इनके अनुसार चार वर्ण हैं, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य और शूद्र। ये ब्रह्मा के विविध अंगों में से जन्म लेते हैं। उन अंगों के अनुसार इनके स्तर का निर्धारण किया गया है। सबसे ऊँचा स्तर ब्राह्मण को दिया गया है और सबसे नीचा स्तर शूद्र को दिया गया है। शूद्र को कोई हक नहीं दिया गया है। कहा गया है कि शूद्र को उन तीनों वर्णों की सेवा करनी है। कालांतर में इन शूद्र में से अनेक जातियाँ जन्मी मालूम पड़ती हैं। आधुनिक भारत देश में चार हजार पांच सौ जातियाँ हैं। इनमें हर एक जाति की अपनी संस्कृति है। इनके बीच रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं है। कुछ जातियों के परछाईं पड़ने से ही निर्जीव पदार्थ तक अपवित्र हो जाते हैं। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय का प्रभाव बाकी भारत में जितने धर्म–सम्प्रदाय हैं, उतने पर पढ़ा है। इसलिए छुआछूत भारतीय इस्लाम में है, भारतीय ईसाइयों में भी छुआछूत है। जितने धर्म–सम्प्रदाय हैं उन सभी में छुआछूत हैं। इन आदि समस्याओं पर इसमें चर्चा किया गया है।

2.4.1. हिन्दू–मुसलमान और छुआछूत

यह तो उचित और ईमानदारी पूर्ण बात है कि हम किसी का छूआ नहीं खाते तो दूसरे या अन्य भी हमारा छूआ नहीं खाएं। लेकिन यह एक दूसरे के साथ अपमान भी होता है। कोई भी मुसलमान अपने सम्प्रदाय के लोगों के साथ–साथ और अन्य धर्म सम्प्रदाय के लोगों से भी अच्छा रिश्ता और रख रहें हैं। अपने सम्प्रदाय के और अपने बिरादरी के मेहमान उनके अपने घर आते–जाते रहते हैं। वैसे तो उपन्यास 'सात आसमान' में जो मुसलमान को अपने घर पर मेहमानों का आना–जाना बहुत अच्छा लगता है। यह मेहमानों को महिनों भर घर पर रख लेते थे। उनके मन पसंद का खाना खिलाते थे। हिन्दुओं को भी खिलाते थे। कोई हिन्दू मुसलमान के हाथ का छूआ नहीं खाता तो इसको उचित ही मानते थे, क्योंकि मुसलमान हिन्दू के हाथ का छूआ नहीं खाता तो हिन्दू भी मुसलमान के हाथ का छूआ नहीं खाएं। इसलिए हिन्दुओं के लिए अलग से रसोई बनवाता था। अर्थात्

छुआछूत केवल जाति में ही नहीं बल्कि सम्प्रदायों के बीच भी है। इन समस्याओं को उपन्यास 'सात आसमान' में देख सकते है, जो नीचे उद्धृत है।

"मेहमानों और ख़ास तौर पर रिश्तेदारों के आने से अब्बा मियाँ को बड़ी खुशी होती थी। कुछ रिश्तेदारों को तो वो महीनों रोक लेते थे। मेहमानों की ख़ातिरदारी के भी उनके अपने तरीक़े थे। हिंदू मेहमानों के लिए हिंदू रसोइया बुलाया जाता था। वह अपने बर्तन साथ लाता था। उसे सूखी जिन्स दी जाती थी और वह बड़ी नीम के नीचे ईंटें रखकर चूल्हा बनाता था और शुद्ध खाना तैयार करता था। वे हिन्दू का छुआ न खाते थे। इसी तरह इस बात को भी सही समझते थे कि हिंदू मुसलमान के हाथ का छुआ न खायें। अगर कोई हिन्दू उनसे यह कह देता था कि वह मुसलमान के हाथ का छुआ नहीं खाता, उन्हें यह बुरा तो क्या बहुत ही उचित लगता था और उसकी ख़ातिरदारी हिंदू रसोइया करता था।"[80]

2.4.2. स्त्री–पुरुष संबंध और छुआछूत

हम यह सोचते हैं कि किसी नीची जाति के लड़की को किसी ऊँची जाति के लड़का प्यार करके शादी कर ले या किसी नीची जाति के लड़का किसी ऊँची जाति के लड़की से प्यार करके शादी करले तो जातिगत भावना और छुआछूत चला जाएगा। किसी छोटी जाति की या कोई चमार की औरत किसी ऊँची जाति के मर्द के साथ संबंध रखती हुई, यह समझती है कि मेरे साथ कोई ऊँच–नीच और छुआछूत की भावना नहीं है, तो वह बहुत बड़ा गलत और भूल हो सकता है। क्योंकि उपन्यास 'हमरा शहर उस बरस' में एक बुजुर्गवार इस कलियुग की एक दूसरी जातियों की मिलावाट को देख के अपना दुःखी विचार व्यक्त करता है कि वे अपने जमाने में छुआछूत और ऊँच–नीच का खयाल रखते थे। अपने जामाने में किसी चमारिन के साथ इनका संबंध था, तो भी खान–पान की जगह छुआछूत का खयाल रखते थे। उनके संबंध के दौरान वे कभी भी उस चमारिन के मुँह पर

[80] पृष्ठ संख्या, 50, सात आसमान–असगर वजाहत, राजकमल प्रकाशन 1996

नहीं चूमा है। अर्थात् प्यार, मुहब्बत, संबंधों से ऊँच–नीच और छुआछूत का भावना नहीं जाएगा, बगैर इस मनुवादी व्यवस्था के विरोध में लड़ें। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

"...कैसा घोर कलियुग आ गया है, बुजुर्गवार बोले, एक हम थे कितने उसूलों से जिए। सारी दुनिया जानती है कि उस चमारिन से हमारी आश्नाई चल रही थी, लेकिन खानपान, छुआछूत का हमने पूरा ख्याल रखा, क्या मजाल कि कभी उसे मुँह पर चूमा हो?' तो भई, तरह–तरह के उसूल हुए !"[81]

उपरोक्त प्रकार दलित और ऊँची जातियों के स्त्री–पुरुषों के बीच व्यक्तिगत संबंध यदि हो सकते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि इनके बीच जातिगत एवं छुआछूत की भावना नहीं हैं। भारत देश में जाति व्यक्ति के साथ ही रहती है जैसे कि छाया।

2.4.3. शादी–दावत और छुआछूत

छुआछूत कई रूपों में दिखाई देता है। आज एक चर्चा चल रही है कि इस आधुनिक युग में ऊँच–नीच और छुआछूत की भावना लोगों में से चली गयी है, यानी समाज में बहुत बड़ा बदलाव आ गया है। लेकिन यह ठीक नहीं लगता है, क्योंकि समाज में उतना बदलाव नहीं आया है जितना वे सोचते हैं या जितना आना चाहिए। किसी शादी–ब्याह और पर्व–त्यौहार को यदि गौर से परखा जाए तो पता चलता है कि छुआछूत कितना है। शरीफ़ों के घरों में शादी–ब्याह और दावतें होतीं तो इन नीची जाति के लागों को इनमें आमंत्रित नहीं किया जाता था और जा रहा हैं। अगर कोई पास–पड़ोस को दावत को बुलाने से वंचित रखना असंभव नहीं होता तो भी आमंत्रित नहीं करते। हो सके तो खाना उनके घर भिजवा देते हैं। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में देख सकते हैं, जो इस प्रकार है।

---

[81] पृष्ठ संख्या, 95, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री, राजकमल पेपर बैक्स 1998

"इसी तरह शादी–ब्याह और पर्व–त्योंहारों के अवसर पर भी इस फ़र्क़ को महसूस किया जा सकता था। शरीफ़ों के घरों में शादी–ब्याह के मौक़े पर दावतें होतीं तो नीची ज़ात के लोगों को इनमें आमंत्रित नहीं किया जाता था। पास–पड़ोस के लोगों को अगर दावत से वंचित रखना संभव न होता तो उनके लिए खाना उनके घर भिजवा दिया जाता था। एक ही दस्मरख़्वान पर उन्हें साथ बिठाकर भला शरीफ़ लोग कैसे खा सकते थे ! यह बहुत बूरी बात मानी जाती थी।"[82]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह मालूम पड़ता है कि छुआछूत अपनाने के कई तरीके हैं। कहा जाता है कि इस आधुनिक और वैज्ञानिक युग में जाति प्रथा और छुआछूत...आदि भावना नहीं है। लेकिन यह ठीक नहीं है, क्योकि आज भी छुआछूत...आदि भावना हैं, बल्कि तरीका बदला है।

2.4.4. मलेच्छ–छुआछूत

मलेच्छ यानी गो माँस खाने वाला। इस शब्द को ज्यादातर मुसलमानों के संदर्भ में इस्तेमाल करते हैं। लेकिन गो मॉस तो हिन्दू में कई जाति के लोग भी खाते हैं। खास कर अछूत जाति के लोग खाते हैं। आज–कल तो ऊँची जाति के हिन्दू लोग भी खाने लगें हैं। इसका किसी को सबूत अगर चाहें तो वो एक दिन हैदराबाद में इरानी बिरयानी होटल में जाके देख सकते हैं। उत्तर भारत में कई ब्राह्मण मछली खाते हैं। बंगाल के ब्राह्मण तो बिना मछली का खाना ही नहीं जाता जैसा है। तो एक आदमी के गुण यानी अच्छा–बुरा यह निर्धारण करने के लिए, मांसाहार और शाकाहार ये कोई प्रमाण नहीं होते हैं। वह कैसा आदमी है, उनके व्यवहार से पता चलता है। यह कुछ हिन्दुत्ववादियों का काम है कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो सहिष्णुता भावना है जिस पर चोट करना चाहते हैं। तथा इनके बीच की दूरी को और बढ़ाना चाहते हैं। इन समस्याओं को 'त्रिशूल' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

[82] पृष्ठ संख्या, 22, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

“स्वभाव से क्या होता है जी ? स्वभाव अच्छा है तो चौके में घुस जाएगा? ’मलिच्छ’ होकर बर्तन–भाँडा छूएगा ? सब कुछ ‘भरभड़’ करके रख दिया ”[83]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार यह है कि मांस खाने वाला बर्तन–भाँडा नहीं छू सकता है। लेकिन क्या यह सम्भव है कि बिना उनके छुए बर्तन की तैयारी होती ? यह असम्भव है। वैसे तो कौन नहीं खाता मांस–मछली, बंगाली ब्राह्मण भी तो खूब मछली खाते हैं।

“अरे, आजकल अब इतना नहीं देखा जाता बहन। आजकल होटल में तो पता नहीं कौन किस जाति का छुआ खा रहा है।”[84]

उपरोक्त के अनुसार यह समझ में आता है कि आजकल छुआछूत को उतना नहीं देखा जाता है जितना पहले। आजकल होटलों में खाना बनाने वाला और खाना देने वाला कौन किस जाति का है कहना बहुत मुश्किल है। फिर भी वह भावना समाज में है।

2.4.5. रेडिमेड कप–होटल और छुआछूत

जब से छोटी या अछूत जाति के लोग ज्यादातर होटलों में जा कर चाय पीना शुरू किये हैं तब से रेडिमेड कप बनाने का आईडिया उनके दिमाग में आया मालूम पड़ता है। इससे पहले तो होटलों में दो तरीके के ग्लास रखते थें। एक तरह के ग्लास में ऊँची जाति के लोगों को चाय देते थें और दूसरे तरह के ग्लासों में नीची जाति के लोगों को चाय पिलाते थें। इसको लेकर लोगों में बहुत विरोध हुआ था। तो ये सोंचे होंगे कि इनका छुआ और पीकर जाने का कप को धोने से अच्छा है फेंक दिया जाए। इसके लिए रेडिमेड कप की तैयारी की गयी मालूम पड़ती है। इस व्यवस्था से अपनी होटेल की ग्राहक भी बढ़ती हैं और धोने–धुलाने का चक्कर भी नहीं रहता है। महीने में बिकी चाय की गिनती भी हो

---

[83] पृष्ठ संख्या, 36, त्रिशूल–शिवमूर्ति

[84] पृष्ठ संख्या, 36, त्रिशूल–शिवमूर्ति

जाती हैं। अर्थात् सार्व– जनिक होटलों में भी जाति, ऊँच–नीच और छुआछूत अपनाते हैं और अपना रहें हैं। इन समस्याओं को उपन्यास 'त्रिशूल' में देख सकते हैं।

"सवेरे की चाय के अलावा, बाकी दिन की चाय इन्हीं कुल्हड़ों में पीता हूँ। गाँव में ही मिल जाते हैं। पीजिए और फेंकिए। धोने–धुलाने का चक्कर नहीं। दिन–भर कौन कप धोए। कभी–कभी छोटी जाति के मिलने–जुलनेवाले लोग भी आ जाते हैं। उनके पीकर जाने के बाद कप धोते हुए हमारी श्रीमतीजी बहुत भुनभुनाती थीं। इसलिए यह व्यवस्था। महीने–भर में पी गयी चाय की गिनती भी हो जाती है।"[85]

उपरोक्त के अनुसार, होटल में भी जाति और छुआछूत अपनाते हैं। कई होटलों में दो तरीके के ग्लासें यानी कप्स देखने को मिलते हैं। ऊँची जाती के लोगों के लिए एक तरह के कप्स और दलितों के लिए एक तरह के कपें रखी जाती हैं। इस पर दलितों ने आंदोलन भी चलाएं हैं। परिणाम यह हुआ कि रेडिमेंट कपें आई हैं।

2.4.6. शुद्धीकरण

हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय समाज में छुआछूत, ऊँच–नीच,...आदि अपनाते हैं। कोई अछूत जाति का आदमी ब्राह्मण के घर में प्रवेश करता तो उस घर को गाय के मूत्र से शुद्धि करते हैं। इनको पानी छूना भी मना हैं। डॉ.अम्बेडकर ने पानी छूने का अधिकार के लिए संघर्ष किये थे। उस समय गाँव के सभी अछूत लोग जाके तालाब में पानी छूये और पानी पीये हैं। इसके बाद ऊँची जाति के लोगों ने उस तालाब को गो मूत्र और गोबर से शुद्धि किये हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य यानी नीची जाति के लोग गाय के मूत्र और गोबर से भी गए गुजरे हैं ? इन समस्याओं को 'उन्माद' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया हैं।

---

[85] पृष्ठ संख्या, 64, त्रिशूल–शिवमूर्ति

“कहा, ‘अब मैं किसी की शुद्धि न तो करा सकता हूँ, न करने की अनुमती दे सकता हूँ। मैं अकेले समाज नहीं बना सकता। समाज की चेतना को एक झटके से नहीं बदल सकता।’ ”[86]

उपरोक्त बातों से यह समझ में आ रहा है कि समाज में बदलाव एक झटके से नहीं आता। लेकिन ये समाज को पीछे की ओर ले जाना चाहते हैं बल्कि समाज का बदलाव प्रगति की ओर जाना चाहिए। किसी शुद्धीकरण से समाज नहीं बदलता। इससे और अन्धविश्वास बढ़ता। असमानताएं बढ़तीं।

2.5. धर्म (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और स़्त्री समाज

“कुरान की घोषणाएं इसके एकदम उलटी हैं। मिसाल के तौर पर कुरान में औरतों को घर की चारदिवारी में क़ैद रखने की बात तो दूर, कही यह भी नहीं कहा गया है कि औरतों को अपनी आजीविका कमाने का हक़ नहीं है। औरतों के आजीविका कमाने के अधिकार को कुरान की आयत 4:32 में मान्यता दी गई है। इस आयत में कहा गया है कि ''मर्द जो कमाता है, उसका लाभ उसके लिए है और औरत जो कमाती है, उसका लाभ उसके लिए है।'' अगर औरत कमा नहीं सकती, तो उसका लाभ उसे मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता।”[87]

इस दुनिया में कोई भी धर्म–सम्प्रदाय हो, वह स्त्री को केंद्र में रखता है। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में स्त्री एक भोग वस्तू ही माना गया है। हिन्दू देवताओं से लेकर मनुष्य तक 'स्त्री' को लेकर कोई नैतिकता नहीं हैं। देवाधि देव इंद्र ने गुरु पत्नी अहेलिया के साथ धोखा देकर संभोग किया है। ब्रह्मा ने अपनी बेटी के साथ संभोग किया। राम अपनी पत्नी को जंगल में छोड़ के आता है। महाभारत में अपनी पत्नी को जुआ के लिए दाँव लगाता

---

[86] पृष्ठ संख्या, 316, उन्माद, भगवान सिंह, राजकमल प्रकाशन 1999

[87]पृष्ठ संख्या 25, हंस, राजेन्द्र यादव, अगस्त, 2003,(भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य, विशेषांक)

है। आधुनिक भारत में स्त्री को विज्ञापन का माध्यम बना दिया गया है। इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय में भी स्त्री को उत्पीडित ही रखे हैं। असगर अलि इंजीनियर ने कहा है कि मुसलमान के स्त्रियों को मज़हबी हक भी नहीं दिये गये हैं। सबसे बड़ा आतंक है बुरका। इनको इल्म हासिल करने नहीं भेजते हैं। गरीबी के कारण मासूम लड़कियों को अरब के बूढ़े मियाँ को शादी के नाम पर बेच देते हैं। अन्य धर्म–सम्प्रदायों से रिश्ता मना करते हैं। सबसे बढ़ा समस्या है 'तलाक' का। इसी तरह ईसाई में भी स्त्री की स्थिति वही है। बाकी धर्म–सम्प्रदाय के स्त्रियों से ईसाई स्त्री पढ़ने में नौकरी करने में थोड़ा आगे हैं। फिर भी एक स्त्री के लिए स्त्री ही दुष्मन होती है। आधुनिक समाज में अपने हक के लिए फेमिनिष्ट आंदोलन चला रही हैं। इन समस्याओं पर इसमें चर्चा किया गया है।

2.5.1. सुकून और मज़हबी समाज

इस पृथ्वी पर कोई भी धर्म–सम्प्रदाय क्यों न हों, वह ज्यादा तर स्त्री को केन्द्र में रख कर काम करता है। तरह तरह के बहाने से स्त्री को अपने कब्जे में रखना चाहते हैं। धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर स्त्री को स्वतंत्रता से वंचित करना चाहते हैं। एक धर्म–सम्प्रदाय की औरत और दूसरे धर्म सम्प्रदाय के मर्द के साथ कोई रिश्ता रखती है तो उसे प्रति क्षण बाधा अनुभव करना पड़ता है। इन पर ऐसे ऐसे पाबंद लगाते हैं कि प्यार करो तो उसी मजहब में करो। शादी करो तो उसी मजहब में करो। यदि कोई जान–पहचान के साथ तन–मन का रिश्ता रखना चाहते हों तो भी उसी सम्प्रदाय के अंदर रखने को मजबूर किया जाता है। लेकिन कई लोग ऐसे हैं कि इन धर्म सम्प्रदाय रूपी सीमाओं को तोड़ना चाहते हैं। यहां 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में 'सलमा' नाम से एक मुस्लिम औरत रहती है, जो हिन्दू सम्प्रदाय के मरद से अपना रिश्ता रखती है। वे दोनों मिलके बेहद खुश रहते हैं। वे उसी तरह अपनी जिंदगी जीना चाहते हैं। लेकिन वह डरती रहती है। इसलिए डरती है कि इस्लाम सम्प्रदाय के अनुसार चाहें तो मर्द हिन्दू स्त्री के साथ शादी कर सकते हैं, लेकिन कोई हिन्दू मुस्लिम औरत को अपने बिस्तर तक नहीं ले जा सकते हैं। तो यहां मर्द के साथ एक न्याय है, तो औरत के साथ दूसरा न्याय होता है। तो यहां सलमा और अदीब

मिलके जीना चाहते हैं, इसके लिए चाहें तो वे अपना मजहब बदल लेना चाहते हैं। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं।

“–सलमा ! यह मीठी और शर्बती थकान कितना सुकून देती है...इतना सुकून तो किसी मज़हब में नहीं है...

–आओ, अदीब...फिर अपने सुकून के लिए एक बार और मज़हब बदलकर देखें ! सलमा ने उसकी थकी साँसों को पीते हुए कहा।

–सलमा ! ...किस धर्म के पास इतनी ठोस शांती, इतना पुख्ता सुकून है जो हमें आख़िरत के दिन तक सँभाल सके...हमें तो वहीं तक जीना है ! अदीब ने कहा ।”[88]

उपरोक्त के अनुसार यह है कि समाज में मनुष्य को शांति मजहब से नहीं बल्कि प्रेम से मिलती है। समाज में सम्प्रदाय या मजहब आपस में एक दूसरे के प्रति प्रेम से ज्यादा नफरत ही सिखाती है। उक्त संदर्भ में उस नफरत और मजहबी सीमा को तोड़ती है सलमा। धर्मांतरित विवाह को और संबंधों का समर्थन करता है लेखक कमलेश्वर।

2.5.2. स्त्री और आसक्त

हिन्दू देवताओं का परम्परा का इतिहास ही बुरा है। क्योंकि इनके पास नीति नहीं हैं। रिश्तों का अच्छा–बुरा नहीं देखते हैं। रिश्तों का मर्यादा का पालन नहीं करते और रखते हैं। जिसको जो भी सुन्दर लगी तो उससे संभोग करना चाहते हैं। इस मामले में स्त्री की अपनी इच्छा से कोई संबंध नहीं हैं इनको। हिन्दुओं का वैदिक देवता है इंद्र। ये बहुत बड़े व्यभिचारी हैं। यदि किसी सुन्दर स्त्री इनके आँखों में पड़ गयी तो, कैसे भी करके उसके साथ संभोग करता है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्य जो अपूर्व सुन्दरी रहती हैं। अप्सराएं, देव कन्याए भी उसके सामने कुछ नहीं होती है। तो

[88] पृष्ठ संख्या, 132, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

वैदिक देवता इंद्र उस पर मोहित होता है। इंद्र ने ऋषि गौतम का वेश धारण करके, साथ में चंद्रमा को लेके आता है। चंद्रमा को आश्रम के द्वार पर नियुक्त करता है। तब इंद्र ऋषि पत्नी के साथ संभोग करता है। समाज में एक ऋषि–ऋषि पत्नी या गुरु–गुरु पत्नी का स्थान बड़ा होता है। उनके प्रति आदर भाव रखते हैं। लेकिन एक वैदिक देवता होते हुए, ऐसा करना कहां तक समर्थनीयक है ? यह तो व्यभिचार–बलात्कार ही हुआ है। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं।

"–हुजूर ! वह आसक्ति और व्यभिचार–बलात्कार की दास्तान है...ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्य अपूर्व सुन्दरी है । अप्सराएँ भी उसके सामने कुछ नहीं है। वैदिक देवता इंद्र उस पर आसक्त हो गया। उसने ऋषि गौतम का भेष धारण किया, चौकसी के लिए उसने चन्द्रमा को साथ लिया। उसे आश्रम के द्वार पर नियुक्त किया और...और ऋषि पत्नी अहिल्या के साथ तब इंद्र ने संभोग किया..."[89]

2.5.3. आध्यात्मिक स्त्री

"ऊँचे वर्ण के लोग निम्न वर्णों की स्त्रियों के साथ बलात्कार भी करते हैं तो उसे भी निम्न वर्णों पर उपकार माना जाता है। आठवें अध्याय में मनु कहते हैं कि अपने से श्रेष्ठ वर्णवाले पुरुष के साथ संभोग करती कन्या को राजा जरा भी दंडित न करे, लेकिन अपने से हीन वर्ण का सेवन करती हुई को अपने घर में काबू करके रखे।"[90]

हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में आश्रमों का परम्परा है। श्रद्धालु लोग आश्रम में रहते हुए, उस परमात्मा का भजन, कीर्तन और गान करते रहते है। इन आश्रमों में साधु–सन्त लोग ज्यादा रहते हैं। हमारे हिन्दू धर्म सम्प्रदाय में साधू–सन्तों की लम्बी परम्परा रही है। आज भी इन साधु, सन्तों और बाबाओं के नाम से आश्रम खोले गये हैं। उत्तर भारत में तो कई आश्रम

---

[89] पृष्ठ संख्या, 20, कितने पाकिस्तान– कमलेश्वर

[90] पृष्ठ संख्या 84, 'हिन्दू होने का मतलब', सम्पादक राजकिशोर, वाणी प्रकाशनः 1994

मिल जायेंगे। दक्षिण भारत में पुट्टा पर्ति साई बाबा एक उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। इन आश्रमों के बारे में तरह–तरह की कहानियाँ और आरोप, लगाते पत्र–पत्रिकाओं में दिखाई देता है। कर्नाटक राज्य में साधु नित्यानंद को देखने के बाद, यह समझ में आता है कि इन आश्रमों पर किया गया आरोप सही है। इन आश्रमों में भगवान की भक्ति तो कम लेकिन महिलाओं पर भक्ति ज्यादा है। यह एक धन कमाने का धंधा बन गया है।

कालांतर में इन पुरुष साधु–सन्तों के बराबर महिलाएं भी साध्वी बनने लगी हैं। उपन्यास 'उन्माद' जो भगवान सिंह के द्वारा लिखा गया है। इस में एक महिला अपने मकान को ही आश्रम बना लेती है। जिसमें तीन बोर्ड लगे रहते हैं। भक्ति संगीत, मधुर संगीत, जीवन संगीत। ये भगवान रूपी संगीत के तीन रूप हैं। इसको खास कर एक महिला चलाती है। इनके पास बड़े बड़े लोग, दूर दूर से आते हैं। इनमें अच्छे और बुरे भी हैं। चोर, पुलिस भी आते हैं। इनके मकान पर लिखा है 'जय राधे, जय राधारमण' जिसमें अंतिम शब्द पर अधिक जोर दिया हुआ रहता है। 'राधारमण' कह कर भगवान को भजते हैं। इसमें राधा और कृष्ण के प्यार के बारे में चर्चा भी हो सकता है। इनके स्थान पर और कोई भी हो सकते हैं ऐसा प्रतीत होता है। कुल मिला कर यहां एक महिला धर्म के या भागवान के नाम पर क्या कर रही है? इसके बारे में सोचना होगा ! इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं–

"तुम रहते किस दुनिया में हो। वह तो चौड़े रास्ते पर पड़ता है। चार कदम की तो दूरी है। देखा ज़रूर होगा। वही जिसमें तीन बोर्ड लगे हुए हैं–भक्ति संगीत, मधुर संगीत, जीवन संगीत। जो लोग उसे अच्छी तरह नहीं जानते वे सोचते हैं कि बाद के दोनों पद भक्ति संगीत की महिमा बखनाने के लिए हैं पर ये उसके तीन विभाग हैं और तीनों में तीन तरह के तार बजते हैं। समझे। उसे एक महीला चलाती है। वह दूर–दराज के लोगों को जानती है जिस में पुलिस से लेकर तस्कर तक सभी आते हैं। वे भी उसे जानते हैं, नही ंतो उसके यहाँ आते ही नहीं। मकान पर लिखा है 'जय राधे, जय राधारमण' जिसमें अंतिम

शब्द पर अधिक ज़ोर रहता है। अब तक ग़ौर नहीं किया है तो उधर से गुजरना तो अब ग़ौर करना।"[91]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह समझ में आता है कि भक्ति के नाम पर कुछ और कार्य चल रहा है। यदि कोई ने ईमानदारी से भगवान को मानता है और उसकी भक्ति में समर्पण और वैराग्य हैं तो इस विषय में किसी को कोई एतराज नहीं हैं। बल्कि भगवान के नाम पर समाज में विपरीत कार्य कर रहा या कर रही है तो वह असमर्थनीय है।

2.5.4. महायुद्ध के दौरान महिला

एक धर्म सम्प्रदाय समाज, दूसरे धर्म सम्प्रदाय समाज पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है। इसके लिए वह उस सम्प्रदाय समाज पर हमला करता है। एक जाति समाज, दूसरी जाति समाज पर अपना वर्चस्व बढ़ाना चाहते हैं। वैसे ही एक देश, दूसरे देश पर अधिकार प्राप्त करना या उस देश को अपने वश में कर लेना चाहते हैं। इसके लिए एक देश, दूसरे देश पर आक्रमण, हमला यानी युद्ध करता हैं। इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं कि एक देश दूसरे देश को अपने कब्जें में लेने के लिए युद्ध किये हैं, तो यहाँ एक बात पर ध्यान देना है कि साम्प्रदायिक हमला हों या दंगे हों या देशों के बीच युद्ध हों, इसके दौरान ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को ही नुकसान होता है। किम–हकसुन के अनुसार, वह कोरियन थी। सन 1924 में पैदा होती है। तब वह 17 साल की थी। दूसरे महायुद्ध के दौरान 1941 में, इन को जापानी फौजियों ने उठाया था। उस युद्ध के दौरान जापानी सोल्जरों ने लगातार 15 बार प्रतिदिन बलात्कार किया है। इनको 'तीसहिनताई' कोर में भर्ती किया गया है जो सैक्स–कोर थी। इसको 'कम्फर्ट कोर' भी कहते थे। इस कोर में हज़ारों औरतों और लडकियों को जबरदस्ती से भर्ती की गई हैं। इसको तो प्रतिदिन कम से कम पन्द्रह जापानी फौजियों को सहना पड़ता था। अर्थात् युद्ध के दौरान महिलाओं को किस

---

[91] पृष्ठ संख्या, 284, उन्माद–भगवान सिंह

तरह इस्तेमाल किया जाता है?, उक्त बातों से पता चलता है। इन समस्याओं को निम्नोक्त उद्धरण में भी देख सकते हैं।

“किम–हकसुन ने कहा–सर ! मैं कोरियन हूँ ! तब मैं 17 साल की थी। वैसे मैं पैदा तो सन् 1924 में, जिलिन में हुई थी। लेकिन 1941 में मुझे पेइचिंग से जापानी फौजियों ने उठाया था और दूसरे महायुद्ध के दौरान मुझसे जापानी सोल्जरों ने लगातार 15 बार प्रतिदिन बलात्कार किया। मुझे 'तीसहिनताई' कोर में भर्ती किया गया जो सैक्स–कोर थी, जिसे ‘कम्फर्ट कोर’ के नाम से पुकारा जाता था। इस कोर में करीब चालीस हज़ार औरतें–लड़कियाँ जबरदस्ती भर्ती की गई थीं और मैं प्रतिदिन कम से कम पन्द्रह जापानी फौजियों की पाश्विक वासना को सहती और तृप्त करती थीं...”[92]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार यह प्रतीत होता है कि समाज में युद्ध के दौरान महिलाओं पर फौजियों के द्वारा बलात्कार किया जाता है। फौज में लड़कियों को जबरदस्ती से भरती किया जाता था। लड़कियों को एक सैनिक के रूप में यदि भर्ती करते हैं, तो कोई समस्या नहीं हैं बल्कि गलत इस्तेमाल के लिए भर्ती करते हैं तो वह सभ्यसमाज के लिए ठीक नहीं है।

2.5.5. ब्याह का नाटक और भारतीय मुस्लिम स्त्री

इस्लाम एक सम्प्रदाय है। वैसे ही ईसाई सम्प्रदाय, हिन्दू सम्प्रदाय...आदि हैं। इस्लाम सम्प्रदाय का जन्म अरब में हुआ है। इनके लिए पवित्र क्षेत्र मक्का–मदीना मानी जाती है। इस्लाम दुनिया के कोने–कोने तक व्याप्त होता दिखाई देता है। कुरान के अनुसार इनमें परिवार नियोजन नहीं है। वैसे तो अन्य सम्प्रदायों में भी बहु बच्चों का जन्म होता रहता हैं। लेकिन मुसलमानों में ज्यादा दिखाई देता है। वैसे तो मुसलमानों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ठीक नहीं हैं 'सच्चर रपट' के अनुसार। वैसे तो मुसलमानों में लड़की को

[92] पृष्ठ संख्या, 89, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

बाहर नहीं जाने देते हैं। केवल मर्द की कमाई पर सारा परिवार को जीना होता है। इसके साथ लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता है। तो एक तरफ लड़कियाँ बड़ी होती जाती हैं और दूसरी तरफ आर्थिक स्थिति ठीक नहीं रहती है। इस समय इनको अपना विरासत के अरब का अल्ला मियाँ याद आता है। भारतीय मुसलमान होते हुए भी, ये अरब मुसलमानों पर विस्वास रखते हैं। इसी समय में अरब के बूढ़े लोग आते हैं। अरबों के पास पैसों की कमी तो नहीं हैं। यहां का गरीब मुसलमान अरब के पैसों को देखके अपनी मासूम बेटी को उनके साथ सौंप देता है। वहां न वह इनकी भाषा समझती है, तो न यह उनकी अरबी जानती है। बिचारी दिन में बीसियों बार उनकी तरह–तरह की हरकतों का शिकार होती है। इसका फलस्वरूप जो बेटा जन्मता है, तो उसे 'तेली बच्चा' कहते हैं। उसे अरब समाज से दूर रखा जाता है। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

"न तो मुझे उनकी जुबान आती थी, न उनकी तहज़ीब...पर वो अरब था, जो मुझे ब्याह का नाटक करके ले गया था, वो मुझसे 28 बरस बड़ा था और जैसे ये किम–हकसुन पन्द्रह जापानियों की हवस की शिकार होती थी, उसी तरह मैं हर दिन बीसियों बार अपने उस खाविंद की कुदरती और ग़ैर–कुदरती हरकतों का शिकार होती थी ! फिर जो बच्चा हम जैसों से पैदा होता था उसे 'तेली बच्चा' कहा जाता था और अरब समाज़ से उसे दूर रखा जाता था..."[93]

उपरोक्त के अनुसार यह समझ में आता है कि मुस्लिम समाज में शादी–ब्याह के नाम पर लड़कियों का यौन शोषण किया जाता है। क्योंकि पैसों के लालच में मुस्लिम युवतियों को अरब के बूढ़े लोगों के साथ शादी करवाते हैं। शादी के लिए लड़की और लड़का दोनों के लगभग बराबर की उम्र होना आवश्यक है।

"–आप समझ रहे हैं, यह आप क्यों मंजूर करना चाहेंगे ? यज़ीद ने भी हज़रत हुसैन को मदीने से इराक आने की दावत दी थी और कर्बला के मैदान में उन्हें भूखा प्यासा रख

[93]पृष्ठ संख्या, 89, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

कर आख़िर उनका क़त्ल कर दिया था !...आपका बुलावा यज़ीद का बुलावा है और आप का पाकिस्तान मेंरा कर्बला ही बन सकता है...जहाँ आप मुझे हर तरह से भूखा रखकर अपनी हवस का शिकार बना सकते हैं और जिन्दा रहते हुए भी एक ग़ैर–कुदरती मौत मुझे दे सकते हैं !...हज़रत हुसैन तो सिर्फ कर्बला में शहीद हुए थे, पर मुसलमान औरत के लिए तो आप लोगों ने पूरी जिन्दगी ही एक कर्बला बना रखी है ! सलमा के भीतर एक ज़लज़ला उठ रहा था, वह चीख पड़ी–क्या है वो खास चीज़ जो एक मुसलमान मर्द औरत को दे सकता है, जो ग़ैर–मुस्लिम नहीं दे सकता ? ”[94]

उपरोक्त के अनुसार यह प्रतीत होता है कि सलमा परम्परागत एवं मज़हबी स्त्री–पुरुष के संबंधों का विरोध करती है। धर्मांतरिक स्त्री–पुरुष संबंध का समर्थन करती है। क्योंकि प्रेम या प्यार जाति, मजहब, धर्म...आदि को नहीं देखता है।

2.5.6. बुरका और स्त्री

असगर अलि इंजीनियर ने अपने लेखों में कई बार कहा है कि कुरान में जो दिये गये हकूक यानी हक भी मुस्लिम औरतों को नहीं मिल रहें हैं। मुस्लिम औरतें यह नहीं जानती हैं कि उनके सुविधा के लिए कुरान में क्या क्या हैं। ये कुछ पढ़ी–लिखी होती तो तब पता करती होती। इन के सम्प्रदाय में औरतें बुरका पहनती हैं। कुरान शरीयत में बुरका का ज़रूरत तो नहीं हैं शायद। लेकिन बुरका प्रथा को वे अपनाते हैं। मुस्लिम औरत बुरके में, एक इज़्ज़त की गठरी बन कर चलती है। वह अपने को इस तरह बाँधती है कि जहां चाहें वहां खुलने के लिए तैयार है। मौका तलाशती हैं, किसी को खोलने का भी ज़रूरत न पड़े। इन समस्याओं को उपन्यास 'उन्माद' में देख सकते हैं, जैसे निम्नोक्त प्रकार है।

“छोड़ो, तुम कहोगे मैं कितनी शरारती हुआ करती थी। नही, बात ऐसी नहीं है। खैर, शरारती तो मैं थी। हमारे यहाँ तो तुम जानते हो पीदा बहुत है। औरते बुरके में लिपटी हुई

---

[94] पृष्ठ संख्या, 121, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

इज़्ज़त की गठरी बनकर बाहर निकलती हैं। गठरी भी ऐसी जिसे ढोने की फ़िक्र किसी को नहीं करनी पड़ती। गठरी ही अपने को ढोती चलती है। वह अपने को इस तरह बाँधती है कि खुलने के लिए मौके तलाशती रहती है। खोलनेवाले की भी ज़रूरत नहीं होती।"[95]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार ऐसा लगता है कि मुस्लिम औरत एक इज़्ज़त की गठरी बन कर रहती है समाज में। लेकिन इनमें बदलाव आना चाहिए क्योंकि समाज हमेशा बदलता रहता है। यदि समाज के साथ–साथ मनुष्य और संस्कृति नहीं बदलती हैं तो उसमें जड़ता आ जाता है। जिसमें जड़ता आ जाता है उसमें प्रगति नहीं होती है।

2.5.7. निरक्षरता और मुस्लिम लड़कियाँ

बहुत सारे लोग ऐसे हैं कि बड़े घराने की बेटी से शादी करना चाहते हैं, भले वह पढ़ी–लिखी न हों। क्यों ऐसा ? आज कल का ज़माना बदलता दिखाई देता है। जमाने के साथ–साथ लोगों को बदलना आवश्यक होता है। लेकिन मुस्लिम समाज में पढ़ी–लिखी लड़की नहीं चाहते हैं। वे यह समझते हैं कि पढ़ने–लिखने से लड़कियों का दिमाग खराब हो जाता है। लेकिन हकीकत में यह गलत है। पढ़ने–लिखने से किसी का दिमाग खराब नहीं होता बल्कि उनका दिमाग और अच्छा होता है। 'मुसलमान' उपन्यास में बेगम साहिबा यह चाहती है कि अपने बच्चों कि शादी शरीफ और साहबे ख़ानदान में तो कराना चाहती लेकिन लड़कियां पढ़ी–लिखी न हों। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

"बेगम साहिबा ने कहा–'हम तो अपने बच्चों की शादी ऐसे घर में करेंगे जो शरीफ और साहबे ख़ानदान तो हो, लेकिन लड़कियाँ पढ़ी–लिखी न हों। पढ़ने–लिखने से लड़कियों का दिमाग ख़राब हो जाता है।' "[96]

---

[95] पृष्ठ संख्या, 140, उन्माद–भगवान सिंह

[96] पृष्ठ संख्या, 87,मुसलमान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार ऐसा लगता है कि यहां एक औरत ही दूसरी औरत को पढ़ने–लिखने से मना करती है। लोग ऐसा सोचते हैं कि पढ़ने लिखने से लड़कियों का दिमाग बिगड़ जाता है। लेकिन वह सही नहीं है क्योंकि पढ़ने से लड़कियों का दिमाग बढ़ता है। अच्छे–अच्छे पद भी प्राप्त कर सकती हैं।

2.5.8. तलाक

समाज में 'तलाक' बहुत बड़ी गंभीर समस्या है। इस समाज में अपने–अपने सम्प्रदाय हैं। इनमें और अपनी अपनी जाति समाज भी हैं। इनमें अपने–अपने परिवार हैं। इनमें अमीर हैं, मध्यवर्ग हैं, गरीब आदि हैं। एक परिवार में जन्म के, बड़ी हो के 20साल के आस–पास में शादी के नाम से एक लड़की और एक लड़का दोनों को एक किया जाता है। इस व्यवस्था में ज्यादातर लड़कियों को लड़के वालों के घर पर जाना होता है। शादी के समय से लड़की को अपने पिताजी के घर छोड़ना पड़ता है। बचपन से 20 साल की उम्र तक एक अपना परिवार में पली लड़की, अब (शादी) से पूरे अलग परिवार में जाके उन लोगों से घुल–मिल जाना पड़ता है। ऊपर से ससुराल का सुनना पड़ता है। तो लड़की को ही ज्यादा समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुछ दिनों या कुछ सालों में, पति और पत्नी के बीच का रिश्ता यदि नहीं जमता तो तलाक ले सकते हैं। यह तलाक का जो समस्या है, वह हर सम्प्रदाय में है। लेकिन इस्लाम में कुछ अंश ज्यादा है, ऐसा प्रतीत होता है। तलाक ज्यादातर अमीर घरों में और गरीब से गरीब घरोंमें होता है। क्योंकि इनके लिए मिहर की रक़म और वकील, अदालत के खर्चा उतना बड़ा समस्या नहीं है। क्योंकि अमीर लोग हैं, तो जितना भी खर्चा होने पर उनको कोई फर्क नहीं पड़ता है। गरीब से गरीब है तो उनके पास कुछ है ही नहीं। इसलिए तलाक देता और लेता इनके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन इनसे औरतों को ज्यादा नुकसान होता है। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में दर्शाते हैं–

“लोग ज़रा–ज़रा–सी बात पर तो तलाक दे देते हैं। नीची ज़ात वालों को तलाक़ देने में परेशानी भी क्या हो ती है। मिहर की रक़म ही कितनी होती है–ज्यादा से ज्यादा सौ–पचास रुपए। वह भी देना कहाँ ज़रूरी है। मिहर की वसूली के लिए मुक़दमा भी कौन करे। नौ की लड़की नब्बे ख़रच। जितना मिहर होता उससे तिगुना–चौगुना तो कचहरी की दौड़–धूप और वकीलों–पेशकारों की पेट–पूजा में ख़र्चा हो जाता। इससे तो अच्छा यही है कि चुपके बैठे रहो और हो सके तो लड़की को किसी और के पल्ले बाँध दो। शरीफ़ों की तरह कौन मुक़दमे के पचड़े में पड़े।”[97]

उपरोक्त के अनुसार ऐसा लगता है कि समाज में लोग छोटी छोटी बातों पर तलाक दे देते हैं। समाज में तलाक की सुविधा अच्छा ही है। लेकिन इसको गलत उद्‌देश्य के लिए, गलत इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

2.5.9. औरत की दुश्मन औरत ही है !

किसी महापुरुष ने कहा है कि यह दुनिया ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि किया गया है। लेकिन उस ब्रह्मा को जन्म एक स्त्री ने ही दिया है। अर्थात् इससे यह पता चलता है कि इस जगत में मनुष्य को जन्म देने वाली ’माँ’ या ’स्त्री’ ही होती है। मनुष्य के आदी जन्म से आज के समय तक, अगर देखा जाए तो समाज में कई तरह के परिणाम हुए हैं। आदिम समाज में एक ही समाज था। सब मनुष्य को बराबर मानता था। जब समाज में मनुष्य यानी मानवता से ज्यादा महत्व आर्थिक या आर्थिक संबंधी चीजों को देने लगे तब से मनुष्य के बीच का मानवता रूपी प्यार गायब हो गया है। आदमी या औरत मनुष्य से कम और वस्तु से ज्यादा प्यार करने लगे हैं। इसका प्रभाव सबसे ज्यादा स्त्री समाज पर पड़ता हुआ दिखाई देता है। क्योंकि यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। कालंतर में पूरा समाज कई सम्प्रदायों में बंट चुका था। अपने अपने सम्प्रदाय समाज में शादी–ब्याह के लिए कुछ विधि–विधानों की रचना किए हैं, जिसके अनुसार शादी करते हैं। कालांतर में दहेज प्रथा

[97] पृष्ठ संख्या, 137, सभा पर्व, बदीउज़्ज़मँ, प्रकाशन– शब्दकार 1994

को अपनाए। तो समाज में बहू से ज्यादा, उनके लाए गए दहेज से प्यार करने लगे हैं। यदि कोई ज्यादा दहेज देने के लिए तैयार हैं, तो अपनी बहू को जिन्दा जलाने में कोई समय नहीं लगे गा। यह एक स्त्री ही कर रही है। वास्तव में स्त्री बड़ी नाजुक होती है। लेकिन अपनी साथी स्त्री को जलाने में उतनी ही मज़बूत होती है। अर्थात् एक स्त्री ही अपनी साथी स्त्री के लिए दुश्मन बनती है। इन समस्याएं नीचे दिए गए उद्धरण में दर्शाते हैं–

"और जनाब, जो औरतें छिपकली–कॉकरोच नहीं मारतीं इतनी नर्मदिल, नाज़ुकमिज़ाज होती हैं सुना है कि नहीं कि अपनी बहुओं को जलाती हैं फिर खड़े–खड़े तमाशा देखती हैं। ज़िंदा जलाती हैं। यह कौन–से जोड़ बैठा रहे हो ? "[98]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार ऐसा लगता है कि औरत ही एक औरत की दुश्मन हो सकती है। हमारे भारतीय समाज में बहुओं को मौत का घाट पहुँचाने वाली सास ही होती हैं। यह भूल जाती है कि सास भी इससे पहले बहु थी और ये दोनों औरतें ही हैं। इसका वजह परम्परा से चली आ रही सामाजिक संस्कृति ही हो सकती है।

2.5.10. नारीवाद बनाम पुरुषवाद

यह समाज पुरुषों से बनाया गया है। इस समाज में जितने भी सम्प्रदाय बनाए गए हैं, उतने सब पुरुषों के द्वारा ही बनाए गए हैं। इन सम्प्रदायों के भगवान भी पुरुष हैं। जैसे इस्लाम सम्प्रदाय के संस्थापक 'मुहम्मद' साहब है। ईसाई सम्प्रदाय में 'ईशु' पुरुष ही हैं। हिन्दू सम्प्रदाय में तो बड़े–बड़े देव पुरुष ही हैं। हमारे घर में देखें तो पिताजी ही घर का मालिक होता है। घर की आर्थिक परिस्थिति उन पर ही आधारित होती है। वे जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। एक पुरुष होने के नाते पुरुष को ही प्रोत्साहित करता है। हर घर में अपने पिता अपने बेटे को प्रोत्साहित करता है, लड़की को प्रोत्साहित नहीं करता है। क्योंकि यह पितृ सत्तात्मक समाज है। इस पितृ सत्तात्मक समाज में सदियों से स्त्री के साथ

[98] पृष्ठ संख्या, 110, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

अन्याय होता आ रहा है। आधुनिक युग में पितृ सत्ता का विरोध हुआ है। यह विरोध पहले पश्चिम देशों में हुआ है। पितृ सत्ता को विरोध करने वाली महिलाओं को स्त्रीवादी कहते हैं। इसका अंग्रेजी शब्द फेमिनिस्ट है। आज के समाज में स्त्रीवादी या फेमिनिज्म का महत्व दिन–ब–दिन बढ़ रहा है। पुरुषाधिक्य के विरोध में स्त्रीवादी आंदोलन चला रही हैं। स्त्रीवादी साहित्य लिखा जा रहा है।

आज हम 21वीं सदी में जी रहें हैं। यह उत्तराधुनिकता का दौर है। तरह तरह के अन्याय के विरोध में संघर्ष कर रहें हैं। बावजूद इसके समाज में उतना बदलाव नहीं आया है कि जितना आना चाहिए था। क्योंकि एक तरफ स्त्रीवादियों ने पुरुषवादियों के विरोध में संघर्ष कर रही है तो, दूसरी तरफ मेलशावनिस्ट भी हैं, जो परम्परा को महत्व देती है। अपने पति को देव मानती है। इन समस्याएं नीचे दिए गए उद्धरण में दर्शाते हैं।

“मैं हार मानता हूँ। ऐसी हार जो अपने फायदे में हो, झटपट मान लेनी चाहिए। पर यह समझ लीजिए कि जैसे पुरुषों में अनेक फेमिनिस्ट होते हैं उसी तरह महिलाओं में कुछ मेलशाविनिस्ट होती हैं। पुरुषों के हितों की हिमायती ।आप भी उन्हीं में से हैं।”[99]

उपरोक्त के आधार पर, मैं यह कहना चाहता हूँ की समाज में कई तरह के मनुष्य रहते हैं। वैसे ही महिलाओं में भी तरह–तरह के सिद्धांतों से जुड़ी महिलाओं को देख सकते हैं। कुछ ऐसी हैं कि पुरुषवादी विचारधारा का विरोध करती हैं, तो कुछ ऐसी हैं कि पुरुषों के हित के लिए सोचती हैं।

“पर मैं आप की एक बात नहीं मानता, भाभी। आप भावुकता में जो यह कह रही थीं कि स्त्री को पुरुष से समानता की आकांक्षा नहीं होती, वह कुछ ठीक नहीं है। सभी स्त्रियाँ एक जैसी नहीं होती। कुछ अपने को पुराने विचारों से मुक्त नहीं कर पाई होती हैं, इसलिए

---

[99] पृष्ठ संख्या 339, उन्माद–भगवान सिंह

उन्हें समानता की बात खटकती है। विद्रोह जैसी प्रतीत होती है। आपके साथ भी ऐसा ही है।"[100]

उपरोक्त के आधार पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि समाज में कुछ ऐसी महिलाएं हैं जो आज भी पुराने विचारों और सिद्धांतों को महत्व देती हैं। समानता की बात उन्हें विद्रोह जैसी लगती है। समाज में कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो पुरुषवादी का विरोध करती हैं और समानता का आकांक्षा रखती हैं, उन्हीं को कहते हैं फेमिनिस्ट।

2.6. धर्म सम्प्रदाय(हिन्दू, इस्लाम, ईसाई...) और अन्ध विश्वास

"इस्लाम की ऐसी शिक्षा किसी भी मुसलमान को धर्मांध बना सकती है, लेकिन इससे यह तो पता चलता ही है कि पैग़ंबरे–इस्लाम को अपने समय में भौतिकवादी लोगों के तर्कों का सामना करना पड़ा था। उनके तर्क अकाट्य थे। संभवतः इसीलिए उन्हें 'शैतान' की संज्ञा देकर उनसे मुसलमानों को दूर रहने की शिक्षा दी गई थी। इस्लाम का भविष्य अब चाहे जो हो, पर मुझे नहीं लगता कि आधुनिक शिक्षा के विकास के साथ मुसलमान हमेशा–हमेशा इस 'शैतान' से दूर रह सकेंगे।"[101]

धर्म और सम्प्रदाय एक सिक्के का दो पहलू है। अगर हम इसको मान लें तो सिक्का भगवान होता है। क्योंकि धर्म–सम्प्रदाय किसी न किसी भगवान के नाम पर ही होता है। भगवान में विश्वास करने वाले को भी यह नहीं पता है कि भगवान कैसा रहता है। आज तक कोई धर्म–सम्प्रदाय के लोग भगवान को नहीं देखा है। लेकिन भगवान पर विश्वास रखते हैं। जिसको देखा नहीं, जिसको छूआ नहीं तो यह प्रतीत होता है कि वह है नहीं। जो नहीं है उस पर विश्वास करना अन्ध विश्वास ही होता है। भगवान है तो फिर भूत भी रहता है। लेकिन आज तक भूत को भी कोई नहीं देखा है। भूत भी एक बड़ा अन्ध विश्वास है। हर एक धर्म के अनुसार स्वर्ग ऊपर है। ऊपर तो चाँद–सूरज और तारें हैं। चाँद पर तो

---

[100] पृष्ठ संख्या 339, उन्माद–भगवान सिंह

[101] पृष्ठ संख्या 67, हंस, अगस्त, 2003, –भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य, विशेषांक

यहाँ के आदमी भी जाके वापस आ गए हैं। सूरज तक 'लैका' नामक कुत्ता को भेजा गया है। और आसमान में कहाँ है स्वर्ग ? धर्म–सम्प्रदाय और भगवान में जो विश्वास रखते हैं, ये समाज को आगे के बजाए पीछे की ओर ले जाते हैं। धर्म–सम्प्रदाय और भगवान एक झूठा बुनियाद पर खड़ा किया हुआ है। मूर्खता में से ही भगवान रूपी भावना का जन्म हुआ है। आज भी भगवान को मानने वाले मूर्ख ही हैं। इन सब पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि ये सब अन्ध– विश्वास हैं।

2.6.1. इस्लाम धर्म बनाम धर्मान्ध

समाज में कई प्रकार के अंध–विश्वास हैं। इन अंध–विश्वासों का संबंध धर्म से हैं। आदमी अपने धर्म के प्रति ज्यादा विश्वास रखता है, तो वह आदमी और समाज धर्मांन्ध बन जाते हैं। कई बार लोगों ने अपने धर्म के लिए और उसकी रक्षा के लिए लड़ते हैं। जब जिस धर्म में और उसके अनुयायियों में अंधापन आ जाता है, तब धर्मांन्ध समाज का उद्‌भव होता है। तब अपने ही धर्म के अंदर धर्मांन्धता के विरोध करते हैं। जो निम्नोक्त प्रकार हैं।

"वहाँ तो मुसलमान ही मुसलमान से लड़ रहा है, तो शिबली मोमानी साहब ! यह लड़ाई धर्म की नहीं, धर्म और धर्मान्धता की है। इस्लाम जैसा धर्म ही खुद अपना धर्मान्धता से लड़ रहा है। और शायद दुनिया के हर धर्म को अपनी धर्मान्धता से लड़ना और उसे जीतना पड़ेगा ! ...आप अपनी धर्मान्धतावादी तर्कों से पाकिस्तानों में से और पाकिस्तान बनाएँगे, पर धर्मवादी दुनिया अपने धार्मिक विश्वासों को जीवित रखते हुए एक मनुष्यवादी धर्म के संविधान की परिकल्पना करेगी...यह किसी एक धर्म की दुनिया नहीं होगी, यह बहुधर्मी लोगों की एक धार्मिक दुनिया होगी ! अपने–अपने धर्म की धर्मान्धता से लड़ते रहनेवाले धर्म–परस्त लोगों की दुनिया !"[102]

---

[102] पृष्ठ संख्या, 200, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

इस प्रकार यह किसी एक धर्म की दुनिया नहीं होगी। मनुष्य ने इस समाज में अपने–अपने भौगोलिक स्थिति के अनुसार, अपने सुविधा और स्वार्थ के लिए, अपने–अपने धर्म को बनाएं हैं। ऐसा नहीं हो सकता है कि एक ही धर्म रहे और बाकी धर्म न रहें। इसलिए यह किसी एक धर्म की दुनिया नहीं होगी, यह बहुधर्मी लोगों की एक धार्मिक दुनिया होगी ! इतना ही नहीं एक मनुष्यवादी धर्म के संविधान की परिकल्पना करना होगा।

2.6.2. भूत–प्रेत और अन्ध विश्वास

भगवान है तो भूत भी है। भगवान और भूत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लोग भूत–प्रेत से बचने के लिए भगवान की पूजा करते हैं। लेकिन आज तक किसी ने यह नहीं बताया कि भगवान को देखा है। भगवान को मानने वालों ने भी यह नहीं बताया कि भगवान कैसा रहता है, क्योंकि इनके में भी आपस में मतभेद हैं। किसी सम्प्रदाय के अनुसार भगवान सगुण है तो, किसी सम्प्रदाय के अनुसार भगवान निर्गुण–निराकार है।

लोगों में अनादि से एक धारणा आ रही है कि अपने बाप–दादा के देहांत हो जाने के बाद वे भूत–प्रेत बन जाते हैं। यह हिन्दू में ही नहीं बल्कि मुस्लिम सम्प्रदाय में भी इन भूत–प्रेत को मानते हैं। अपने पुरखों ने प्रेत होकर, उनके ही बेटे, पोतों को परेशान कर सकता है। अपने पुरखों को भूत–प्रेत होने से बचाने के लिए, उनके आत्मा को शान्ति करना होता है। मुस्लिम सम्प्रदाय में बुजुर्गों के नाम से फ़ातिहा करते हैं और दरूद पढ़ते हैं। हिन्दू सम्प्रदाय में लोग अपने पुरखों की आत्मा की शान्ति के लिए श्राद्ध करते हैं। दान करते हैं। इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं।

“लोग अपने बाप–दादा को भूत–प्रेत बनने से बचाने के लिए पिंडा पाड़ते हैं। यह सब न करें तो पुरखों के प्रेत उन्हें परेशान कर सकते हैं, उनका अमन–चैन बरबाद कर सकते हैं। जिस तरह मुसलमान अपने बुज़ुर्गों के नाम से फ़ातिहा करते हैं और दरूद पढ़ते हैं

उसी तरह हिंदू लोग अपने पुरखों की आत्मा की शान्ति के लिए यहाँ श्राद्ध करने आते हैं।"[103]

"मेरी सारी संपति–जायदाद तुमने ले ली है। मेरा सारा धन तुम्हारे पास है। मेरे धन–दौलत से तुम मौज कर रहे हो और मैं भूत का जीवन बिता रहा हूँ। मैं ने तुम्हें जब बहुत तंग किया तो तुम श्राद्ध के लिए तैयार हुए। लेकिन मेरे श्राद्ध में तुम इतना ख़र्च कर रहे हो। तुम्हें अपने चाचा की कोई चिंता नहीं है। वह नरक में रहे या भूत–प्रेत बन जाए। तुमको अपने सुख से ही सरोकार है।"[104]

उपर्युक्त प्रकार भूत प्रेत की भावना और भय समाज में आदि काल से चलता आ रहा है। वह भावना आज भी हैं। लेकिन इस आधुनिक समाज में उस तरह के भावना से मुक्त होना चाहिए। बुजुर्ग और बड़े लोगों की इज़्ज़त बूढ़ेपन में नहीं करते बल्कि देहांत हो जाने के बाद उनके नाम पर करते रहते हैं। लेकिन इससे अच्छा है कि बूढ़ेपन में उनकी सेवा करें।

2.6.3. धर्म–सम्प्रदाय और समाज का बदलाव

समाज में बदलाव अनिवार्य होता है। प्रकृति में भी बदलाव आता रहता है। यह किसी के मना करने से रुकता और किसी का कहने से बदलता ऐसा नहीं है। यह बदलाव की प्रक्रिया अपने आप होता रहता है। तो समाज में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो परिवर्तन के विरोध में हैं। इनके लिए परिवर्तन अच्छा नहीं लगता है। ये अपनी पुरानी चीजों में विश्वास करते हैं। कहना चाहिए कि यह एक तरह का अन्धविश्वास ही है। कुछ साम्प्रदायिक लोग बहुत ही कट्टर होते हैं। वे जैसे बदलाव से दूर रहें हैं, वैसे ही अपने संतानों यानी बेटे को भी बदलाव से दूर रखना चाहते हैं। इसके लिए वे अपने बेटे को निर्देश करते हैं कि वह

---

[103] पृष्ठ संख्या, 204, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

[104] पृष्ठ संख्या, 205, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

क्या करें और क्या न करें। वैसे ही अपने अपने पीढ़ी को आदेश देते हैं कि वे जो जो नहीं किये, उसको अपनी पीढ़ी भी पालन करें। इन समस्याओं को उपन्यास 'उन्माद' में प्रस्तुत किया गया है, जो नीचे उद्धृत है।

"आज तक आप अपने ही उपदेशों के विरुद्ध, मुझे अपने ज्ञान–भार से लदी हुई खूँटी बनाए रहे और आज भी यही कर रहे हैं। आप आदेश दे रहै हैं कि जो आप ने नहीं किया, वह न करूँ। जिसे मैं ने नहीं किया, उसे अगली पीढ़ियों को न करने दूँ। अपने को, अपनी, अगली पीढ़ियों को, देश और समाज को, केवल इस भय से अतीत में गहरे गाड़ता चला जाऊँ कि संसार बहुत तेज़ रफ़्तार से बदल रहा है, बहुत वेग से फिसल रहा है। इस फिसलन से बचने का एक ही उपाय है खूँटे की तरह गड़े रहना।"[105]

समाज परिवर्तनशील है। इसको कोई नहीं रोक सकता है। इसके साथ साथ मनुष्य को भी बदलना पड़ता है। यदि मनुष्य नहीं बदला तो वह और उनका समाज पिछड़ा हो जाता है। जैसे आज के समाज में जिस के पास कम्प्यूटर का ज्ञान नहीं है वह सबकुछ जानते हुए भी न के बराबर है।

2.6.4. झूठ हजारों सच पर भारी

यह तो सही है कि हमारे जितने भी धर्म हैं और धर्म ग्रन्थ हैं, ये सब झूठ के आधार पर ही निर्भर हैं। इन में जो भी कथा कहें गयें हैं, इनके कोई ठोस आधार नहीं मिलते हैं। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में हों या पुराणों में हों या उपनिषदों में हों ये सब कल्पित साहित्य माना जाता है। यह सब सत्य से परे हैं। धर्म ग्रन्थों में भी कहा गया है और लोगों का कहना भी हैं कि कभी कभी दास को मुक्ति दिलवाने के लिए झूठ का सहारा लेना पड़ता है। इस लिए हमारे धर्म ग्रन्थों में झूठ को गलत नहीं माना गया है। अगर सच–मुच झूठ से लोगों का कल्याण होता तो अच्छी बात है। लेकिन इस समाज में यह झूठ किसी के लिए सच है, तो और किसी के लिए झूठ झूठ ही है। इस लिए झूठ सब के लिए झूठ होना चाहिए और

[105] पृष्ठ संख्या, 59, उन्माद–भगवान सिंह

सच सब के लिए सच होना चाहिए तभी समाज में झूठ को झूठ और सच को सच कहने का साहस करेंगे। इन आदि समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं।

"सत्य की खोज के लिए कभी–कभी ऐसा करना पड़ता है। दास को मुक्ति दिलवाने के लिए कभी–कभी झूठ का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए हमारी धार्मिक किताबों में उस झूठ को गलत नहीं कहा गया है, जो सच का दर्शन करना चाहता हो और व्याक्ति को नरक से मुक्ति दिलाता है। ऐसा झूठ हजारों सच पर भारी है।"[106]

इस प्रकार कुछ अच्छे कार्य के लिए या किसी को किसी संकट या आपत्ति से बचाने के लिए कोई एक आध झूठ बोलता तो किसी को कोई एतराज नहीं हैं। लेकिन पूरी समाज पर स्वर्ग और नरक वाला हजारों झूठे विचार एक सच पर लादते हैं। यह एक सच्चा समाज पर भारी होता ही है।

2.6.5. आगे की बजाय पीछे ले जाती है मज़हब

धर्म और सम्प्रदाय में बहुत बड़ा फर्क है। धर्म अलग है और सम्प्रदाय अलग है। फिर भी इन दोनों को अलग करके देखना मुश्किल है यानी ये दोनों अलग होते हुए भी एक जैसी लगते हैं। सम्प्रदाय अनेक होते हैं। लेकिन धर्म एक ही होता है। इन सभी सम्प्रदायों में धर्म रहता है। धर्म के बिना सम्प्रदाय अधूरा होता है। तो यहां धर्म के चक्कर में पड़ना यानी सम्प्रदाय के चक्कर में पड़ना होता है। आदि से आज तक, इतना बड़ा तजुर्बा है सम्प्रदाय से, तो इससे पता चलता है कि कोई भी सम्प्रदाय समाज को आगे नहीं ले जाता है बल्कि पीछे की ओर ले जाता है। वैसे तो नीत्शे ने कहा है कि 'ईश्वर मर गया है'। हर सम्प्रदाय ईश्वर के बरे में ही तो प्रबोध करते हैं। जिस सम्प्रदाय में ईश्वर के बारे में नहीं चर्चा होता वह सम्प्रदाय ही नहीं हो सकता। जब ईश्वर ही मर गया है तो सम्प्रदाय या धर्म कहां से बचा है? अतः धर्म भी मर गया है। क्योंकि हर चीज की अपनी भूमिका होती है।

[106] पृष्ठ संख्या, 98, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी

वैसे ही धर्म का इस समाज में अपनी भूमिका थी। लेकिन आज उसकी जरूरत नहीं है। कोई भी धर्म इन बातों पर ध्यान देती है, जैसे इंसानियत, रवादारी, हमदर्दी। इन चंद बातों को जानने के लिए मज़हब की मोटी–मोटी किताबें पढ़ने की क्या ज़रूरत है? इतिहास में अगर देखा जाए तो मज़हब के नाम पर इन ही गरीबों को मारा गया, इनका शोषण किया है। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है–

"धर्म के चक्कर में पड़ना ही बेवकूफ़ी है। इस भूलभुलैयाँ में एक बार दाखिल हुए तो ज़िंदगी भर वहीं भटकते रहोगे। मैं समझता हूँ कि धर्म के पचड़े से अलग रहकर हम सचाई को जितने साफ़ तरीके से देख सकते हैं उतना धर्म के झमेंले में फँस कर नहीं देख सकते। हर चीज़ की अपनी एक भूमिका होती है, एक मक़सद होता है। मैं मानता हूँ मज़हब की भी एक भूमिका थी। लेकिन अपनी भूमिका वह पूरी कर चुका है और अब हमारे लिए उसका कोई मसरफ़ नहीं रहा। फिर एक लाश के साथ हम क्यों चिपटे रहें। धर्म जब हमें आगे ले जाने की बजाय पीछे ले जाना चाहता है तो हम क्यों उस मुसीबत को ढोते फिरें। चंद बातें हैं–इंसानियत, रवादारी, हमदर्दी। सभी धर्म इन पर ज़ोर देते हैं। इन चंद बातों को जानने के लिए क्या मज़हब की मोटी–मोटी पोथियों से सिर फोड़ना ज़रूरी है ? मज़े की बात यह है कि किसी भी धर्म के इतिहास पर नज़र डालो । हर पन्ने पर इन उसूलों की धज्जियाँ ही बिखरी हुई मिलेंगी।"[107]

इस प्रकार कोई विचार या सिद्धांत पीछे की ओर ले जाता है, तो उसे अपनाने की क्या जरूरत है? कोई भी व्यक्ति और समाज विकास की ओर, प्रगति की ओर, आधुनिकता की ओर आगे बढ़ना चाहते हैं, पीछे की ओर नहीं।

[107] पृष्ठ संख्या, 96, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

2.6.6. ईश्वर, अल्लाह, खुदा और मूर्ख़

समाज में एक आम धारणा है कि जो ईश्वर या अल्लाह को मानता है वही आदमी ईमानदार होता है। उन्हीं से कुछ उम्मीद किया जा सकता है। लेकिन कई अनुभव हमको यह बताते हैं कि जो ईश्वर और अल्लाह को मानता वही बड़ा चोर होता है। ईश्वर और अल्लाह के नाम पर समाज में अन्ध विश्वास को फैलाते हैं। वैसे तो अज्ञान में से ईश्वर का जन्म हुआ है। उन दिनों में विज्ञान और आविष्कारों का अभाव था। प्रकृति में जो कुछ होता था तो उसे भगवान का चमत्कार मानते थें। आज का संदर्भ कुछ अलग है क्योंकि विज्ञान और तकनीकी का विकास हुआ है। चाँद और सूरज तक सफर करने लगे हैं। उसी चाँद और सूरज को भगवान मानते हैं जबकि वो भी हमारी पृथ्वी जैसा ही है। तो आज भी ईश्वर, अल्लाह कहें तो वह मूर्ख ही हो सकता है। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

"बालेसर, तेरा क्या भरोसा ! जब तू ईश्वर और अल्लाह को ही नहीं मानता तो तुझसे किसी को क्या उम्मीद हो सकती है। "बालेसर चचा जवाब में कहते–"ईश्वर, अल्लाह, खुदा सब मूर्खों के दिमाग की उपज हैं और मूर्खों की ही इनमें आस्था हो सकती है। मैं सब कुछ जानते हुए मूर्ख बनना नहीं चाहता हूँ।"[108]

इस प्रकार समाज में लोग उन्हीं पर भरोसा करते हैं जो ईश्वर, अल्लाह और खुदा को मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं हैं कि भगवान को मानने वाले ही अच्छे हैं और जो नहीं मानते हैं वे बुरे हैं। क्योंकि भगवान को मानने वाले मूर्ख भी हो सकते हैं और कुछ अच्छे भी हो सकते हैं। वैसे ही भगवान को न मानने वाले भी।

---

[108] पृष्ठ संख्या, 97, सभा पर्व–बदीउज़्ज़मँ

"ये सब धर्म और मज़हब की बात हैं। इनमें क्यों और कैसे लाने का कोई मतलब नहीं है। "[109]

इस प्रकार समाज में जब मज़हब की बात आती है, तो उसमें भगवान के नाम पर जो कुछ भी सुनाते रहते हैं चुपचाप सुनते रहते हैं। लेकिन इसमें क्यों, कैसा...आदि प्रश्न पूछना मना है। जबकि बिना इन प्रश्नों के समाज का विकास असम्भव था और है।

2.7. साम्प्रदायिक दंगे और अल्पसंख्यक समाज

"इस सर्वेक्षण में प्रतिभागियों से पूछा गया था कि साम्प्रदायिक दंगे कौन शुरू करता है? कुल प्रतिभागियों में से लगभग 67 प्रतिशत लोगों ने राजनीतिक दलों को दंगे भड़काने के लिए दोषी ठहराया था और केवल 10 प्रतिशत लोगों ने इसके लिए मुसलमानों को दोषी माना है। हिन्दू प्रतिभागियों में से 66 प्रतिशत लोग राजनीतिक दलों को इसका जिम्मेदार मानते हैं, जबकि मुस्लिम प्रतिभागियों में 74 प्रतिशत लोग दंगों के लिए राजनैतिक दलों को दोषी मानते हैं। इस में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जहां 11.3 प्रतिशत हिन्दू प्रतिभागी मुसलमानों को दंगों के लिए दोषी मानते हैं, वहां केवल 3.8 प्रतिशत मुसलमान ही हिंदुओं को दंगों के लिए दोषी मानते हैं।"[110]

अल्पसंख्यक कौन होते हैं ? धर्म–सम्प्रदाय या मज़हब के हिसाब से देखें तो कहा जाता है कि मुस्लिम, ईसाई और बुद्ध अल्पसंख्यक हैं, क्यों हैं ? इसलिए हैं कि इस्लाम को मानने वाले और उन के अनुसार चलने वाले बहुत कम संख्या में हैं यानी हिन्दू से कम संख्या में हैं। वैसे ही ईसाई भी हिन्दू से कम संख्या में हैं। लेकिन क्या हिन्दू बहुसंख्यक हैं ? तो इसका जवाब मुश्किल है, क्योंकि हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में चार हजार पांच सौ जातियाँ हैं। एक जाति दूसरी जाति से रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं रखती हैं। कोई शाकाहारी है तो कोई

---

[109] पृष्ठ संख्या, 204, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

[110] पृष्ठ संख्या 59, हंस, अगस्त, 2003, –भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य, विशेषांक

मांसाहारी है। कुछ ऐसी जातियाँ हैं जिनकी परछाईं पड़ने से निर्जीव पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं। भारत की जनसंख्या से दुगुना ज्यादा हैं हिन्दू देवी–देवता। हिन्दू वे भी नहीं होते हैं जो जनेउ पहनते हैं। ये होते हैं वैष्णव सम्प्रदायी और शैव सम्प्रदायी। अगर देखा जाए तो इनकी संख्या बहुत अल्पसंख्यक है। वैसे ही अपनी–अपनी जाति के हिसाब से देखें तो कौन अल्पसंख्यक और कौन बहुसंख्यक कहना मुश्किल होता है। यह एक साजिश है कि केवल मुसलमानों को और ईसाइयों को ही अल्पसंख्यक ठहराते हैं। उन पर साम्प्रदायिक दंगे, अत्याचार आदि करवाते हैं। इन समस्याओं पर इसमें चर्चा किया गया है।

2.7.1. अल्पसंख्यकों का अपमान

जब कभी शहरों में या गाँवों में साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। इसी समय अगर मीडिया वहाँ पहुँचता है तो कभी–कभी वहाँ का माहौल जैसे के वैसे टी. वी. पर दिखाते हैं। हमको वह नज़र आता है कि वहाँ मुसलमानों के युवक और लड़के पत्थर उठाए हुए होते हैं। इसको देखकर आम जनता यह सोचती हैं कि मुसलमान ही बड़े लड़ाकू होते हैं। मुसलमान ही दंगे करते हैं। लेकिन वास्तविकता कुछ और ही होता है। उस या कोई भी दंगे की शुरुआत पत्थर पकड़ने से नहीं होती है। इसका शुरुआत उससे पहले से ही होता है। बहुसंख्यक धर्म–सम्प्रदाय के लोग, अल्पसंख्यक धर्म–सम्प्रदाय के लोगों को दबा के रखना चाहते हैं। बहुसंख्यक समाज, अल्पसंख्यक समाज पर अधिकार और आधिपत्य चलाना चाहते हैं। इसके लिए उनको सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से वंचित करना चाहते हैं। उनकी संस्कृति का अपमान करते हैं। उनकी सामाजिक स्थिति का अपमान करते हैं। अल्पसंख्यक को नज़रंदाज़ करते हैं। इन सबको सहते हुए, असुरक्षा की भावना को अनुभव करते हैं। इनके अंदर गुस्सा, अक्रोश...होता है, तब ये हाथ में पत्थर लेते हैं। इन समस्याओं को 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

"दुनिया भर में दंगे उसी तरह शुरू होते हैं। अल्पसंख्यक असुरक्षा के भाव में अपने में घुसे घिरे रहते हैं और जब न तब त्रस्त होकर या लड़ाका होकर पत्थर उठा देते हैं, पर

असल शुरुआत यह नहीं होती। उसके भीतर अपमान का क्लेश, नज़रंदाज़ किए जाने का गुस्सा...”[111]

इस प्रकार समाज में बहुसंख्यक, अल्पसंख्यकों के प्रति हीन भावना रखते हैं और उनका अपमान करते हैं। अपमान का बदला लेना चाहते हैं, तो वे लड़ाकू नजर आते हैं। परिणाम दंगे शुरू हो जाते हैं।

2.7.2. असुरक्षा भाव में अल्पसंख्यक युवक

अल्पसंख्यक हमेशा असुरक्षा भाव महसूस करते हैं। क्योंकि यहाँ के बहुसंख्यक, अल्पसंख्यकों को ऐसी स्थिति में ढकेल देते हैं कि वो इस देश के वासी ही नहीं हैं। अल्पसंख्यक के भीतर भी एक गड़–बड़ी सी पैदा होती है और असुरक्षा की भावना का अनुभव करते हैं। लेकिन आज का दौर ग्लोबलैइजेशन यानी वैश्वीकरण का दौर है। दुनिया के सभी देश एक दूसरे से मिल गये हैं यानी पूरी दुनिया एक गाँव बन गया है। यह दुनिया विविध धर्म–सम्प्रदायों में जरूर बँटा हुआ हैं। धर्म सम्प्रदाय के अनुयायी एवं उस में विश्वास करने वाले कई देशों में हैं। हो सकता है ये कुछ देशों में बहुसंख्यक में हैं और कुछ देशों में अल्पसंख्यक में हैं। ऐसा भी हो सकता है कि मान लीजिए भारत में हिन्दू बहुसंख्यक में हैं, तो यहीं हिन्दू पकिस्तान और बंगला देश में अल्पसंख्यक में हैं। हम यहाँ के अल्पसंख्यकों को कुछ हानि पहुँचाएं तो इस का प्रभाव बंगलादेश के अल्पसंख्यकों पर पड़ेगा ही। उनको सभी सुविधाओं से दूर रखेंगे तो वे अपने देशों के तरफ देखेंगे ही। उन पर हमला दंगे करेंगे तो अपने आप को रक्षा के लिए वह भी दंगा करेगा। तुम बहुसंख्यक होंगे, उनका एक तुम्हारे पचास के बराबर हो कर लड़ेगा। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं।

“इधर नौजवान चिल्ला रहे है : हम बेसहारा नहीं हैं, अरब मुल्क हमें पैसा देंगे, इनको तेल नहीं देंगे, पाकिस्तान सरहद पर बारूद बिछा देगा, हमने अपने हिफ़ाज़ती दस्ते बनाए

---

[111] पृष्ठ संख्या, 109, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

हैं, अल्लाहताला की यही मर्ज़ी है तो हम भी दिखा देंगे, हमारा एक उनके पचास के बराबर है।"[112]

इस प्रकार अल्पसंख्यकों के नौजवान अपने देश पर नहीं बल्कि विदेशों पर भरोसा करते हैं। क्यों ऐसा कर रहे हैं, इस पर सोचना चाहिए। क्योंकि जिस देश में वो जी रहे हैं उस देश की समाज और प्रशासन उनकी जिंदगी का भरोसा यदि देता तो शायद वे वैसा नहीं सोचते।

"यह भी तो देखिए कि हम किसी भी मुद्दे पर बात करते हैं, असम, पंजाब, उत्तरपूर्वी भारत के मसले, तब तो हम बहुत से तत्वों की बात करते हैं, प्रशासन, आतंकवाद, कुंठाग्रस्त सामाजिक तबके इत्यादि। कभी मुस्लिम सांप्रदायिकता को लेकर क्यों नहीं मिले–जुले तत्वों की बातें करते ? "[113]

इस प्रकार साम्प्रदायिकता के कारणों को एक तरफ से ही सोचते हैं। देश में अनेक समस्याएं हैं जैसे असम, पंजाब...अलगाववाद आदि। जब इनके बारे में सोचते हैं तो बहुत सारे तत्वों की बातें करते हैं। उसी प्रकार मुस्लिम साम्प्रदायिकता के संदर्भ में भी मिले–जुले तत्वों से सोचना होगा। उनके असुरक्षा भावना को दूर करना होगा।

2.7.3. मिलावट–गिरावट

धर्म–सम्प्रदाय अपने–अपने हैं। जैसे इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय, ईसाई धर्म–सम्प्रदाय, यहूदी धर्म–सम्प्रदाय, बौद्ध धर्म–सम्प्रदाय, जैन धर्म–सम्प्रदाय, सिख धर्म–सम्प्रदाय, हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय और लोक धर्म–सम्प्रदाय भी होता है। इनमें से हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय को छोड़के, बाकी सभी धर्म–सम्प्रदाय में एक ही भगवान रहता है। इनमें भगवान की मूर्ति नहीं

---

[112] पृष्ठ संख्या, 109, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

[113] पृष्ठ संख्या, 238, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

रहती है। इनका भगवान निराकार है। ये केवल भगवान का भजन यानी प्रार्थना करते हैं। इन सभी के सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर एवं परिस्थिति एक जैसी ही रहती है। इसलिए इनमें एकता होती है। लेकिन हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में असंख्यक देवी–देवता हैं। ये सगुणवादी हैं। इन सब की मूर्तियाँ रहती हैं। भारत देश की आबादी आज के हिसाब से सौ करोड़ के आस–पास है। लेकिन हमारे देवी–देवता अनादि से ही बान्वे करोड़ हैं। छत्तीस कोटि देवता और छप्पन कोटि भवानी हैं। एक–एक आदमी के कंधे पर एक–एक मुफ्तखोर सवारी गाँठे है। देश की आबादी मेहनत करती हैं, तो भोगते वो हैं। देवता भी कैसे–कैसे हैं ? सभी देवताओं के देव इंद्र ने गुरु की पत्नी को धोखे से संभोग करते हैं। ब्रह्मा अपनी सगी बेटी से संभोग करता है। इनके मिलावट का और गिरावट की कोई नैतिकता नहीं हैं। इतने देवताओं के नाम पर लोगों को बाँट कर, उन पर अपना सत्ता कायम करके रकना चाहते हैं। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं।

“...हमारी आबादी कितनी है ? नब्बे करोड़। और हमारे देवी देवताओं की ? बानवे करोड़। छत्तीस कोटि देवता और छप्पन कोटि भवानी। एक–एक आदमी के कंधे पर एक–एक मुफ्तखोर सवारी गाँठे है। देवता कौन ? मुफ्तखोर ! जो हल की मुठिया नहीं थामता। कमाते हैं हम। भोग लगाता है वह। हम खटने के लिए पैदा हुएँ हैं और वे भोगने के लिए। और देवी–देवता भी कैसे–कैसे ? कोई गूरू की पत्नी पर चढ़ बैठता है तो कोई अपनी सगी बेटी पर ...थू–थू ! इससे बढ़कर मिलावट, इससे ज्यादा गिरावट और क्या होगी ?”[114]

इस प्रकार विशेष कर हमारे भारतीय समाज में तरह–तरह के देवी देवताएं अनेक हैं। इनमें मिलावट और गिरावट भी हैं।

---

[114] पृष्ठ संख्या, 69, त्रिशूल–शिवमूर्ति

2.7.4. साम्प्रदायिक दंगे

एक धर्म–सम्प्रदाय समाज या एक जाति सम्प्रदाय समाज, दूसरे या अन्य धर्म–सम्प्रदाय समाज या जाति सम्प्रदाय समाज पर साम्प्रदायिक दंगे या हमले करते रहते हैं। क्योंकि ये एक दूसरे पर अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। इनके बीच साम्प्रदायिकता भड़का के भय–भीत करते हैं। तथा इनके वोट बटोरना चाहते हैं। भाजपा और उनके साथी संगठन इसी काम में लगी हुई हैं। हिन्दुत्ववादी, आर.एस.एस तो यही काम में व्यस्त है। लाल कृष्ण आड़वाणी रथ यात्रा निकालता है। राम जन्म भूमि के नाम पर मस्जिद को तोड़ा है। हिन्दू और मुसलमानों में साम्प्रदायिक भावना को भड़काया है। फलस्वरूप हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे करवाये हैं। इसके बाद शिया और सुन्नी के बीच साम्प्रदायिक दंगे करवाये हैं। इसके बाद जात–पात के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे करवाये हैं। इसके लिए 'मंडल सिफारिस' के विरोध में ऑदोलन चलाएं जाते हैं। साम्प्रदायिक दंगों के लिए ये सब पुराने पड़ गये हैं। अब दंगों में नये तरीके के लिए सोच रहें होंगे। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देखा जा सकता है।

"क्योंकि अब बस यही बच गया है ? यही होने को ? दंगे और फ़साद की एक नई कहानी दुहराई जायगी...एक नई कहानी...शिया–सुन्नी फ़साद...जात–पात के नाम पर होने वाले दंगे, हिन्दू–मुस्लिम दंगे...सब पुराने पड़ गये...अब तलवार की ज़द पर तुम हो..."[115]

इस प्रकार दंगे और फसाद के लिए नये–नये कारणों को ढूंढ़ते रहते हैं। जबकि शिया–सुन्नी, जात–पात, हिन्दू–मुस्लिम...आदि पुराने पड़ गये हैं।

2.7.5. मज़हबों के जन्म से पहले भी समाज था

मनुष्य का जन्म जब आदि में हुआ था तो, वह इतना विकासशील नहीं था। मान लीजिए कि मनुष्य का विकास बंदर से हुआ। तो उनको इस मनुष्य का आकार पाने में

---

[115] पृष्ठ संख्या, 29, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी

हजारों साल लग गये हैं। इनको भाषा आने में यानी भाषा की विकास होने में कितने साल लग गये होंगे ! यह किसी को अंदाजा भी नहीं हैं। इस बीच में इनके अज्ञान से या इनके भय से प्रकृति के परिवर्तन को पूजना या उसके प्रति आदर भाव रखना शुरु किया है। उसको आदिम समाज कहते थे। यहाँ कोई छोटा–बड़ा नहीं था। सब बराबर थे। इनके कोई अलग अलग सम्प्रदाय नहीं थें। लेकिन यह पूरी दुनिया में एक जैसा नहीं हुआ था। अपने–अपने देश के भौगोलिकता के अनुसार, अलग–अलग तरीके से इनका विकास हुआ मालूम पड़ता है। वैसे ही धर्म–सम्प्रदाय का भी अपने अपने देश, काल और भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार ही हुआ है। देश के साथ कौम जुड़ा हुआ रहता है। कौम भी उस देश के भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार ही उसकी बनावट, उसका रंग–ढंग रहता है। इसलिए एक देश के कौम दूसरे देश के कौम में शत प्रतिशत कभी नहीं मिल जाती है। उदाहरण के लिए अमेरिकी कौम यदि इस्लाम कुबूल करने से यह कौम कभी भी अरब कौम नहीं बनेगी। इनको अमरीकी मुसलमान ही कहेंगे। इन समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में देख सकते हैं।

"–किस बुनियादी उसूल पर ? मज़हब तो क़ौम की पहचान नहीं है ! मज़हबों के आने और नाज़िल होने से बहुत पहले भी तो लोग किसी और मज़हब, किसी और अक़ीदे, किसी उसूल के तहत ही अपने समाज को चला रहे थे !...आज अगर पूरा अमरीका इस्लाम को मंजूर कर ले, तो क्या वो क़ौम की शक्ल में अमरीकी नहीं रह जाएँगी ? क्या वो अरबी या ईरानी हो जाएँगे ? "[116]

इस प्रकार इन सभी मज़हबों से पहले भी समाज होगा जो सभी को एक साथ जीने का अवसर देता था। इसलिए मज़हब बदलने से कौम में बदलाव नहीं आता।

---

[116] पृष्ठ संख्या, 122, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

2.8. भारतीय(हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और भाई चारा

"भारतीय समाज में बहुत विविधता रही है। आर्यों के आने के समय से ही विभिन्न सांस्कृतिक या धार्मिक धाराओं में पारस्परिक क्रिया, संघर्ष, सहयोग और मिश्रण होता रहा है। ब्राह्मणवाद ने समाज पर वर्जनाओं पर आधारित कड़ी वर्ण व्यवस्था लागू की। लेकिन जैनधर्म, बौद्धधर्म जैसी धाराओं, कबीर, नानक तथा ज्योतिबा, खड़ोबा, तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु और तंत्र जैसे दूसरे स्थानीय संतों ने स्थानीय संस्कृतियों में मेलजोल पैदा किया। राजाओं, जमींदारों और उच्च जातियों ने धर्म का ध्यान किए बगैर शोषण किया। नीची जातियों के लोग आपस में खुलकर मिलते थे। इससे सामाजिक परंपराओं का विकास हुआ।"[117]

भारत देश विविधता के लिए प्रसिद्ध है। इस देश में सबसे पहले दो ही जातियाँ दिखाई देती हैं। इसके बाद में चार वर्ण हुए हैं। इन चार वर्णों से साढ़े चार हजार जातियाँ हुईं हैं। इनमें से कुछ जातियों की परछाईं पढ़ने से निर्जीव पदार्थ जैसे थाली, लोटा, बावड़ी तक अपवित्र हो जाती हैं। इस देश में कई धर्म–सम्प्रदाय हैं। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय का जो भावना है वह आधुनिक है। इससे पहले वैष्णव धर्म–सम्प्रदाय था, आज भी है। शैव धर्म–सम्प्रदाय था, आज भी है। बौद्ध धर्म–सम्प्रदाय था, आज भी है। जैन धर्म–सम्प्रदाय था, आज भी है। सिख धर्म–सम्प्रदाय है। इन सभी को मिलाके हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय नाम दिया जा रहा है। कई धर्म–सम्प्रदाय बाहर से भी आये हैं। जैसे इस्लाम, ईसाई, फारसी...आदि हैं। कई भारतीयों ने इस्लाम को कुबूल किये हैं, वैसे ही ईसाई को भी कुबुल किये हैं। उक्त अनेक प्रकार के धर्म–सम्प्रदाय, जातियाँ होते हुये भी इन लोगों में एकता की भावना मौजूद रही है और भारतीयता की भावना मौजूद है। लोग साम्प्रदायिक नहीं बने। कुछ ही साम्प्रदायिक लोग साम्प्रदायिकता को फैलाने का काम कर रहें हैं। आज तक भारत में भाई चारा है और आगे भी रहेगा।

[117] पृष्ठ संख्या 35, अंक 79, उद्भावना, साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक, अगस्त–2008

2.8.1. धर्मांतरित मुसलमान

भारत अनेक धर्म–सम्प्रदायों का देश है। ऐसा नहीं है कि भारत किसी एक ही धर्म–सम्प्रदाय वाला देश है। इस देश में हिन्दू, ईसाई, इस्लाम, सिख, बौद्ध, जैन आदि धर्म–सम्प्रदाय हैं। इन में दो धर्म–सम्प्रदाय मुख्य रूप से यानी ज्यादातर पूरे देश में फैले हुए हैं, जो एक हिन्दू और दूसरा सम्प्रदाय इस्लाम है। इस्लाम के राजाओं ने भारत में अपना राज बनाएं हैं। वे जब सत्ता में थें, तो उनका प्रभाव भारत के जनता पर पड़ा था। कई भारतीयों ने इस्लाम को कुबूल किए हैं। इनमें ऊँची जाति के और नीची जाति के भी लोग थें। इनमें मेवात प्रदेश की विशेषता थी। ये पूर्व में क्षत्रिय वंशज माने जाते थे। ये हिन्दू सम्प्रदाय के विशिष्ट हिस्सा ही थें। ये इस्लाम धर्म कुबूल किये हैं। लेकिन तब से आज तक इनकी संस्कृति मिली–जुली दिखाई देती है। वे मुसलमान होते हुए भी इनके रिश्ते मुस्लिम जैसे नहीं होते हैं। वे आज भी हिन्दुओं के तरह अपना गोत्र बचाते हैं। मुसलमान केवल अपनी 'माँ' की दूध बचाते हैं। आज भी वहाँ के राजनीतिक नेता कहते हैं कि क्षत्रिय पहले, इसके बाद मेव है। कुलमिलाकर मेव की संस्कृति मिली–जुली और भाई चारा वाली संस्कृति प्रतीत होती है। इन समस्याओं को 'कला पहाड़' उपन्यास में देख सकते हैं।

"वो इसलिए कि एक तो ये कनवर्टेड मुसलमान हैं.....दूसरा इनके यहाँ आज भी रिश्ता करते वक़्त हिंदुओं की तरह माँ, दादी, नानी और ख़ुद का गोत्र बचाया जाता है.....हमारी तरह सिर्फ़ माँ का दूध नहीं बचाया जाता......आज भी इनके रस्मो–रिवाज़ हिंदुओं के काफ़ी नज़दीक हैं......आपने देखा नहीं, चेयरमैन साहब ने अपने आपको मेव बाद में पहले क्षत्री बताया है.....मुसलमान लफ़्ज का इस्तेमाल एक भी मेव लीडर ने मजाल है ग़लती से किया तो हो..... ।"[118]

---

[118] पृष्ठ संख्या, 87–88, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

इस प्रकार हमारे भारत में नब्बे प्रतिशत कन्वर्टेड मुसलमान हैं। ये ऊँची, आदिवासी और दलित जातियों से इस्लाम में तब्दील हुए हैं। अर्थात् इस देश के जितने भी मुसलमान हैं वे सब भारतीय ही हैं।

2.8.2. हिन्दू–मुस्लिम भाईचारा

हिन्दुस्तान अनेक सम्प्रदायों का बगीचा है। इसमें कई धर्म–सम्प्रदाय रूपी पौधें और फूल खिले हैं। इनके अंकुर से लेकर बड़े–बड़े पौधे होने तक हिन्दुस्तान का पानी से ही सींचा गया है। वे आज भी भारत की नदियों का पानी पी रहें हैं। जब कुछ लोगों ने एक नदी का पानी और उसी पानी से सींचने से हुआ अनाज खाते हैं तो उनमें कम से कम भाई चारा वाला भावना तो होना चाहिए। मेवात एक ऐतिहासिक प्रदेश माना जाता है। यहाँ ज्यादातर क्षत्रिय लोग निवास करते हैं। जब मुसलमान इस देश आये थे, शुरुआत में ही मेवाड़ के लोग इस्लाम कुबूल किये हैं। इस के दौरान देश में कई लड़ाई–झगड़े सम्प्रदायों को ले कर हुये हैं, लेकिन मेव में ऐसा कुछ नहीं हुआ था। ये सब मिलके रहते थे। बँटवारे के समय में कई हिन्दुओं की रक्षा किये हैं और चौधरी आमीन खाँ ने कहा है कि पहले हम हिन्दू है बाद में मेव। 1857 में मेवों ने फिरंगियों के विरोध में संघर्ष किये हैं। 1947 में भी स्वाधीनता के लिए संघर्ष किये हैं। इन समस्याओं को 'कला पहाड़' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

“.....मैंने सीएम साब सू कई बेर बात की है के मेवात जैसो भाईचारा पूरा मुलक में ना मिलेगो.....और ई भाईचारा मरहूम चौधरी मामीन खाँ साब जैसे कौम के रहनुमाओं की बदौलत

है.....अब मेरी सीएम साब सू गुजारिस है के मेवात के या रहनुमा के बारा में कुछ अलफाज कहें...... ।”[119]

---

[119] पृष्ठ संख्या, 88, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

उपर्युक्त उद्धरण अनुसार यह समझ में आता है कि हिन्दू–मुस्लिम भाई भाई हैं। यह भाई चारा मेव में अधिक दिखाई देता हैं।

“.....ये सही बात है कि इस इलाके जैसा भाईचारा न तो मैंने कहीं देखा है और न सुना है......मुझे यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि जब आज पूरे देश में दंगे–फसाद हो रहे हैं तो इस इलाके में पूरी शांति है......इसका मुख्य कारण मुझे यही लगता है कि आपमें अभी तक हिंदुओं के संस्कार भरे पड़े हैं......जैसाकि चौधरी करीम हुसैन ने बताया है कि उनके मरहूम पिता चौधरी आमीन खाँ ने बँटवारे के समय हिंदुओं की रक्षा करते हुए कहा था कि पहले वे हिंदू हैं, मेव बाद में–ये सबद उन्हीं संस्कारों की देन हैं......इससे पहले भी चौधरी अतर मोहम्मद ने कहा था कि हमारे मेव भाईयों ने 1857 से लेकर 1947 के आंदोलन में फिरंगियों से जमकर टक्कर ली थी, यह वास्तव में तारीफ करने लायक है......”[120]

उक्त प्रकार मुसलमान और हिन्दू सदियों से मिल–जुल कर रह रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान मिल के स्वतन्त्रता के लिए आंदोलन किये हैं। विभाजन के दौरान मुसलमानों ने हिन्दुओं की रक्षा की। इनके बीच वही भाई चारा आज भी मौजूद है। इसके लिए मेवात एक अच्छा उदाहरण है। भारत देश ही एक ऐसा देश, जहाँ अनेकता में एकता है।

2.8.3. सहिष्णुता–उदारता–विश्वबंधुता

एक भारत ही ऐसा देश है जो सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुता के प्रतीक है। हमारे देश में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जो सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुता को बचाएं रखें हैं। हमारे देश में कई गरीब मुसलमान के बच्चें हिन्दुओं के घर में काम करते हुए दिखाई देते हैं। इन का रिश्ता केवल काम करने वाले के रूपमें ही नहीं बल्कि घर में एक सदस्य की तरह या भाई की तरह या उनके अपने बच्चे की तरह मिल–जुल कर रहते हैं। वैसे ही हिन्दू के गरीब बच्चे भी मुसलमानों के घर में काम करते हैं। यह एक भाई चारा वाली

---

[120] पृष्ठ संख्या, 89, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

मिली–जुली संस्कृति है। इस सामाजिक सद्भावना को भंग करना चाहते हैं, कुछ साम्प्रदायिक लोग। हिन्दूवादी, भाजपा और उनके साथी संगठन के लोग हमेशा समाज को उथल–पुथल करते रहते हैं। हिन्दू और मुसलमानों के बीच, घी में आग डालने का काम करते रहते हैं। 'त्रिशूल' उपन्यास में 'महमूद' नामक एक लड़का हिन्दू के घर में काम करता है। घरवाले महमूद को अपने बेटे के बराबर देखते हैं। उसी घर के पास में एक आर.एस.एस का लीडर रहता है। इनके मिल–जुल के रहना इसको अच्छा नहीं लगता। उनपर और मुसलमानों के बारे में उल्टी–पुल्टी बाते कहते हैं। घरवाले को और उस बच्चे को डराते हैं कि वह बच्चा उस घर से चला जाए। अंत में महमूद चला जाता है। घरवाला दु:खी होता है और कहता है कि 'लगता है महमूद के साथ ही हमारी युगों–युगों से संचित सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुत्व की पूँजी आज इस घर को हमेशा–हमेशा के लिए अलविदा करके जा रही है।' इन समस्याओं को 'त्रिशूल' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

"लगता है महमूद के साथ ही हमारी युगों–युगों से संचित सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुत्व की पूँजी आज इस घर को हमेशा–हमेशा के लिए अलविदा करके जा रही है।"[121]

इस प्रकार समाज और हर एक व्यक्ति में, जब सहिष्णुता और बंधुता का अभाव होता तब समाज में साम्प्रदायिकता का उत्पन्न होता है। इसलिए समाज में सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुता का भावना को फैलाना होगा।

2.8.4. प्रेम और सद्भावना

समाज में साम्प्रदायिकों ने विविध सम्प्रदाय के लोगों में दूरी को बढ़ा दिये हैं। कोई राम के नाम पर राजनीति करता है, तो कोई अपने कौम को ले कर राजनीति करता है। लोगों की मानसिक भावना को भड़का देते हैं। एक धर्म–सम्प्रदाय वाले दूसरे धर्म–सम्प्रदाय के

[121] पृष्ठ संख्या, 135, त्रिशूल–शिवमूर्ति

प्रति घृणा, द्वेष और नफरत की भावना दिखाते हैं। हमारे देश में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं। समाज में अल्पसंख्यक लोग ज्यादा डरे हुए होते हैं। इस देश में शान्तिपूर्वक समाज की स्थापना करना है तो वह बहुसंख्यकों पर निर्भर होता है। इनको अल्पसंख्यकों के पास जाना होगा। उनके प्रति प्रेम दिखाना होगा। उनमें और हममें भी सद्भावना को जगाना होगा और मुसलमानों के दिल को जीतना होगा। इन समस्याओं को 'बयान' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

"मुसलमानों के दिल में हमारे लिये जो घृणाभाव आ गया है हमें उसे धो डालना है...हमें उनके बीच जाकर प्रेम और सद्भावना की बात करनी है।"[122]

इस प्रकार समाज में प्रेम और सद्भावना, आपस में बाँटना चाहिए। एक दूसरे के प्रति घृणा भावना को त्यागना होगा। भाई–भाई और मित्र के तरह मिल के रहना चाहिए। तब ही हमारा भारत महान कह लाएगा।

2.9. निष्कर्ष

भारतीय समाज बाकी देशों के समाज से भिन्न समाज है। इसलिए भारत को उप महाद्वीप कहते हैं। मेरे शोध विषय के आधार पर बिन्दु वेद, उपनिषद, पुराण और मनुस्मृति... आदि में भी उपलब्ध हो सकता है। शुरुआत में दो ही जातियाँ होती थी। ये हैं एक देव जाति और दूसरी राक्षस जाति। यहाँ देव यानी उस समय की ऊँची जाति या ब्राह्मण जाति है। राक्षस जाति यानी उस समय की गैर ब्राह्मण जाति या यहाँ की मूल दलित जाति हो सकती है। इन दो जातियों के बीच जो भी संघर्ष आधिपत्य के लिए हुआ था, उसको बढ़ा–चढ़ा कर तरह–तरह की कहानियाँ लिख डाले गए हैं। देवताओं में सबसे बड़ा देव इंद्र हैं। उसके बाद विष्णु हैं। जब भी देवता और राक्षसों में झगड़ा होता था तो, देव जाति के हार जाते थें और राक्षस जाति के विरोध में दावा करते थें, विष्णु के पास जाके। विष्णु

[122] पृष्ठ संख्या, 59, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी

और इंद्र हमेशा देव जाति के पक्ष में रहते थे। ये कभी संकटावस्था में भी राक्षसों के पक्ष नहीं लिए हैं।

मनु के समय में आते कालांतर में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक... आदि रूपों से जनता को वंचित और शोषण करने के लिए, मनु ने एक कानून सा ही लिखा है, उसी का नाम मनुस्मृति है। मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य को ब्रह्मा ने सृष्टि की है। यह भी अपने अपने पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर वर्तमान जन्म रहता है। मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा के विविध अंगों से मनुष्य का जन्म हुआ है। मुख से ब्राह्माणों का जन्म हुआ है। भुजाओं से क्षत्रियों का जन्म हुआ है। जांघों से वैश्यों का जन्म हुआ है। पैरों से शूद्रों का जन्म हुआ है। ये चारों को ही चार वर्ण ही कर दिये गए। इन सबमें श्रेष्ठ ब्राह्मण है और इसके बाद क्षत्रिय हैं। सबसे नीचे शूद्र को माना गया है। पता नहीं ऐसा क्यों ? जबकि ये सभी एक ही शरीर में से जन्में हैं। कालांतर में इन चार वर्णों में से चार हजार पांच सौ जातियाँ निर्मित की गयी हैं। इन जातियों का एक सीढ़ी जैसी व्यवस्था की निर्माण किया गया है। इनमें हरेक जाति अपने से छोटी जाति को ढूंढ लेती है। इन जातियों का अपना–अपना जाति समाज है। इनमें एक जाति समाज के अपने विश्वास, खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज दूसरे जाति समाज से मेल नहीं खाते हैं। इन जातियों के बीच सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से ऊँच–नीच की भावना भी है।

इन सभी जातियों में छुआछूत की भावना है। ब्राह्मण जाति में कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जिन के साथ ब्राह्मण छुआछूत अपनाते हैं। उदाहरण के लिए दाह संस्कार के समय में जो ब्राह्मण मंत्र पढ़ता है, उसके साथ बाकी के ब्राह्मण छुआछूत की भावना रखते हैं। वैसे ही हरेक जाति में अपनी उपजातियों के साथ थोड़ा बहुत छुआछूत की भावना रखते हैं। लेकिन इन सभी जातियों में से कुछेक ऐसी जाति हैं कि जिनकी परछाईं पड़ने से ही निर्जीव पदार्थ सहित अपवित्र हो जाते हैं। इस भावना के वजह से इन जाति के लोगों को समाज में मान–सम्मान और आत्म सम्मान नहीं मिलता है। इसी के वजह से ये आर्थिक रूप से पिछड़े हैं। उदाहरण के लिए एक चमार जाति के आदमी दूध का व्यापार या धंधा नहीं कर

सकता है, क्योंकि वह अछूत व्यक्ति है, जिसके पास दूध कौन खरीदेगा ? यह सोचने की बात है।

इस पूरे समाज में स्त्री का संख्या आधी हो सकता है। स्त्री का अपना समाज है। स्त्री समाज को सदियों से पितृसत्ता समाज शोषित रखते आ रहा है। मुख्यधारा का समाज दलित समाज को दबाता आया है, वैसे ही एक दलित समाज की स्त्री और दबाई जाती है। कोई भी धर्म–सम्प्रदाय समाज हो वह पितृ सत्तात्मक समाज ही है। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय समाज में स्त्री को एक भोग वस्तु मात्र के रूप में देखते हैं। इस्लाम में स्त्री को मजहबी हक भी नहीं दी गयी है। इनको घर से बाहर नहीं निकलने देते हैं। बुरका प्रथा स्त्री के साथ अन्याय ही है। ईसाई में भी पुरुषाधिक्यता है। स्त्रियों के साथ अत्याचार, बलात्कार हो रहे हैं। लड़कियों को कोख में यानी पेट में ही खत्म कर दे रहें हैं। इनके साथ दहेज की बहुत बड़ी समस्या है। दहेज के लिए एक स्त्री ही अपनी साथी स्त्री को जला देती है।

भारत देश अनेक धर्म–सम्प्रदायों के लिए प्रसिद्ध है। भारत का मूल धर्म–सम्प्रदाय शैव है। आर्य बाहर से आये हैं। इनका धर्म–सम्प्रदाय वैष्णव है। इनके अलावा कई धर्म–सम्प्रदाय हैं। बौद्ध धर्म–सम्प्रदाय, जैन धर्म–सम्प्रदाय हैं। सिख धर्म–सम्प्रदाय है। आज आर. एस. एस और भाजपा आदि राजनीतिक दल उपरोक्त सभी धर्म–सम्प्रदायों को मिलाके 'हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय' नाम दे दिया है जबकि यह ठीक नहीं है। इसी हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में ही साढ़े चार हजार जातियाँ है। इन में कई जातियों के साथ छुआछूत अपनाते हैं। वैसे ही इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय है, इसमें फिर से तीन सम्प्रदाय हुये हैं। जैसे सुन्नी, शिया और सूफी हैं। ईसाई धर्म–सम्प्रदाय है, इसमें से दो हुये हैं। जैसे कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट। फारसी धर्म–सम्प्रदाय है। इन उपरोक्त धर्म–सम्प्रदायों का अपना–अपना समाज है और जातियों का भी अपना–अपना समाज है। यहाँ सामाजिक आधिपत्य या वर्चस्व के लिए, एक धर्म–सम्प्रदाय समाज या एक जाति सम्प्रदाय समाज के अनुयायी दूसरे धर्म–सम्प्रदाय समाज या जाति सम्प्रदाय समाज के अनुयायियों के ऊपर हमला करते या उनकी गलत व्याख्या करता या उनकी निंदा करता है तो वह साम्प्रदायिकता होती है। धर्म–सम्प्रदाय को राजनीति के लिए इस्तेमाल कर रहें हैं। राजनीतिक नेता आग में घी डालते रहते हैं।

उपरोक्त प्रकार से भारत देश में विविधता हैं। अनेक धर्म–सम्प्रदाय समाज हैं। अनेक जाति सम्प्रदाय समाज हैं। इन जातियों में अछूत जाति सम्प्रदाय समाज भी है। स्त्रियों का अपना समाज है। ये सब होते हुए भी इस देश का मानव समाज मिल–जुल के रहते हैं। इनमें कहीं न कहीं भाईचारा वाला भावना इनके मस्तिस्क में अवश्य है। यह आगे भी रहेगा। साम्प्रदायिकता का दूसरा स्रोत राजनीति भी है, जिस पर आगे चर्चा की जायेगी।

अध्याय—तीन

अध्याय–तीन

3. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : राजनीतिक सन्दर्भ

3.1. हिन्दू, हिन्दुत्व एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.1.1. हिन्दू देवता बनाम साम्प्रदायिक लोग

3.1.2. भाइयों की लड़ाई है महाभारत

3.1.3. राजनीति के लिए मन्दिर का दुरूपयोगः

3.2. प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.2.1. व्यायाम

3.2.2. खेल–कूद

3.2.3. सैनिक ड्रिल

3.2.4. जातिवाद

3.2.5. व्यापारी वर्ग

3.2.6. रिश्वतखोरी

3.2.7. वोट की राजनीति

3.2.8. देश प्रेम

3.2.9. राष्ट्रीयता एवं आनंद मठ

3.2.10. विविध प्रतिक्रियावादी संगठन

3.2.11. प्रतिक्रियावादी राजनीति एवं मुसलमान

3.2.12. हिन्दू–साम्प्रदायिकता

3.2.13. साम्प्रदायिक राजनीति

3.2.14. तनाव

3.3. राजनीति के लिए कुरान का इस्तेमाल

3.3.1. मुस्लिम लीग और साम्प्रदायिकता

3.3.2. धर्मांतरित प्रेम विवाह–इस्लाम

3.3.3. धर्मांतरित प्रेम विवाह–साम्प्रदायिक दंगे

3.3.4. शिया–सुन्नी का भेद एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.3.5. व्याक्तिगत झगड़ें और मज़हब

3.3.6. जिहाद बनाम व्यापार

3.3.7. इस्लाम और तालिम

3.4. देश विभाजन एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.4.1. विभाजन के दुष्परिणाम

3.4.2. भौतिक रूप से बँटा, मानसिक रूप से है लगाव

3.4.3. जितने देश बँटेंगे उतने मनुष्य बँटेंगे

3.4.4. भारत–पाकिस्तान : साम्प्रदायिक राजनीति

3.4.5. विभाजन एवं हिंसा

3.4.6. उदार, नास्तिक बनाम कट्टर साम्प्रदायिक

3.5. अलगाववादी साम्प्रदायिक राजनीति

3.5.1. पाकिस्तान से पाकिस्तान

3.5.2. अलगाववाद

3.5.3. मूलनिवासी

3.5.4. बिहारी बनाम बंगाली

3.6. धर्म–सत्ता का हथियारा और साम्प्रदायिक राजनीति

3.6.1. धर्म का दुरूपयोग

3.6.2. दिमागी़ बुखार

3.6.3. झूठी खबरें

3.6.4. साम्प्रदायिक वायरस को फैलाना

3.6.5. गुनेहगार और धर्म

3.6.6. धर्म

3.6.7. गाय और राजनीति

3.6.8. राम मन्दिर

3.7. हिन्दू–मुस्लिम, शिया–सुन्नी और साम्प्रदायिक राजनीति

3.7.1. हिन्दू–मुस्लिम, शिया–सुन्नी

3.7.2. सत्ता के होड़ में...

3.7.3. भड़काउ भाषण

3.7.4. हिन्दू–मुस्लिम भाई भाई

3.7.5. मुल्ला, पादरी और पण्डित

3. 8. साम्प्रदायिक भाषण, दंगे, तोड़–फोड़

3.8.1. साम्प्रदायिक भाषण

3.8.2. शख़्स हिटलर

3.8.3. दंगे एवं पुलिस

3.8.4. ज़मीन पर कब्जा

3.9. साम्प्रदायिकता, अल्पसंख्यक तुष्टिकरण की राजनीति

3.9.1. अल्पसंख्यक

3.9.2. जनसंख्या

3.10. गोत्र, नस्ल, खानदान, बिरादरी, जाति एवं साम्प्रदायिक राजनीति

3.10.1. गोत्र

3.10.2. रिश्ता

3.10.3. रोज़गार

3.10.4. मीडिया एवं खबरें

3.10.5. अपनी रोटी सेकना

3.10.6. वोट खरीदना

3.10.7. आरक्षण

3.11. गाँधी और धर्मनिरपेक्षता

3.11.1. गाँधी एवं धर्मनिरपेक्षता

3.11.2. धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता

3.11.3. अपने अपने ईश्वर

3.12. निष्कर्ष

अध्याय–तीन

3. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : राजनीतिक सन्दर्भ

“भाजपा के 1989 के चुनाव–घोषणापत्र में पहली बार अयोध्या में राममंदिर के निर्माण का उल्लेख प्रस्तावना में हुआ, यद्यपि दिए गए कार्यक्रम में इसका कोई उल्लेख नहीं हुआ। किंतु विश्व हिंदू परिषद के माध्यम से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भाजपा को अपने अंकुश में रखने के लिए कृतसंकल्प था। उसे डर था कि गैरकांग्रेसी तालमेल से भाजपा पर उसका शिकंजा ढ़ीला पड़ जाएगा। विश्व हिंदू परिषद ने अयोध्या, मथुरा और काशी में मस्जिदों को गिराकर मंदिर बनाने का अभियान तेज कर दिया। भाजपा इससे बच रही थी क्योंकि वह गैरकांग्रेसी तालमेल के लिए जनता के आगे वचनबद्ध थी। जब विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा की तो भाजपा को अपना मताधार टूटने का खतरा दिखाई दिया और वह विश्व हिंदू परिषद के 'मस्जिद गिराओ मंदिर बनाओ' जुनून में शामिल हो गई रथयात्रा निकाली गई और फिर जनता दल की सरकार का पतन हुआ।”[123]

राजनीति का अर्थ ही बदल गया है। राजनीति कहने से ही हमारे मन में उभरने वाले बिंब ही अलग हैं। राजनीतिक सत्ताधारी लोग कुछ अच्छे काम करते हैं, तो विपक्षी विरोध करते हैं। वी .पी. सिंह ने मंडल कमीशन की सिफारिश लागू किया तो भाजपा ने विरोध किया। भाजपा मन्दिर के नाम पर, मस्जिद के नाम पर राजनीति करने लगी। रथ यात्राएं निकाली गयी। हिन्दू और मुसलमानों के बीच घृणात्मक भावनाओं को फैलाया गया। हिन्दू और मुसलमानों में दंगे होने लगे थे। वे हिन्दुत्व की बात करते हैं। हिन्दू धर्म की बात करते हैं। अर्थात् राजनीति कहने से ये सभी बातें सामने आती हैं। ऐसा क्यों ? इस पर गौर

---

[123] पृष्ठ संख्या 56-57, राष्ट्रीय एकता का संकट और सांप्रदायिक शक्तियाँ, मस्तराम कपूर, सारांश प्रकाशन प्रा.लि., 1998

करने से यह पता चलता है कि सत्ता प्राप्त करने के लिए वे साम्प्रदायिक लोग उपरोक्त काम करते हैं, जबकि ऐसा नहीं करना चाहिए।

दरअसल राजनीति क्या है ? सामान्य अर्थ में राजनीति वह है जो देश की जनता अपने पालन या शासन के लिए अपने ही बीच से कुछ लोगों को चुनती है। अर्थात् चुने गये लोग प्रजा का शासन और पालन करते हैं तथा वे दूसरे राज्यों से भी व्यवहार करते हैं।

लेकिन राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए, अपने निहित स्वार्थ के लिए ये कुछ भी करने को तैयार हैं। जैसे धर्म, सम्प्रदाय, विभाजन, अलगाववाद, मन्दिर, मस्जिद, दंगे, हिन्दू, मुसलमान, जाति, नस्ल, गोत्र...आदि का इस्तेमाल करते हैं।

3.1. हिन्दू, हिन्दुत्व एवं साम्प्रदायिक राजनीति

"यह सही नहीं है। जैसा कि हम देखेंगे हिंदूधर्म अलग है जबकि हिन्दुत्व समाज के एक एसे वर्ग की राजनीति है जो अपने राजनीतिक और सामाजिक हितों के लिए समाज पर अपना आधिपत्य कायम करना चाहता है।"[124]

कोई भी धर्म क्यों न हो अपने आप में उतना खतरनाक नहीं है। इन धर्मों के आधार ही दया, करुणा, परोपकार, सत्कर्म...आदि होते हैं। लेकिन कुछ स्वार्थी सम्प्रदायिक राजनीतिक लोगों ने धर्म को राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। हिन्दू अथवा हिन्दुत्व के नाम पर साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं।

3.1.1. हिन्दू देवता बनाम साम्प्रदायिक लोग

हिन्दू देवता ही एक ऐसे देवता हैं जो इस संसार के किसी भी देश के अन्तर्गत पाये नहीं जा सकते हैं। इस विश्व को चार भागों में बाँटा जा सकता है, एक है ईसाई विश्व,

---

[124] पृष्ठ संख्या 80, उद्भावना, वर्ष 23, अंक 79, अगस्त, 2008, संपादक– अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) शाहदरा, दिल्ली–95

दूसरा है इस्लामिक विश्व, तीसरा है बौद्ध विश्व, चौथा है हिन्दू विश्व। अगर मजहब के आधार पर देखा जाए तो उक्त तीनों के अपने अपने एक ही देवता है, अर्थात् ईसाइयों के लिए ईसा है, मुसलमानों के लिए अल्लाह है और बौद्धों के लिए भगवान बुद्ध है, लेकिन हिन्दुओं के लिए? मेरा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दुओं को भी उनके जैसा कोई एक ही देवता हो ! कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे देश में कई देवता हैं। कई संस्कृतियाँ हैं। इन देवताओं के बीच सम भावना कभी नहीं थी। यहाँ हर एक भक्त का अपना भगवान अलग रहा है। अपने भगवान की प्रार्थना–भजन बड़ा–चढ़ा कर करते हैं। कभी–कभी अन्यों के देवता को हीन मानते हैं, हीन तरीके से व्याख्या करते हैं। वे अपना–अपना मार्ग या पंथ बनाते हैं। लोगों का अपने अपने मार्गों या पंथों पर चलने के लिए मार्गदर्शन करते हैं। सम्प्रदाय, मार्ग या पंथ के संचालक अपने अनुयायियों को ऐसा प्रबोध करते हैं कि दूसरे या अन्य मार्गों से हमारा मार्ग कितना श्रेष्ठ है ? अन्य मार्ग कितने निकृष्ट हैं ? वे यह चाहते हैं कि उनके अपने मार्ग के अनुयायी दूसरे मार्ग के अनुयायियों से मिलकर ना रहें, इनके बीच भाई चारा न हों, मित्रता की बात न हों, इनके बीच प्रेम की भावना न हों, इनके बीच रोटी–बेटी का रिश्ता न हों, तत्पश्चात इन लोगों के बीच एक के प्रति दूसरे को घृणा, द्वेष की भावना पैदा हों, और लोगों के बीच साम्प्रदायिकता की भावना पैदा हो जाए।

दरअसल वे इन लोगों के बीच, इस तरह के भावनाओं को क्यों जगाना चाहते हैं ? सीधी सी बात है कि वे गरीब और पिछड़े लोगों को उल्लू बनाना चाहते हैं और अपना फ़ायदा या लाभ उठाना चाहते हैं। सम्प्रदाय के नाम पर अपना एक आश्रम बना लेते हैं, लोगों को अपने आश्रम में बुला लेते हैं और अपने विचार आचार को उन गरीब और शरीफ को प्रवचन के रूप में प्रबोध करते हैं। वे अपनी गन्दी राजनीति के लिए सम्प्रदाय का दुरुपयोग करते हैं। वे सम्प्रदाय और राजनीति को मिला देते हैं, परिणाम स्वरूप दंगे–फसाद होते हैं। जनता के बीच एक तरह का भय का माहौल पैदा करते हैं। अतः अपनी गद्‌दी को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

हम इन उक्त समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में पा सकते हैं जो कमलेश्वर के द्वारा रचा गया है । उन्होंने साम्प्रदायिकता की राजनीतिक समस्याओं को अपने उपन्यास में बहुत ही अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया है–

" नहीं ! नहीं ! उसकी यह कामना हमें स्वीकार नहीं है! तमाम देवता समवेत चीख़ने लगे ...फिर अलग–अलग घोषणएँ करने लगे –

–हम कर्म को कर्महीन बना देंगे ।

–हम श्रम को श्रमसाध्य बना देंगे।

–हम प्रेम के विरूद्ध घृणा का सृजन करेंगे।

–हम मित्रता को शत्रुता में बदल देंग !

–हम शांति को अशान्ति से ध्वस्त कर देंगे।

–हम जीवन को मृत्यु से उन्मुक्त नहीं होने देंगे!"[125]

कोई भी देवता आज तक किसी को प्रत्यक्ष रूप से दर्शन नहीं दिए हैं। मनुष्यों ने अपने अपने देव बना लिए हैं। अपने अपने सम्प्रदाय बना लिए हैं। लोग इन देवताओं और सम्प्रदायों के नाम से बंटे हुए हैं। ये कभी भी एक दूसरे से मिलजुल कर रहना या एक दूसरे से प्यार करना पसंद नहीं करते हैं। यह साम्प्रदायिक लोगों की साजिश है। ये 'बांटो और राज करो' वाली राजनीति करते हैं।

साम्प्रदायिकता विधर्मियों के बीच ही होता है यह गलत है। साम्प्रदायिकता स्वधर्मियों के बीच भी होती है। रामायण में अपने परिवार में ही साम्प्रदायिकता है। अपने निहित स्वार्थ के लिए कुछ भी करने से पीछे नहीं हटते हैं। सिद्धाश्रम में राजपुत्र राम की हत्या करने की

---

[125] पृष्ठ संख्या, 31, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

योजना बनायी गयी है। इस समस्या को 'अपने अपने राम' उपन्यास में भी प्रस्तुत किया गया है–

" सिद्धाश्रम जाते समय तुम दोनों की हत्या का प्रयत्न किया गया था। सिद्धाश्रम में रहते हुए भी तुम्हारे ऊपर प्रहार किए गए। योजना यह थी कि इसका दोष विश्वामित्र के सिर आसानी से पढ़ा जा सकेगा कि उन्होंने अपने अपमान का बदला राजपुत्रों की हत्या करके लिया है और इस तरह एक साथ दो कंटकों का सदा के लिए दूर किया जा सकेगा।"[126]

रामायण में दो पत्नी के बीच की लड़ाई साम्प्रदायिक ही है। उसी प्रकार महाभारत में भी तो भाइयों की बीच लड़ाई है। कौरवों ने पाण्डवों को जमीन से बेदखल करने के लिए ही लड़ाई की। जमीन अधिकार या सत्ता का प्रतीक है, जिसे पाने के लिए मारने–मरने पर तुले रहते हैं।

3.1.2. भाइयों की लड़ाई है महाभारत

सामान्यतः कहा जाता है कि इस्लामिक लोग बर्बर हैं। यह भावना, खासकर हिन्दुओं में कुछ ज्यादा ही है। इनका कहना है कि मुसलमान लड़ाकू हैं। वे हमेशा लड़ते ही रहते हैं। ये दूसरे मजहब के लोगों से लड़ते हैं। वे अपने मजहब के लोगों को भी नहीं छोड़ते हैं। इनका इतिहास ही इसका सबूत है। इरान और इराक ये दोनों देशों में मुसलमान ही रहते हैं। इन दोनों के बीच लम्बे समय तक लड़ाई होती रही है। इसका मतलब यह नहीं है कि अन्य मज़हब वालों के अन्तर्गत लड़ाई नहीं होती। महाभारत की लड़ाई भी बहुत लम्बे समय तक लड़ी गई थी। यह लड़ाई पाण्डवों और कौरवों के बीच हुई थी। दोनों तरफ से भारी संख्या में लोग मारे गए थे। ये दोनों लड़ाकू के वंश एक ही धर्म को मानने वाले थे।

---

[126] पृष्ठ संख्या, 29, अपने अपने राम, भगवान सिंह

अगर विश्व शांति का निर्माण करना चाहें ,तो विश्व के सभी मज़हबों के बीच शांति का माहौल आवश्यक है। छोटे–छोटे आन्तरिक कलह और लड़ाई विश्व शांति को आघात न पहुँचाए इसीलिए धर्म को बीच में नहीं लाना चाहिए। इस समस्या को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में देख सकते हैं–

"–हाँ ! लेकिन क्या महाभारत के दोनों लड़ाकू वंश पांडव और कौरव एक ही धर्म के माननेवाले नहीं थे ? वे भी तो लड़ते रहे ! इसीलिए धर्म को बीच में मत घसीटो ! भवानी सेनगुप्त की बात सुनो, ताकि कुछ राहत मिले.."[127]

उपरोक्त उद्धरण से हमें ऐसा लगता है कि साम्प्रदायिकता किसी दो सम्प्रदायों के बीच ही नहीं बल्कि अपने ही सम्प्रदाय में, अपने ही जाति में, अपने ही परिवारों में अर्थात् किसी दो परिवार के बीच भी साम्प्रदायिकता होती है।

3.1.3. राजनीति के लिए मन्दिर का दुरूपयोग

"the ten years between the demolition of Babri Masjid and the carnage in Gujarat is a decade with dangerous implications for the future. During this period, Hindu communalism has entered its fascist phase, with a well-articulated agenda based on an aggressive social and political practice. Communalism has so far prospered by promoting antagonism and conflict between communities;"[128]

इस देश पर लम्बे समय तक अंग्रेजों ने राज किया है। उस गुलामगिरी के विरोध में, भारत को मुक्ति दिलाने के लिए, पूरा भारत एक होकर संघर्ष कर रहा था। उसी समय राष्ट्रीयता भी एक वाद बनकर सामने आया था। उसी समय से कुछ साम्प्रदायिकतावादी

[127] पृष्ठ संख्या, 180, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

[128] P no 25, Communalism, Civil Society & The State, Edited by KN panikkar and Sukumar Muralidharan, Sahmat- New delhi-2002

हिन्दू राष्ट्र बनाने के लिए सोच रहे थे। इस स्थिति को देख कर राष्ट्रवाद के विषय में बाकी लोग भी सावधान हो उठे। तभी हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, कालान्तर में विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल, जनसंघ, से भारतीय जनता पार्टी के रूप में अवतरित हुआ है। इन अवतरित संघ और पार्टियों के नेता कच्ची साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं। अपनी राजनीति करने के लिए, वे मन्दिर और मस्जिद का गलत इस्तेमाल करते हैं।

वे अपने आप को सच्चे हिन्दू मानते हैं, जब कि वे नहीं हैं। वे अपने आप को सच्चे राम भक्त मानते हैं, जब कि वे नहीं हैं। वे मुसलमानों को और उनकी संस्कृति को विदेशी मानते हैं, जबकि ये कई सदियों से इस ज़मीन पर जन्में, पले, राज किए हैं। इन नेताओं का आरोप हैं कि जहाँ मुसलमानों की आस्था बाबरी मस्जिद है, उसी स्थल पर राम ने जन्म लिया है। इन लोगों का मानना है कि मुस्लिम भारत आने से पूर्व ही वहाँ उस स्थल पर राम मन्दिर था। मुसलमानों ने जिस मन्दिर को तोड़ कर बाबरी मस्जिद बनवाए। वे अब यह चाहते हैं कि उस बाबरी मस्जिद को तोड़ कर अपना राम मन्दिर बनवाए।

खैर अच्छी बात है कि भाई कि कई सालों की बनी–बनाई बाबरी मस्जिद को तोड़ कर राम लल्ला का मन्दिर बनवाया जाए। लेकिन कैसे ? यह जो कार्य है थोड़ी ही हवा में हो जाता है। तो राम मन्दिर को सामने रख के, अपनी साम्प्रदायिक राजनीति करना चाहते हैं। राम मन्दिर के नाम पर हिन्दू वोट बैंक को अपनी तरफ आकर्षित करना चाहते हैं। आज कहते हुए 60 साल हो चुके हैं कि राम मन्दिर बना के रहेंगे। तो किसने मना किया। अगर वे मन्दिर ही बनाना चाहते हैं तो तभी बना सकते थे, जब वे पाँच साल सत्ता में थे। एक बार मन्दिर बन गया तो अपनी साम्प्रदायिक राजनीतिक दुकान बन्द कर लेना पड़ेगा। इसलिए वह आज भी विवादास्पद भूमि बनी है, इलाहाबाद के हाई कोर्ट में इनके नेताओं द्वारा दस्तकें दी रही हैं। इस समस्या को उपन्यासकार कमलेश्वर ने बड़े ही अच्चे ढंग से, बाहर वाली अदालत को अपने उपन्यास में पेश किया है–

"तभी दहाड़ दहाड़ कर विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल के नेता दस्तक देने लगे...राम जन्म भूमि मन्दिर बनके रहेगा...बल्कि हम कृष्ण जन्मभूमि और काशी विश्वनाथ के मन्दिर को भी मुक्त करके दम लेंगे !"[129]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे ऐसा लगता है कि विश्व हिन्दू परिषद और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ...आदि हिन्दुत्ववादी संगठन राजनीतिक संगठन हैं। इनको भगवान से प्रेम नहीं है और भक्ति तो बिल्कूल नहीं है। ये लोग सत्ता में आने के लिए या सत्ता में बने रहने के लिए मन्दिर और मस्जिद का इस्तेमाल करते हैं।

कुछ लोगों को साम्प्रदायिकता में सुख मिलता है। इसके लिए विवाह करना भी छोड़ देते हैं। सामाजिक सेवा के नाम पर साम्प्रदायिक सेवा करते रहते हैं। इतिहास को अपने तरीके से लिखना चाहते हैं। स्वतंत्र भारत में जवाहरलाल नेहरु और पटेल दोनों बड़े नेता थे। जवाहरलाल नेहरु साम्प्रदायिकता के विरोध में थे। पटेल का सिद्धांत साम्प्रदायिकता के पक्ष में था। साम्प्रदायिक लोग पटेल को अपना नेता मानते थे। वे मुसलमानों को ही साम्प्रदायिक सिद्ध करना चाहते थे। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में सोमनाथ मंदिर को तोड़ने के कारणों और किसके द्वारा तोड़ा गया को लेकर चर्चा होती है–

" 'भैया, मैं अविवाहित ही रहना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं अपना जीवन आपकी सेवा और शास्त्रों के अध्ययन में ही काट दूँ । यह सुख मेरे लिए विवाह से बढ़कर है।'

'क्यों, क्या देश की सेवा न करोगो ?'

' वह भी करूँगा, परंतु...'

' परंतु पहले शास्त्रों का अध्ययन क्यों ? और राजनीति का समाज का...'

---

[129] पृष्ठ संख्या, 63, 'कितने पाकिस्तान'–कमलेश्वर

‘जी, मैं वह भी करूँगा...’

‘ हूँ, तो हमारा–तुम्हारा शास्त्रार्थ हो जाये आज। बताओ, सोमनाथ के मंदिर को किसने तोड़ा और किसने दुबारा बनवाया?’

‘ जी, उसे तुड़वाया था महमूद गजनवी ने और दुबारा बनवाया है, सरदार पटेल ने।’

‘तुड़वाया नहीं, तोड़ा कहो। खैर...तुम्हें जवाहरलाल नेहरू के राजनैतिक सिद्धांत अच्छे लगते हैं या सरदार पटेल के।’

‘जी, पटेल के।’ ” [130]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे यह प्रतीत होता है कि कुछ लोग ऐसे हैं कि साम्प्रदायिकता फैलाना अपना जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। उस लक्ष्य साधना के लिए विवाह और परिवार से मुक्त रहना चाहते हैं। धर्म के नाम पर, मंदिर के नाम पर, सत्ता प्राप्त करने के लिए, साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं

3.2. प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ एवं साम्प्रदायिक राजनीति

“ स्पष्टतः यह राष्ट्रीयता की भिन्न व परस्पर विरोधी परिभाषाओं का मामला है। जिस राष्ट्रीयता की बात संघ परिवार कर रहा है वह धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र, स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्यों व हमारे संविधान में निहित सिद्धांतों की विरोधी है। वैसे भी, हम आर.एस.एस. जैसे संगठन से और कोई अपेक्षा कर भी कैसे सकते हैं। संघ तो आधुनिक वेशभूषा में हिन्दू राष्ट्र की स्थापना का पैरोकार है। संघ की दृष्टि में अदालत के निर्णय ने सन् 1949 में विवादित ढांचे में मूर्तियों की स्थापना और सन् 1992 में बाबरी मस्जिद को ढहाने के घोर

---

[130] पृष्ठ संख्या मुखड़ा क्या देखे –अब्दुल बिस्मिल्लाह

गैर–कानूनी कृत्यों को को विधिक मान्यता प्रदान कर दी है। ऐसा लगता है मानों भारतीय समाज ने भी इन दोनों जघन्य अपराधों को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है।"[131]

1925 में आर एस एस की स्थापना की गयी थी। इसी के आस–पास में 'हिन्दू महासभा' का आविर्भाव हुआ। इनके साथ साथ बजरंगदल, विश्वहिन्दू परिषद, शिवसेना... आदि का उदय हुआ है। राजनीतिक पार्टी के रूप में जनसंघ से जनता, जनता से भाजपा का अंतिम अवतार हुआ। इन्होंने भारत देश को हिन्दू देश यानी हिन्दू राष्ट्र घोषित किया है। आर एस एस और इनके साथी संगठन देश को हिन्दू राष्ट्र बनाने में हमेशा व्यस्त रहते हैं। इन की गतिविधियाँ भी उसी की ओर इंगित करती हैं।

3.2.1. व्यायाम

आरएसएस की स्थापना 1925 में की गई थी। इसको साम्प्रदायिक मज़हबी लोगों ने स्थापित किया। इन में प्रमुख है गोल्वालकर (गुरुजी)। आरएसएस यानी राष्ट्रीय स्वयम् सेवक संघ। इस संघ की शाखाएं आज पूरे भारत के लगभग हर गाँव में फैली हुई हैं। ये व्यायाम कुछ ज्यादा ही करते हैं। वे व्यायाम कमरे में ही करते हैं। शाखा के सदस्यों को आदेश दिया जाता है कि वे व्यायाम कमरे में या एक कोने में ही करें।

प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष, बड़े आलोचक नामवर सिंह ने अपनी किताब 'ज़माने से दो दो हाथ' में कहा है कि "मैं आज तक ऐसे साम्प्रदायिक संघी लोगों को नहीं देखा जो ज्यादा पढ़े लिखे हों और ब्रॉड मैन्डेड हों"[132] ये इसलिए एक कोने में ही करवाते हैं कि इनकी सोच व्यापक न हों बल्कि सीमित हों। दिमाग तंग होकर कुछ ही लोगों के बारे में सोचे। 90 प्रतिशत लोगों के साथ नफरत करें। पक्के सैनिकों की तरह हों। उन लोगों को ऐसा तैयार करते हैं कि संघ सर संचालक जो भी आदेश दें, उसका पालन करें। इन

---

[131] पृष्ठ संख्या 23, उद्‌भावना, वर्ष 25, अंक 90, नवम्बर 2010, संपादक अजेय कुमार, (अयोध्या फैसले पर विशेष) शाहदरा, दिल्ली–95

[132] जमाने से दो दो हाथ–नामवर सिंह

समस्याओं को लेखक भगवान सिंह ने अपने उपन्यास 'उन्माद' में बहुत ही अच्छी तरह से पेश किया है–

" 'अंकलजी, आप लोग एक छोटे से कोने में तो व्यायाम करते हैं। व्यायाम ज़रूरी है तो कोना हीं क्यों ! कोने से बँधे रहने से दिमाग तंग हो जाता है। नज़र भी तंग हो जाती है। दुनिया भी तंग हो जाती है।' "[133]

उपरोक्त उद्धरण में युवक, एक छोटे से कोने में व्यायाम करने और करवाने का विरोध करता है। साम्प्रदायिक लोग यह नहीं चाहते हैं कि युवकों का दिमाग खुलें। ये युवकों को ऐसी ट्रेनिग देते हैं जिससे वे स्वार्थी और सम्प्रदायिक बन जाए।

3.2.2. खेल–कूद

आरएसएस की ज़ड़ें ही सनातन ब्राह्मणीय हिन्दूवादी व्यवस्था में हैं। जाहिर सी बात है कि आरएसएस संस्था कोई काम करता है तो, सनातन ब्राह्मणीय हिन्दूवादी चीजें उस के अन्तर्निहीत होती हैं, जैसे दूध में पानी की तरह। केवल आरएसएस ही नहीं बल्कि आरएसएस को मानने वाले, उसको समर्थन करने वाले भी उसी पुरानी व्यवस्था में इच्छा रखते हैं। इसीलिए लोगों ने 'बैक टु वेदास' और सनातन ब्राह्मणीय संस्कृति आदि नारा देते हैं। वे कहते हैं कि वेदों में सबकुछ है। लेकिन आज ज़माना बदल गया है। आज़ हम आधुनिकता में जी रहें हैं। रामायण, महाभारत, पुराण, इतिहास, वेदान्त आदि ग्रन्थों पर चर्चा होनी ही बन्द हो गयी है। आधुनिक युग में मार्क्सवाद आया था जिस पर प्रबुध्द वर्ग चर्चा करने लगे। इसके बाद स्त्रीवाद, दलितवाद...आदि कई वाद सामने आएं हैं।

ये लोग फिरसे उस पुराने ग्रन्थों को ताजा करना चाहते हैं। ऐसी कई सदियों पुरानी बातों को लेकर चर्चा करना चाहतें हैं। इसके लिए उनके अपने कुछ ऐसे लोग हों कि सुनी

---

[133] पृष्ठ संख्या, 53, उन्माद–भगवान सिंह

सुनाई बातों को फिरसे सुनने लगें ! प्रचार–प्रसार की हुई को फिरसे प्रचार–प्रसार करें। इस काम के लिए इसी तरह के दिमाग वाले हों। इसके लिए ट्रेनिंग दिया जाए।

ये अपना आचार–विचार को प्रचार–प्रसार करके, आधुनिक विचार से दूर करके अपने विचार से नजदीक करना चाहते हैं। इस को अपनी गन्दी साम्प्रदायिक राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। अतः आरएसएस शाखा में ऐसे खेल हैं जो बार बार खेलने को कहा जाता है। इस समस्या को रचनाकार भगवान सिंह ने अपने उपन्यास 'उन्माद' में बहुत ही अच्छी तरह से पेश किया है–

"बोला, 'कोई बात होती तब तो जाता ही। वहाँ तो कुछ होता ही नहीं। जो कुछ हो चुका है वही बार–बार दुहराया जाता है। जो खेल पहले दिन खेलने को मिले थे, वे ही आज भी दुहराए जाते हैं। नया खेल न सही, पुराने खेल का स्तर तो उठता। लद्धड़पन में कोई कमी तो आती। यहाँ तो खेल भी वही, खयाल भी वही, दिमाग़ भी वही, विचार भी वही; लिबास भी वही, मिज़ाज भी वही।"[134]

वे एक ही खेल को बार बार खेलते हैं। अर्थात् एक ही काम को बार बार करने और करवाने की आदत डालना चाहते हैं। ताकी पुरानी भावनाओं, ग्रन्थों, विचारों को फिर से अपनाने की आदत आज के युवकों में हों।

3.2.3. सैनिक ड्रिल

इनको ऐसे लोगों की आवश्यकता है कि एक ऐसा समाज का निर्माण किया जाए, जो उनके विचार के अनुसार हों। इनकी सोच ही उन समाज की सोच हों, इनका विचार ही उनका विचार हों, यानी कि उनके समाज के लोग तर्क या लोजिक से ना सोचें। जैसा कि क्यों?, क्या?, कैसा? आदि प्रश्नों से दूर रहें। उनका कहना सुनें और उनके आदेश को पालन करें।

---

[134] पृष्ठ संख्या, 54, उन्माद–भगवान सिंह

लेकिन समाज में सभी एक जैसे नहीं रहते हैं। आदमी समाज और प्रकृति से सबकुछ सीखता हैं। प्रकृति स्वार्थ रहित है। उनसे जो कुछ सीखने को मिलता है वह सच हैं और तथ्य हैं। कुछ आरएसएस संघियों ने लोगों के मानसिक पटल पर मौजूदा विचार को मिटाकर उस स्थान पर उनकी अपनी गलतफहमी वाली सोच–विचार को उनके मानसिक पटल पर रंगना चाहते हैं। आरएसएस ही एक राष्ट्रीय स्वयम् सेवक संघ है। यह संघ हर साल कईं लोगों को प्रशिक्षण देता है। आज भारत में लाखों कार सेवक फैले हुए हैं। वे सब एक ही आदेश का पालन करते हैं। जब बाबरी मस्जिद को तोड़ने का आदेश ऊपर से जैसे ही मिला तो, कोई भी आगे–पीछे नहीं सोचते। धड़ा धड़ ढहा दिए। इस तरह के यान्त्रिक, सैनिक जैसे लोगों की जरूरत उनको है। इसलिए आरएसएस के क्रियाओं में ऐसी ड्रिल करवाई जाती है जैसे सैनिकों को करवाई जाती है। जिससे दिमाग से कमजोर और शारीरिक रूप से मजबूत बनाते हैं। ऐसे ही समस्याओं को रचनाकार भगवान सिंह ने अपने उपन्यास 'उन्माद' में प्रस्तुत किया है–

" 'एक ही क्रिया इतनी बार और बिना किसी फेरबदल के कराते रहो कि हम थक कर, ऊबकर, सोचना बंद कर दें। आदमी से यन्त्रों में बदल जाएँ। हम यह सोचना छोड़ दें कि जो कुछ हमसे करने को कहा जा रहा है, और हम चुपचाप करते जा रहे हैं, वह क्यों कहा जा रहा है और हम क्यों करते जा रहे हैं। ठीक सैनिकों की तरह, पर सैनिकों की ड्रिल में कोई खोट नहीं निकाल सकता। वहाँ एक मँजाव होता है जो उनकी क्रिया को यांत्रिक पूर्णता तक पहुँचा देता है। यह उनकी प्रहार शक्ति को बढ़ाता है। यहाँ तो लोग पहले दिन से अंतिम दिन तक एक ही तरह से थप्–थप् थपकते रहते हैं मानो पाँवों से उपल पाथ रहे हों।"[135]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे ऐसा लगता है कि आरएसएस वाले अपने क्रीड़ा और ड्रिल के माध्यम से युवकों को सैनिक शिक्षण देते हैं। जब भी इनकी ज़रूरत पडे तो सैनिकों के

[135] पृष्ठ संख्या, 54, उन्माद–भगवान सिंह

रूप में इनका इस्तेमाल करना चाहते हैं। 1992 में बाबरी मस्जिद को इन्हीं लोगों ने ढहाया है।

3.2.4. जातिवाद

इस धरती पर कहीं भी आरएसएस जैसा संघ, अगर हों तो इन सभी का एक ही उद्देश्य है कि समाज में तनाव पैदा करें। समाज में अस्थिरता उत्पन्न करें। वे इस कार्य के लिए, नस्ल, जाति, मजहब, प्रदेश...आदि का इस्तेमाल करते हैं। एक नस्ल को दूसरे नस्ल के ऊपर उकसाना तत्पश्चात समाज़ में तनाव। इसी तरह एक जाति को दूसरी जाति से, एक मजहब को दूसरे मजहब से लड़ाते हैं। दंगे करवाते हैं। ये संघ वाले यह नहीं चाहते कि सभी लोग मिलकर प्यार से रहे। वे प्यार की जगह नफरत को बढ़ाते हैं।

ये स्थिर समाज को अस्थिर बना के, समाज में उथल–पुथल सी स्थिति पैदा करते हैं। रूलिंग पार्टी को परेशान करना चाहते हैं। अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ करते हैं। रूलिंग पार्टी को गद्दी से उतारना चाहते हैं। वे उस गद्दी को हासिल करना चाहते हैं। इन समस्याओं को रचनाकार भगवान सिंह ने अपने उपन्यास 'उन्माद' में बहुत ही अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है–

"रतन ने कहा, 'आज इस तरह के जितने भी निजी संगठन दुनिया के किसी भी देश में हैं उनकी एक ही भूमिका है। किसी जाति या जनसमुदाय को लक्ष्य बना कर तनाव पैदा करना और समाज को निरंतर अस्थिरता की स्थिति में रखना।"[136]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में निम्न जातियों और अल्पसंख्यकों को लक्ष्य बना कर उन पर दंगे, फसाद और अत्याचार जो कर रहे हैं, वे और कोई नहीं बल्कि यही निजी संगठन वाले हैं।

---

[136] पृष्ठ संख्या, 57, उन्माद–भगवान सिंह

3.2.5. व्यापारी वर्ग

जो भी आरएसएस के सिद्धांत को मान कर चलता है, वह आरएसएस का सदस्य बन सकता है। लेकिन ज्यादातर ऊँची जाति के लोग और छोटे से लेकर बड़े–बड़े व्यापारी आरएसएस के सदस्य हैं। कहा जाता है कि आरएसएस देश सेवा करती है। तो इस के सदस्य उन लोगों को होना चाहिए जो निःस्वार्थी हों। बल्कि इसके विपरीत इस के सदस्य वो लोग बनते हैं, जो स्वार्थी हैं। व्यापारी हैं। वे अपना सेवा आरएसएस के लिए कभी नहीं करते हैं। बल्कि संघ को अपने सेवा के लिए इस्तेमाल करते हैं। खुद के फायदे के लिए ही उसका सदस्य बनते हैं।

यह एक आदान–प्रदान की चीज सी बन गई है। क्योंकि आज आरएसएस इतना बड़ा व्यापक और मज़बूत संघ है कि यह चाहे तो कुछ भी कर सकता है। तो इस के पीछे कौन–कौन हैं ? वे हजारों–लाखों रुपये संघ को देते हैं। इन पैसों के ही बलपर आरएसएस चलता है। इनके सदस्य कारोबारियों के कारोबार को अगर कुछ हुआ तो, संघी उनकी मदद करने के लिए तत्पर रहते हैं। यानी जैसे किराये के गुन्डों की तरह। तो यह स्पष्ट है कि ये देश की सेवा तो बाद की बात है वस्तुतः करते हैं व्यापारियों की सेवा। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं जो स्वार्थ रहित होकर देश सेवा करना चाहते हैं। वे इसके सदस्य बनके भी विमूढ़ होकर अपनी सदस्यता को वापस लेना चाहते हैं।

इन सभी समस्याओं को रचनाकार भगवान सिंह ने अपने उपन्यास 'उन्माद' में अच्छी तरह प्रस्तुत किया है–

"जाता हूँ, पर महीने दो महीने में । वहाँ आते तो कारोबारी लोग ही हैं न। बहुतों का काम फँसा रहता है। वे संघ के परिचय के भरोसे बिना सेवा–पानी के ही काम करा लेना चाहते हैं। तो उनसे कुछ निकालने के लिए ऊपरवालों को पहुँचाने का बहाना बनाना

पड़ता है। पर अब तो जितना हो सके बचकर ही रहता हूँ। सोचता हूँ, लोग यह भूल जाएँ कि संघ से मेरा कोई नाता रहा है तो वह भी फ़ायदे की बात होगी।"[137]

उपरोक्त उद्धरण को देखने से मुझे ऐसा लगता है कि ये देश के सेवा के नाम पर व्यापारियों का सेवा करते हैं।

3.2.6. रिश्वतखोरी

जब इस देश में बुद्धिज्म आया था तो सारे के सारे हिन्दू मन्दिरें सुनी पड़ गई थी। मन्दिरों पर पलने वाले लोगों का पेट तक सूखने लगा था। चढ़ावे और रिश्वत पर पलने वालों को अब वह रिश्वत और चढ़ावे नहीं रहे। तब तक वे मन्दिरों में बैठे–बैठे ऐश कर रहे थे। वह सब खत्म हुआ। वे इसके बदले में यानी इसका कारण 'बुद्धिज्म' कहकर जिस को खत्म करने को सोचा और ऐसा किया भी। जिस देश में उसका जन्म हुआ उस देश से बेदखल हो कर अन्य देशों में फैल गया है। इसका मतलब यह है कि जिन्होंने रिश्वतखोरी रहित समाज की स्थापना करना चाहा, उन्हीं को इस देश से भगा दिया इन साम्प्रदायिकों ने।

आज सभी परेशानियों को छोड़ कर मन्दिरों के पीछे पड़े हैं वे लोग। इनको जनता की समस्याओं से कोई लेना–देना नहीं हैं। ये केवल अपने स्वार्थ के लिए ही काम करते हैं। जितने होसके उतने मन्दिरों का निर्माण करना और रिश्वतखोरी व्यवस्था को जारी रखना चाहते हैं। अतः अपनी साम्प्रदायिक राजनीति को आगे बढ़ावा देते हैं। इन समस्याओं को इस उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

"बुराई हो या अच्छाई, यह कोई आज़ की बीमारी है! अरे, हमारी तो माइथालोजी तक में रिश्वतखोरी के लिए जगह तैयार की गई है। मैं तो लोगों से पूछता हूँ कि भई, जिन हिंदुत्व पर आपको इतना गर्व है उसका सार तत्व तो यही है ना–रिश्वत दो और

[137] पृष्ठ संख्या,111, उन्माद–भगवान सिंह

काम बनाओ। सारे मंदिर और मठ तो इसी को आसान बनाने के लिए बनवाए गए हैं न! हम जब उस परंपरा का सम्मान करते हुए अपना काम बनाने लगते हैं, तब आपको क्यों खटकता है कि हम कोई अपराध करते हैं। पूरे भारत और पाकिस्तान और बांग्लादेश में कोई भी है जो इस हिंदू परंपरा का निर्वाह नहीं कर रहा है और अपनी अंतरात्मा से हिंदू नहीं है ?" [138]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे ऐसा लगता है कि रिश्वत का बड़ा इतिहास है। रिश्वत का कारण भी हिन्दू देवता और मन्दिर की व्यवस्था ही है। परम्परा चली आ रही है कि मन्दिर जाते हैं तो पैसे चढ़ाते हैं। रिश्वत की शुरुआत यहीं से हुई है।

3.2.7. वोट की राजनीति

हिन्दूवादी लोग कभी भी इस देश के नब्बे प्रतिशत लोगों के भलाई के लिए नहीं सोचे। 1947 तक हिन्दू शब्द केवल गिने–चुने लोगों के लिए उपयोग किया जाता था। बाकी नब्बे प्रतिशत लोग अपने अपने जाति के नाम से पहचाने जाते थे। बहुत सारे लोग 'आदिधर्मि' नाम से पहचाने जाते थे। स्वतन्त्रता के बाद डॉ. बी. आर. अम्बेड्कर ने संविधान को रचा जिसके अनुसार हर एक आदमी को एक वोट का हक है। इन वोटों को बटोरने के लिए लोग अपनी साम्प्रदायिक राजनीति को लागू करने लगे हैं। अब अचानक इन लोगों के प्रति अपना प्यार बढ़ाने लगे हैं। कहने लगे कि तुम और हम सब हिन्दू हैं।

क्या इन नब्बे प्रतिशत लोगों के प्रति जो दिखाया गया प्यार सच है ? मुझे लगता है कि यह झूठा प्यार है। ये इनकी दिशा बदलने के लिए काम करेंगे ? नहीं। इनके लिए वे अपने को कुर्बानी दे सकते हैं ? नहीं। लेकिन कुछ लोग इनके लिए या इनकी भलाई के लिए कुछ भी करने के लिए पीछे नहीं हटते हैं। इस प्रकार उनके हिन्दू में और तुम्हारे हिन्दू में फर्क हैं। हम इन समस्याओं को दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

---

[138] पृष्ठ संख्या, 231, उन्माद–भगवान सिंह

"केवल वोट की टुच्ची राजनीति के कारण तुम इन सभी को हिंदू कहकर, उनका वोट बटोरना चाहते हो। इसलिए तुमने क्या–क्या विशेषण स्वयं लगाए थे इस प्रवृत्ति के लिए? खैर जो भी लगाए हों, वे तुम्हारे ऊपर अधिक चस्पाँ होते हैं। लेकिन वे जिनके लिए तुम इन विशेषणों का प्रयोग कर रहे थे, वे इन हिंदुओं से प्रेम करते हैं। इनके लिए काम करते हैं। इनकी दशा सुधारने के लिए मरने–कटने को भी तैयार रहते हैं। इस तरह तुम्हारे हिंदू दूसरे हैं और उनके हिंदू दूसरे हैं। तुम उनकी गिनती के हिंदू नहीं और वे तुम्हारी गिनती के हिंदू नहीं।" [139]

उपरोक्त उद्धरण को पढ़ने से मुझे ऐसा लगता है कि इस देश में या हिन्दुस्तान में जितनी भी आबादी जी रही है, ये सब के सब हिन्दू नहीं हैं। जो लोग हिन्दू और हिन्दुत्व का नारा देते हैं, उनके लिए ये मर–मिटने को तैयार होते हैं, वो उनके असली हिन्दू माने जाते हैं। लेकिन वे सत्ता प्राप्त करने और वोट बटोरने के लिए, अर्थात् निहित स्वार्थ के लिए सभी को हिन्दू घोषित करते हैं और कर रहें हैं।

3.2.8. देश प्रेम

दरअसल इस देश में कोई एक खास मजहब कभी नहीं था। कहा जाता है कि सबसे पहले इस देश की थी नाग संस्कृति। उसी को कहते हैं द्रविड़ियन संस्कृति। सिंध नदी से हिन्द नाम पड़ा है। वह तो एक स्थान का नाम है। इसीलिए भारत को हिन्दुस्तान भी कहते हैं। इस प्रकार अगर देखा जाए तो, हिन्दुस्तान में जितने भी जी रहें हैं, वे सब हिन्दुस्तानी हो सकते हैं। चाहें तो वे सब के सब हिन्दू हो सकते हैं, लेकिन वो मजहब वाला हिन्दू नहीं हो सकते हैं। दरअसल वे अपने–अपने जाति के नामों से ज्यादा जाने जाते हैं। जैसे दलित, आदिवासी, पिछड़ें। और सम्प्रदाय के नाम से पहचाने जाते हैं जैसे बौद्ध, जैन, मुसलमान, ईसाई आदि हैं। कुल मिलाकर ये नब्बे प्रतिशत लोग हैं।

---

[139] पृष्ठ संख्या, 209, उन्माद–भगवान सिंह

हिन्दू मजहब एक निर्मित वाद है। यह आधुनिक भारत में ही सामने आया है। इसको कुछ साम्प्रदायिक ब्राह्मण वादियों ने निर्माण किया हैं। इनके अनुसार ब्राह्मणवाद ही हिन्दू वाद है। जो शाकाहारी है वही हिन्दू है। जो माँस मछली खाता है वह गैर हिन्दू है। ये हिन्दू और गैर हिन्दू , शाकाहारी और माँसाहारी के नाम पर अपनी साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं। ये लोग मानते हैं कि इनके किस्म के लोग ही देश प्रेमी होते हैं। बाकी नब्बे प्रतिशत लोग इस देश से नफरत करते हैं। तो बात यह है कि ये दस प्रतिशत लोगों के जो देश के प्रति प्रेम हैं वह नब्बे प्रतिशत लोगों के देश के प्रति प्रेम से मिलताजुलता नहीं हैं। क्योंकि इनकी समझ वाला प्रेम अलग है। इन समस्याओं को इस उद्धरण के माध्यम से समझ सकते हैं–

"तो तुम मानते हो कि जितने हिंदू हैं वे ही भारत से प्रेम करते हैं। परंतु तुम यह भी नहीं मानते, क्योंकि तुम्हारे प्रत्युत्तर से लग रहा था कि उन नब्बे प्रतिशत हिंदुओं में भी तुम्हें अधिक संख्या में देशद्रोही हिंदू ही मिले, क्योंकि वे तुम्हारी समझ वाला प्रेम अपने देश से नहीं करते हैं।"[140]

उपरोक्त विषय से मुझे ऐसा लगता है कि साम्प्रदायिक हिन्दू लोगों के समाज के हिन्दू ही इस देश से प्रेम करते हैं, बाकी नब्बे प्रतिशत हिन्दुस्थानी इस देश से प्रेम नहीं करते हैं, यह गलत है।

3.2.9. राष्ट्रीयता एवं आनंद मठ

"राष्ट्रवाद का प्रयोग शासक दल अपने को मजबूत करने के लिए कर रहा है, अब इसके इम्पीरिकल प्रमाण मौजूद हैं। अनेक जगहों पर जहाँ सम्प्रदायवाद नहीं था, एक खास तरह के राष्ट्रवादी दल ने या शासक दल के राष्ट्रवाद ने वहाँ सम्प्रदायवाद पैदा किया है। पंजाब में भिंडरावाले को किसी साम्प्रदायिक पार्टी ने नहीं, कांग्रेस पार्टी ने खड़ा किया था।

---

[140] पृष्ठ संख्या, 208, उन्माद–भगवान सिंह

उत्तर प्रदेश में रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद के सवाल को प्रदेश की कांग्रेस सरकार ने फिर से उठाया। इस बात के दूसरे दर्जनों उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिस से यह सिद्ध हो जाता है कि शासक दल की राजनीतिक पार्टी ने राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय एकता का बार–बार नारा देकर सम्प्रदायवाद को जन्म दिया है। वह लड़ने का अभिनय मात्र करती है, वह न तो लड़ना चाहती है, न लड़ सकती है।"[141]

मान्यवर हिन्दी के आलोचक नामवर सिंह जी ने कहा है कि "राष्ट्रवाद और साम्प्रदायवाद, ये दोनों जुड़वा हैं"[142] इसका मतलब है कि जैसे ही राष्ट्रवाद का जन्म हुआ था, वैसे ही कुछ ही क्षणों में साम्प्रदायवाद का भी जन्म हुआ है। अतः राष्ट्रवाद नहीं होता तो साम्प्रदायिकवाद भी नहीं होता। राष्ट्रवाद ज्यों ही खत्म हो गया तब बंगाल में मुसलमानों के मुक़ाबले में अंग्रेजों का आह्वान किया गया। राष्ट्रीयता को लेकर 'आनन्द मठ' नाम की एक किताब लिखी गई है। इस किताब में किया गया है विदेशी सत्ता का विरोध। यह जनजीवन की एकता का विरोध करती है। जब कोई देश की जनता के जनजीवन एकता को विरोध करता है तो राष्ट्रीयता का क्या अर्थ होता है ? इन तमाम समस्याओं को बदीउज़्ज़माँ ने अपना उपन्यास 'सभा पर्व' में पेश किया है–

"हमारी राष्ट्रीयता उसी क्षण दूषित हो गई जब हमने बंगाल के मुसलमान नवाबों के मुक़ाबले में अंग्रेजी सत्ता का गुणगान करना शुरू कर दिया। आनन्द मठ ने राष्ट्रीयता की जो भावना पैदा की उसमें फूट के बीज छिपे हुए थे। यह मैं मानता हूँ कि उसका मुख्य स्वर विदेशी शासन का विरोध है लेकिन उसकी हैसियत ऐसी दुधारी तलवार की है जो

---

[141] पृष्ठ संख्या, 25–26, ज़माने से दो दो हाथ–नामवर सिंह

[142] ज़माने से दो दो हाथ–नामवर सिंह

एक तरफ़ तो विदेशी सत्ता को काटती है और दूसरी तरफ़ बंगाल के जनजीवन की एकता पर भी प्रहार करती है।"[143]

उपरोक्त उद्धरण को परखने पर मुझे यह मालूम पड़ती है कि आनंद मठ विदेशों का विरोध करता है। लेकिन इसके साथ साथ भारत के जनजीवन की एकता का भी विरोध करता है। भारत के जनजीवन की एकता का विरोध करना, अर्थात् साम्प्रदायिक राजनीति करना ही है।

3.2.10. विविध प्रतिक्रियावादी संगठन

भाजपा एक पेड़ है जिसकी कईं शाखाएं हैं। आर एस एस, एक शाखा है जिसमें कुछ पड़े–लिखे लोग रहते हैं। इसमें युवकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। यह कानून वगैरा वाली समस्याओं को देखते हैं। विश्वहिन्दू परिषद् एक शाखा है जो अपना काम देखती है। बजरंग दल है वे तो मारने–काटने से पीछे नहीं हटते हैं। इनके छात्र संगठन भी हैं। अभी अभी तो कुछ नए संगठन आए हैं जैसे अभिनव भारत भी उनके ही अंग हैं। इन सभी में कोई अंतर नहीं हैं। इन सभी की सोच एक ही है। इन समस्याओं को उपन्यास 'बयान' के 47 पेज में देख सकते हैं–

"तो साफ–साफ सुनिये, आप अब तुल ही गये हैं तो ....मूँछ ऐंठते हैं नीलकंठ। फुसफुसाने वाले अन्दाज़ में गोया होते हैं। ....सब एक है ...आपको तो पता ही है। आर एस एस, भाजपा, विश्वहिन्दू परिषद और बजरंग दल, एक ही चीज़ हैं। कायदे–कानून और सही प्रशिक्षण के लिए आर. एस. एस है। लड़ने, मरने, कटने यानी फौजी का काम करती है बजरंग दल और राजनीतिक इस्तेमाल के लिये है भाजपा।"[144]

---

[143] पृष्ठ संख्या, 503, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

[144] पृष्ठ संख्या, 47,बयान–मुशर्रफ़ आलम जौकी

ऐसा लगता है कि हिन्दू महासभा, स्वयम् सेवक संघ, बजरंग दल, विश्वहिन्दू परिषद, शिवसेना, यूथ फौर ईक्वैलिटी...भाजपा...आदि संगठन एक ही विचार धारा के हैं। समय और संदर्भ के अनुसार पार्टी इनको इस्तेमाल करती है।

साम्प्रदायिक राजनीति हो या सेक्युलर राजनीति हो, सत्ता हासिल करने के लिए कुछ भी बोलने लगते हैं। जब चाहे समर्थन करते हैं, नहीं तो विरोध करते हैं। इन समस्याओं को मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी ने अपने 'बयान' उपन्यास में प्रस्तुत किया है–

"राजनीति में सब चलता है। हमें विरोध में भी बोलना है और मुसलमानों को फुसलाये भी रखना है। यानी दोनों तरह के समाचार मैदान में उतारने हैं। ताकि उनकी भीतरी उथल–पुथल में हमारे लिये एक सॉफ्ट कार्नर भी बन जाए।"[145]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे ऐसा लगता है कि एक राजनीतिक नेता चाहे वह दक्षिणपंथी हो, वामपंथी हो और कोई साम्प्रदायिक हो, ये अपने फायदे के अनुसार बाते करते हैं। जब चाहें तो किसी पार्टी, समाज, मजहब...आदि का विरोध करते हैं, नहीं तो मदद करते हैं।

राजनीतिक पार्टी के नेता लोगों को उकसाते हैं। ये बड़े बड़े नेता पीछे रह जाते हैं। मन्दिर, मस्जिद, जाति, प्रान्त आदि के नाम पर लोगों को लड़ने के लिए आगे करते हैं। गोली लगी तो जनता को लगती हैं। मरेंगे तो लोग और नेता सुरक्षित रहेंगे। इन समस्याओं को दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

"हाँ सबसे जी भर गया। वह खुद मरने के लिए सामने नहीं आते। हमें मरवाते हैं। हमें सामने करते है। हमपर गोलियाँ चलवाते हैं। सबको देख लिया।"[146]

---

[145] पृष्ठ संख्या, 60, बयान–मुशर्रफ़ आलम जौकी

[146] पृष्ठ संख्या, 64, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी

उपरोक्त उद्धरण से हमें यह पता चलता है कि हमेशा राजनीतिक नेता लड़ने में और संघर्ष करने में खुद पीछे रहते हैं और जनता को आगे उकसाते हैं। लाठी, गोली जनता को खानी पड़ती है। ये घर में आराम से रहते हैं।

छोटे छोटे मुहल्लेवाले यह सोचते हैं कि इस मुहल्ले में साम्प्रदायिक जैसी समस्या नहीं हो सकती है। किसी तरह के दंगे नहीं हो सकते हैं। लेकिन यह जो सोच है, वह गलत और बेबुनियाद है। दरअसल समस्या यह है कि जहाँ इस तरह के मुहल्ले हैं, वहाँ ही ये साम्प्रदायिक पार्टियाँ अपना निशाना बनाती है। बेचारे मुहल्ले वालों को क्या करना समझ में नहीं आता है। इसी तरह की समस्या को उपन्यास 'बयान' में देख सकते हैं–

"मुसलमान अकसरियत वाले मुहल्लों के बारे में यह सोचना कि यहाँ कुछ नहीं होगा। सरासर बेबुनियाद है। जबकि असलियत यह है कि यह साम्प्रदायिक पार्टियाँ ऐसे ही मोहल्लों को पहले अपना निशाना बनाती हैं। और मुसलमानों के पास है क्या, हथियार के रूप में ?"[147]

ऐसा लगता है कि साम्प्रदायिक दंगे छोटे छोटे मुहल्ले में ही होते हैं क्योंकि साम्प्रदायिक पार्टियाँ इन्हीं मुहल्लों को निशाना बनाते हैं। साम्प्रदायिक पार्टियाँ इन मुहल्लों को ही निशाना क्यों बनाना चाहती है? क्योंकि इन छोटे छोटे मुहल्लों में ज्यादातर लोग अनपढ़ और आर्थिक रूप से गरीब रहते हैं। यहाँ साम्प्रदायिकता फैलाना आसान काम है अतः राजनीतिक नेता इन्ही मुहल्लों को निशाना बनाते हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं कि हर विषय को साम्प्रदायिक बना देते हैं। उनका काम ही यह है कि जो भी घटना समाज में घटती है, उसके ऊपर साम्प्रदायिक रंग चढ़ा देते हैं। इस दृष्टि से हम अगर देखें तो 'बयान' उपन्यास में रघु नामक एक छोरे की हत्या हो जाती है। तो वहाँ की साम्प्रदायिक पार्टी भाजपा और उनसे जुड़े हुए लोग ने उस हत्या को

---

[147]पृष्ठ संख्या, 65, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी

साम्प्रदायिक रंग दे देते हैं। इस दृश्य को मुशर्रफ आलम जौ़की़ ने अपना उपन्यास 'बयान' में बहुत ही कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है–

"मियाँ, कलीमपुर की सूरत–ए–हाल सबसे ज्यादा नाजुक है। जब से उस छोरे रघु की हत्या हुई है भाजपा के लोग इस हत्या को साम्प्रदायिक रंग दे रहे हैं।"[148]

उपरोक्त उद्धरण से ऐसा लग रहा है कि ऐसी कुछ घटनाएं जिनको साम्प्रदाय से कुछ लेना देना नहीं हैं उनको भी साम्प्रदायिकता का रंग से रंग दिया जाता है। भाजपा जैसी पार्टी तो हर एक सामाजिक घटना को साम्प्रदायिक बना देती है।

देश का विभाजन हुआ। देश विभाजन को कोई भी आम आदमी ने समर्थन नहीं किया था। कुछ ही लोगों के स्वार्थ सत्ता के कारण देश का बंटवारा हुआ था। इस देश के लोगों को यह सब बर्दास्त नहीं हुआ था। आँखों के सामने देश और देश की जनता को साम्प्रदायिक जहर पिलाया जा रहा था, जिसको देख के बहुत सारे लोग दुःखी हो रहे थे। इन दृश्यों को निम्न उद्धरण में देख सकते हैं–

"अनिल के चेहरे पर बल पड़ गये। अब इस देश में कुछ दूसरी बातें भी हैं। चाचा.. .आँखों के सामने देश टूट रहा है। आम व्यक्ति को साम्प्रदायिकता का जहर खाता जा रहा है। वह हमारी आपस की मिसाली एकता से खेल रहे हैं। अब दूसरी बातें कौन–सी हैं चाचा।"[149]

उपरोक्त उद्धरण से मुझे ऐसा लगता है कि साम्प्रदायिकता जब फैलती है तो समाज में बिखराव आ जाता है। एकता टूट जाती है। देश भी टूट जाता है। मनुष्यों में एक दूसरे के प्रति नफरत बढ जाता है।

---

[148] पृष्ठ संख्या66, बयान–मुशर्रफ़ आलम जौ़की

[149] पृष्ठ संख्या, 77–78, बयान–मुशर्रफ़ आलम जौ़की

3.2.11. प्रतिक्रियावादी राजनीति एवं मुसलमान

भाजपा यानी भारतीय जनता पार्टी की निर्माण ही एक साम्प्रदायिक बुनियाद के ऊपर हुआ है। इसके लक्षण तो पूरे साम्प्रदायिक ही है। लेकिन साम्प्रदायिकता के साथ साथ राजनीतिक लक्षण भी हैं। कोई भी संघ राजनीतिक होने के कारण उसमे लचीलापन भी कुछ ज्यादा ही रहता है। इसीलिए भाजपा मुसलमानों का विरोध करती है, उसके साथ मुसलमानों का वोट चाहती हैं। राम मन्दिर की बात करती है। उस के साथ साथ मुसलमानों से दोस्ती भी करना चाहती है। इसी के परिणाम स्वरूप कुछ कुछ मुस्लिम मोर्चा जो भाजपा के शाखा माने जाते हैं। बहुत सारे मुसलमान भाजपा के सदस्य बनते हैं। कुछ मुसलमान इसे कत्ल करने वाली पार्टी समझते हैं। इसके विरोध करने से डरते हैं। इन दृश्यों को नीचे दिए गए इस उद्धरण में देखा जा सकता है–

"जीना मुश्किल कर दिया है तुम लोगों ने जब तब आकर मुझसे ऐसे सवाल करते हो जैसे मैंने किसी की जान ले ली हो। हाँ, मैंने भाजपा ज्वाईन कर ली है....तुम इसे कत्ल कर देने वाली पार्टी समझते हो....डरते हो ...जितना डरते हो। उतना ही डराया जाता रहा है तुम्हें...मैं पूछता हूँ, क्याँ डरते हो इतना–मुकाबला क्यूँ नीं करते..."[150]

भाजपा एक साम्प्रदायिक राजनीतिक पार्टी है। जिससे अल्पसंख्यक मुसलमान, ईसाई...आदि लोग डरते हैं। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इससे डरने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि यह भी तो एक राजनीतिक पार्टी ही है। इसमें चाहे तो कोई भी शामिल हो सकता हैं। लेकिन बात यह है कि इसमें शामिल करने से पार्टी बढ़ेगी, अतः इसमें शामिल न होना ही अच्छा है।

[150] पृष्ठ संख्या, 93, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

3.2.12. हिन्दू–साम्प्रदायिकता

विश्व में हो या इस देश में हो साम्प्रदायिक वो नज़र आते हैं कि मुसलमान। मुझे आश्चर्य लगता है कि क्या मुसलमान ही साम्प्रदायिक होते हैं। यह केवल कुछ चालाकी लोगों की चाल से ही हो रहा है। पूरे विश्व में अमेरिका ने मुसलमानों को और उनके देश को निशाना बनाया है। हमारे देश में मुसलमानों को पहले से ही साम्प्रदायिक रंग में रंग दिए गए हैं। हमारे देश में अगर कुछ दंगा, फसाद हुआ तो सबसे पहले शंका होता है मुसलमान के ऊपर। लेकिन सच यह है कि महाराष्ट्र के मालेगाँव में जो बम का विस्फोट किया है वह एक हिन्दू साध्वी थी जो पकड़ी गई थीं। राजस्थान में अज़्मेर दरगाह में 2007 में जो धमाका हुआ था इसको आर एस एस वालों ने ही किया था। इसका सबूत तो यही है कि राजस्थान के एटीएस ने आर एस एस के आदमी को गिरफ्तार किया है। उससे साबित होता है कि हिन्दू कितने साम्प्रदायिक हैं। इसी तरह के विषय को लेकर गीतांजिलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में ज़िक्र किया है–

"सच बेटी, यही है कि हिन्दू में भी साम्प्रदायिक भावनावों की कभी कमी नहीं रही। कभी भड़के तो बाहर आ गई, नही तो शांति से अंदर पड़ी रही।"[151]

उपरोक्त बानगी से मुझे यह समझ में आता है कि केवल इस्लाम में ही साम्प्रदायिकता नहीं बल्कि हिन्दू में भी साम्प्रदायिकता है। जब साम्प्रदायिक भावना भड़कती है तो बाहर आती है, नहीं तो भीतर ही भीतर शांत रहती है।

3.2.13. साम्प्रदायिक राजनीति

पूरे विश्व में और भारत में भी वही हो रहा है कि बेगुनाह मुसलमान सताये जा रहें हैं। आज एक मुसलमान अपना नाम बाताने से डर रहा है। अगर कोई युवक दाढ़ी में दिखा तो

---

[151] पृष्ठ संख्या, 89, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

पुलिस तुरन्त गिरफ्तार करती है। कुछ हिन्दू साम्प्रदायिक लोग यह चाहते हैं कि मुसलमानों के ऊपर झूठा आरोप लगा कर सताया जाए और पुलिस को पकड़ाया जाए। 'त्रिशूल' उपन्यास में भी उसी तरह सताये गए हैं–

"छूत–छात हामारे चौके की चीज है। हम ऐसा कभी सोच भी नहीं सकते कि मुसलमान होने के चलते कोई बेगुनाह सताया जाए। मुसलमान अपने घर राजी रहें हम अपने घर। ये कैसे नहीं जाएँगे ? जब उनके साथ गए तो आप के साथ भी जाना पड़ेगा।"[152]

हर रोज समाज में जो घटनाएं हो रहीं है जिसे देख हमें ऐसा लगता है कि बेगुनाह मुसलमान को सताया जा रहा है। मुसलमान हो, ईसाई हो, बौद्ध हो, हिन्दू...आदि कोई भी हो बेगुनाह सताया जाना ठीक नहीं है। यह कानून के खिलाफ है।

क्या राम राज्य वह है जिसमें कुछ ही लोगों के हित के लिए राम ने राज्य किए थे ? आर्य पुत्र और सूर्य वंश के राम ने आर्यों के हित के लिए ही अपना कार्य किए थे। मनु ने कहा कि धर्म को चार पैरों पर चलना होगा। इसका अर्थ होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शूद्र को सबसे नीचा दर्जा दिया गया है। शूद्र का काम है इन तीनों की सेवा करना। सेवा इसलिए करना कि शूद्र ने ब्रह्मा के पैरों से जन्म लिया है। जबकि ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से और वैश्य जांघों से जन्म लिए हैं। राम राज्य में ब्राह्मण को कुछ हुआ तो उसका कारण शूद्र को मानते हैं। इसलिए शूद्रों को बलि होना पड़ता था। इन समस्याओं को त्रिशूल उपन्यास में देख सकते हैं–

"कहता था ऐसे राम राज्य से भगवान बचाए जिसमें ब्राह्मण के फलने–फूलने के लिए शूद्र का सिर काटा जाना अनिवार्य होता है।"[153]

---

[152] पृष्ठ संख्या, 90, त्रिशूल–शिवमूर्ति

[153] पृष्ठ संख्या, 110–111, त्रिशूल–शिवमूर्ति

उपरोक्त उद्धरण को देखने से मुझे ऐसा लग रहा है कि राम राज्य वह है जिस में ब्राह्मणों और ऊँची जाति के लोगों की भलाई या फायदे के लिए शूद्र यानी उस ज़माने के दलितों का सिर काटते हैं। आज आधुनिक युग में भी वही करना चाह रहे हैं।

3.2.14. तनाव

हिन्दू साम्प्रदायवदी यह चाहते हैं कि समाज में हमेशा एक तरह का तनाव बना रहे। इसके लिए वे कुछ भी करने से पीछे नहीं हटते हैं। इसी तरह त्रिशूल 'उपन्यास' में एक गरीब और गाँव के मुसलमान का लड़का है। वह एक सेक्युलर हिन्दू के घर में काम करता है। उसी घर के बाजू में एक शास्त्री का घर भी रहता है। शास्त्री को यह पसन्द नहीं था कि एक मुसलमान लड़का हिन्दू के घर में रहते हुए काम करें। शास्त्री जी ने एक दिन उस मुसलमान के लड़के को कहीं छिपा कर पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस उसको बहुत मारती है। बेगुनाह बच्चे को सता कर समाज में फ़ालतू 'टेंशन'(तनाव) उत्पन्न करना चाहते हैं। इन समस्याओं को रचनाकार शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है–

"वही 'हाफ' वालों की नौटंकी है हुजूर। बच्चे को कहीं छिपा दिया है और उसी की आड़ में 'टेंशन' फैलाना चाहते हैं। हलके के दरोगा ने रात में पूछताछ करके तसल्ली कर ली है। लौंडे के पेट से पित्त तक निकाल लिया लेकिन कुछ हासिल नहीं हुआ। सब झूठी कहानी। वह लौंडा तो एकदम गऊ है।"[154]

एक मुस्लिम युवक जो दिल्ली में नौकरी की तलाश में रहता है। वह तलाशता हुआ एक दुकान के सामने जाकर खड़ा होता है। वहाँ एक हिन्दू लडका से परिचय होता है। वे दोनों मिल कर एक ही जगह पर काम करते हैं। कुछ दिनों के बाद वे दोनों बहुत ही अच्छे दोस्त बन जाते हैं । वे ऐसे दोस्त बन जाते हैं कि वे दोनों एक ही घर यानी छत के नीचे

---

[154] पृष्ठ संख्या, 117, त्रिशूल–शिवमूर्ति

रहते हैं और एक ही थाली में खाते हैं। कहना चाहिए कि वे एक दूसरे के लिए जान देने के लिए तत्पर रहते। इसी के दौरान राम जन्म भूमि का मसला शुरू हुआ। पूरा भारतीय समाज दो भागों में बँट गया था। एक था हिन्दू समाज और दूसरा था मुस्लिम समाज। इन दोनों के बीच नफरत की भावना दिन ब दिन बढ़ रही थी। नफरत का वह प्रभाव इन दोनों के ऊपर भी रही थी। ये दोनों जिगरी दोस्त हैं बावजूद इसके इनके मन में एक दूसरे के प्रति घृणा पैदा होती है। मन ही मन हिन्दू लड़का सोचता है कि 'यह मुसलमान है, यह कभी मुझे मार डालेगा। मन ही मन मुसलमान लड़का सोचता है कि ' यह हिन्दू है, यह मुझे कब मार डालेगा पता नहीं'। अंत में मुस्लिम युवक यह सोचता है कि अगर इस तनाव से बचना है तो दोनों में एक को खत्म होना है। इसलिए वह हिन्दू युवक को खत्म कर देता है। तात्पर्य यह है कि स्वार्थ और साम्प्रदायिक राजनीति की वजह से जिगरी दोस्तों में भी एक ऐसी नफरत पैदा होती है कि वे एक दूसरे का जान ले लेते हैं। इन समस्याओं को 'मुसलमान' उपन्यास में देख सकते हैं–

"हाँ, मैंने हत्या कर दी। न करता तो वह मेरी कर देता। रोज़ की उलझनों से बेहतर था कि इस समस्या से छुटकारा पाया जाये...एक न एक दिन तो यह होना ही था... हम एक छत के नीचे थे। एक ज़मीन पर

––पर एक–दूसरे से खौ़फ़ज़दा और सहमे हुए।"[155]

उपरोक्त उद्धरण से यह समझ में आता है कि किसी दो सम्प्रदाय के बीच साम्प्रदायिक भावना ज्यादा हो, तो इनके बीच जो मित्रता की भावना है वह भी बिगड़ जती है। एक दूसरे के कत्ल करने को भी पीछे नहीं हटते हैं तथा समाज में उथल–पुथल मच जाती है।

[155] पृष्ठ संख्या, 119, मुसलमान–मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी

3.3. राजनीति के लिए कुरान का इस्तेमाल

"भारत में विशेष रूप से 1970 के दशक से बहुत से राजनीतिज्ञों ने राजनीतिक लाभ के लिए उलेमाओं के एक वर्ग को बढ़ावा देने का कार्य किया है। जनता पार्टी (1977), और अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी पार्टी के समर्थन में फतवा जारी करने के लिए दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम से संपर्क किया। इसी प्रकार दूसरे राजनीतिज्ञों ने भी समय– समय पर यह खेल खेला है। उलेमा समुदाय के प्रतिनिधि नहीं हैं। केवल चुने हुए लोग ही समुदायों का प्रतिनिधित्व कर सकता हैं।" [156]

जब भारत आज़ाद हो रहा था, तो हिन्दू और मुसलमान दोनों तरफ के लोग सोचने लगे कि आज़ाद भारत किनका होगा ? स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम दशा में तिलक जैसे नेताओं ने हिन्दू राष्ट्र की भावना को सामने लाए। हिन्दू धर्म की बातें कर रहे थें। ठीक उसी समय में मुस्लिम लीग ने भी द्विराष्ट्रीय सिद्धांत को सामने लाए। यह परंपरा शुरू हो गयी थी। सत्ता प्राप्ति के लिए साम्प्रदायिक राजनीति करने लगे। इसके लिए पवित्र कुरान का गलत इस्तेमाल भी किया जाने लगा।

3.3.1. मुस्लिम लीग और साम्प्रदायिकता

कुरान एक पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। फ्राफेट मुहम्मद साहब ने कुरान की रचना की हैं। यह ग्रन्थ 7 वीं शदी के आरम्भ में रचा गया है। इसके आधार पर एक बड़ी और मज़बूत इस्लाम मजहब बना है। मजहब के साथ अपनी एक इस्लामिक संस्कृति बनी है। इसका जन्म और आरम्भ भले ही अरब में हुआ हो बल्कि उसका आचार–विचार पूरे विश्व में बहुत ही कम समय में फैल गया था। कुल मिलाकर मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यह

---

[156] पृष्ठ संख्या 49, उद्भावना–अंक 79, अगस्त, 2008, संपादक अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी, 'साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक', शाहदरा, दिल्ली–95

एक आस्था से संबंधित विषय है जो मनुष्य की व्यक्तिगत भावना से जुड़ा है, जबकि सार्वजनिक नहीं हो सकती है।

राजनीति सार्वजनिक है। राजनीति डेमोक्रसी के आधार पर की जाती है। यह किसी एक मज़हब से तालुक नहीं रखती है। राजनीति और राजनीति करने वाले नेता को वहाँ के हरेक कौम, मजहब, जाति, वर्ग, वर्ण के लोगों से सरोकार रखना होता है। वहाँ की जनता की समस्याओं को हल करना होता है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को समझना, उसका हल करने के लिए उपाय या योजना बनाना होता है, इसको बनाए रखने के लिए वोट माँगने जाते हैं।

वोट पाने के लिए यानी अपनी सत्ता बरकरार रखने के लिए और लोगों को बाँटने के लिए मजहब, मजहबी ग्रन्थ, सम्प्रदाय, नस्ल, जाति, प्रान्त, वर्ग, वर्ण, आदि का इस्तेमाल करते हैं। जबकि इनका उपयोग करना गलत हैं। वे इसलिए उक्त चीजों का इस्तेमाल करते हैं कि, वे ये नहीं चाहते हैं कि जनता आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से विकसित हो। इसलिए इनका एजेंडा हवा में रहता है, जैसे भगवान आसमान में रहता है। यह निम्न उद्धरण से समझ में आता है–

"–लेके रहेंगे पाकिस्तान !

–केसे नेबे पाकिस्तान ? फुन्नन मियाँ ने आँखें तरेर कर सवाल किया ।

–अलीढ़ बालन से ! दुल्लन ने कहा।

तो कुलसुम ने टीप लगाई–अरे आई जौनऊ अलीगढ़ से आए रहे ...काली शेरवानी वाले । वो उंगलियों में सिगरेट दबाए हाथ घुमा–घुमा कर मियाँ लोग को बता रहे थे कि कुर्आन–शरीफ में कहाँ–कहाँ अल्लाह मियाँ ने मुस्लीम लीग को वोट देने का हुक्म दिया है.. ."[157]

[157] पृष्ठ संख्या, 56, 'कितने पाकिस्तान'–कमलेश्वर

उपरोक्त संदर्भ से और आज के समाज में मौजूद राजनीति से भी ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीति के लिए मजहब को इस्तेमाल करते हैं। समाज में साम्प्रदायिकता फैलने का मुख्य कारण यही है कि राजनीति और मज़हब को मिलाना। मजहब व्यक्तिगत है जबकि राजनीति जनतान्त्रिक है।

3.3.2. धर्मांतरित प्रेम विवाह–इस्लाम

कोई भी मज़हब क्यों ना हो। वह यही कहता है कि उनके अपने लड़की या लड़का अगर किसी लड़की या लड़के से प्रेम करके विवाह करना चाहते हैं, तो उन्हें किसी एक मज़हब को कुबूल करके जीना होगा। इस्लाम कहता है कि कोई लड़की या लड़का मुस्लिम होकर किसी गैर मुस्लिम के लड़के या लड़की से विवाह करें, तो गैर मुसलमान लड़का या लड़की को इस्लाम को जरूर कुबूल करना ही है। हिन्दू भी वही कहता है। ईसाई भी वही कहता है। सिख भी वही...।

दरअसल हम पहले मनुष्य हैं, उसके पश्चात हमारी जाति, प्रदेश, मज़हब हमारे साथ जुड़ता है। कभी कभी एक सवाल मेरे मन में उठता है कि क्या मजहब ने मनुष्य को जन्म दिया या मनुष्य ने मजहब को जन्म दिया ? इस सवाल का जवाब हो सकता है कि सहजता मज़हब से पहले मनुष्य का ही जन्म हुआ है। कईं शताब्दियों के बाद ही इस मानव ने अपने जीवन के तौर तरीकों को और उनके अनुभवों को रचनात्मक रूप दिया है। मजहबी ग्रन्थों को रचनात्मक रूप देने से पहले यानी मनुष्य के जन्म के साथ ही प्रेम का भी जन्म हुआ है। इसीलिए प्रेम करते रहें हैं। तो यह स्पष्ट है कि प्रेम या प्यार से बढ़ कर इस दुनिया में कोई नहीं है। प्यार करके विवाह करने वालों को किसी मज़हब से तुलना नहीं करनी चाहिए। उनको अपनी जिन्दगी जीने देना चाहिए।

दुर्भाग्य कहो या और कुछ भी कहो, लेकिन हमारे समाज में इतने बेवकूफ़ लोग हैं कि एक दूसरे से प्रेम करने वालों को भी नहीं छोड़ते हैं। वे सोचते हैं कि हर किसी प्रकार

से भी क्यों ना हों कि अपनी बिरादरी या जनसंख्या में वृद्धि हो जाए। यह जो मानसिकता है वह बहुत ही खतरनाक है। ये मुहब्बत को भी अपनी साम्प्रदायिक राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। इन समस्याओं को उन्माद उपन्यास में देख सकते हैं–

"लड़का किसी हिंदू लड़की से शादी करे या हिंदू लड़का मुसलमान लड़की से, नतीजा तो एक ही होना हैः उन दोनों का मुसलमान होकर रहना। अब जो हिंदू रहा या रही है, उसके मुसलमान हो जाने का मतलब है उसकी बिरादरी में से एक हिंदू का कम हो जाना और मुस्लिम बिरादरी में एक अदद का बढ़ जाना' "[158]

उपरोक्त संदर्भ से यह समझ में आता है कि लड़का हो या लड़की हो किसी हिन्दू लड़की या लड़का से यदि विवाह करें तो उसको मुसलमान होकर रहना पड़ता है। यह मुसलमानों का नियम माना जाता है। लेकिन हिन्दू में ऐसा कोई नियम ज़रूरी नहीं है। शायद यह नियम मुसलमानों में इसलिए होगा कि ये अल्पसंख्यक भावना से मुक्त होना चाहते होगे।

3.3.3. धर्मांतरित प्रेम विवाह–साम्प्रदायिक दंगे

साम्प्रदाकिता एक बीमारी है। इसका इलाज होना उतना आसान नहीं लगता है। जब–जब यह बीमारी ज्यादा होती है तब–तब वे लोग दंगे करते और करवाते भी हैं। वे वैसे ही दंगे नहीं करवाते हैं। अगर दंगे करवाना है तो, कोई न कोई कारण दिखाके करना चाहते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य हैं कि सामने वालों के परिवार को नुकसान पहुँचाना है। उनकी जनसंख्या को कम करना है। इसके लिए उनके ऊपर दंगे करवाते हैं। उनके घरों में आग लगाते हैं। तत्पश्चात कुछ लोगों के जान लेते हैं। समाज में एक नफरत का माहौल पैदा कर देते हैं। लोगों के भीतर दबी हुई नफरत को जगा देते हैं। ये सब क्यों

[158] पृष्ठ संख्या, 125,उन्माद–भगवान सिंह

कर रहे हैं यह उनको खुद भी पता नहीं है। इस माहौल को देख कर कुछ प्रेमी डरते हैं। इन समस्याओं को उपन्यास 'उन्माद' में देख सकते हैं–

"होता है, इसका भी मतलब होता है। इसका मतलब है, इस कमी को दूर करने के लिए जो दंगे भड़केंगे उस में दस–बीस हिन्दुओं और मुसलमानों का कम हो जाना और पचासों का घायल हो जाना। कुछ घरों में आग लगना और कई परिवारों का बर्बाद हो जाना। हर बार यही तो होता है। जो लोग भारत या पाकिस्तान जैसे देश में इस तरह की बहादुरी करते हैं वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। वे दस–बीस लोगों की जान की कीमत पर इस प्यार को शादी की मंजिल तक पहुँचाते हैं। वे करोड़ों लोगों के मन में दबी हुई नफ़रत और उत्तेजना को उभार कर अपने प्यार को अंजाम देते हैं। और फिर हम तो अपने पाँवों पर खड़े भी नहीं हैं। मुझे इससे डर लगता है।"[159]

3.3.4. शिया–सुन्नी का भेद एवं साम्प्रदायिक राजनीति

शिया और सुन्नी ये दोनों मुसलमान हैं। इन दोनों कौम का धर्म ग्रन्थ एक ही है। दरअसल ये इन दोनों में कोई फर्क नहीं मानते हैं। शिया हो या सुन्नी इन दोनों का धर्म एक ही है जो कि इस्लाम है। ये दोनों लोग नमाज़ पढ़ते हैं। वे नमाज़ के लिए मस्जिद ही जाते हैं। दोनों एक ही खुदा की इबादत करते हैं। लेकिन इन लोगों के बीच थोड़ी सी समस्या उत्पन्न हुई है, खिलाफत को लेकर। बाकी सब ठीक हैं। लेकिन साम्प्रदायिक राजनीति वालों से हैं समस्या। राजनीतिक लोगों ने इनके बीच नफरत पैदा करके अपनी रोटी सेकना चाहते हैं। इन मसले को लेखक बदीउज़्ज़माँ ने अपने उपन्यास 'सभा पर्व' में प्रस्तुत किया है–

"लेकिन ऐसे लोग भी थे जो शिया और सुन्नी के भेद को कोई महत्त्व नहीं देते थे। उन का कहना था कि दोनों में जो अंतर दिखाई देता है वह ऊपरी और सतही है। धर्म

[159] पृष्ठ संख्या, 125–126, उन्माद–भगवान सिंह

दोनों का एक ही है। धर्म के आधारभूत तत्त्वों का जहाँ तक सम्बन्ध है दोनों में कोई भेद नहीं है। दोनों का ख़ुदा एक है, रसूल एक है, कुरान एक है। ख़िलाफ़त के मसले को लेकर दोनों में थोड़ा फ़र्क़ आ गया है लेकिन यह फ़र्क़ धार्मिक नहीं, राजनीतिक है।"[160]

उपरोक्त संदर्भ को देखने से ऐसा लगता है कि शीया और सुन्नी के धार्मिक आस्था में उतना भेद नहीं दिखाई देता है। इनके बीच में जो भी अंतर हमे दिखाई देता है वह केवल राजनीतिक है। लोग अपने स्वार्थ के लिए इस राजनीतिक अंतर को और बढ़ा देते हैं।

इनके बीच धार्मिक मतभेद तो है ही। यह जो मतभेद है उतना नहीं है कि जितना हम उपरी तौर से समझते हैं। इनके बीच कभी कभी छोटे मोटे झगड़े होते रहते हैं। ये भी धार्मिक झगड़े नहीं हैं बल्कि ये झगड़े राजनीतिक होते हैं। लेखक बदीउज़्ज़माँ ने इन झगड़ों के कारणों को नज़दीकी से परखा है। नतीजा यह हुआ कि झगड़ों का कारण दरअसल राजनीतिक और निहित स्वार्थ ही था। इन दृश्यों को इस उद्धरण में देख सकते हैं–

"धर्म को लेकर दोनों सम्प्रदायों में जो मतभेद था उसके बावजूद दोनों एक अरसे से गया में अमन–चैन से रह रहे थे। अलम के जुलूस की वजह से दोनों में जो झगड़ा हो गया था उसकी वजह बज़ाहिर मज़हबी ज़रूर थी। लेकिन थोड़ा गहराई में जा कर देखा जाए तो झगड़े का कारण दरअसल धार्मिक नहीं, राजनीतिक था। इस घटना की छानबीन करने और झगड़े की झड़ का पता लगाने की मैंने कोशिश की है और इस सिलसिले में मुझे कुछ ऐसी बातें मालूम हुई जिनसे झगड़े के असली कारणों को समझने में मदद मिल सकती है। इन तथ्यों के आधार पर ही मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि शीया–सुन्नी का यह झगड़ा दरअसल राजनीतिक और निहित स्वार्थों के षड्यन्त्र की उपज था। धार्मिक

[160] पृष्ठ संख्या, 327, सभा पर्व –बदीउज़्ज़माँ

मतभेद और एक दूसरे को अच्छी नज़र से न देख़ने के बावजूद दोनों फ़िरकों के सम्बन्ध दुश्मनों जैसे तो क़तई नहीं थे।"[161]

उपरोक्त संदर्भ समाज में भी देखने को हमें मिलता है कि शीया और सुन्नी एक ही धर्म के होते हुए भी साम्प्रदायिक झगड़े कर लेते हैं। इसके कारणों पर गहराई से सोचने पर हमें यह पता चलता है कि झगड़ों का कारण धर्म नहीं बल्कि निहित स्वार्थ राजनीति है।

कोई भी धर्म, मज़हब, सम्प्रदाय, कौम, फिरका, जाति, परिवार, व्यक्ति क्यों न हों अपने ही स्वार्थ के लिए सब कुछ करते हैं। इस स्वार्थ में ही सुख–सुविधा छिपी है। सुख–सुविधा को प्राप्त करने के लिए सत्ता को प्राप्त करना ज़रूरी होता है। तो यहाँ सत्ता को प्राप्त करना उतना आसान काम नहीं है। इसीलिए ये लोग साम्प्रदायिक लोगों का सहारा लेते हैं। सत्ता के सामने दोस्ती, भाईचारा, मधुर संबन्ध आदि सब बेकार शब्द हैं। ये समस्याएं इस उद्धरण में द्रष्टव्य हैं–

"सुख–सुविधा इंसान की सबसे बड़ी कमज़ोरी है । उसे हासिल करने, उसे बनाए रखने के लिए वह तरह–तरह के रूप भरता है। व्यक्ति हो या वर्ग, अपनेहितों की रक्षा के लिए, ताक़त और सत्ता हासिल करने के लिए वह कुछ भी कर सकता है। बड़े से बड़े धर्म नेता, बड़े से बड़े दार्शनिक के प्रवचनों के सूत्र भी इसी सत्ता–संघर्ष से जुड़े दिखाई देते हैं। दोस्ती, भाईचारा, मधुर संबन्ध सब बेकार शब्द हैं। जहाँ हितों का टकराव हो वहाँ दोस्ती और भाईचारा निरर्थक शब्द हैं।"[162]

उपरोक्त संदर्भ से ऐसा लगता है कि कोई भी व्यक्ति अपने सुख–सुविधा के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहता है। बड़े बड़े लोग धर्म के वरिष्ठ गुरू कहलाने वाले भी

---

[161] पृष्ठ संख्या, 334–335, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

[162] पृष्ठ संख्या, 366, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

सत्ता प्राप्त करने के लिए उत्सुक होते हैं। आज के संदर्भ में स्वामी बाबा रामदेव का एक उदाहरण के रूप में ले सकते हैं।

इंसान, इंसान नहीं रहा है बल्कि शैतान बन गया है। अपने स्वार्थ और सत्ता प्राप्त करने के लिए कुछ भी करता है। छोटी–छोटी या मामूली–सी बातों को भी धर्म या मज़हब से जोड़ देते हैं। दरअसल इन बातों को जरा भी धर्म या मज़हब से संबंध नहीं रहता है। दो फिरकों के बीच नफरत पैदा करना चाहते हैं। इसीलिए नफरत के बीज बोए जाते हैं। यह काम कोई इनसान नहीं करता बल्कि शैतान। इन समस्यओं को दिए गए उद्धरण से समझ सकते हैं–

"हमराज साहब ! आपको शर्म आनी चाहिए अपनी हरकत पर। डॉक्टर वजाहत की चापलूसी आपको मुबारक़ हो। लेकिन यह कौन सा तरीका हुआ कि एक मामुली–सी बात को लेकर जिसका मज़हब से दूर का भी कोई ताल्लुक़ नहीं है दो फ़िरकों को लड़ाने की कोशिश की जाए और उनमें नफ़रत के बीज बोए जाएँ। यह काम शैतान का ही हो सकता है, इंसान का नहीं। "[163]

उपरोक्त संदर्भ को समझने के बाद मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ऐसे साम्प्रदायिक लोग है जो छोटी छोटी बातों को जिसका मज़हब से कोई सम्बन्ध नहीं को भी मज़हब के रंग में रंग देते हैं। दोनों फिरकों को लड़ाते हैं।

3.3.5. व्याक्तिगत झगडें और मज़हब

अगर कोई आर्थिक रूप से पिछड़ा हो गया हो, भूखा मर रहा हो तो, उसे कोई भी मदद नहीं करते हैं। जब कि भूख सबसे बड़ी समस्या होती है। पता नहीं कहीं किसी एक मज़हब के आदमी का झगड़ा, किसी दूसरे मज़हब के आदमी से न हो जाए। चाहे वह व्यक्तिगत ही क्यों न हो, जिसके अपने तुरन्त हाजिर हो जाते हैं। अपनी तरफ से झगडा

[163] पृष्ठ संख्या, 416, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

शुरू कर देते हैं। एक प्रदेश और दूसरे प्रदेश का भी यही हाल हो सकता है। वैसे ही उपन्यास 'सभा पर्व' में वज़ाहत मामूँ और सादिक हुसैन दोनों अलग अलग शिया–सुन्नी फिरकौ के हैं। इन दोनों के बीच झगड़ा हुआ था। दरअसल यह झगड़ा व्याक्तिगत था। लेकिन यह बहुत बड़ा मसला बन गया है। सारे शिया और सुन्नियों के बीच झगड़ा का कारण बन चुका था। वैसे ही बंगाली और बिहारियों के बीच भी तनाव पैदा हुआ था। ये सब उपन्यास 'सभा पर्व' में द्रष्टव्य हैं–

"जिस तरह वज़ाहत मामूँ और सादिक़ हुसैन के व्याक्तिगत झगड़े के कारण शिया–सुन्नी तनावे पैदा हो गया था और सैयद बाकर अली भरे बाजार में एक सुन्नी के हाथों पिट गए थे उसी तरह एक बार बंगाली –बिहारी वैमनस्य ने भी शहर में एक तनाव की स्थिति पैदा कर दी थी। "[164]

उपरोक्त संदर्भ से ऐसा लगता है कि व्यक्तिगत झगड़े भी साम्प्रदायिक झगड़े की ओर इंगित करते हैं। समाज में हम देखते हैं कि कोई एक व्यक्ति शिया का व्यक्तिगत झगड़ा किसी सुन्नी व्यक्ति से हो तो वह दो सम्प्रदायों के बीच के झगड़े का कारण हो सकता है। वैसे ही किसी दो प्रदेश के व्यक्तियों के बीच की लड़ाई भी साम्प्रदायिक लड़ाई में बदल जाती है।

3.3.6. जिहाद बनाम व्यापार

7वीं शदी में इस्लाम का उदय हुआ था। पैगमबर मुहम्मद ने कुरान को लिखा है। मुहम्मद ने कुरान के माध्यम से एक संदेश दिया है कि 'खुद के और धर्म के रक्षा के लिए जिहाद करो यानी पवित्र युद्ध करो', और इसका दूसरा अर्थ है कि अपने भीतर के शैतान को मारो। लेकिन आज इस शब्द का अर्थ ही बदल गया है। यह पवित्र युद्ध नहीं रहा है। बल्कि स्वार्थ और व्यापार व्याप्ति के लिए युद्ध करने लगे हैं। साम्प्रदायिक भावना को व्याप्त करने लगे हैं। व्यापार व्याप्ति और धनार्जन के लिए वे तो केवल दूसरों के ऊपर ही

[164] पृष्ठ संख्या, 468, सभा पर्व –बदीउज़्ज़माँ

नहीं उनके अपने लोगों से भी मुठभेड़ करते नजर आ रहें हैं। विदेशों में सिक्का जमाया है। ये केवल मुसलमान ही नहीं हैं बल्कि ईसाई, यहूदी, पारसी, हिन्दू आदि अपने अपने गुट बनाके अपने अपने हितों को नज़र में रखते हैं। इन दृश्यों को निम्न उध्दृत किया गया हैं–

“पर यह तो समझो और भी बहुत कुछ था। जहाँ जेहाद की पुकार लड़ने को प्रेरित करती, वहाँ वही लड़ाई धन के लिए भी थी, व्यापार के विस्तार के लिए भी थी। अरबों ने तो इसीलिए यूरोप, अफ्रीका, एशिया में सिक्का जमाया! और जेहाद था तो माई–बाप फ़ितना भी था यानी मुसलमानों की मुसलमानों से मुठभेड़। और जो मिले–जुले संगठन थे–हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, पारसियों, सबके ? अरे अलग–अलग तरह के गुट बने हैं, तरह–तरह के हितों को मद्देनज़र रखकर।”[165]

3.3.7. इस्लाम और तालिम

हो सकता है कुछ मूल शिक्षा में मजहबी तालिम दी जाती हो। लेकिन जाते जाते उच्च शिक्षा में तो मॉडर्न तालिम दी जाती है। वे अंग्रेजी, गणित, विज्ञान आदि को पढ़ते हैं। लेकिन कुछ साम्प्रदायिओं का आरोप हैं कि मुसलमान नदवा और दारुल–उलुम जैसी शिक्षा के इदारों में ही पढ़ते हैं। बहुत इस्लामिया स्कूलों में पढ़ते हैं। जहाँ अच्छी तालिम दी जाती है। कुछ लोगों के आरोप से यह सवाल मन में उठता है कि आश्रम और गुरुकुलों से जो पढ़ के आ रहे हैं वे मुसलमानों के दुश्मन तो नहीं हैं ?। इन समस्याओं को लेकर गीतांजलि श्री ने जिक्र किया है–

“किसने तुम्हें बताया कि ज़्यादा से ज़्यादा मुसलमान नदवा और दारुल–उलुम जैसे शिक्षा के इदारों में पढ़ते हैं ? कितने हीं इस्लामिया स्कूलों में पढ़ते हैं, जहाँ मॉडर्न तालीम दी जाती है–अंग्रेज़ी, गणित, विज्ञान–और किसने कहा कि नदवा जैसी संस्थाओं से बस

---

[165] पृष्ठ संख्या, 66, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

कट्टर हिंदू–'हेटर निकल रहे हैं ? क्या गुरुकुलों से सिर्फ़ मुसलमानों के दुश्मन आ रहे हैं ?"[166]

उपरोक्त संदर्भ से और इसके साथ साथ इतिहास में भी पा सकते हैं कि हिन्दुओं के लिए गुरुकूल था और आज भी है। वैसे ही मुसलमानों के लिए नदवा और दारुल–उलुम... नाम से पाठशालाएं हैं। इनमें नैतिकता के साथ साथ मज़हबी ग्रन्थों का ज्ञान भी पढ़ाते हैं और विद्यार्थी ज्ञान हासिल करते हैं।

3.4. देश विभाजन एवं साम्प्रदायिक राजनीति

" विभाजन कई तत्वों के कारण हुआ। इसमें मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक राजनीति, हिंदुओं की साम्प्रदायिकता और अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।" [167]

भारत आजाद हो रहा था। मुस्लिम लीग द्विराष्ट्रीय सिद्धांत को सामने लायी। हिन्दू हिन्दू राष्ट्र के सिद्धांत को अपनाना चाह रहे थे। यह कुछ ही लोगों का काम था। पूरे देश की जनता को बँटवारे में दिलचस्पी नहीं थी। जनता नहीं चाहती थी कि भारत एवं पाकिस्तान अलग अलग देश बन जाएं। विभाजन के पहले और विभाजन के बाद में उग्र साम्प्रदायिकता हुई थी। कई लोग मारे गये। स्त्रियों पर बलात्कार हुए। धन–दौलत लूटा गया। आज भी भारत एवं पाकिस्तान के बीच साम्प्रदायिकता यानी साम्प्रदायिक झगड़े होते रहते हैं।

---

[166] पृष्ठ संख्या, 244, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

[167] पृष्ठ संख्या 42, उद्भावना–अंक 79, अगस्त, 2008, संपादक अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) शाहदरा, दिल्ली–95

3.4.1. विभाजन के दुष्परिणाम

कई विद्वानों और लिखित ग्रन्थों के माध्यम से ज्ञात होता है कि मुसलमान इस देश में आते–आते ही तलवार के साथ और खून–खराबे करते आए हैं। यह जो वाद है वह सिक्के का एक पहलू है। सिक्के का दूसरा पहलू है कि मुसलमान जब यहाँ आए थे, तो वे बिना तलवार के बिना खून–खराबे के, केवल व्यापार करने के लिए यहाँ आए थे। वे तबसे इस देश से व्यापार करते थे, जब वे इस्लाम भी कुबूल नहीं किये थे। अगर हम दक्षिण भारत में, केरल के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि वे कितने शांति से और यहाँ के जनता से घुल–मिलकर रहते थे। यहाँ तक आज भी केरल राज्य में वही स्थिति दिखाई पड़ती है। उसके बाद उन्होंने इस देश या भारत में अपना राज्य स्थापित किया। कईं सालों तक वे अपना राज–काज किये। इस देश को पराया न माने बल्कि अपना मान के यहाँ रहने लगे। यहाँ तक कि उनके मज़हब, इस्लाम को भारतीयों ने अपनाया। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सहजीवन कहना चाहिए कि बहुत ही अच्छा था।

मुसलमानों के बाद इस देश में अंग्रेज आए। वे भी पहले व्यापार करने के लिए आए थे। कालान्तर में यहाँ की जनता की और पालकों यानी राजाओं की कमजोरी को पहचान कर भारत के मुसलमान और हिन्दू राजाओं को अपने वश में कर लिए तथा अपनी राज–सत्ता कायम किये। लगभग पूरा भारत अंग्रेजों के हाथ में गुलाम हो गया। लम्बे समय तक अंग्रेज अपना राज–काज करते रहें। वे अपने तरीके से शासन करते रहें, इस देश की जनता को, यहाँ की मिट्‌टी को, अंग्रेजों ने कभी सम्मान नहीं दिया। भारतीयों को अपना गुलाम बनाए जिस से इसका विरोध करने लगे यहाँ के लोगों ने। 1857 के संघर्ष से हमे मालूम पड़ता है वे 'बाँटो और राज करो' की राजनीति या सूत्र को अपनाये थे। पूरे भारतीयों को मजहब के नाम पर, जाति के नाम पर, प्रदेश के नाम पर, वर्ग के नाम पर कुछ सुविधा या प्रतिनिधित्व देने लगे। अतः 'बाँटो और राज करो', के सिदांत से सत्ता में बने रहो–

लेकिन उनका जादू–मंत्र बहुत दिनों तक काम नहीं किया। एक तरफ स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन चल रहा था जिसमें भारत के सभी वर्गों के लोग भाग ले रहें थें। इसको एक राष्ट्रीय आन्दोलन नाम से चला रहे थे। कुछ दिनों के बाद इसमें कुछ फूट सी दिखाने लगी। उस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में, आन्दोलनकारियों ने अपने सम्प्रदायी, मज़हबी स्वरों को सुनाने लगे। परिणाम हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग जैसे संगठन सामने आये, राष्ट्रीय कांग्रेस के बावजूद। द्विराष्ट्रीय सिद्धांत को किसने प्रस्तावित किया यह आज तक एक मिस्ट्री बनकर हमारे सामने है। अतः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से अंग्रेज हार गए। परिणाम यह हुआ कि भारत और पाकिस्तान बँटवारे के साथ आजादी की घोषणा की गई और वे इस देश को छोड़ अपना स्वदेश लौट गए।

अंग्रेजों ने जैसे ही बँटवारे की लकीर खिंची वैसे ही पूरा भारत दो भागों में यानी भारत और पाकिस्तान में बँट गया। कईं वर्षों का भाईचारापन, दो कौमों के बीच जो प्रेम भावना थी, सबकुछ नष्ट हो गया। दोनों देशों के बीच घृणा, द्वेष, शत्रुता, आदि भावनाएं जागृत हुई। पाकिस्तान में हिन्दुओं को, भारत में मुसलमानों को, मारना, पीटना, खून करना, हत्या करना, हत्याचार करना, लूटना, कोई औरत, लड़की मिली तो उसका अपमान, बलात्कार करना आदि शुरु हो गया हैं, पूरा सामाजिक जीवन उथल–पुथल हो गया था। इन उक्त समस्याओं को उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में देख सकते हैं–

"–तू बच के कहाँ जएगी! उस हिंसक नौजवान ने लड़की से कहा, फिर वह बूटासिंह से बोला –इसे मेरे हवाले कर दो !

–नहीं इसे मैं तुम्हारे हवाले नहीं करूँगा!

–तुम्हे करना होगा ...यह मेरे हिस्से में आई है!

–हिस्से में ...बूटासिंह ने आँखे तरेर कर पूछा –तेरे हिस्से में ?

–हाँ ! हिंदू–मुसलमान का बँटवारा हो चुका है। पाकिस्तान बन चुका है।

–कहाँ बन चुका है पाकिस्तान ?

–तीसरी ढाँणी के उस पार ...पाकिस्तान बनने की लकीर खिंच चुकी है। उसी लकीर के बाद यह मुसलमान लड़की मेरे हिस्से में आई है...मैं इसे काफ़िले वालों से छीन कर लाया हूँ ...इसे मेरे हवाले कर दो !"[168]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार यदि देखा जाए तो जब देश का विभाजन हो रहा था, तो तुरंत बाद में भारत और पाकिस्तान के बीच सीमा पर समस्या उत्पन्न हुई है। उधर पाकिस्तान से कोई लड़की सीमा पार की तो उसपर अत्याचार हो रहा था। वैसे ही इधर हिन्दुस्तान से कोई लड़की या औरत सीमा पार कर के पाकिस्तान में गई तो भी उसपर अत्याचार होने लगे थे।

3.4.2. भौतिक रूप से बँटा, मानसिक रूप से है लगाव

इस धरती पर कहीं भी हों, कोई भी प्रदेश क्यों न हो, जहाँ कुछ साल अपनी जिन्दगी, वहाँ के लोगों से, वहाँ के पेड़–पौधौं से, वहाँ की प्रकृति से, वहाँ की संस्कृति से, वहाँ के रहन–सहन से मिल–जुल कर जी रहें हों तो, भला कौन चाहता है कि इस ज़मीन को छोड़कर चले जाएं ? अतः कोई उस ज़मीन को छोड़कर जाना नहीं चाहता है।

1947 में, अंग्रेजों ने भारत को दो भागों में बाँट दिया। ये भारत और पाकिस्तान बन गए। इस देश को दो टुकड़े करने में किनका हाथ था ? इस देश के आम मुसलमान और हिन्दू, यह नहीं चाहते थे कि यह देश दो टुकड़ों में बँट जाएं। लेकिन यहाँ के बड़े–बड़े, मुस्लिम और हिन्दू साम्प्रदायिक नेता ज़रूर चाहते थे कि यह देश दो भागों में बँट जाए। तब अपने–अपने देशों में अपनी राजनीतिक सत्ता सुरक्षित रहेगी। अतः यहाँ की आम और गरीब, (हिन्दू–मुस्लिम) जनता का बँटवारे से कोई संबंध नहीं है।

ज़बरदस्ती से देश का बँटवारा हुआ है। ज़बरदस्ती से पाकिस्तान में बसे हिन्दुओं को भारत आना पड़ा। मज़बूरन भारत में बसे मुसलमानों को पाकिस्तान जाना पड़ा। बावजूद

[168] पृष्ठ संख्या, 38,कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

इसके कई लोगों ने अपनी ज़मीन, अपना गाँव, अपनी संस्कृति, अपनी प्रकृति, अपनी जन्मभूमि आदि को छोड़ कर मुसलमान पाकिस्तान जाना नहीं चाहते थे। इसी समस्या को 'कमलेश्वर' ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया है–

"–हाँ, अब देखो न...बफाती बोला–जिन्दगी त हिआँ गुजारल, अब मरे किनारे अइलीत पाकिस्तान जाईं? अब चाहे कुरआन शरीफ का आयात बोले या तुम्हारे गीता के किसन भगवान...हम त ना जाइब पाकिस्तान..."[169]

उपरोक्त संदर्भ को देखने से यह प्रतीत होता है कि सम्प्रदाय के नाम पर ही देश का विभाजन हुआ था, भारत और पाकिस्तान बने हैं। लेकिन फिर भी मुसलमान कुछ ऐसे हैं कि भारत को ही अपना देश मानते हैं। इसलिए मुसलमानों के लिए पाकिस्तान बनने पर भी बहुत सारे मुसलमान पाकिस्तान नहीं गए।

पाकिस्तान तो अंग्रेजों का दिया हुआ तोहफा है। पाकिस्तानी अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए मज़हब का इस्तेमाल करते हैं। वे आवाम के लिए नहीं बल्कि गलत मजहबी मंसूबे के लिए काम करते हैं। वे आज तक कई पीढ़ियों को बर्बाद कर चुके हैं। दरअसल इस्लाम जो है वह किसी से नफरत की बात नहीं करता हैं। इस्राइल में यहूदियों का मजहब है जुडाइज्म। जुडाइज्म ने इस्लाम के साथ बहुत नफरत किया है। आज इस्लाम भी वही कर रहा है आदि समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में देख सकते हैं–

"–और यही कि ...आप सिएसपी में ज़रूर हैं, पर आप पाकिस्तान नाम के मुल्क को नहीं, आप इस्लाम के नाम पर अपनी कमज़ोरियों को चलाना चाहते हैं! मुल्क तो आपको अंग्रेजों ने गाजीर में दिया है...और आप आवाम के लिए नहीं, गलत मज़हबी मंसूबों के लिए दस–बीस पीढ़ीयों को इस्लाम के नाम पर ग़ारत कर देना चाहते हैं...हालाँकी इस्लाम ने नफ़रत का पैग़ाम कभी नहीं दिया, पर आप नफ़रत को मज़हबी मंसूबों की पोशाक पहना

[169] पृष्ठ संख्या, 57, कितने पाकिस्तान –कमलेश्वर

कर दूसरे मज़हबों के साथ वहीकरना चाहते हैं जो इस्राइल के जुड़ाइज़्म ने इस्लाम के साथ किया था !”[170]

अस्तित्व आंदोलन का प्रभाव पूरे विश्व पर दिखाई देता है। इतिहास में कुछ ऐसी समस्याएं हैं कि जिसे कई सदियों तक कुछ लोगों ने नजरन्दाज किया है। मान लीजिए एक देश है, तो उसी देश के अंतर्गत कई क्षेत्र हैं। जिन पर सरकार की नज़र नहीं पहुँचती है। परिणामस्वरूप विकास से कोसों दूर रहा है। विश्व का शक्तिशाली देश है अमेरिका। इनका काम है देशों को बाँटो उन पर राज करो। इसलिए भारत के साथ–साथ विश्व के स्तर पर अपने अपने पाकिस्तान के लिए लड़ रहें हैं। इन समस्याओं को रचनाकार कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया है–

“–चन्द लम्हे ! हुजूर ! दुनिया की साँसों पर एक–एक लमहा इतना भारी पड़ रहा है मुर्तजा भुट्टो खुद अपने मुल्क को खून से नहला देने की पेशकश कर रहा है। वह अपने वालिद की सियासी विरासत में अपनी बहन बेनज़ीर से बँटवारे की माँग कर रहा है ...उधर ईराक में कुर्द अपना पाकिस्तान बनाने की जद्दोजहद कर रहे हैं। गोरी ताकतों ने कुवैत को ईराक से आज़ाद करवा दिया है । सद्दाम हुसैन ने कुर्दों के ठिकानों पर हवाई हमले किए हैं...और आप पूछ रहे हैं कि ऐसा क्या हो–गुज़रा है? अफगानिस्तान में लाशें ही लाशें बिछी हुई हैं...जब से आप इस आरामगाह में छिपे हुए हैं, तब से दुनिया में तबाही मची हुई है और और अदालत के इन्तज़ार में मुर्दे दम तोड़ रहे हैं! अर्दली ने कहा ।”[171]

3.4.3. जितने देश बँटेंगे उतने मनुष्य बँटेंगे

आज हम भूमण्डलीकरण की दुनिया में जी रहें हैं। इसका अंग्रेजी में समानार्थ है ग्लोबलाइजेशन। इसका अर्थ होता है पूरी दुनिया एक गाँव में बदल जाना। इस संसार में

[170] पृष्ठ संख्या, 122, कितने पाकिस्तान –कमलेश्वर

[171] पृष्ठ संख्या, 146,कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

कोई भी कहीं भी जाकर अपना काम धंधा कर सकता है। इस समय में देश का बँटवारा नहीं होना चाहिए। अब तक जो बँट चुका है, वह बहुत हो चुका है। रचनाकार कमलेश्वर जी अदालत में अपील करते हैं कि आगे दुनिया का बँटवारा नहीं होना चाहिए। जितने भी मुल्क बनेंगे उतनी इंसानियत बँटेंगी। इन समस्याओं को कितने पाकिस्तान में देख सकते हैं–

"अदीब चीखा –सुनो कराँची के बान्दिों ! जितना जो कुछ टूट गया , उसे भूल जाओं। जो कुछ टूटने के बाद बना है, उसे टूटने से बचाओ। जितने मुल्क बनेंगे, वे सिर्फ़ इंसान को तक्सीम करेंगे ! जरूरत से ज़्यादा इस दुनिया का बँटवारा हो चुका है...खुदा के लिए बँटवारे की इस ज़हनियत को खत्म करो!"[172]

उपरोक्त संदर्भ में रचनाकार कमलेश्वर यह चाहते हैं कि देश को न बाँटें। इन्होंने अलगाववाद, बाँटो और राज करो वाली राजनीति का विरोध किया है।

ऐसा नहीं है कि कुछ प्रदेशों में ही मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, बल्कि पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। दरअसल मानव इस दुनिया में जन्म लेता है तो उनको जीने का अधिकार होना चाहिए। उसके लिए मौलिक या मूल चीजों की सुविधा होनी चाहिए। सरकार का काम होता है कि इन जरूरी चीजों को हर नागरिक के लिए उपलब्ध करवाना। इनमें से सबसे पहला अधिकार है जीने का। सरकार का सबसे पहला काम है, हर नागरिक की रक्षा करना। लेकिन उसके विपरीत हो रहा है। दुनिया में जगह जगह पर हिंसा, हत्या, उत्पीड़न, यातना, बेईमानी आदि प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। हमारे देश भारत में देखा जाए तो साम्प्रदायिक कमलनाथ रक्त की नदियाँ बहा रहें हैं। वे रक्त के तालाबों में कमल उगा रहे हैं। इन समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में देख सकते हैं–

[172] पृष्ठ संख्या,153, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

"–हाहाकार तो है, पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, हिंसा, हत्या, कष्ट, उत्पीड़न, यातना, बेईमानी, बदकारी के सैलाब उमड़ रहे हैं...खुद भारत में रक्त के तालाबों में कमल उगाएजा रह हैं...लेकिन फिर भी कुछ ऐसा भी है जो शुभ है!"[173]

उपरोक्त संदर्भ से यह समझ में आ रहा है कि हमारे भारत में मार–काट हो रही है। खून–खराब किया जा रहा है। इस खून के तालाब में कमल उगाए जा रहे हैं। यहाँ कमल का अर्थ है भाजपा का चुनाव निशान। अर्थात् अपने स्वार्थ के लिए हिन्दुत्व की राजनीति कर रहे हैं। धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर और प्रान्त के नाम पर लोगों का कत्ल कर रहे हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होते–होते इंग्लैण्ड में हुए आम चुनावों (जुलाई, 1945) में पहली बार पूर्ण बहुमत प्राप्त कर श्रमिक दल ने सरकार बना ली और दुनिया भर से ब्रिटिश उपनिवेशों को समेट लेने के लिए 30 जून, 1948 की समय–सीमा घोषित कर दी । श्रमिक दल के विदेश मंत्री अर्रेस्ट बेविन ने संयुक्त राष्ट्र संघ से फ़िलस्तीन का भविष्य तय करने की प्रार्थना की, क्योंकि उसी के पूर्ववर्ती राष्ट्र संघ (League of Nations) से इंग्लैड को फ़िलस्तीन का अधिवेश मिला था। संयुक्त राष्ट्र संघ ने फ़िलस्तीन को अरब और यहूदी दो देशों में बाँटने का निर्णय लिया, लेकिन इंग्लैड ने इसे इस आधार पर लागू करने से इंकार कर दिया कि यह दोनों में से किसी पक्ष को स्वीकार नहीं होगा। फ़िलस्तीन की बिगड़ती हुई हालत से पल्ला झाड़ने के लिए इंग्लैड ने 30 जून की समय–सीमा से पहले ही 17 मई , 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ को अध्यादेश वापस कर फ़िलस्तीन से अपनी सेनाएँ हटा लीं। इस के बाद राष्ट्र संघ की देख–रेख में फ़िलस्तीन को दो भागों में बाँटा गया (14 जुलई, 1948) और इस तरह दो स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई जिनमें से एक यहूदियों का गृह–राज्य इज़रायल था। इस देश के जन्म के साथ ही पहला अरब इज़रायल युद्ध शुरु हो गया। अपने बुलंद हौसले, बेहतर संगठन और अमेरिकी मदद से यहूदियों ने अरबों को

[173] पृष्ठ संख्या, 179, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

हराकर न केवल उन क्षेत्रों को हासिल कर लिया जो संयुक्त राष्ट्र संघ ने उसे आवंटित किए थे, बल्कि उनकी सुरक्षा के लिए ज़रूरी कुछ और क्षेत्रों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। इज़रायल के लगभग आठ लाख अरब बेघर होकर शरणार्थी बन गए और आज तक बने हुए हैं। इसी युद्ध की शृंखला में 1956, 1967, और 1973, में तीन और अरब–इज़रायल युद्ध हुए पर युद्ध का मक़सद कभी पूरा नहीं हुआ। इन समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में भी देख सकते हैं–

"–इसीलिए तो मैं साउथ अफ्रीका, इस्राइल और फिलिस्तीन से ईरान होता हुआ लौटा हूँ...ट्यूनिस में मैं यस्सर अराफत से भी मिला और इस्राइल में राबिन और पेरेज़ से भी । यहूदियों और फिलिस्तीनियों ने अपने–अपने पाकिस्तानों की दिवारों को झुका कर आदमी को यह मोहलत दी है वे एक दूसरे का मानवीय सच देख सकें और मनुष्य की मौलिक स्वतन्त्रता को पहचानने की कोशिश कर सकें! यहूदी और फिलिस्तीनी मानस ने एक दूसरे की धड़कनों को समझा है और बन्दूकें, मिसाइलें और इत्तेफदा के उड़ते हुए पत्थर थम गए हैं। यह एक निर्णायक कदम है! यह समझौता हो गया है कि यहूदियों के इस्राइल में रहने का हक़ को फिलिस्तीनी मंजूर करेंगे और यहूदी उन्हें गाज़ा पट्टी और पश्मिी तट में खुद अपना देश स्थापित करने और हुकूमत चलाने की गारन्टी देंगे। राजधानी जेरीको होगी और जेरुसलम, गोलन पहाड़ियों का मसला बाद में तय होगा।"[174]

3.4.4. भारत–पाकिस्तान : साम्प्रदायिक राजनीति

भारत में कई लोग आए हैं। कई वर्षों तक राज काज किये हैं। जिन में मुस्लिम कौम बहुत ही मजबूत थी। इस कौम ने भारत पर काफी समय तक राज किया है। इनके बाद अंग्रेज आए थे। अंग्रेज तो आए थे व्यापार के लिए, लेकिन कालांतर में वे भारतीय सत्ता को हासिल कर लिए। लेकिन भारत के बहादुर कहलाने वाले राजपूत और बुद्धिजीवी कहलाने वाले ब्राह्मण उस समय क्या कर रहे थे, यह किंचित सोचने की बात हैं। जब तक

[174] पृष्ठ संख्या, 179, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

यह देश अंग्रेजों के अधीन में था तो, किसी को कोई आपत्ति नहीं थी। जब यह देश आज़ाद हो रहा है तो दोनों कौमों में हल–चल होने लगी कि आने वाले दिनों में इस देश का मुखिया या प्रधानमंत्री कौन बनेगा? हिन्दू बनेगा अथवा मुसलमान बनेगा? इसी ज़िद के कारण इस देश का बँटवारा हुआ था। परिणाम भारत एवं पाकिस्तान का उद्भव हुआ है। अगर किसी के लिए देश ही बन गया है तो, उनको जाना ही होगा। इसलिए मुसलमान सोचते थे कि अपनी भलाई है पाकिस्तान जाने में। इन समस्याओं को लेखक बदीउज़्ज़माँ अपने उपन्यास में पेश किया है–

"क़ायदे–आज़म मुसलमानों के रहनूमा हैं। पाकिस्तान हमारा कौ़मी मुतालबा है। हिंदू और मुस्लिम अलग–अलग कौ़में हैं। इनका मजहब और तहज़ीब अलग है। अंग्रेजों के जाने के बाद हिंदुस्तान में हिन्दुओं की ही हुकूमत होगी। मुसलमानों का मफ़ाद इसी में है कि वह जी जान से पाकिस्तान हासिल करने में क़ायदे–आज़म का साथ दें।"[175]

उपरोक्त संदर्भ से यह ज्ञात होता है कि जब देश आजाद हो रहा था, तो मुसलमान यह सोच रहे थे कि आजाद भारत में राज किनका हो सकता है ? तो उनको यह लगा कि आजाद भारत में राज बहुसंख्यक हिन्दुओं का ही होगा। इसलिए इन्होंने अपने पाकिस्तान की मॉग की–

एक बंगाली ही नहीं इस देश का कोई भी आम आदमी बँटवारा नहीं चाहता है। बँटवारा का मतलब हुआ कि कुछ गिने–चुने लोग देश को बाँट लेते हैं। जैसे कुछ शिकारी शिकार में मारे गये जानवर को काट कर के माँस बाँट लेते हैं। जब बंगाल का विभाजन हो रहा था, तो यह विभाजन किसी भी बंगालियों को मंजूर नहीं था। इस समस्या को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

---

[175] पृष्ठ संख्या, 506, सभा पर्व –बदीउज़्ज़माँ

"बिलकुल नहीं चाहता। बंगाल का बँटवारा क्यों किया जाए ? सरकार की पालिसी ग़लत है। कोई बंगाली बरदाश्त नहीं कर सकता कि बंगाल के टुकड़े–टुकड़े कर दिए जाएँ।"[176]

3.4.5. विभाजन एवं हिंसा

आम जनता की सहमति के खिलाफ में बँटवारा हुआ था। जैसे ही बँटवारा हुआ है वैसे ही पूरे देश में हल–चल शुरू हुआ है। हर राज्य में गड़बड यानी तनाव की स्थिति आरम्भ हो गयी थी। पंजाब, लाहौर इस प्रकार पूरा देश ही ऐसा था, मानो आग में खाक हो रहा हो। लोगों में बहुत सारी शंकाएं थी। दुःशंकाएं भी थी। विभाजन के समय में कई जख्में हुई है। कई चिराग जले हैं। लेकिन जले कहीं तो जख्में और कहीं भरी गई है। कुछ साम्प्रदायिक लोगों ने अपने साम्प्रदायिक अस्त्रों से मुसलमानों पर आक्रमण किया। इन समस्याओं को दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

"अब होशियार क्या रहना बरकत हुसैन। साँसें नाता तोड़ लें सो ज्यादा बेहतर है... तुम्हें याद है। तब क्या सूरत हुई थी हमारी। पंजाब जल रहा था, लाहौर जल रहा था...पूरा मुल्क जल रहा था। कैसे अजीब–अजीब किस्से थे। शंका–दुःशंकाओं की खाईयाँ थीं। लेकिन यही लगता था, आज़ादी के चिराग उधर जले, इधर जख्म भरे और अब बरकत हुसैन ...आसमान में मंडराते हुए गिद्ध नज़र आते हैं मुझे। खौफनाक गिद्ध...इन्सानी बाकटियों पर लपकते हुए ...और यह बच्चे ...डंडा, भाला, त्रिशूल भांजते हुए एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं...."[177]

अगर किसी के ऊपर दंगा करना हो, किसी के ऊपर फसाद करना हो तो सबसे पहले उनको पहचानना नितान्त आवश्यक होता है। उसी प्रकार विभाजन के समय में जो भी

---

[176] पृष्ठ संख्या, 505, सभा पर्व –बदीउज़्ज़माँ

[177] पृष्ठ संख्या, 105, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी

हिन्दू कहलाने वाले अपने घरों के दीवारों पर 'जय श्री राम' लिखते थे। कुछ किरिचन लोगों ने अपने घर के दीवारों पर क्रॉस का चिह्न लगाते थे। ये सब इसलिए करते थे कि इनके घरों के ऊपर दंगा न हों। कोई दंगा हो तो वह मुसलमानों के ही घर पर हों। चुनकर घरों में आग लगाई जाए। इन आदि समस्याओं को 'बयान' उपन्यासों में देख सकते हैं–

"वहाँ मुसलमानों के बहुत से मकान थे। शिनाख्त के लिये उनके दरवाजों पर क्रॉस के निशान बना दिये गये। हादसे के रोज सबने अपने–अपने दरवाजों पर जय श्रीराम लिख दिया, जिसकी वजह से मुसलमानों के मकान की पहचान में आसानी हो गी...और चुन–चुन कर मुसलमानों के मकानों में आग लगाई गई।"[178]

उपरोक्त संदर्भ से यह पता चलता है कि विभाजन के समय में हिंसा किस तरह हुई थी। मुसलमानों के घरों को चुन चुन के आग लगाते थे। घर को पहचानने के लिए, घर के दीवारों पर लिखते थे कि 'जय श्री राम'। इस से हिन्दू का घर कौनसा है और मुसलमान का घर कौनसा है, पहचानने में और दंगे करने में आसानी होती थी।

3.4.6. उदार, नास्तिक बनाम कट्टर साम्प्रदायिक

समाज में तरह तरह के लोग होते हैं। कुछ धर्म में विश्वास करते हैं। धर्म भी सबके लिए एक ही नहीं है। इस पृथ्वी पर कई धर्म हैं। अतः लोग अपने अपने धर्म को मानते हैं। दूसरी तरफ उदार, नास्तिक लोग होते हैं। उदार लोग समाज को उदार दृष्टि से देखते हैं। इनके अनुसार 'भगवान' को मानने वालों पर निर्भर हैं क्योंकि यह व्यक्तिगत मामला है। व्यक्ति 'भगवान' को मानता है तो उनके लिए 'भगवान' हैं। जो नहीं मानता है उनके लिए नहीं है। अतः इसको लेकर उतना परेशान होना कोई आवश्यक नहीं है। नास्तिक ऐसे लोग हैं कि वे किसी भी देवी देवता को नहीं मानते हैं। क्योंकि वे सोचते हैं कि इस विश्व में

[178] पृष्ठ संख्या, 113, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी

कोई ऐसा भगवान नहीं हैं जो उसके लिए एक अलग देश का निर्माण किया जाए। इसलिए उदार और नास्तिक लोगों को कोई ऐसे देश की जरूरत नहीं है। इन समस्याओं को गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में बहुत ही अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है–

"बहुत बड़ी ग़लती कर रही हो, एकदम गलत बँटवारे कर रहे हो। एक तरफ धर्म और कट्टरता, दूसरी तरफ पढ़े–लिखे उदार और नास्तिक। जैसे कि यही जोड़ बनते हैं। ग़लत

सरासर.गलत। न सारे शिक्षित नास्तिक, न सारे शिक्षित अनुदार, न सारे हिन्दु और मुसलमान कट्टर।"[179]

उपरोक्त संदर्भ से हमें यह पता चलता है कि देश का बँटवारा करके बहुत बड़ी गलती किया गया। यह तो कुछ गिने–चुने, साम्प्रदायिक, स्वार्थी लोगों की चाल थी। बहुत सारे लोग बँटवारा नहीं चाहते थे। मिल–जुल कर रहना चाहते थे। सम्प्रदाय के नाम पर बँटवारा होना अच्छा नहीं है।

हमारा धर्मनिरपेक्ष देश है। हमारे संविधान में लिखा गया हैं कि हमारा देश धर्मनिरपेक्ष है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी आस्था से जीवन व्यतित कर सकता है। अपने विश्वास की पूर्ति करने के लिए कहीं भी जा सकते हैं। मुसलमान मक्का को पवित्र मानते हैं। ईसाई लोगों जेरुसलम को पवित्र मानते हैं। विश्व के सारे मुसलमान हज यात्रा करते हैं मक्का–मदीना जाने के लिए। ईसाई लोग भी जेरुसलम देखने के लिए जाते हैं। उसी प्रकार हिन्दुओं के लिए 'काशी' पवित्र है। विश्व के सारे हिन्दू खासकर मॉरिशस के हिन्दू काशी दर्शन करने आते हैं। हम कुछ लोगों को यानी मक्का–मदीना पूजने वालों को देश द्रोही स्थापित कैसे करते हैं ? वे यही चाहते हैं कि किसी का नाम बदनाम हो

---

52 पृष्ठ संख्या, 105, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

जाए। वे यह नहीं देखते हैं कि पूरे हिन्दू विश्व में फैले हुए हैं। जो काशी दर्शन के लिए आते हैं। यहाँ एक सवाल मन में उठता है कि अगर मक्का दर्शन करने वाले देश द्रोही हों तो, काशी दर्शन करने वाले भी देश द्रोही होने चाहिए। इन समस्याओं को गीतांजलि श्री ने 'हमारा शहर उस बरस' में चर्चा की है–

"हमने अपने शक़ से पैदा की। अरे, मक्का–मदीना को पूजते हैं तो देश–द्रोही ? मॉरिशस का हिन्दू काशी को तीर्थ माने तो उसे....."[180]

उपरोक्त संदर्भ से ऐसा लगता है कि मुसलमान मक्का–मदीना को पूजते हैं, तो उन्हें देश द्रोही ठहराते हैं। यह बिलकुल गलत है क्योंकि यह आस्था की बात है। व्यक्ति को यह छूट है कि अपने इच्छानुसार किसी भी देवता को, चाहें वह कहीं भी हो जा सकते हैं और पूज सकते हैं। उनको देश द्रोही कहने का अधिकार किसी को भी नहीं है।

चारों तरफ साम्प्रदायिक लोग छाए हुये हैं। सरकारी दफ्तरों में भी साम्प्रदायिक लोग हैं। पुलिस अफसरों में भी साम्प्रदायिक लोग हैं। लेकिन यह नहीं कह सकते हैं कि शतप्रतिशत साम्प्रदायिक ही हैं। मुसलमानों में हो या हिन्दुओं में ऐसे भी हैं जो सेक्युलर होते हैं। 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में एक पुलिस अफसर बहुत अच्छे सेक्युलर दिखाई पड़ते हैं। वे हिन्दुओं का त्योहार, जुलूस वगैरा निकालते समय सावधानी से निकलते हैं कि किसी मुसलमान पर तिलक, रंग वगैरह न पड़ जाए । जंग न छिड़ जाए। मुसलमानों के त्यौहार पर भी वैसे ही खयाल रकते हैं। इस दृश्य को इसमें देख सकते हैं–

"मुझे तो बस तुम लोग इतना बता दो कि क्यों, ऐसा क्यों है कि जब मैं एक बजे उधर होली भीड़ बन कर देता हूँ कि मस्जिद आते–जाते किसी पर जाने–अनजाने रंग न पड़ जाए और जंग न छिड़ जाए, तब तुम जैसे मेरी पीठ ठोकते हैं–चाह कप्तान साहब,

---

[180] पृष्ठ संख्या, 106, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

कितने सैक्युलर हैं आप, और जब मैं मन्दिर के आगे से ताज़िया सही–सलामत निकलवा देता हूँ, तब भी आप ताली बजाते हैं कि वाह, क्या सैक्युलर पुलिस अफ़सर है ?"[181]

उपरोक्त संदर्भ से ऐसा लगता है कि ईद और त्यौहारों के समय में साम्प्रदायिकता छिड़ती हैं। इस समय हिन्दू और मुसलमान घरों से आये हुए पुलिस के बारे में यह पता चलता है कि कितने धर्मनिरपेक्ष हैं। दरअसल पुलिस का मतलब सरकार ही है। सरकार तो धर्मनिरपेक्ष होता है और होना चाहिए।

कुछ ही लोग हैं जो साम्प्रदायिक होते हैं। वे हर मजहब में होते हैं। उसी तरह हर एक मजहब में साम्प्रदायिकता विरोधी लोग भी होते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख के साम्प्रदायिकता विरोधी लोग मिल कर एकजुट हों, कट्टर वादियों को सबक सिखाएं। इस समस्या को नीचे इस में देख सकते हैं–

"ज़रूरत", श्रुति उफनती है, "है, कि अच्छे हिंदू और अच्छे मुसलमान मिलें और इन कट्टर और बहके हिंदू और मुसलमानों के खिलाफ़ एकजुट हों।"[182]

उपरोक्त संदर्भ में हिन्दू और मुसलमानों के कट्टर वादियों का विरोध किया गया है और इसके साथ साथ अच्छे हिन्दू और अच्छे मुसलमानों को संदेश दिया गया है कि ये सब एकजुट हो कर इस देश को और समाज को साम्प्रदायिकता से बचाएं। एक धर्मनिरपेक्ष देश का निर्माण करें। इस संदेश से मैं भी सहमत हूँ।

3.5. अलगाववादी साम्प्रदायिक राजनीति

"मुस्लिम सांप्रदायिकता और हिंदू सांप्रदायिकता में बहुत सी सामान्य बातें हैं। मुस्लिम सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति मुस्लिम लीग के माध्यम से हुई जबकि हिंदू सांप्रदायिकता की

---

[181] पृष्ठ संख्या, 133–134, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

[182] पृष्ठ संख्या, 157, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

अभिव्यक्ति मुख्य रूप से हिंदू महासभा और आर एस एस तथा आंशिक रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जरिए हुई।"[183]

आजादी के साथ ही भारत देश में से पाकिस्तान अलग हो गया था। इस के पीछे दोनों साम्प्रदायिक वादी थे, जो इस्लाम और हिन्दू। अपने निहित स्वार्थ के लिए, मिश्रित समाज को अलग अलग कर दिये। लेकिन इस अलगाववाद को वहीं तक सीमित नहीं रख पाये हैं। पाकिस्तान से एक और पाकिस्तान को बनाया गया। यह एक अलगाववादी साम्प्रदायिक राजनीति ही बन गयी है। यह वाद पूरे देश में फैल गया है। परिणाम कई राज्यों का निर्माण हुआ। यह सबसे पहले आन्ध्रप्रदेश में शुरु हुआ था। वह पृथक तेलंगाना की माँग आज भी जारी है। आज़ाद कश्मीर, बोडो लैंड, गोरखा लैंड, विदर्भ आदि इलाकों में अलगाववाद ज्वलंत समस्या है। अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में अलगाववाद को, उसके परिणामों को लेकर चर्चा हुई है।

3.5.1. पाकिस्तान से पाकिस्तान

अंग्रेजों ने इस देश से जाते समय, इस देश को भारत और पाकिस्तान में विभाजित कर के चले गये हैं। तो यह विभाजन होने की प्रक्रिया वहाँ से न रुक कर वह आज भी जारी है। पाकिस्तान से बंग्लादेश का विभाजन हुआ। इसी परम्परा में पृथक कश्मीर का नारा सामने आया। इसी तरह नार्थ–इस्ट में भी पृथक देश के लिए माँग जारी है। भविष्य में यह माँग भी सामने आएगी कि उत्तर भारत और दक्षिण भारत पृथक पृथक देश हों। बल्कि फिलहाल भारत देश के राज्यों के अन्तर्गत तक्सीम करने के लिए माँग का दौर चल रहा है।

अलगाववाद एक छूत का रोग है। तो इस रोग के कारण क्या हो सकते हैं ? अगर हम विभाजन के इतिहास को देखें तो मालूम पड़ता है। वास्तव में भारत और पाकिस्तान के

---

[183] पृष्ठ संख्या 47, उद्‌भावना–अंक 79, अगस्त, 2008, संपादक–अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) शाहदरा, दिल्ली–95

तक्सीम होने का कारण यह था कि स्वतन्त्र भारत पर कौन राज करे ? हिन्दू यानी ब्राह्मण करें अथवा मुसलमान ? अतः ये दोनों मज़हबी होड़ में थें। परिणाम ये दोनों मज़हबों को राज करने हेतु दो देशों में तक्सीम किए हैं। इस प्रकार जाति, नस्ले, धर्म, वादियों यह मानकर चलते हैं कि देश पर राज करने का अधिकार उनको ही हैं। वे यह भी मानकर चलते हैं कि दुनिया की पहली शक्ति बनेंगे। लेकिन यह धारणा ही गलत है। देश का मतलब उक्त चीजें ही नहीं होती। बल्कि देश के सम्पूर्ण जनता की अभिमत की बात है। जब तक यह धर्म, नस्ल, जाति और दुनिया की पहली ताकत बनने की होड़ रहेगी तब तक इस भारत भूमि के टुकड़े होते रहेंगे। अतः ये सब छोड़ कर जो संविधान के अनुसार चलना होगा।

इन समस्याओं को लेकर रचनाकार कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में बहुत ही अच्छी तरह से प्रस्तुत किया है–

"–पाकिस्तान से पाकिस्तान पैदा होता है...यह छूत का एक रोग है ! जब तक धर्म, नस्ल, जाति और दुनिया की पहली शक्ति बनने का नशा नहीं टूटता, जब तक सत्ता और वर्चस्व की हवस नहीं टूटती तब तक इस धरती पर पाकिस्तान बनाए जाने की नृशंस परम्परा जारी रहेगी...निखिल चक्रवर्ती ने हस्तक्षेप किया।"[184]

उपरोक्त संदर्भ में रचनाकार ऐसे लोगों का विरोध करता है जो सत्ता प्राप्त करने के लिए धर्म, जाति, नस्ल...आदि का इस्तेमाल करते हैं। यह सही है कि सत्ता प्राप्त करने के लिए उक्त...आदि का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए लोकतांत्रिक यानी डेमोक्रसी के अनुसार ही चलना चाहिए।

[184] पृष्ठ संख्या, 187,कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

3.5.2. अलगाववाद

पाकिस्तान में से और कई पाकिस्तानों की माँग हो रही हैं। हिन्दुस्तान में भी साम्प्रदायिक हिन्दू वादी भी अपना हिन्दुत्व वादी पाकिस्तान की माँग कर रहें हैं। श्रीलंका में तमिल अपना अलग श्रीलंका माँग रहा है। इसको कोई आम गरीब लोग नहीं माँग रहें हैं। इनको पता ही नहीं हैं कि क्या हो रहा है। लेकिन बाँटना तो वे लोग चाहते हैं जो साम्प्रदायिक होते हैं। जो सत्ता में आना चाहते हैं।

जब तक हमारा देश विदेशों का गुलाम था तब तक कोई ऐसे विभाजन की समस्या हमारे सामने नहीं थी। दरअसल इस देश का आजाद होना ही एक साम्प्रदायिक धरातल पर हुआ। मुसलमानों के लिए पाकिस्तान और हिन्दुओं के लिए हिन्दुस्तान। ये दो देश बनने में पूरे मुसलमानों की दिलचस्पी नहीं थी। वैसे ही पूरे हिन्दुओं की भी दिलचस्पी नहीं थी। भारत को दो देशों में बाँटने में कुछ ही लोगों की दिलचस्पी थी, जो सत्ता वर्ग के थें। लेकिन विभाजन का कारण तो साम्प्रदायिकता ही था। वही साम्प्रदायिकता विरासत के रूप में पाकिस्तान से और कईं पाकिस्तानों के विभाजन के कारण बन रहा है। सरायकी अपना सूबा माँग रहे हैं, अलग सिन्धु देश, पख़्तूनिस्तान, आजाद बलूचिस्तान, हिन्दुत्ववादी पाकिस्तान, अलग लंका आदि चाहते हैं। उक्त प्रकार देश में अलगाववाद तेजी से चल रहा है। इस का कारण है स्वार्थ और साम्प्रदायिक राजनीति आदि समस्याओं को रचनाकार कमलेश्वर ने अपना उपन्यास कितने पाकिस्तान में प्रस्तुत किया है–

"–तो अब कितने पाकिस्तान बनेंगे भाई ?...खुद पाकिस्तान में से कितने पाकिस्तान पैदा होंगे ? पंजाब के सरायकी अपना सुबा माँग रहे हैं। पुराने सिन्धी अपना सिन्धु देश बनाना चाहते हैं। जैसे यहाँ लोगों ने पंजाबी–उर्दू की लड़ाई छेड़ दी है, वैसे ही वहाँ सिन्धी–उर्दू की लड़ाई चल रही है। और पख़्तून अपना पख़्तूनिस्तान चाहते हैं। अताउल्ला मेंगल आजाद बलूचिस्तान माँग रहा है। और अपने मुहाजिर भाई सिन्ध करॉंची में अपना एक और पाकिस्तान बनाना चाहते हैं...सुना है कि वहाँ हिन्दुस्तान में हिन्दु भी हिन्दुस्तानियों

से अपना हिन्दुत्ववादी पाकिस्तान माँग रहे हैं...लंका में तमिल अपनी लंका अलग करना चाहते हैं..."[185]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक ने तरह तरह के अलगाववाद के बारे में जिक्र किया है। धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, क्षेत्र के नाम पर, हिन्दुत्व के नाम पर अलग अलग देश बनाना चाहते हैं। इसको लेकर लेखक दुःखित हैं और अपना विरोधी भावना को प्रकट कर रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि विभाजन और अलगाववाद की भी कुछ सीमा होनी चाहिए।

3.5.3. मूलनिवासी

यह कहना थोड़ा मुश्किल है कि कौन मूलनिवासी है और कौन प्रवासी या विदेशी। फिर भी हम पहचान सकते हैं कि कौन मूलवासी है और कौन प्रवासी या विदेशी है। अगर एक बार इतिहास को देखे तो हमें पता चलता हैं। इतिहास के आधार से इस देश मे कईं लोग आए हैं। उन के साथ–साथ उनकी अपनी संस्कृति, सम्प्रदाय, खान–पान, रहन–सहन, विचार आदि लेकर आए हैं। इसलिए इस देश में कईं संस्कृतियाँ दिखाई देती हैं। बावजूद इसके प्रधानतः दो संस्कृति दिखाई देती हैं, जो कि नाग संस्कृति या द्रविड़ियन संस्कृति और आर्य संस्कृति। स्पष्ट है कि आर्य विदेशी थे, जब वे इस देश मे आये तभी से यहाँ के भूमि पुत्रों को गुलाम बनाए। अपने हित के लिए काम किए। बाद में इस्लाम आए, वे भी कुछ इसी तरह के काम किये। बाद में अंग्रेज आए तो इस देश को पूरा लूट कर खाने लगे। ये सब देखकर भारतीय जाग उठे। विदेशियों के विरोध में आंदोलन चलाए और उनको यहाँ से भगाए। इस प्रकार हम पता कर सकते हैं कि कौन मूलवासी है और कौन विदेशी है।

उसी तरह देश के अंतर्गत एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को यानी एक राज्य से दूसरे राज्य को प्रवास या मैग्रेसन हो कर, वहाँ की पूरी सुविधा को प्राप्त करते हैं, तो वहीं के भूमि–पुत्रों को, कोई सुविधा नहीं मिलती हैं। भारत के कईं राज्यों में इस तरह के आक्रमण

---

[185] पृष्ठ संख्या, 336, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

हुए थें। इस प्रकार की प्रवासी राजनीति और सत्ता के विरोध में, भारत के कईं राज्यों में, जैसे, आसाम, आन्ध्र प्रदेश में पृथक तेलंगाना, महाराष्ट्र, आदि राज्यों में आंदोलन हुए थे और हो रहे हैं।

वे आंदोलन इसलिए करते हैं कि गैर वासियों को, उस प्रदेश से उनके अपने प्रदेश भेजा जाए। वहाँ की राजनीतिक सत्ता अपने हाथ में लें। इसी उद्देश्य से आंदोलन होता है बल्कि इस क्रम में साम्प्रदायिक अपना फायदा उठाना चाहते हैं। साम्प्रदायिक पार्टीयाँ भी आंदोलन करने लगती हैं। जैसे महाराष्ट्र में शिवसेना। इन तमाम समस्याओं को रचयिता कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में अच्छी तरह से प्रस्तुत किया है–

"ये असम के मुल्की यानी धरती–पुत्रों का आंदोलन है। इस तरह का पहला आँदोलन आंध्र प्रांत में शुरू हुआ था, फिर धरती पुत्रों या मुल्कियों की तर्ज पर यही आंदोलन लेकर महाराष्ट्र में शिवसेना खड़ी हो गई..."[186]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक ने भूमि पुत्रों के आंदोलन के बारे में लिखा है। उपनिवेशों की वजह से भूमि पुत्रों का अन्याय हुआ है। इसीलिए आंध्रप्रदेश में पृथक तेलंगाना आंदोलन आज भी जिंदा है और तेलंगाना के भूमि पुत्रों का संघर्ष जारी है। जबतक पृथक तेलंगाना नहीं बनेगा तब तक यह आंदोलन चलता ही रहेगा।

3.5.4. बिहारी बनाम बंगाली

इतिहास में हम देखते हैं कई विदेशी खाली हाथ आए यहाँ, जबकि गए संदूक भर भर के। इसके बाद देश के ही अंतर्गत प्रवासियों का उत्पन्न हुआ है। इस देश में सबसे पहले आन्ध्रप्रदेश में प्रवासियों का उत्पन्न हुआ है। वे भी आन्ध्र प्रान्त से तेलंगाना प्रान्त में खाली हाथ ही आए थे। कालांतर में वे तेलंगाना के हर चीज़ पर कब्ज़ा करने लगे थे। तेलंगाना के हर सरकारी दफ्तरों में उनका अपना अड्डा जमा हैं। तेलंगाना के हर सेवा में

[186] पृष्ठ संख्या, 77,कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

आन्ध्र वालों की तानाशाही होने लगी थी। सबसे पहले इस तरह का संघर्ष आन्ध्र वालों के विरोध में हुआ है। वैसे ही बंगाली ने बिहार में आ कर अपनी तानाशाही करने लगे हैं। बिहारी बंगालियों के विरोध में संघर्ष करते हैं। इन दृश्यों को दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं–

"मिश्र जी और दूसरे बिहारी अध्यापकों की दलील थी कि स्कूल बंगालियों का कैसे हो गया। माना कि रुपया बंगालियों ने दिया है। लेकिन यह रुपया उन्हें आखिर मिला कहाँ से ? बिहारियों से ही यह रुपया उन्हों ने हासिल नहीं किया तो कहाँ से किया ? क्या यह रुपया उन्हें बंगाल से मिला था या बंगाल से यह लोग इतना धन दौलत लेकर यहाँ आए थे। बिहारियों का खून चूस–चूस कर ही तो ये बंगाली इतने अमीर हो गए कि शहर में इतनी कोठी–जायदाद बना ली है। कहते है कि बंगालियों ने रुपया लगाया है। रुपया तो सारा बंगाली का है। यह अच्छा तामाशा है कि रुपया तो हो बिहारियों का और स्कूल में तानाशाही चले बंगालियों की। कोई इन बंगालियों से पूछे कि हर महीने लड़कों से जो फ़ीस मिलती है, सरकार जो ग्रांट मिलती है, क्या यह सब भी बंगाली ही देते हैं। बंगाली लड़के है ही कितने स्कूल में ।"[187]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक बंगाल से आ कर बिहार में बसे उपनिवेशियों के बारे में बताते हैं कि ये बंगाल से यहाँ आ कर यहाँ के लोगों को लूट रहे हैं। इनके हर एक उपलब्ध को छीन ले रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि यह उपनिवेशवादी मानसिकता है।

3.6. धर्म–सत्ता का हथियार और साम्प्रदायिक राजनीति

"यह कहा जाता है कि सबसे पहले भारत को एक धार्मिक देश होना चाहिए...(लेकिन) मैंने बार बार इसकी (धर्म की) आलोचना की है और इसका बिल्कुल सफाया करने की इच्छा रखी है। लगभग हमेशा यह लगा है कि इसका मतलब है अंधविश्वास और प्रतिक्रिया,

[187] पृष्ठ संख्या, 472, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

हठधर्मिता और कट्टरता, शोषण। लेकिन मैं यह भी जानता था कि इसमें और कुछ भी है जो मानव की गहरी आंतरिक अभिलाषा को आकार देता है।"[188]

धर्म एक ऐसी चीज है जिससे लोगों को पागल बना दिया जा सकता है। हर कोई नेता धर्म को लेकर बात करे बिना उनका काम ही नहीं चलता है। आखिर धर्म क्या है? धर्म तो वह है लोकोद्धार के लिए सत्कार्य करना। लेकिन इसी को इस्तेमाल कर बुरे कार्य कर रहे हैं। इनके उपयोग से धर्म अपना असली रूप खो बैठा है। धर्म को सम्प्रदाय के स्थान पर इस्तेमाल कर रहे हैं। इसी की वजह से धर्म संकीर्ण अर्थ में बदल गया है। अर्थात् अब नाम धर्म का है, लेकिन काम सम्प्रदाय या मज़हब या मत का है। अर्थात् धर्म और सम्प्रदाय या सम्प्रदायिक या साम्प्रदायिकता में कोई फर्क नहीं है, अर्थात् धर्म ही साम्प्रदायिकता है। सत्ता में आने के लिए धर्म का इस्तेमाल किया जा रहा है।

3.6.1. धर्म का दुरूपयोग

"कम्युनिस्ट भी समझते हैं कि फासिज़्म एक विचारधारा है विचारधारा के नाम पर हमारे पास सेक्युलरिज़्म है। सेक्युलरिज्म के नाम पर हम लड़ेंगे। लड़कर देख लिया। पलटकर उन्होंने कहा कि–ये छद्म धर्म निरपेक्ष हैं, सच्चे धर्मनिरनेक्ष तो हम हैं। इस क्रम में देखें ! वहाँ कोई विचार नहीं है। लाठी भाँजने वाले, शाखा लगाने वाले, उनका दिमाग लाठी में बसता है। यहाँ भी ग्रे मैटर बहुत कम होता है, पढ़ने–लिखने में बहुत ज्य़ादा दिलचस्पी नहीं है। किसी हिन्दुत्ववादी को मैंने पढ़ा–लिखा विद्वान नहीं देखा। चाहे वो हिन्दू धर्म के बारे में हो, राजनीति के बारे में हो, उनके बारे में सारी शिकायतें की जा सकती हैं लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि पढ़े–लिखे हैं। ऐसे लोगों से आप समझें कि इनके हाथ में विचार की तलवार है? जी नहीं ! विचार इन्दिरा गाँधी के पास भी नहीं था,

---

[188] पृष्ठ संख्या 47, उद्भावना–अंक 79, अगस्त, 2008, संपादक–अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) शाहदरा, दिल्ली–95

विचार महात्मा गाँधी के पास था, विचार जवाहरलाल नेहरू के पास था। इनके पास विचार नहीं है।"[189]

साधारणतः इतिहास में यह हुआ है कि एक ताकतवर संस्कृति ताकतहीन संस्कृति के ऊपर आक्रमण करती है। इसके दौरान ताकतहीन धर्म संस्कृति का विनाश होता है। उदाहरण के लिए आर्य संस्कृति ने भारतीय द्रविड़ संस्कृति का विनाश किया था। इसी प्रकार विश्व में जगह जगह पर हुआ है। सत्ता लोलुपता, भौतिक सुख, मुनाफे की तलाश में धर्मयुद्ध भी कियें हैं। हमारे भारत में तो राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिकवाद दोनों एक ही समय जन्में हैं। सत्ता में बने रहने के लिए कभी राष्ट्रवाद को तो कभी साम्प्रदायिकवाद का इस्तेमाल करते हैं। नेहरु भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थें। उनके समय में राजनीतिक पार्टी काँग्रेस सत्ता के लिए धर्म का उपयोग नहीं किया था। गाँधी और नेहरु के पास विचार था। उसके बाद इंदिरा गाँधी भारत का प्रधानमंत्री हुई थीं। इनके पास कोई विचार नहीं था। इनको सत्ता में आने के लिए धर्म का इस्तेमाल करना पड़ा। राजीव गाँधी ने बाबरी मस्जिद का ताला खुलवाया था। इस प्रकार सत्ता में रहने के लिए समय समय पर धर्म का इस्तेमाल करते रहें हैं–

"–आप बिल्कुल ठीक फरमा रहे हैं हुजूर ! सबसे पहले ये पूर्वजों की परछाइयों को क़त्ल करते हैं....संस्कृतियों का विनाश करते हैं, फिर पुरानी और पुख़्ता सभ्यताओं को बदलते हैं !...योरूप के सारे देश–स्पेन, पुर्तगाल, हालैड, इंग्लैण्ड, फ्रांस सत्ता लोलुपता, भौतिक शुख और मुनाफे की तलाश में हिंसक धर्मयुद्धों को जन्म देते रहे हैं...धर्म को इन्होंने सत्ता का हथियार बनाया है।"[190]

---

[189] पृष्ठ संख्या, 41, ज़माने से दो दो हाथ–नामवर सिंह

[190] पृष्ठ संख्या, 294, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

उपरोक्त संदर्भ में लेखक, धर्म को सत्ता का हथियार बनाने का विरोध करता है। धर्म को सत्ता का हथियार बनाने से कई तरह के अनर्थ हो सकते हैं। धर्म को सत्ता पाने के लिए एक हथियार बनाना ठीक नहीं है।

3.6.2. दिमागी़ बुखार

प्रख्यात आलोचक, प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष नामवर सिंह ने अपनी किताब 'ज़माने से दो दो हाथ' में कहा है कि 'साम्प्रदायिकता एक दिमागी रोग हैं'। तो मेरे मन में एक सवाल उठा है कि यह जो दिमागी रोग किनके दिमाग में है ? मुझे लगता है कि यह दिमागी रोग सभी के दिमाग में तो नहीं है। हाँ लेकिन कुछ लोगों के दिमाग में जरूर है। खासकर वे कौन हैं ? सीधी सी बात है वे वही लोग हैं जो मुल्ले, पण्डे, पादरी होते हैं। इन्हीं लोगों के दिमाग में है बुखार। वे जब चाहे तब इस बुखार के वायरस को फैलाते हैं। तब साम्प्रदायिकता वाली राजनीति करते हैं। अपनी राजनीतिक दुकान चलाते हैं। उक्त समस्याओं को हम 'उन्माद' उपन्यास में देख सकतें हैं–

"तो यह जो साम्प्रदायिकता है यह भी एक तरह का दिमागी़ बुखार है। ये जो साम्प्रदायिकता की राजनीति करनेवाले हैं और ये जो धर्म के नाम पर अपनी दुकान चलानेवाले मुल्ले और पन्डे होते हैं ,ये सभी इस दिमागी़ बुखार के वायरस को पालनेवाले होस्ट हैं। इससे

इनका कुछ बिगड़ता नहीं। ये मस्त–मुस्तंड ही नहीं पड़े रहते हैं, बल्कि इस वायरस को फैलाने की धौंस देकर राजनीतिक सौदेबाजी करते हैं।"[191]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक कहता है कि साम्प्रदायिकता एक दिमागी बुखार है। इस बात से मैं भी सहमत हूँ क्योकि इस वायरेस को फैलाने वाले पंडित, पण्डे और

---

[191] पृष्ठ संख्या, 144, उन्माद–भगवान सिंह

मुल्ला–मौलवी, पादरी माने जाते हैं। साम्प्रदायिकता को फैलाते हैं और तमाशा देखते रहते हैं।

3.6.3. झूठी खबरें

दरअसल साम्प्रदायिक लोग प्रगतिशील नहीं होते हैं। वे हमेशा समाज को पीछे की ओर ले जाते हैं। वे सामाजिक विकास और आर्थिक विकास के विरोधी होते हैं। इसलिए जब कोई वाद या विचार जो इस समाज के विकास में काम आया हो तो, उस विचार या वाद के विरोध में पता नहीं कितनी अफवाहें फैलाएं होंगे। कितनी झूठी खबरें फैलाए होंगे। जब मार्क्स आया तो जिसके विरोध में कितनी अफवाहें फैलाए थे और आज भी फैलाते हैं। समाज के विकास में एक दिव्यऔषधी है दलित वाद। इन लोगों ने इसका भी विरोध किया। इसके विरोध में झूठी अफवाहें फैलातें हैं। नारी वाद को भी। इन सभी विकास वादियों के विरोध में झूठी खबरें और अफवाहें फैलाते हैं। इसकी जगह पर अपने झूठे और पिछड़ें वाद और विचारों को स्थापित करना चाहते हैं।

इस तरह के काम करने के लिए तत्पर रहते हैं लोग । इस में छोटे से लेकर बड़े–बड़े तक शामिल होते हैं। इसमें पढ़े–लिखे भी हैं। अधपढ़ भी हैं। अनपढ़ भी हैं। अध्यापक, अफसर, बुद्धिजीवी, प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया वाले आदि लोग हैं। ये सभी स्वार्थी और साम्प्रदायिक लोग हैं। इन समस्याओं को 'उन्माद' उपन्यासों में देख सकते हैं।

"इनके भीतर पले वायरस के वाहक हमारे पढ़े–अधपढ़े छुटभैये मच्छर होते हैं, जिनमें तंगदिमाग़ बुद्धिजीवी और पत्रकार और अध्यापक भी आते हैं। वे लोग, जो अफवाहें फैला देते हैं, झूठी या अधकचरी ख़बरें उड़ा हैं "[192]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक ने झूठी साम्प्रदायिक खबरे फैलाने वालों के बारे में लिखा है। साम्प्रदायिक और झूठी खबरें फैलाने वालों में अनपढ लोगों से लेकर बड़े बड़े पढ़े लिखे

---

[192] पृष्ठ संख्या, 144, उन्माद–भगवान सिंह

लोग भी शामिल होते हैं। लेकिन बड़े बड़े पढ़े लिखे लोगों को इस तरह का काम नहीं करना चाहिए। उन्हें देश और जनता के लिए आदर्श होना चाहिए।

3.6.4. साम्प्रदायिक वायरस को फैलाना

साम्प्रदायिकता तो एक दिमागी बुखार है। बुखार अपने आप नहीं आता है, बुखार फैलाने में कुछ वायरसों का हाथ होता है। अतः बुखार फैलने का कारण वायरस होता है। वैसे ही साम्प्रदायिक बुखार फैलाने में कुछ कट्टर साम्प्रदायिक लोगों के हाथ होते हैं। इस बुखार को उन बिचारे लोगों पर फैलाते हैं कि जो गरीब, पिछड़ें और आदिवासी हैं। शुरूआत में इनको कुछ अच्छा ही लगता होगा। बाद में तंग दिमागी होकर कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। इनको पता ही नहीं चलता कि यह क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं। इनको यह भी पता नहीं चलता इसके पीछे कौन है और अपनी खिचड़ी कहाँ पका रहे हैं। इस तरह की समस्याओं को उपन्यास 'उन्माद' में पाया जा सकते हैं–

"पर जो लोग आदमी हैं और आदमी बने रहना चाहते हैं उनके भीतर जब ये इस वायरस को फैला देते हैं और उन्हें इसका बुखार चढ़ता है तो उनका दिमाग़ ख़राब हो जाता है। उनके मरने–जीने की नौबत आ जाती है। वे बेचारे यह भी नहीं समझ पाते कि उनको इस मुकाम तक किसने पहूँचाया है और इसकी आड़ में अपनी खिचड़ी कहाँ पका रहा है।"[193]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक यह बताते हैं कि कुछ ऐसे लोग हैं जो साम्प्रदायिकता फैलाते हैं। इसकी आड़ में अपनी रोटी सेकते हैं।

[193] पृष्ठ संख्या, 144–145, उन्माद–भगवान सिंह

3.6.5. गुनेहगार और धर्म

हर धर्म यही कहता है कि मनुष्य का जन्म ही पापी जन्म है। जिस पाप को दूर करने के लिए मनुष्य को भगवान की शरण लेना आवश्यक है। यह सोचने की बात है कि हर कोई आदमी जन्म से ही गुनेहगार कैसे हो सकता है ? हर कोई आदमी गुनाह करता है तभी तो गुनहगार हो सकता है। जन्म देना और जन्म लेना यह प्राकृतिक नियम है। मेरे खयाल से यह कोई गुनाह नहीं हो सकता है। लेकिन कुछ ऐसे लोग हैं जो हर दिन बिना गुनाह किए, बिना झूठ बोले, बिना रिश्वत लिए, बिना चापलूसी के अपना एक दिन भी नहीं गुज़ारता है। तो इन सभी गुनाहों से अपने आपको बचाने के लिए ही भगवान की कल्पना किया गया है। इसलिए जितने भी गुनहगार हैं वे सब धर्म का ही सहारा लेते हैं। इस समस्या को दिए गए उद्धरण से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं–

"धर्म जितने भी है, गुनाहों को माफ करने के लिए ही बने हैं और गुनाह करनेवालों के लिए बने हैं। चढावा हो या भजन या सजदा, इससे फरक़ क्या पड़ता है। चाहे किसी के तलवे चाटकर काम बनाइए या सिर रगड़कर या चढ़वा देकर इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है।"[194]

3.6.6. धर्म

कोई भी धर्म यही सिखाता है कि 'हर एक आदमी का जीवन उनके पूर्व जन्म के कर्मों पर निर्भर करता है। अगर पूर्व जन्म में अच्छे कार्य किए हो तो इस जन्म में सब कुछ अच्छा होता है। अगर पूर्व जन्म में बुरे कार्य किए हों तो इस जन्म में कष्टों को भोगना पड़ता हैं।' तो इस के अनुसार कोई अन्याय हो रहा है तो चुपचाप सह लो क्योंकि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के कार्यों के फलस्वरूप हैं। गरीबी है, छुआछूत है, ऊँच–नीच है, जात–पाँत है, इन सभी समस्याओं का कारण पूर्व जन्म से जोड़ देते हैं। लेकिन वास्तव में

[194] पृष्ठ संख्या, 144–145, उन्माद–भगवान सिंह

इन सभी समस्याओं के कारण तो धर्म के ठेकेदार होते हैं। धर्म के ठेकेदार ही धर्म के नाम पर लोगों को लूटते हैं। आर्थिक रूप से चकनाचूर कर डालते हैं। धर्म के नाम पर ऊँच–नीच की भावना को लोगों में फैलाते हैं। छुआछूत को अपनाते हैं। इस तरह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और संस्कृतिक आदि रूप से, धर्म के ठेकेदार इन गरीब और दलित लोगों को लूटते हैं। कहते हैं कि सबकुछ भगवान देख लेता है। इन समस्याओं को दिए गए उद्धरण से स्पष्ट किया जा सकता है–

"ज़रूर नज़दीक जाकर देखो तो धर्म के ठेकेदारों को। वे किसी भी मजहब के क्यों न हों। धर्म की जरूरत सिर्फ अपराधियों को पड़ती है। सभी धर्म यही सिखाते हैं कि अन्याय को चुपचाप सह लो। भगवान सबकुछ देख रहा है। वह न्याय ज़रूर करेगा।"[195]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक लिखते हैं कि धर्म का अनुयायी वही हो सकता है जो बार बार गुनाह करता है। यह तो सही है कि कोई भी धर्म यही सिखाता है कि अन्याय को सहो। सभी गुनाहों का माफ ईश्वर या भगवान करता है। इसलिए वे धर्मवादी अपराधी हैं।

3.6.7. गाय और राजनीति

ग्रामीण भारत में गायों का पालन–पोषण और देख–भाल तो गाँव के गरीब, दलित और पिछड़े लोग करते हैं। लेकिन पता नहीं क्यों जिन लोगों को इन गायों से कोई मतलब ही नहीं हैं वे लोग गाय के बारे में बात करते रहते हैं। गाय को समस्याओं का मुख्य हिस्सा बना देते हैं। आखिर ये गाय को लेकर झगड़ा क्यों करवाना चाहते हैं ? सीधी सी बात है कि ये हिन्दू और मुसलमानों के बीच नफरत पैदा करना चाहते हैं। इनका कहना है कि गाय पवित्र मानी जाती है जिसका माँस नहीं खाया जाता है। मुसलमान लोग खाते हैं तो हिन्दुओं को ठेस पहुँचती है। परिणाम स्वरूप मुसलमानों के ऊपर दंगे, फसाद करवाते हैं। लेकिन इस देश में गोमांस को केवल मुसलमान ही नहीं खाते हैं। गैर मुसलमान, खासकर दलित भी गोमांस खाते हैं। यहाँ तक की इतिहास में रन्ति देव ने यज्ञ करते समय सोलह

---

[195] पृष्ठ संख्या, 232, उन्माद–भगवान सिंह

16 हज़ार गाय को बलि देते थे। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण भी गोमाँस खाते थें। खैर अब गो मांस खाना बंद करने से अगर दंगे, फसाद और झगड़े नहीं होंगे तो तुरन्त अमल किया जाए। जहाँ तक मैं जानता हूँ कि इन दोनों मजहबों के लिए गाय ही उतनी महत्व पूर्ण चीज नहीं हो सकती। इन समस्याओं को रचनाकार ने बड़े ही अच्छे ढंग से पेश किया है–

"जो लोग गाय को झगड़े और फ़साद की बुनियाद बनाकर लोगों को गुमराह करने और भड़काने ज़लील कोशिश कर रहे हैं वह मुल्क के ही नहीं, इंसानियत के भी दुश्मन हैं। गाय की कुरबानी यक़ीनन कोई ऐसा फ़र्ज नहीं है जिसके बग़ैर इस्लाम ख़तरे में पड़ जाएगा और जहाँ तक मैं समझता हूँ गाय की हिफ़ाज़त हिंदू धर्म का भी सबसे बड़ा या सबसे ज़रूरी हिस्सा नहीं है। बड़े ताज्जुब और अफसोस की बात है कि लोग धर्म और मज़हब की ज़रूरी बातों पर तो कोई ध्यान नहीं देते और एक मामूली और ग़ैर अहम बात को ज़िन्दगी और मौत का मसला बना लेते हैं। यह जहालत नही ंतो और क्या है। अगर गाय की कुरबानी को रोकने से दंगा–फ़साद रुकसकता है और बेगुनाह इंसान मौत के घाट उतारे जाने से बच सकते हैं तो मैं मुसलमानों से कहूँगा कि वे गाय की कुरबानी का ख़याल अपने दिल से निकाल फ़ेंके और यह बात ऐन इस्लाम के मुताबिक़ होगी क्योंकि इस्लाम अमन और शांति का मज़हब है। वह हमें फ़साद फैलाने और खून बहाने की तालीम नहीं देता।"[196]

3.6.8. राम मन्दिर

1925 में आर एस एस का आविर्भाव हुआ था। आविर्भाव होकर आज से 85 साल हो चुके हैं। जब से आर एस एस का उद्भव हुआ तब से आज तक वही कहते आ रहे हैं कि अयोध्या में राम मन्दिर का निर्माण करेंगे। बड़ा आश्चर्य लगता है इनको सुनकर कि वहाँ आज तक भी राम मन्दिर का निर्माण नहीं हुआ है। क्यों ? दरअसल वे मन्दिर का निर्माण नहीं करना चाहते हैं। क्योंकि अगर एकबार मन्दिर बन जाएगा तो उन को कहने को और

[196] पृष्ठ संख्या, 235, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

लोगों के बीच जाने को कोई मौका ही नहीं मिलेगा। इसीलिए इस मसले को बरकरार रखना चाहते हैं। इसके नाम पर समाज में और अल्पसंख्यक लोगों के ऊपर दंगे और फसाद करवाते हैं। लेकिन आम लोग यह चाहते हैं कि दंगे और फसाद आगे न हो, अगर उनको मन्दिर ही बनाना हैं तो कौन मना किया है ? एक बार बना लें। इन विषयों पर 'बयान' उपन्यास में चर्चा हुआ है–

"हाँ यार ! यह ठीक है। इसलिये कि सिर्फ शेर व शायरी से मसला हल नहीं होगा। इससे ज्यादा अब मैदान में उतरने की जरूरत है। हम सिर्फ पाँच, छः या चन्द लोग नहीं हैं। हमारे जैसे सोचने वाले और भी हैं जो फ़साद नहीं चाहते, दंगा नहीं चाहते...जो चैन और सुकून से रहना चाहते हैं। हम यही चाहते हैं कि यदी वहाँ मन्दिर बनना है तो एक बार बन जाये...क्यों ? "[197]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक यह कहना चाहते हैं कि यदि इनको मंदिर ही बनाना है तो जल्दी से जल्दी बनवा लें। यह ठीक है कि यदि इन साम्प्रदायियों को मंदिर बनाना है तो क्यों नहीं बनाते हैं ? ये दरअसल मंदिर बनवाना नहीं चाहते हैं, मंदिर के नाम पर राजनीति करना चाहते हैं, तथा सत्ता में आना चाहते हैं।

3.7. हिन्दू–मुस्लिम, शिया–सुन्नी और साम्प्रदायिक राजनीति

"मुस्लिम सांप्रदायिकता और हिंदू सांप्रदायिकता में बहुत सी सामान्य बातें हैं। मुस्लिम सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति मुस्लिम लीग के माध्यम से हुई जबकि हिंदू सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति मुख्य रूप से हिंदू महासभा और आर एस एस तथा आंशिक रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जरिए हुई।"[198]

---

[197] पृष्ठ संख्या, 114, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौकी

[198] पृष्ठ संख्या 47, उद्भावना–अंक 79, अगस्त, 2008, संपादक–अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) शाहदरा, दिल्ली–95

हिन्दू और मुसलमानों के अलग अलग सम्प्रदाय हैं। हिन्दू एक सम्प्रदाय होता हुआ भी कई सम्प्रदायों का सम्मेलन है। मुसलमान आके 17 सौ साल चल रहे हैं। 16 सौ साल हिन्दू और मुसलमान मिलके भारत में जीवन–यापन किये हैं। इन दोनों की संस्कृति घुल–मिल होती हुई भी पृथक रही है। हिन्दुओं में भी अनेक सम्प्रदाय हैं। जैसे वैष्णव, शैव आदि। मुसलमानों में भी एक से ज़्यादा सम्प्रदाय हैं, यथा शिया, सुन्नी, सूफी आदि। हिन्दू के अंतर्गत संम्प्रदायों के बीच समानता की भावना नहीं हैं। उसी प्रकार मुसलमान के अंतर्गत सम्प्रदायों में भी समानता का भावनात्मक रिश्ता नहीं हैं। इन नाजुक विषयों को साम्प्रदायिक राजनीतिक लोग अपने निहित स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करते हैं। सत्ता में आने के लिए इनको एक दूसरे से लड़ाते हैं।

3.7.1. हिन्दू–मुस्लिम, शिया–सुन्नी

सिन्धू से हिन्दू बना है। स्पष्ट है कि सिन्दू एक प्रदेश है जो भारत देश के अंतर्गत है। कहा जाता है कि उसी सिन्धू नदी के तट पर भारतीय सभ्यता का विकास हुआ था। इसलिए इस देश को हिन्दू देश भी कहा जाता है। अतः हिन्दू कोई मजहब नहीं है बल्कि एक प्रदेश है। आधुनिक भारत में 'हिन्दू मज़हब' एक निर्मित है जिसको कुछ साम्प्रदायिक वादियों ने निर्माण किया है। इनके अनुसार यहाँ के बौद्ध, जैन, सिख, दलित, आदिवासी और पिछड़ी जातियों के लोगों को मिला कर एक हिन्दू की धारणा दी गई है। वास्तव में देखा जाए तो कई सदियों से आज तक उच्च वर्ण के लोग ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर सभी लोगों के बीच समानता की भावना नहीं पाई जा सकी है। जब इन के बीच समानता की भावना ही नहीं है तो, इन सबको मिलाकर एक ही मज़हब का दर्जा कैसे दिया जा सकता है, यह सोचने की बात है।

मुस्लिम वह है जो अल्लाह को मानता है। कुरान के अनुसार इस विश्व का खुदा एक ही है, वही अल्लाह है। कुरान 7 वीं शताब्दी में फ्राफेट मुहम्मद सहाब के द्वारा रची गई है। इन का पुन्य स्थल है मक्का–मदीना। इस मजहब और इसमें विश्वास रखने वाले लोग पूरे विश्व में फैले हुए हैं। वे गैर मुसलमानों से शान्ति, सद्भाव और सहिष्णुता से जी रहे हैं।

समाज में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो जनता को चैन से रहने नहीं देते हैं। ये कोई एक तरफा लोग नहीं हैं। ये हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। वे बहुत ही कट्टर और साम्प्रदायिक लोग होते हैं। वे बहुत कम प्रतिशत में है। वे अपने विचार को, अपनी मान्यता को, देश की पूरी जनता यानी हिन्दू–मुस्लिम के आम और गरीब जनता के ऊपर लागू करना चाहते हैं। वे अपनी स्वार्थ और साम्प्रदायिक राजनीति करना चाहते हैं। अतः हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक नफरत पैदा करके लड़ाना चाहते हैं।

जिस प्रकार हिन्दू और मुस्लिम के बीच नफरत है, उसी प्रकार का नफरत शिया और सुन्नी के बीच भी पाया जा सकता है। क्योंकि मुहम्मद साहब के बाद, मुस्लिम समाज के सामने एक ऐसे सवाल पैदा हुए कि किसके साथ रहें ?, कुरान के अनुसार जीयें या मुहम्मद के वंशजों के साथ चलें ? इस मुद्दे को लेकर मुसलमान दो भागों में बँट गए। जो कुरान की सुन्नत यानी श्लोकों के अनुसार अपना जीवन बिताते हैं, वो सुन्नी हैं। जो कुरान के साथ–साथ हुस्सेन अली को मानते हैं, वो शिया हैं।

इतिहास में एक ऐसी घटना घटी है, जो इन सुन्नी और शिया के बीच नफरत हमेशा के लिए पैदा कर दी। वह था कि सुन्नियों ने शियाओं का नेता हुस्सेन अली का कत्ल कर दिया। तब से इन दोनों के बीच घृणा, द्वेष है। लेकिन कलान्तर में उस घटना का महत्व घट भी गया है। बल्कि साम्प्रदायिक राजनीतिज्ञों ने आग में घी डालने का काम करते हैं। हिन्दू–मुस्लिम को लड़ाने में कभी असफल हो जाते हैं, तो शिया–सुन्नी को लड़ाना चाहते हैं। तत्पश्चात साम्प्रदायिक राजनीति करना चाहते हैं।

साम्प्रदायिक लोग कभी यह नहीं सोचे थे और आज भी नहीं सोचते, कि ऐसे ही लडते और लड़ाते रहें तो धर्मनिरपेक्ष भारत का क्या हाल हो सकता ? ये पूरे भारत के नब्बे प्रतिशत लोगों से इनको कोई लेना देना नहीं हैं। दरअसल वे स्वार्थी लोग हैं। अगर ये पूरे भारत के समग्रता, सहिष्णुता और विकास के लिए 25 प्रतिशत भी सोचे होते तो, आज हमारा भारत देश विश्व के पटल पर चमकता रहता। अतः भारत देश के समग्रता, सहिष्णुता

और विकास के लिए सोचना होगा ! इन तमाम समस्याओं को रचनाकार कमलेश्वर ने अपना उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में बड़े अच्छे ढ़ंगसे प्रस्तुत किया है–

"–बस आग लगाते घूम रहे हैं सब...ई नाहीं सोचते कि भारत का का होगा! पहले हिंया हिन्दू–मुसलमान कौ लड़वाना चाहा, नहीं लड़वाय पाए तो अब शिया–सुन्नी को लड़वाना चाहते हैं..."[199]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक का कहना है कि सब लोग आग लगाते घूम रहे हैं। इस बात से मैं भी सहमत हूँ क्योंकि साम्प्रदायिक लोग अपने स्वार्थ के लिए पहले हिन्दू और मुसलमानों को लड़वाते थे। कालांतर में इनकी साजिश लोगों को पता चल गयी है तब हिन्दू–मुस्लिम लड़ना नहीं चाह रहे हैं। अब वे शीया–सुन्नी को लड़वाना चाहते हैं। ऐसा लड़वाते और लड़ते रहे तो देश के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लग सकता है।

"–हाँ...इसी में दोनों नमाज़ पढ़ लेते हैं ! शिया भी, सुन्नी भी। पहले हम पढ़ लेते हैं फिर सुन्नी...कोई झगड़ा नाहीं है पर लोग करवाना चाहते हैं, इसी बात पै...

–वैसे शिया और सुन्नी में फरक क्या है ? अदीब ने पूछा ।

–कौनउ नाहीं बाबू साहेब ! एक बुजूर्ग ने कहा–जौन अली को शिद्दत से मानते हैं, तौन शिया, जौन सुस्ती से मानते हैं तौन सुन्नी !"[200]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक कहते हैं कि वैसे तो शीया और सुन्नी में कोई फर्क नहीं हैं। कई जगह पर शिया–सुन्नी दोनों एक ही मस्जिद में नमाज़ पढ़ते हैं। एक के बाद एक। वैसे भी इनमें उतना ज़्यादा अंतर भी नहीं हैं। कुछ स्वार्थी राजनीति के लोग ही इनको लड़वाते है।

---

[199] पृष्ठ संख्या, 83,कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

[200] पृष्ठ संख्या 83, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

3.7.2. सत्ता की होड़ में...

सबसे बड़ी अजीब तरह की चुनौती होती है गाँव के सरपंची की चुनौती। इसमें गाँव के हर जाति और हर मजहब के लोग चाहते हैं कि उनका अपना कोई सरपंच बन जाए। क्योंकि गाँव में तो सभी रहते हैं । लेकिन मुख्यरूप से दो वर्गों के बीच प्रतियोगिता (कांपटिशन) होती है। वे हैं एक हिन्दू और मुसलमान । 'काला पहाड़' उपन्यास में मेव प्रदेश के सारे हिन्दुओं ने इकट्टा होकर यह निर्णय लेते हैं कि इस बार किसी भी हालत में सरपंच हिन्दुओं की ही हाथ में आना चाहिए। दूसरी तरफ मेव लोगों ने भी अपनी एक गुप्त मीटिंग में यह बात तय किया कि इस बार मेवों से अगर छूट गया तो फिर से हासिल करना मुश्किल हो जाएगा। इस तरह सरपंच पद प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं। इस तरह का माहौल भारत के हर गाँव मे दिखाई देता है। हम इस समस्या को इस उद्धरण के माध्यम से देख सकते हैं।

"''जगनी, यह बात पहले की है.....कल पूरे गाँव के हिंदुओं की पंचायत हुई ही और उसमें यह बात छन के आई कि इस बार मेवों ने अपनी एक गुप्त मीटिंग में यह फैसला किया है कि अब की बार सरपंची कोई हिंदू के पास नहीं जानी चहिए।''[201]

''लेकिन, समस्या तो फिलहाल अब की है.....अरे, मेवन्ने तो ये ठान ली है कि अब के सरपंच मेव ही होगा.....और इधर हमने भी पक्का इरादा कर लिया है कि चाहे सन् सत्तावन हो जाए, सरपंची किसी भी हालत में मेवों के पास नहीं जाने देंगे।''' [202]

उपरोक्त दोनों संदर्भ में यह देखने को मिलता है कि किस तरह होती है गांव की राजनीति। एक गांव में अनेक सम्प्रदाय तो होते ही है। गांव में सबसे बड़ा पद सरपंच ही होता है। जिस सरपंच पद को हासिल करने के लिए अपने अपने सम्प्रदाय के लोग एक

---

[201] पृष्ठ संख्या 383, काला पहाड़—भगवानदास मोरवाल

[202] पृष्ठ संख्या, 384, काला पहाड़—भगवानदास मोरवाल

दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं। इसी के दौरान साम्प्रदायिकता फैलती है। हिन्दू और मुसलमान में झगड़ा छिड़ जाता है।

3.7.3. भड़काउ भाषण

पद या अधिकार प्राप्त करने के लिए राजनीतिक नेता क्या क्या नहीं करवाते हैं ! कसमें खिलाते हैं। इज्जत की बात करते हैं। नाक की बात करते हैं। मूँछ की बात करते हैं। मरने और जीने की बात करते हैं। उनकी अपनी आस्था पर सौगंध खिलाते हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में राजनीतिक नेता चौधरी मुरसीद अहमद ने उनके अपने लोगों से यानी मेवों से कहता है कि कुरान के ऊपर हाथ रख कर कसम खाओ कि इस बार नगीना का सरपंच मेव ही बनेगा। अगर मेव नहीं बनेगा तो हमको चुल्लु भर पानी में डूब के मरना होगा। और यह हम मेवों के लिए इज्जत का सवाल होगा। इन आदि समस्याओं को इस उद्धरण में भी पा सकते हैं।

"जगनी, इसमें हिंदुओं की नाक का सवाल है.....चौधरी मुरसीद अहमद ने हाजी असरफ की कचैड़ी में मेवन् से साफ कह दी है कि अगर अबकी बार नगीना में हिंदू सरपंच हो गया न, तो हम मुसलमानों के लिए इससे बड़ी शरम की बात और कोई नहीं होगी.....हमे चुल्लु भर पानी में डूब के मर जाना होगा.....और जगनी तोहे पतो है, सारे मेवन्ने जभी कुरान पे हाथ धर के कसम खा ली कि खुदा ने चाही तो चौस्साब अबके सरपंच बनेगो हाजी असरफ ही.... ।"[203]

उपरोक्त संदर्भ में वोट पाने के लिए अपने अपने सम्प्रदाय के राजनीतिक नेता अपने सम्प्रदाय के लोगों को धर्म ग्रन्थों पर सौगंध खिलाते हैं, कसमें खिलाते हैं कि वोट उनको ही दें। लेकिन यह ठीक नहीं है क्योंकि यह वोट मांगने का तरीका नहीं है। वोट लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुसार मांगना होगा।

---

[203] पृष्ठ संख्या, 385–386, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

3.7.4. हिन्दू–मुसलमान भाई भाई

ऐसा सवाल मेरे मन में उटता है कि एक माँ के दो बेटे में और हिन्दू और मुसलमान में क्या फर्क होता है ? क्योंकि ये एक माँ के दो बेटे हों या हिन्दू और मुसलमान हों, इन को इसी ज़मीन पर ही तो जीना हैं। उसी हवा को लेते हैं जो प्रकृति से मिलती है। खाना भी वही है जो हमारे ज़मीन से उगता है। मेरा कहने का मतलब है कि एक माँ के दो बेटों में और हिन्दू और मुसलमानों में कोई अंतर नहीं होता है। वे कभी भी लड़ना, झगड़ना नहीं चाहते हैं। लेकिन कुछ साम्प्रदायिक लोगों ने इनके बीच नफरत पैदा करना चाहते हैं। इसके लिए वे मज़हब, जाति, प्रान्त, आदि के इस्तेमाल करते हैं । ये सब कुछ बदमाश और चालाक लोगों की चालें हैं। उसको पहचानना नितान्त आवश्यक है। कोई भी मज़हब यह नहीं कहता कि दूसरों के ऊपर हमले करो और दंगे करो। यह कैसा मज़हब है कि अपने ही भाई का खून करने के लिए प्रेरित करता है। धर्म या मज़हब तो खुदा के पास जाने का एक रास्ता है। ये रास्ते तो अलग अलग होते हैं। ये सब जान के और समझ के हमको किसी के उकसाने से बँटकर एक दूसरे के ऊपर दंगे, फसाद नहीं करना चाहिए। इन आदि समस्याओं को दिए गए उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकते हैं–

"यह कितने अफ़सोस की बात है कि हिंदू और मुसलमान जो एक ही हवा में साँस लेते हैं, एक ही नदी का पानी पीते हैं और एक ही ख़ेत का अनाज़ खाते हैं, चंद फ़ितनापरवरों और बदमाशों के बहकावे में आकर एक–दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। यह कैसा मज़हब है जो हमें अपने भाईयों की जान लेने को आमादा करता है। यह कैसा धर्म है जो हमें पड़ोसियों का खून बहाने की तालीम देता है। मज़हब और धर्म तो एक रास्ता है खुदा तक पहूँचने का। खुदा तक पहूँचने के रास्ता अलग–अलग हो सकते हैं। जिसे जो रास्ता अच्छा लगता है वह उसपर चले। किसी को उसमें दख़ल देने का हक़ नहीं पहुँचता। मुसलमानों का मज़हब अलग है, हिंदुओं का अलग। मुसलमान अपने तरीके से खुदा की इबादत करते हैं। हिंदु अपने तरीक़े से ईश्वर को याद करते हैं। हमारे दिलों में एक दूसरे के लिए रवादारी का एहसास होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम

एक हीं मुल्क के बाशिंदे हैं और हमारा मुल्क अगर कोई खूबसूरत औरत है तो हिंदु और मुसलमान उसकी दो आँखों की तरह हैं। अगर एक आँख को चोट पहूँचती है तो दूसरी आँख पर भी इसका ख़राब असर पड़ेगा, बल्कि पूरे जिस्म पर ही इसका ख़राब असर पड़ेगा। अगर हम मुल्क का भला चाहते हैं तो हमारा फ़र्ज हो जाता है कि हिंदू और मुसलमान के एक के लिए कोशिश करें, उनमें फूट न पड़ने दें।"[204]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक हिन्दू और मुसलमान की एकता की बात करते हैं। उन्होंने जो कहा है वह शत प्रतिशत सही है। मैं इस भावना से सहमत भी हूँ, क्योंकि हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, सिख हो, जैन हो...ये सब आखिर मनुष्य ही तो हैं। जब सब मनुष्य हैं तो मानवता इनका धर्म होना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है।

3.7.5. मुल्ला, पादरी और पण्डित

मुसलमानों में हैं मुल्ला। ईसाइयों में हैं पादरी । हिन्दुओं में हैं पण्डित। समाज में इन तीनों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनके ही आँखों के इशारे से उनका अपना समाज चलता है। अगर इनके इशारें अच्छें हैं तो समाज भी खुश है। यदि इनके इशारें बुरे हों तो, उस बुरापन का असर समाज पर पड़ता है। इसका प्रभाव न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी रहता है। इन लोगों की वजह से पूरी कौम बदनाम होती है। दरअसल हमें वहाँ देखना चाहिए कि जहाँ लोग रहते हैं। तब हमको वास्तविकता पता चलता है कि पिटता कौन है और झूठ बोलता कौन है ? इन आदि समस्याओं को गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में प्रस्तुत किया है–

"मान लो, जो तुम कह रहे हो, सही है। मुल्ला, पण्डित, पादरी, राजनीतिज्ञ बहुत–से देशों में त्राहि–त्राहि मचा रहे हैं और पूरी क़ौम को बदनाम कर रहे हैं। मगर हमें देखना

---

[204] पृष्ठ संख्या, 236, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

पड़ेगा कि जहाँ हम रहते हैं वहाँ की वास्तविकता क्या है, यहाँ कौन पिट रहा है, कौन झूठ बोल रहा है...”[205]

पण्डित, पादरी और मुल्ला लोग तो हैं साम्प्रदायिक। लेकिन इनमें से कुछ लोगों से खतरा है। मतलब साम्प्रदायिक होकर घर में हो तो उतना खतरा नहीं हो सकता है। यही लोग अगर मैदान में आ जाएं तो बहुत ही खतरा है। इस समस्या को निम्न में देख सकते हैं–

“उनसे डर कम है दद्‌दू। डर उन्हीं के जैसे कट्टर हिन्दुओं से है, जो 'घरों ' में बंद नहीं हैं। खुली सड़कों पर नाच रहे हैं।”[206]

उपरोक्त संदर्भ से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म–संप्रदायिक और कट्‌टरवादी लोगों को राजनीति में नहीं आना चाहिए। यदि उन्हें राजनीति करना है तो धर्मनिरपेक्ष हो कर करना होगा। संविधान के अनुसार चलना होगा। प्रजातंत्र के अनुसार चलना होगा।

3.8. साम्प्रदायिक भाषण, दंगे, तोड़–फोड़

“रहमान बाबा की दरगाह पर तालिबान के हमले को बामियान में बुद्ध की प्रतिमाओं पर हुए हमलों, चरारे शरीफ पर हुए हमले और मोइनुद्‌दीन चिश्ती की दरगाह पर हुए हमलों से जोड़ कर देखा जा सकता है तो वरुण गांधी के बयानों को आडवाणी की रथयात्रा से ले कर गुजरात के दंगों में वली दक्कनी की मजार को जमींदोज करने की कार्रवाई तक से जोड़ कर। आखिर ये सारी घटनाएं इस या उस धर्म के प्रति कट्‌टरपंथी दृष्टिकोण का ही तो परिणाम हैं।”[207]

---

[205] पृष्ठ संख्या, 57, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

[206] पृष्ठ संख्या, 58,हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

[207] पृष्ठ संख्या 46–47, सबलोग, अंक 4, अप्रैल 2009, संपादक–किशन कालजयी, रोहिणी , दिल्ली

2009–10 के चुनावों में गाँधी परिवार के एक युवा नेता ने धर्म को लेकर बढ़ा–चढ़ा के भाषण दिया था, जिसकी वजह से उनको जेल जाना पड़ा। धर्म के नाम पर भड़काउ भाषण देते हैं। दंगे करवाते हैं। कोई मंदिर तोड़ने को कहाता तो कोई मस्जिद तोड़ने को। लोगों के बीच एक दूसरे के प्रति घृणा, नफरत पैदा करते हैं। उनके वोट बटोरते हैं तथा सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं।

3.8.1. साम्प्रदायिक भाषण

यदि कोई साम्प्रदायिक राजनीतिक पार्टी हों, जिसका एजेंडा ही अन्य पार्टी के एजेंडे से बिल्कुल हटके रहता है। इन नेताओं की पार्टी के एजेंडा में गरीबों के बारे में चर्चा नहीं करना चाहते हैं। रोजगार की चर्चा नहीं करना चाहते हैं। देश के 80 प्रतिशत लोगों को शिक्षा देने के बारे में नहीं सोचते हैं। उनका स्वास्थ्य, पीने का पानी आदि बहुत सारी समस्याएं हैं, जिन के बारे में नहीं बोलना चाहते हैं। नेता अपने भाषण में उपर्युक्त चीजों का जिक्र ही नहीं करते हैं। बल्कि वे चौराहे में खड़े होकर बड़े–बड़े भाषण देने लगते हैं। जिस भाषण में वे अपने नस्लें, जाति, मजहब, देवी–देवता, मस्जिद–मन्दिर के जिक्र करते हैं।

वे यह कभी नहीं चाहते हैं कि देश का सभी दृष्टियों से समग्र विकास हों। बल्कि वे यह चाहते हैं कि समाज में एक तरह का भयभीत वातावरण हों। मार–काट, खून–खराबी, मजहब के नाम पर, साम्प्रदायिक दंगे हों। अतः वे विवादास्पद बातों को लेकर उकसाने वाला भाषण देते हैं।

इन भाषणों का परिणाम यह होता है कि समाज में उथल–पुथल की स्थिति पैदा होती है। लोग अपने अपने नस्ले के नाम पर, मजहब के नाम पर, प्रदेश के नाम पर, अलग हो जाते हैं। तब वे अपनी गन्दी साम्प्रदायिक वोट वाली राजनीति करते हैं। इन समस्याओं को रचनाकार कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया है–

"– सर ! जब आप भाषण देने लगते हैं तो संसार के किसी हिस्से में कहीं न कहीं रक्तपात हो जाता है...कोई हिस्त्र आदमी जाग पड़ता है और नस्ल या मज़हब के नाम पर लोगों को भड़का देता है ! और वह मज़हब या नस्ल अपना बदला चुकाने लगती है..."[208]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक राजनीति में साम्प्रदायिक भाषण का विरोध करते हैं। जब राजनीति ही करना है तो साम्प्रदायिकता फैलाने वाला और उकसाने वाला भाषण नहीं देना चाहिए। क्योंकि इस तरह के भाषण से जाति, नस्ल, मजहब...आदि अपना बदला चुकाना चाहती हैं। समाज में रक्तपात हो जाता है। अर्थात् उस तरह का भाषण नहीं देना चाहिए।

3.8.2. शख़्स हिटलर

हिटलर जर्मनी के रहने वाले थे। वे आर्मी अफसर थे। वे बहुत ही कट्टर सम्प्रदायवादी थे। उनका मानना था कि 'विदेशी यहूदी जर्मनी में आकर बस गए हैं'। यहूदियों जरुसलम से मैग्रेट होकर जर्मनी आए थे। वैसा ही वे लोग विश्व में कईं देशों में जाकर बसे हुयें हैं। जर्मनी में ज्यादा बसे हुयें हैं। ये वहाँ की आर्थिक, सामाजिक, संस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभाव डालने लगे थे।

हिटलर इन यहूदियों को जर्मनी से भगाना चाहते थे। इसके लिए सम्प्रदायवाद को अपनाना पड़ा। 'नाजी' नामक पार्टी का निर्माण किया। इन नाजियों ने यहूदियों को कत्ल करने लगे थे। कईं लोगों को कत्ल किए। यहूदियों ने अपने आप को बचाने हेतु, स्वदेश लौट गए।

हिटलर यह भी चाहते थे कि उनकी नाजी पार्टी को पूरी दुनिया में फैलाएं। पूरे विश्व को अपने हाथ में लेना चाहते थे। लेकिन पूरी दुनिया की दृष्टि में हिटलर की छवि बिगड़ गई थी। इन समस्याओं को रचनाकार कमलेश्वर ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में जिक्र किये हैं–

---

[208] पृष्ठ संख्या, 86, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

"–यह बदतमीज कौन है ? अदीब ने पूछा तो अर्दली ने अदब से बताया – हुजूर यह शख़्स हिटलर है ! जर्मनी का नाज़ी हिटलर !

–वो दरिन्दा ! जिसने पूरी दुनिया को तबाह करने की ठान ली थी ! इसे सामने देख़ कर मेरा माथा फटता है ! खून खौलता है ! इसे हिरासत में रखो ...मैं तारिक तय करूँगा, तब इसे मेरी अदालत में पेश किया जाय...! मैं बहूत थक गया हूँ...अब कुछ आराम करना चाहता हूँ !"[209]

3.8.3. दंगे एवं पुलिस

"एक औसत पुलिसकर्मी भी दुर्भाग्य से इन्हीं अपेक्षाओं के अनुरूप ढलने के प्रयास में अधिक सचेष्ट दिखाई पड़ता है। हमारी भर्ती तथा प्रशिक्षण की प्रक्रिया में कहीं–न–कहीं कोई मूलभूत खामी जरूर रही है, जिससे वर्दी पहनने के बाद भी पुलिसकर्मी अपने को हिंदू या मुसलमान महसूस करता है। स्वतंत्रता के बाद भी सांप्रदायिक तनाव किस तरह हमारी चेतना को प्रभावित कर खाकी वर्दी के नीचे से हिंदू या मुसलमान को ऊपर ले आता है, इसके उदाहरण लगभग हर दंगे में मिल जाएँगे "[210]

यह जो पुलिस या पुलिस व्यवस्था है वह कहीं आसमान से नहीं गिर पडी है। ये पुलिस भी तो इसी समाज में से गए हुए हैं। इनको सरकारी नौकरी हो जाने के बाद, सरकार इनको खास प्रशिक्षण देती है। वह प्रशिक्षण देने वाले भी तो हिन्दू ही होते हैं। अतः हिन्दुओं में और पुलिस में उतना अंतर नहीं लगता है। दंगों के समय में दंगे करने वाले हिन्दू और पुलिस मिल जाते हैं। इन दृश्यों को इस उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकता है–

---

[209] पृष्ठ संख्या, 96, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

[210] पृष्ठ संख्या 93, 'सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस', विभूति नारायण राय, राधाकृष्ण प्रकाशन 2000

"लाश ठिकाने लगा दी होगी। दंगा हो तो पुलिस और हिन्दुओं की दोस्ती देखने में आती है।"[211]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक दंगेबाजी पुलिस और इनको प्रोत्साहित करने वाली सरकार का विरोध करती है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि कोई भी सरकारी पुलिस को यह करना होगा कि सुलगे हुऐ दंगे को बुझाएं तथा शान्ति पूर्ण माहौल बनाएं।

3.8.4. ज़मीन पर कब्जा

बाबरी मस्जिद कईं सालों से विवादास्पद है। साम्प्रदायिक राजनीति के नेताओं ने इस मुद्दे को बार बार छेड़ते रहते हैं। ये मानते हैं कि इस जगह पर राम मन्दिर को तोड़ कर उसी जगह पर बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया है। अतः हिन्दू साम्प्रदायवादियों ने बाबरी को तोड़ कर इसी स्थल पर राम मन्दिर का निर्माण करना चाहते हैं। इस लिए बाबरी मस्जिद को ढहाना चाहते हैं, उसी का परिणाम 1992, 6 दिसम्बर को ढहा दिया गया था।

बाबरी मस्जिद को तो अयोध्या में ढहाया गया। लेकिन उसका प्रभाव पूरे हिन्दुस्तान पर रहा था। जैसे ही अयोध्या में बाबरी मस्जिद का तोड़ना शुरु हुआ था, वैसे ही पूरे भारत में भय का माहौल पैदा हो गया था। पूरा भारतीय समाज में उथल–पुथल मचा गया। इस मौके पर हिन्दुस्तान का कईं राज्यों में अल्पसंख्यक मुसलमानों की ज़मीन और कब्रिस्तानों को भी कब्जा करने लगे।''इतना अमानवीय ढंग से, अल्पसंख्यक गरीब लोगों की ज़मीन को हड़पने और उसपर कब्जा करने लगे थे। ये सचमुच क्या चाहते हैं ? ये केवल बाबरी को तोड़ के राम मन्दिर ही बनाना चाहते हैं, तो वह अयोध्या में ही किया जाएगा। यह ये नहीं होता कि जगह–जगह पर मुसलमानों की जमीन को हड़प लिया जाए। इससे ऐसा बोध होता है कि ये राम के नाम पर रिएल धंधा करना चाहते। गरीब मुसलमानों को इस ज़मीन से बेदखल करना चाहते हैं। यहाँ तक कि मुर्दे मुसलमान को दफनाने के लिए भी जगह

[211] पृष्ठ संख्या 32, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौकी

नहीं हैं। इस का फैसला कोन करेगा ?। उपन्यास कितने पाकिस्तान में एक गरीब मुसलमान की महिला अपनी ज़मीन से बेदखल हो जाती है और न्याय के लिए तलाशती रहती है। फैसला के लिए अदालत पहुँचती है।

"–बाबरी मस्जिद ढहाने के बाद पूरा हिन्दुस्तान जल उठा...बम्बई में तो हैवानियत का ज़लज़ला आ गया ...मैं कब्र में पड़ी सो रही थी, मुझे भी नहीं बख़्शा गया...मुझे मेरी कब्र से बेदख़ल कर दिया गया ...क़यामत के दिन मेरा फ़ैसला होना है, पर अब मेरे पास उस दिन का इंतजार करने के लिए कोई जगह नहीं है, इसलिए आपके पास हाज़िर हुई हूँ।"[212]

उपरोक्त बातों से यह समझ में आ रहा है कि साम्प्रदायिक लोग एक तरफ ऐतिहासिक इमारत बाबरी मस्जिद को तोड़ रहे हैं और दूसरी तरफ पूरे देश में जगह जगह पर मुसलमानों को अपनी ज़मीन से बेदख़ल कर रहे हैं। यहाँ तक कि उनकी अपनी कब्रस्थल भी कब्जा की गयी।

3.9. साम्प्रदायिकता, अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की राजनीति

"लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिक सोच में यकीन करने वाले हम लेखक–संस्कृतिकर्मी, विशेष खण्डपीठ के इस फ़ैसले को भारत के संवैधानिक मूल्यों पर एक आघात मानते हैं। हम मानते हैं कि अल्पसंख्यकों के भीतर कमतरी और असुरक्षा की भावना को बढ़ाने वाले तथा साम्प्रदायिक ताकतों का मनोबल ऊँचा करने वाले ऐसे फ़ैसले को, अदालत के सम्मान के नाम पर बहस के दायरे से बाहर नहीं रखा जा सकता। इसे व्यापक एवं सार्वजनिक बहस का विषय बनाना आज जनवाद तथा धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के लिए सबसे ज़रूरी कदम है।"[213]

---

[212] पृष्ठ संख्या, 105, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

[213] पृष्ठ संख्या 3, उद्भावना, वर्ष 25, अंक 90, नवम्बर 2010, संपादक–अजेय कुमार,

बहुसंख्यक सिद्धांत गलत है। यह इसलिए गलत है कि पूरे हिन्दुस्तानी हिन्दू नहीं हैं। इनमें कई जातियाँ हैं, कई सम्प्रदाय हैं जिन में हिन्दुस्तानी लोग बँटें हैं। कुछ हिन्दू साम्प्रदायिकों ने उपरोक्त सभी को मिला कर हिन्दू कहते हैं। ये अल्पसंख्यक मुसलमानों को डराते हैं। उनपर दंगे भी करवाते हैं। गुजरात में दो हजार मुसलमानों को मौत के घाट उतारा गया। इसके पीछे भी राजनीति है। सत्ता पाने के लिए ही सब करते हैं।

3.9.1. अल्पसंख्यक

"कोई वस्तु अधिक की तुलना में कम अथवा अल्प होगी तो इससे अल्प मात्रा अथवा अल्पसंख्यक का बोध अवश्य हो जाएगा; लेकिन अधिक की तुलना में वह कितनी कम होनी चाहिए, इसकी मात्रा और संख्या निश्चित नहीं है। इसका सबसे अधिक प्रभावी अनुभव राजनीतिक क्षेत्र में होता है। मात्रा और संख्या तय नहीं होने से टकराव की स्थिति आ जाती है, जो आगे चलकर अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में संघर्ष का कारण बनती है।"[214]

इस देश में नशीली वस्तुओं का कारोबार दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। तस्करी और अपराधियों की संख्या बड़ने लगी। बड़े–बड़े शहरों में चोरी, डकैती, लूट–पाट होने लगी। यही लोग जो हैं, अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की बात करते हैं। यह एक तरह की साम्प्रदायिक राजनीति हैं। ये लोग यह चाहते हैं कि सरकार की और जनता की दृष्टि गंदे धंधों पर ना पड़ें। इसलिए ये लोग अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की राजनीति को सामने लाते हैं। हम इन समस्याओं को इस उद्धरण के माध्यम से देख सकते हैं–

"साम्प्रदायिकता एक व्याधि है। देश से साम्प्रदायिकता तब तक समाप्त नहीं हो सकती जब तक अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की नीति जारी रहेगी। इस नीति की आड़ में

---

[214] पृष्ठ संख्या 28-29, 'खतरे अल्पसंख्यकवाद के', मुजफ्फर हुसैन, प्रभात प्रकाशन 2005

अपराध, तस्करी और नशीली वस्तुओं का कारोबार बढ़ रहा है। यह एक भयानक षड्यंत्र है जिससे सावधान रहना ज़रूरी है।"[215]

उपरोक्त संदर्भ में रचनाकार अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की राजनीति का विरोध करता है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमारे देश में कौन हैं जो बहुसंख्यक हैं ? कोई भी जाति और सम्प्रदाय अपने जगह पर अल्पसंख्यक ही होती है, क्योंकि पूरा भारतीय समाज ही जातियों, सम्प्रदायों, नस्ल...आदि में बंटा हुआ है।

3.9.2. जनसंख्या

जनसंख्या को लेकर भी साम्प्रदायिक राजनीति किया जाता है। हिन्दू साम्प्रदायिक कहते हैं कि मुसलमान फेमली प्लानिग नहीं करवाते हैं। एक एक घर में दर्जन–दर्जन बच्चों को पैदा करते हैं। लेकिन यह बात शत प्रतिशत सही नहीं हैं। क्योंकि हिन्दुओं में भी दर्जन–दर्जन बच्चों वाले परिवार बहुत थे और आज भी हैं। मेरे कहने का मतलब यह हैं कि किसी एक कौम या मजहब के लोगों के ऊपर आरोप लगाना ठीक नहीं हैं। साम्प्रदायिक लोग तो जनसंख्या को लेकर अपना फायदा उठाने की चेष्टा करते हैं। वे कहते हैं कि अब इसी तरह मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ेगी तो, 20–30 सालों में उनका राज आ जाएगा। तब हमको यानी हिन्दुओं को सत्ता से बे दखल होना पड़ेगा। इसलिए वे हिन्दुओं से कहते हैं कि जनसंख्या बढ़ाने की होड़ में रहो। अगर वे सच्चे देश भक्त होते तो ऐसा नहीं कहते कि जनसंख्या बढ़ाने की होड़ में शामिल हो जाओ। जनसंख्या का विस्फोट कोई बम विस्फोट से कम नहीं माना जाता है। उस खतरे को जानना चाहिए। लेकिन इन लोगों का तो एक ही काम है, अपनी साम्प्रदायिक राजनीति करना। इन समस्याओं को इस उद्धरण से समझ सकते हैं–

"यह चिन्ता तो हुई नहीं, एक तरह की दहशत हुई। जनसंख्या की फोबिया जैसी कोई चीज उसके मन में तब भी बनी रह गई थी जब वह संघ और परिषद के प्रभाव से

[215] पृष्ठ संख्या, 146, उन्माद–भगवान सिंह

मुक्त हो गया था। एक बार मैंने खीझ कर कहा था, 'क्या तुम इस बात का प्रचार कर रहे हो कि हिंदुओं को जनसंख्या बढ़ाने की होड़ में शामिल हो जाना चाहिए और जिस जनसंख्या विस्फोट को परमाणु बम से भी अधिक खतरनाक माना जाता है उसे जल्द–से–जल्द सचाई बनाकर दिखा देना चाहिए ?"[216]

उपरोक्त उद्धरण से यह समझ में आता है कि कुछ सम्प्रदाय के लोग अपनी जनसंख्या बढ़ा रहे हैं ताकि दूसरे सम्प्रदाय के लोग भी अपनी जनसंख्या बढ़ाने की होड़ में रहें। यह सही नहीं है क्योंकि कोई भी सम्प्रदाय हों यह अपनी जनसंख्या बढ़ाने की होढ़ को त्याग कर के अपने सम्प्रदाय में सुधार लाने के लिए कोशिश करना चाहिए।

3.10. गोत्र, नस्ले, खानदान, बिरादरी, जाति एवं साम्प्रदायिक राजनीति

"सिर्फ राजनीतिक एकता की बात करना काफी नहीं है। हमें ऐसी भावनात्मक एकता स्थापित करनी होगी जो प्रांतीय सीमाओं, जातिगत सीमाओं तथा साम्प्रदायिक और आर्थिक सीमाओं को तोड़ सके। तभी हम वास्तव में एक अखंड एकजुट भारत की बात कर सकते हैं। तभी हम विचारों और अभिव्यक्ति की वह व्यापक सहिष्णुता हासिल कर सकते हैं और उसके आधार पर प्रेस की आजादी की बात कर सकते हैं। इसकी जरूरत हमें विभिन्न समूहों और विभिन्न हिस्सों को आम तौर पर जोड़ने में अधिकाधिक होगी।"[217]

धर्म के सूत्र के साथ गोत्र, नस्ल, खानदान, बिरादरी, जाति आदि के नाम पर लोगों को लड़ाया जाता है। चुनावों में इनका इस्तेमाल करते हैं। विधायक उस क्षेत्र का कितना विकास किया है इस पर कोई ध्यान नहीं देते हैं। विधायक किस धर्म का है, किस जाति का है, किस खानदान का है। उसको देखके वोट देते हैं। इस स्थिति को बनाए रखने के

---

[216] पृष्ठ संख्या, 215, उन्माद–भगवान सिंह

[217] पृष्ठ संख्या, 47, सबलोग, अंक 4, संपादक–किशन कालजयी, अप्रैल 2009, दिल्ली

लिए वहाँ विकास नहीं करना चाहते हैं। गोत्र, नस्ल, जाति के नाम पर राजनीति करते हैं।

3.10.1. गोत्र

हमारे देश को स्वतन्त्र होकर आज साठ (60) साल हो चुके हैं। लेकिन आज भी भारत की जनता कुछ जरूरी समस्याओं से मुक्त नहीं है। क्योंकि इस देश की जनता उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्यों के हल के लिए अपने वोट का इस्तेमाल नहीं करती हैं। यहाँ की जनता बहूत ही सीधी–साधी हैं। चाहे विधायक कोई भी पार्टी का क्यों न हों, वे उनके गोत्र या जाति के हों तो बस है उनके वोट एक भी इधर से उधर न हो जाए। अतः अपनी साम्प्रदायिक राजनीति के लिए इन सीधे–साधे लोगों को इस्तेमाल करते हैं। इन समस्याओं को उपन्यासकार ने नाटकीय रूप से हमारे सामने रखा है।

"शफ़ी साहब, पैदा हो नहीं गया बल्कि पैदा किया जा रहा है .....आपको इस कॉलेज में आए ज़्यादा दिन नहीं हुए हैं न......मैं बताता हूँ......दरअसल है क्या कि इस इलाक़े के लोग न सिर्फ़ सीधे हैं बल्कि बेहद इमोशनल और सेंटिमेंटल भी हैं.....आपको एक मज़े की बात बताऊँ शफ़ी साहब, ये लोग जितने इमोशनल हैं उतने ही अपने क़ौल के पक्के भी हैं, हम शियाओं से कहीं ज़्यादा .....अगर इन्हें यह पता चल जाए कि इलेक्शन में खड़ा होने वाला केंडीडेट उनके गोत्र का है तो मजाल है इनका एक भी वोट इधर से उधर हो जाए......चाहे वह केंडीडेट फिर किसी भी पार्टी का क्यों न हो.....।"[218]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक, राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए नेता लोग अपने कौम, जाति, नस्ल...आदि के इस्तेमाल का विरोध करता है। मुझे ऐसा लगता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में जाति, कौम, फिरका, गोत्र, संप्रदाय...आदि को इस्तेमाल करना ठीक नहीं होता है। इससे देश और समाज की विकास की दृष्टि नहीं रहेगी।

---

[218] पृष्ठ संख्या, 81,काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

चाहें वे भूख से मरें। पीने का पानी मिलें या न मिलें। रोज़गार मिलें या ना मिलें कोई बात नहीं एक बार विधायक अगर बन जाता है तो बार बार उन्ही को जिताया करते हैं। इन समस्याओं को दिए गए उद्धरण से समझ सकते हैं।

“बिलकुल, मैंने बताया न कि ये लोग इतने इमोशनल और सेंटीमेंटल हैं कि इनके लिए इलाक़े की तरक़्क़ी और भूख से बड़ा है अपना गोत्र.....और इसी कमज़ोरी का फायदा उठाते हुए हमारे चेयरमैन साहब पिछले कई इलेक्शन से नूह कान्स्टीट्यून्सी से एम. एल. ए .इलेक्ट होते आ रहे हैं........”[219]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक, राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए नेता लोग अपने कौम, जाति, नस्ल...आदि के इस्तेमाल का विरोध करता है। मुझे ऐसा लगता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में जाति, कौम, फिरका, गोत्र, संप्रदाय...आदि को इस्तेमाल करना ठीक नहीं होता है। इससे देश और समाज की विकास की दृष्टि नहीं रहेगी। जब इलाके का विकास ही नहीं होता लोग भूख से मार जाएंगे। भूख से बड़कर नहीं होते हैं गोत्र...आदि।

3.10.2. रिश्ता

इस देश में हिन्दू और मुसलमानों का संबंध बहुत ही गहरा है। दो अलग अलग जातियों का रिश्ता खून का रिश्ता बन चुका था। क्योंकि मुसलमान यहाँ आने के बाद उनकी संस्कृति के प्रभाव से यहाँ के बहूत सारे लोगों ने इस्लाम को कुबुल किए हैं। जिनमें अग्रसर राजपुत थे। वे ही नहीं बहूत सारे दलित, आदिवासी और पिछड़े लोग भी इस्लाम को कुबूल किए थे। इन संबंधों को भगवानदास मोरवाल जी ने अपने उपन्यास 'काला पहाड़' में प्रस्तुत किए हैं।

“.......मरहूम चौधरी आमीन खाँ साब ने अपने जीते–जी या इलाका में थोड़ी सी भी बदमजगी ना फैलण दी......भग्गी में चौधरी साब ने मेवात के हिंदू भाइयों सू साफ–साफ कह

[219] पृष्ठ संख्या, 82, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

दी ही के घबराणा की कोई बात ना है.....अरे, हम्भी तो तिहारी तरे चंदरबंसी और सूरजबंसी हैं.......हमारी नसन् में भी तो राजपूतन खून बहे है.......हम क्षत्री पहले और मेव पीछे हैं..... ।"[220]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक इस भावना का विरोध करता है कि 'इस देश के जितने भी मुसलमान है वे सब विदेशी हैं '। दरअसल भारतीय मुसलमान नब्बे प्रतिषत से ज्यादा भारतीय ही हैं। क्योंकि उन दिनों में ऊँची जाति के क्षत्रिय या राज पूत लोग ही पहले मुसलमान बने हैं, बाद में छुआछूत और जाति के कारण कई दलित भी मुसलमान बने हैं।

3.10.3. रोज़गार

जब चुनाव का समय आता है तो नेताओं ने क्या क्या नहीं कसमें खाते हैं। उस इलाके के लोगों को बाँट देते हैं। आपस में झगड़े करवाते हैं। लोग यही चाहते हैं कि उनके अपने इलाके में या आस–पास के नजदीक में कोई एक फैक्टरी अगर खुल जाए तो उन के बेरोजगार बच्चों को यानी युवकों को कुछ नौकरी मिलजाए। लेकिन जब फैक्टरी खुलती है तो वह कहीं और जगह पर खुलती है। शहरों में खुलती है। गाँव के लोग को शहर जाना मुश्किल होता है। अगर नौकरी लगी भी तो उनके नाते–रिश्तेदारों के लोगों को लगती हैं। लेकिन वहाँ के विधायक को विजय प्राप्त करने में उस इलाके के सभी लोगों ने अपना वोट देते हैं। खून पसीना बहाते हैं। इन समस्याओं को इस उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकता है।

"जभी तो ई बात हो री है......अरे, बोट देएँ हम और फैक्टरी खुले हैं रोजका में .... अब बता कौण जाएगो इतनी दूर .....आपस में बुरा बणे हम और नौकरी लगाँ उनका

[220] पृष्ठ संख्या, 87, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

नाते–रिस्तेदार ......पर कहा करी जाए .....जी तो ऐसो करे है के इन्ने लेन में खड़ा करके दुनाली पार कर दूँ..."[221]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार लेखक साम्प्रदायिक, जातिवादी, नस्ले, नाते–रिस्तेदार वादी राजनीतिक नेताओं का विरोध करता है। कोई भी विधायक उस इलाके के जनता के द्वारा चुने जाते हैं। लेकिन जब रोजगार दिलाना होता तो अपने नाते–रिस्तेदार को ढूंढ के दिलाते हैं।

राजनीतिक नेताओं ने करते तो कुछ नहीं हैं बल्कि बोलते बहुत कुछ हैं। वे कहते हैं कि फेक्टरी लाऐंगे, रेल गाडी की पटरी बिछाऐंगे। ये बाते आज की नहीं होती है। आज 50–60 सालों से सुनते आ रहें हैं। लेकिन आज के समय तक कुछ इलाकों में ज़रूरी सउलतें उपलब्ध नहीं हैं। कभी कभी तो बोलते कुछ हैं और दिलाते और कुछ हैं। इस उपन्यास में बोलते हैं कि फैक्टरी दिलाऐंगे, रेल की पटरी बिछाऐंगे, लेकिन आखिर दिलाते हैं आग बुझाने वाली मोटर। ये समस्याएं इस उद्धरण में द्रष्टव्य हैं।

"चौस्साब, फिकर तो हम पिछला पचास बरस सू ना करता आ रा हैं अब कहा करेंगा.....अरे, मुद्दत सू ई सुनणा में आ री है के या इलाका में रेल की पटड़ी बिछेंगी..... नहर निकलेंगी.....फैकटरी लगेंगी....चलो, अब कम सू कम आग बुझाण की मोटर तो आ जांगी.....और नाएँ तो अब जब आग लगेगी बुझ तो जाएगी..... ।"[222]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार लेखक साम्प्रदायिक, जातिवादी, नस्ले, नाते–रिस्तेदार वादी राजनीतिक नेताओं का विरोध करता है। कोई भी विधायक उस इलाके के जनता के द्वारा चुने जाते हैं। लेकिन जब रोजगार दिलाना होता तो अपने नाते–रिश्तेदार को ढूंढ के दिलाते हैं। ये चुनाव के समय में अनेक वायदे करते हैं कि इस इलाके में रेल की सुविधा,

---

[221] पृष्ठ संख्या, 173, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[222] पृष्ठ संख्या, 207, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

नहर, फैकटरी...आदि उपलब्ध करवाये जाएंगे, लेकिन करते कुछ नहीं हैं। आखिर में आग बुझाने वाली मोटर दिलाते हैं।

3.10.4. मीडिया एवं खबरें

प्रिंट मीडिया हो या एलेक्ट्रानिक मिडिया हो, ये तो कुछ खास लोगों के हाथों में रहते हैं। भले ही वे कहते रहते हैं कि पत्रकारिता का धर्म निभाएं बल्कि उनको जो करना है वह कर देते हैं। छोटी छोटी बातों को लेकर बहूत बड़ा मसला बना देते हैं। खासकर दो जाति के बीच या दो मजहबों के बीच अगर कुछ छोटी–मोटी बात हुई तो उस पर बहुत बड़ा मसला खड़ा कर देता है। समाज में तनाव पैदा कर देते हैं। विभाजन के समय में मेव प्रदेश के बारे में अखबारों में ऐसी खबरें छपकर आती थी कि मेव आने वाले समय में पाकिस्तान बन जाएगा। जिस से लोगों में तनाव होता था। इन समस्याओं को दिए गए उद्धरण से समझ सकते हैं।

“ताऊ, यही छप रही है के मेवात में कभी भी कुछ हो सकता है.....बल्कि एक अखबार ने तो यहाँ तक लिक्खा है कि कोई बड़ी बात नहीं यह इलाका आने वाले टाईम में दूसरा पाकिस्तान ही बन जाए.....।”[223]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार लेखक गलत अफवाएं फैलाने वाले मीडिया का विरोध करता है। आज भी हम देखते हैं कि मीडिया किस तरह साम्प्रदायिकता को फैलाने में आगे रहती है। लेकिन मीडिया का दायित्व यह होना चाहिए कि गलत खबरे नहीं छापें और नहीं फैलाएं।

[223] पृष्ठ संख्या, 269, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

3.10.5. अपनी रोटी सेकना

किसी भी पार्टी के नेता क्यों न हो, ये समाज में जो जो समस्याएं हैं उन का हल नहीं करना चाहते हैं। वे इन समस्याओं को और जटिल बना देते हैं। क्योंकि इन नेताओं को उन समस्याओं के ऊपर ही अपनी रोटी सेकने का अवसर मिलता हैं। इसीलिए वे आग में घी डालते रहते हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में मेवात के नेताओं ने कभी भी मजहबी समस्याओं का हल करने की कोशिश नहीं की बल्कि उकसाने की कोशिश जरूर की। वहाँ के लोगों को लडाते रहें हैं। लेकिन लोग भी जानते हैं कि वे कितने बद्माश हैं। लोग भी जानते हैं कि वे उनके बीच नफरत पैदा करके अपना काम चलाना चाहते हैं। इन तमाम समस्याओं को भगवानदास मोरवाल जी ने बड़े अच्छे ढंग से प्रस्तुत किए हैं।

"मनीराम, एक बात कहूँ चाहे तो ऊ करीम होए या मुरसीद .....इन लीडरन्ने तो अपणी रोटी सेकना सू मतलब है.....ये तो चाहवे हैं के या इलाका में ऐसी बात होती रहें ..... अरे, जब कोइ बुरो बखत आएगो न तो ई करीम और मुरसीद ना आंगा हमारे पै....हमीं एक–दूसरान् के काम आंगा..... ।"[224]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार राजनीतिक नेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिकता फैलाते हैं। ये यह चाहते है कि अपने इलाके में साम्प्रदायिक तनाव बना रहे। लोग बंटे रहें। इनको तो अपनी रोटी सेंकनी हैं।

साम्प्रदायिक पार्टियाँ हमेशा यह चाहती हैं कि वे और उनकी पार्टी के बारे में मीडिया में चर्चा हों और चर्चा का विषय बनकर रहें। इसके लिए वे कभी रथयात्रा करते हैं तो कभी मस्जिद पर झंडे गाड़ते हैं। इन छोटी छोटी घटनाओं को भी बड़े बड़े चस्में लगा कर दिखाते हैं। अफवाहों को फैलाते हैं। इस समस्या को इस उद्धरण से समझ सकते हैं।

---

[224] पृष्ठ संख्या, 281, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

"हाँ यार सलेमी, अफवाह तो कुछ ऐसी ही है.....पर झगड़ा–फसाद की ऐसी कोई बात ना है। हाँ, ई तो सुणी है के बीजेपी वाला अजोध्या में काई महजत–वहजत पे झंडा–वंड गाड़ना की बात कर रा हैं....।"[225]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार राजनीतिक नेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिकता फैलाते हैं। ये यह चाहते है कि अपने इलाके में साम्प्रदायिक तनाव बना रहे। लोग बंटे रहें। इनकी क्या जाती है ? इनको तो अपनी रोटी सेंकनी हैं। भाजपा जैसी पार्टी के नेता लोग अयोध्या को इस्तेमाल करते हैं।

कोई भी समझदार हिन्दू हो या मुसलमान हो साम्प्रदायिक पार्टी वालों के उकसाने से एक दूसरे से लडना नहीं चाहते हैं। बल्कि वे रहना चाहते हैं सगे भाई की तरह। 'काला पहाड़' उपन्यास में कुछ साम्प्रदायिओं ने मस्जिद के ऊपर झंडे गाडते हैं। ऐसा करके हिन्दू और मुसलमानों को लड़वाना चाहते हैं। लेकिन मेवात के लोग लड़ते नहीं हैं बल्कि एक दूसरे के घर जा कर अपना भाई चारा प्रकट करते हैं। इस समस्या को 'काला पहाड़' उपन्यास से लिया गया उद्धरण में देख सकते हैं।

"हाँ मनाई है.....बड़कली का मदरसा लू तो तेरी जेब सू सौ रुपल्ली भी ना निकली और आज जब सारा हिंदू मिलके अजोध्या की महजत पे झंडी गाड़न की तैयारी करे बैठा हैं, तो उनीं के घर तू लपक–लपक के जारो है....जैसे वे तेरा गोती भाई होएँ।"[226]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार राजनीतिक नेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए साम्प्रदायिकता फैलाते हैं। ये यह चाहते है कि अपने इलाके में साम्प्रदायिक तनाव बना रहे। लोग बंटे रहें। इनको तो अपनी रोटी सेकने से मतलब हैं। भाजपा जैसी पार्टी के नेता लोग अयोध्या को इस्तेमाल करते हैं। इस में कुछ मुसलमान भी शामिल होते हैं।

---

[225] पृष्ठ संख्या, 303, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[226] पृष्ठ संख्या, 323, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

3.10.6. वोट खरीदना

इन उच्च जाति के लोगों ने सदियों से दलितों का इस्तेमाल करते आ रहें हैं। जब इन सवर्णों को दलितों की जरूरत पड़ती हैं तब उनको दलित याद आते हैं। जब दलितों के मदद के बिना उनका काम ही नहीं चलता है तब ये सवर्ण ने कहते हैं कि तुम और हम सब इस देश के हिन्दू हैं। लेकिन कई बार दलितों को भूखे मरते हुए देखते रह जाते हैं। जब इनके वोटों की जरूरत अगर पड़ी तो पैसे देकर दलितों के वोट खरीदना चाहते हैं। अन्य समय में इन बनियों ने तो ऐसा व्यवहार करते हैं कि चमड़ी जाए लेकिन दमड़ी न जाए। 'काला पहाड़' उपन्यास में चुनाव के समय में उस गाँव के सवर्णों ने चमारों के वोट खरीदना चाहते हैं। पूरे मोहल्ले को हजार रूपए देना चाहते हैं। जिस को लेकर चमारों ने चर्चा करते हैं। इन दृश्यों को इस उद्धरण में देख सकते हैं।

"इसमें बुरा मानने की बात नहीं है.....यह जैन साहब बहूत ऊँची चीज है, मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानता हूँ.....और फिर, जिस बनिए के पूत का यह वसूल हो कि चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए....वह हजार रुपए यूँ हीं देगा.....? बहूत सोच–सोमज़कर देगा..... हमारा तो इस्तेमाल ये लोग हमेशा से करते आए हैं.....जब इन्हें लगता है कि इनका काम हमारे बिना नहीं चलेगा तभी ये हिंदुवाद की दुहाई देते हैं, वरना बिना स्वारथ के तो ये अपने बाप को भी हाथ नहीं धरने देते हैं.....फिर हम तो ठहरे जात के चिमार !"[227]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार लेखक का कहना है कि राजनीतिक नेता बहुत ही स्वार्थी होते हैं। यदि किसी को कुछ दे रहे हैं या मदद् कर रहें हैं, तो सोच समझ कर ही करते हैं। राजनीति में अधिक लोग ऊँची जाति के ही रहते हैं। मतदाता यानी वोट देने वाले दलित होते हैं। इन नेताओं को जब दलितों की ज़रूरत पडती है, तब उनके पास जा

---

[227] पृष्ठ संख्या, 388, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

कर हिन्दू की बात करते हैं। जब इनकी ज़रूरत नहीं पड़ती तब उनके सामने अछूत नज़राते हैं।

3.10.7. आरक्षण

लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व– "अंतिम प्रश्न पर सबसे पहले चर्चा कर ली जाए। इसे विवादास्पद प्रश्न्न नहीं कहा जा सकता। भारत सरकार ने यह स्वीकार कर लिया है कि सैद्धांतिक रूप से सभी समुदायों को लोक सेवाओं में निर्धारित अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए और किसी भी एक समुदाय को एकाधिकार की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस सिद्धांत का समावेश भारत सरकार के 1934 और 1943 के प्रस्ताव में कर लिया गया है और इसे कार्यान्वित किए जाने के लिए नियम बना दिए गए हैं। यह भी निर्धारित किया गया है कि यदि इन नियमों के विरुद्ध कोई नियुक्ति की जाती है तो उसे रद्द माना जाएगा।"[228]

जब यह देश अंग्रेजों द्वारा पालन किया जा रहा था, तब भी इस देश के 80–90 प्रतिषत लोगों को हर सुविधा से दूर ही रखे थे। जब देश आजाद हुआ तब भी हर सुविधा से दूर करने लगे थे। स्वतन्त्रता के 50 साल के बाद भी वही स्थिति थीं। एक अच्छे उद्देश्य से वी पी सिंह जी ने मंडल आयोग की शिफारिशें लागू करने के लिए सोचे थे। जिसके द्वारा पूरे पिछडेवर्ग के लोगों को आरक्षण लागू होने वाला था। ऐसा होना उच्च जाती और सवर्णों को बर्दाश्त नहीं हुआ था। इस को एक राजनीतिक मसला बना दिये थें। इसको लेकर पूरा हिन्दू समाज दो भागों में बँट गया था। एक तो आरक्षण समर्थक दूसरा आरक्षण के विरोधी थे। यह एक ऐसा समय था कि पूरे 50 प्रतिशत लोगों को एक झण्डे के नीचे आने के लिए सोचना पड़ा था। इन समस्याओं को त्रिशूल उपन्यास में देख सकते हैं।

---

[228] पृष्ठ संख्या, 151, बाबा साहेब डा.अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड 2

"जब से मंडल आयोग की शिफारिशें लागू किए जाने की घोषणा हुई है, उसके समर्थकों और विरोधियों के रूप में पूरा हिंदू समाज दो फाँकों में बँटता जा रहा है। ऐसे में आपका पचासी प्रतिशत लोगों के एक झंडे के नीचे आने की बात सोचना..."[229]

उपरोक्त संदर्भ में दो तरह के लोग नज़र आते हैं कि एक तो वे है जो आरक्षण का विरोध करते हैं और दूसरे वे हैं जो आरक्षण का समर्थन करते हैं। सदियों से बीस प्रतिशत लोग अस्सी प्रतिशत जनता को बाँट के उनके ऊपर राज कर रहे हैं। मंडल आयोग एक ऐसा समय है कि 50 प्रतिशत जनता एकजुट यानी एक झंडे के नीचे आने का समय था।

जब पिछड़ेवर्ग को आरक्षण के लिए सरकार ने मण्डल कमीशन की शिफारिश की थी। तुरन्त समाज में उथल–पुथल की स्थिति उत्पन्न हुई थी। मण्डल कमीशन के विरोध में कमण्डल वाली राजनीति मैदान में उतरी थी। आर एस एस और भाजपा के लोगों ने अपनी साम्प्रदायिक गंदी राजनीति करने लगे थे। एक ऐसी अफवाह फैलाने लगे कि आरक्षण के विरोध में एक छात्र ने आत्मदाह कर लिया है। आर एस एस के लोग ऐसे हैं कि वे साल में बारह महीने और महीने में तीस दिन के लिए कुछ न कुछ तो आयोजन करते हैं। हर दिन कुछ तो मनाते हैं। जैसे दशहरा, दिवाली, संक्रान्ति, पौर्णमी, अष्टमी, नवमी, आदि बनाते रहते हैं। और तरह तरह के पूजा दिवस, जन्म दिवस आदि मनाते हैं। इस के लिए चंदा वसूली करते हैं। यह भी ज़बर्दस्ति से वसूल करते हैं। और शाम को शराब से ऐश करते हैं। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में पा सकते हैं।

"कुछ दिनों पहले फैले आरक्षण–विरोधी आँदोलन के दौरान एक लड़के को जबरदश्ती आत्मदाह कराने के आरोप में लड़के के बाप के द्वारा लिखाई गई प्राथमिकी पर पकड़ा गया था। इन दिनों जमानत पर बाहर था। तीन लड़के चंदा उगाहू गिरोह के थे। वे दशहरा, दीवाली, जन्माष्टमी, दुर्गा–पूजा, लक्ष्मी–पूजा, सरस्वती–पूजा, से लेकर क्रांति दिवस, धर्म दिवस, जाती दिवस, शहीद दिवस और शिवरात्रि, नवरात्रि, कालरात्रि, आदि के

[229] पृष्ठ संख्या, 29, त्रिशूल–शिवमूर्ति

नाम पर चंदे की रसीदें छपवाकर साल के बारहों महीनों, तीसों दिन अनुनय–विनय से लेकर घुड़की, धमकी, और छिनैती तक का सहारा लेते हुए चंदा वसूली करते थे और शाम को देशी ठेका आबाद करते थे।"[230]

उपरोक्त उद्धरण से यह समझमें आता है कि ऊँची जाति के लोग आरक्षण का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना यह था और है कि 'सभी लोगों को समान रूप से देखना चाहिए यानी जाति के आधार पर अवसर नहीं देना चाहिए। और जो भी अवसर दिया जा रहा है वह मेरिट के आधार पर ही दिया जाना चाहिए'। खैर, अच्छी बात है, लेकिन समाज में सभी जतियाँ समान होनी चाहिए। जब तक इस समाज में जातिगत असमानताएं रहेगी तब तक आरक्षण की जरूरत होगी।

3.11. गाँधी और धर्मनिरपेक्षता

" आर एस एस का निर्माण भारत नहीं हिंदू राष्ट्र के लिए किया गया था। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा इसके सबसे बड़े नेता महात्मा गांधी के रुख के विपरीत था। गांधी का दृष्टिकोण धर्म–निरपेक्ष था और उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध सभी वर्गों के लोगों को खड़ा किया। इससे बहुत से ब्राह्मण नाराज हो गए।"[231]

भारत धर्मनिरपेक्ष देश है। इस देश में सरकार संविधान के अनुसार किसी एक धर्म के पक्ष या विपक्ष में नहीं रहना चाहिए। सभी धर्मों से समान दूरी में रखना चाहिए। सभी धर्म के लोगों के साथ बराबर का व्यवहार करना चाहिए। भारत देश किसी एक धर्मावलम्बी के रहने के लिए नहीं है। यह देश सभी के लिए हैं। इसलिए पाकिस्तान बनने पर भी सभी मुसलमान नहीं गये हैं। आज भी उतने ही मुसलमान हैं जितने पाकिस्तान में हैं।

---

[230] पृष्ठ संख्या, 39, त्रिशूल–शिवमूर्ति

[231] पृष्ठ संख्या 55, उद्भावना अंक 79, संपादक–अजेय कुमार, विशेष सहयोग राम पुनियानी (सांप्रदासिकता विरोधी विशेषांक) अगस्त, 2008,

3.11.1. गाँधी एवं धर्मनिरपेक्षता

मोहन दास करमचंद गाँधी बहुत बड़े नेता थे। इनको राष्ट्रपिता भी कहा जाता है। इनको महात्मा भी कहा जाता है। भारत देश को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में इनके बहुत बड़ा भूमिका है। ये शुरुआत से ही विभाजन के विरोध में अपना कर्तव्य निभा रहे थे। आखिर विभाजन हो ही गया था। परिणाम भारत और पाकिस्तान का आविर्भाव हुआ। अब यह समस्या सामने आयी कि जब पाकिस्तान बन रहा है तो भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान चले जाएँ? गाँधी ने इस समस्या का हल करते हुए कहा कि यह देश कोई एक मज़हब वालों के लिए नहीं है। इस देश में कोई भी धर्म वाले रह सकते हैं। जब मेव के मुसलमान पाकिस्तान जाना चारहे थे तो, गाँधी ने मना किया है। उतना ही नहीं उन्होंने कहा कि 'अगर मेव के मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहे तो मेरे लाश के ऊपर से जाना होगा'। इस समस्या को रचनाकार ने बहूत ही अच्छे ढंग से पेश किया है।

"मनीराम, हमारो बाबा तो ऊ गाँधी है जो भग्गी के बखत घासेड़ा में बीच सड़क पे आके लोट गो हो और बोलो या हिंदुस्तान सू अगर मेव पाकस्तान जांगा तो मेरी लाहस के ऊपर सू जांगा...... ।"[232]

उपरोक्त संदर्भ में गाँधी जी मेवों को पाकिस्तान जाने से रोकता है। उन्होंने यह भी कहा था कि 'यदि हिन्दुस्तान से मेव पाकिस्तान जाएंगे तो मेरी लाश के ऊपर से जाएंगे'। तो गाँधी यहां धर्मनिरपेक्ष बनकर नजराते हैं। वैसे ही मेव के मुसलमान यहाँ के राजपूत ही हैं।

3.11.2. धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता

"कांग्रेस दरअसल उस जमाने में इतनी बेशर्मी से साम्प्रदायिक नहीं हुई थी, लेकिन नेहरु के बाद सत्ता में बने रहने के लिए इस पार्टी ने कभी हिन्दू सम्प्रदायवाद का, कभी

---

[232] पृष्ठ संख्या 27, कला पहाड़—भगवानदास मोरवाल

किसी और सम्प्रदायवाद का सहारा बार–बार लिया है। राष्ट्रवाद ने संविधान के 'प्रियंबल'में 'सेकुलर कंसेप्ट' को अपनाकर यह साबित कर दिया कि देश में 'सेकुलर' शब्द सम्प्रदायवाद पैदा करने के लिए लिया जा रहा है, उससे लड़ने के लिए नहीं लिया जा रहा है। यानी सम्प्रदायवाद से लड़ने के लिए राष्ट्रवाद नाकाभी है। यानी राष्ट्रवाद 'सेकुलरिज्म' का इस्तेमाल उसी तरह कर रहा है, जैसे सम्प्रदायवाद धर्म का इस्तेमाल कर रहा है।"[233]

धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता ये दोनों कभी नहीं मिलते हैं। ये एक दूसरे को मार डालने में कोई संकोच नहीं करते हैं। लेकिन सेक्युलर लोगों का कहना हैं कि जीयो और जीने दो। बल्कि कम्युनल वालों ने सेक्युलर वादी को जीने नहीं देते हैं। गाँधी जी थोडा सेक्युलर थे तो उसको खत्म किए हैं कम्युनल वादियों ने। ऐसे ही बहुत सारे सेक्युलर लोगों को मारे हैं। उपन्यास 'बयान' में एक पात्र सेक्युलर वादी से कहता है कि अब तुम सेक्युलर वादी को कम्युनल वालों ने चुन चुन कर खत्म करेंगे। इन समस्याओं को इस उद्धरण देख सकते हैं।

"खोलोगे तब भी फ़र्क नहीं पड़ेगा उन्हें। बरक़त हुसैन पनडब्बे से पान निकालते हैं. ...तब भी फ़र्क नहीं पडेगा जोश मियाँ....क्योंकि अब हमारे बाद....तुम हो ...तुम जैसे सेक्यूलर सोचने वाले ...अब वह चुन–चुनकर तुम्हें खत्म करेंगे ...तुम जहाँ कहीं भी होगे, तुम्हें तलाश करेंगे और खत्म कर देंगे ..."[234]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक कहते हैं कि धर्मनिरपेक्ष यानी सेक्यूलर सोचने वाले को खतरा है। एक साम्प्रदायिक आदमी को एक साम्प्रदायिक ही अच्छा लगता है। इस लिए कोई भी सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक हों ये सेक्यूलर सोचने वालों का विरोधी हैं। लेकिन अंतिम विजय सेक्यूलर का ही हो सकता है, क्योंकि भारत धर्मनिरपेक्ष देश है।

---

[233] पृष्ठ संख्या, 27, ज़माने से दो दो हाथ–नामवर सिंह

[234] पृष्ठ संख्या, 30, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौकी

3.11.3. अपने अपने ईश्वर

कहते हैं आसेतु हिमाचलम या अखण्ड भारत के एक ही ईश्वर है 'राम'। और कहते हैं कि भारत के जितने भी लोग हैं वे सब हिन्दू हैं। दूसरी तरफ हैं इस्लाम , ईसाई । इनके लिए उनके अपने ईश्वर हैं। हमे और एक नारा सुनाई देता है कि एक धर्म और एक भगवान। बल्कि मेरे मनमें एक ऐसा सवाल उठता है कि इन सभी धर्मों और देवी–देवताओं से पहले कोई धर्म, देव नहीं थे क्या ? इसका जवाब है कि ज़रूर होगा। वो भगवान सबके लिए होगा। आज के जितने भी धर्म हैं, जितने भी देवी–देवता हैं वे सब अपने स्वार्थ के लिए गढ़े गए हैं। इन देवी–देवताओं को अपनी स्वार्थ राजनीति के लिए इस्तेमाल कर रहें हैं। इसीलिए सब का एक भगवान गलत बात है। सब के अपने अपने ईश्वर हैं। इन सभी समस्याओं को रचनाकार शिवमूर्ति ने अपना उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किया है।

“संक्षेप में इतना ही कि मेरी कल्पना का ईश्वर केवल हिंदुओं का ईश्वर नहीं है। वह सभी धर्मावलम्बियों का है। विभिन्न धर्मों के उद्भव से पूर्व था। और इनके न रहने पर भी रहेगा। विभिन्न धर्मिक ब्रांड के ईश्वर स्वयंभू नहीं । उन्हें हमने अपनी ज़रूरत, अपने स्वार्थ के अनुसार गढ़ा है। इसीलिए एस्किमों का ईश्वर विषुवत रेखावालों के ईश्वर से भिन्न है। काले का ईश्वर गोरे से भिन्न है। यदि गाय–बैल का ईश्वर होगा तो वह शेर–बघ के ईश्वर से भिन्न होगा। जलचरों का नभचरों से भिन्न होगा। अन्य धर्मों ने ईश्वर की कल्पना अपने समाज को नियंत्रित करने, उसकी बेहतरी के लिए जबकि हमने इसका उपयोग किया अपने ही भाइयों का शोषण करने और हराम की कमाई खाने के निए। यही नहीं, हमने अपने शोषण से अपने भगवान तक को नहीं बख्शा। उन्हें कोर्ट–कचहरी तक घसीटा है। विभिन्न न्यायालयों में श्री रामचंद्र सिंह वल्द दशरथ सिंह बनाम स्टेट या श्री

हनुमानजी वल्द नामालूम बनाम नगर महापालिका के मुकदमे चलते हैं। वे 'इन्क्रोचमेंट' के जुर्म में 'वान्टेड' होते हैं।"[235]

उपरोक्त संदर्भ में लेखक कहते हैं कि उनकी अपनी कल्पना का ईश्वर केवल हिन्दुओं का ईश्वर नहीं है। बल्कि यह सभी धर्मावलम्बियों का ईश्वर है, जो विभिन्न धर्मों के उद्भव से पहले था। मैं इस बात से सहमत हूँ क्योंकि इन सभी ईश्वरों से पहले भी कोई न कोई ईश्वर होगा। आज जितनी आबादी हैं उनसे भी अधिक ईश्वर हैं। इनको कुछ साम्प्रदायिक लोग अपने स्वार्थ राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। सभी का ईश्वर कभी भी एक नहीं हो सकता है। अपने अपने ईश्वर हैं।

3.12. निष्कर्ष

यह तीसरा अध्याय "बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : राजनीतिक संदर्भ" है। इस में राजनीतिक संदर्भ को लेकर चर्चा की गयी है। राजनीति करने वाले नेता लोग राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए क्या क्या करते हैं ? आदि समस्याओं पर विस्तार से चर्चा किया गया है। राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए धर्म का इस्तेमाल करते हैं। जाति का इस्तेमाल करते हैं। नस्ल, फिरका, वर्ग, वर्ण...आदि को भी इस्तेमाल करते हैं। सम्प्रदाय, सम्प्रदायिक, सम्प्रदायिकता से साम्प्रदायिकता तक पहुँचाते हैं। हिन्दू और मुसलमान को लढ़ाते हैं। शिया और सुन्नी को लड़ाते हैं। आरक्षण को लेकर एक राजनीतिक मामला बना देते हैं। अलगाव वादी राजनीति करते हैं। राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए देश को विभाजन कर देते हैं। विभाजन के लिए आँदोलन चल रहें हैं।

इन सभी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता दिखाई देती है। गाय को राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। माँसाहार और शाकाहार को भी राजनीति के लिए उपयोग करते हैं।

---

[235] पृष्ठ संख्या, 11, त्रिशूल—शिवमूर्ति

सबसे अधिक मन्दिर का इस्तेमाल होता है। लेकिन साम्प्रदायिकता का विरोध भी करने वाले पात्र हर उपन्यास में दिखाई देते हैं।

साम्प्रदायिकता का और एक मुख्य स्रोत है आर्थिक समस्या। साम्प्रदायिक दंगे इसलिए करवाते हैं कि दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायियों को आर्थिक रूप से नुकसान हो। दंगे करने के लिए उन्हीं लोगों को इस्तेमाल करते हैं जो आर्थिक रूपसे गरीब हैं। दंगों के समय में दुकानों, घरों को लूटते हैं। कई बार तो दुकानों में आग लगा दी जाती है। लाखों, करोडों रूपए का सामान जल के राख हो जाता है...इन आदि समस्याओं की चर्चा अगले अध्याय में किया जाएगा।

अध्याय–चार

अध्याय–चार

4. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : आर्थिक सन्दर्भ

4.1. धन–दौलत लूट, युद्ध और आर्थिक संस्कृति

4.1.1. युद्ध

4.1.2. धन–दौलत और मज़हब

4.1.3. खजाना और मन्दिर

4.2. धर्म(हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और आर्थिक हैसियत

4.2.1. गरीबी और धर्मांतरण

4.2.2. गरीब हिन्दू और सेवा

4.2.3. हिन्दुत्व और भारतीय

4.2.4. भूखमरी–नौकरी और भगवान

4.2.5. बहुपत्नी–इस्लाम

4.2.6. अमीरी–ग़रीबी और धर्म

4.2.7. जन्नत और आर्थिक स्थिति

4.2.8. हिन्दू–मुस्लिम और आर्थिक हैसियत

4.2.9. सुन्नी–शिया और गरीबी

4.2.10. मुसलमान और नौकरी

4.2.11. मुसलमान–दहेज और आर्थिक स्थिति

4.3. चुनाव, वायदे, दंगे और आर्थिक राजनीति

4.3.1. नौकरी और राजनीतिक नेता

4.3.2. चुनाव–वायदे

4.3.3. दंगे और गरीब–बेरोज़गार

4.4. गरीब–पिछड़ा, बेरोजगार–उद्योग और सरकारी आर्थिक योजना

4.4.1. गरीब–पिछड़ा वर्ग

4.4.2. बेरोजगार–उद्योग

4.4.3. सिपाही–लूटना

4.5. राजनीतिक नेता–पूँजीपति और गरीब जनता

4.5.1. एक रोटी बेल रहा है, दूसरा रोटी से खेल रहा है

4.6. रिश्वत खोरी आर्थिक व्यवस्था

4.6.1. पहले दाम, पीछे काम

4.6.2. बड़े–बूढ़े और पेंशन

4.7. तालीम–नौकरी और आर्थिक विकास

4.7.1. अंग्रेजी तालीम–नौकरी

4.7.2. हिन्दू–मुस्लिम और तालीम–नौकरी

4.8. सूखा–भूखा और आर्थिक परिस्थिति

4.8.1. सूखा एवं कृषि

4.9. गाँव से शहर की ओर पलायन और आर्थिक परिस्थिति

4.9.1. बेरोजगार एवं गाँव

4.9.2. दलितों की आर्थिक स्थिति

4.10. धर्म जनमानस का अफीम है और गरीबी–आर्थिक व्यवस्था

4.10.1. रोटी की पुकार

4.11. निष्कर्ष

अध्याय–चार

4. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : आर्थिक सन्दर्भ

"सवाल यह है कि अगर विभिन्न सरकारें अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण करती रही हैं, तो इसके परिणाम क्या रहे हैं ? क्या मुसलमानों ने मुल्क की सारी दैलत समेट ली है ? हमें तो नजर नहीं आता। हमें जो कुछ दिखाई देता है, वह यह है कि टाटा और बिरला जैसे पुराने उद्योगपति घरानों के अलावा मुल्क की सारी दैलत पर चंद खास खानदानों ने कब्जा कर रखा है। अस्सी करोड़ की आबादीवाले इस विशाल मुल्क में हमें एक भी मुसलमान ऐसा नजर नहीं आता जिसे हम अंबानी, मफतलाल,पोद्दार, थापर, डालमिया और हिंदुजा के साथ रख सकें। हमारा हाल तो यह है कि अगर किसी मुसलिम खानदान ने जूतों की दस–पाँच दुकानें या दो–एक डिपार्टमेंटल स्टोर खोल लिये, तो वह न खुदखुशी से फूला समाता है और न ही दूसरे लोग उसे फूलते–फलते देख पाते हैं।"[236]

1990 में मण्डल कमीशन के विरोध में, लालकृष्ण आडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या तक रथ यात्रा की। उनका कहना था कि 'हिन्दुत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए रथ यात्रा की है'। 1992 में बाबरी मस्जिद को इन्ही साम्प्रदायिक संगठनों और राजनीतिक पार्टीयों ने मिलके तोड़ा है। इसके दौरान हिन्दू और मुसलमानों के बीच में साम्प्रदायिक दंगे हुये हैं। धर्म के नाम पर अयोध्या में बाज़ारें खुल गए हैं। इन बाज़ारों में, दंगों में मारे गये, उस रक्तरंजित दृश्य की वीडिओ एवं आडिओ कैसिटें बना कर बेचने लगे हैं। कुछ ही महीनों में वहाँ के व्यापारी और बनिया लोग लाखों रुपये कमाने लग गये। दूसरी ओर हिन्दुत्ववादी के दंगे मुसलमानों के आर्थिक केंद्रित संस्थाओं और दुकानों पर करने लगे थे।

[236]पृष्ठ संख्या 97, मुसलमान क्या सोचते हैं, चयन एवं सम्पादन राजकिशोर और अशोक भारद्वाज, वाणी प्रकाशन 1995

2002 में गुजरात में साम्प्रदायिक दंगे हुये, जिसमें दंगे करने वाले दंगे करते गये और पीछे से लूटने वाले लूटते गये। इनका उद्देश्य केवल दंगे ही करना नहीं है इसके साथ उनका धन–दौलत लूटना भी है। इनका मुसलमानों के प्रति एक साजिश है कि मुसलमानों को आर्थिक बहिष्कार किया जाए। एक बार आर्थिक और सामाजिक रूप से उन्हें तोड़–मरोड़ दें तो वे कभी सिर उठाके समाज में नहीं जी पायेंगे। 'मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करो' ऐसी सूचना का पर्चा, गुजरात में गुजराती भाषा में लिखा हुआ परचा लोगों ने निकाला है जो 'वसुधा' पत्रिका में छपा है। ये केवल मुसलमानों का ही नहीं, बल्कि हिन्दुओं में दलित, आदिवासी और पिछड़ेवर्ग का भी आर्थिक बहिष्कार करना चाहते थे।

"वैसे इन दंगों के बारे में ऐसे तथ्य भी हैं जो ज़्यादा चिन्ताजनक हैं। गुजरात में इस बार मध्यमवर्ग के लोगों ने या उनके परिवार के नौजवानों ने न केवल दंगों में हिस्सा लिया बल्कि दंगों में हुई लूटपाट में भी अपना हाथ साफ किया। बड़े बड़े डिपार्टमेंटल स्टोरों के तोड़े जाने या उनके लूटे जाने की ख़बरें उन्होंने एक दूसरे को तत्परता से पहुँचायी तथा देखते ही देखते लूटे जा रहे स्थानों पर कारों तथा अन्य साधनों के साथ लोग सपरिवार पहुँचे। यह भी रपट सामने आयी है कि इनमें से कई सारे दण्ड का भागी बनने से बचने के लिए लूटा गया सामान लौटा भी रहे हैं।"[237]

सभी उपन्यासों में आम लोग आर्थिक रूप से वंचित किये गये हैं। ये कोई ऐसी योजना नहीं बनाते हैं जो इनको आर्थिक रूप से विकसित करें। यहाँ के राजनीतिक नेता चुनाव के समय में कई वादे करते हैं, लेकिन उनमें से एक को भी नहीं निभाते हैं। लोगों को शिक्षा की सुविधा नहीं है। रोजगार नहीं है। उद्योग नहीं खुलवाते हैं। सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था नहीं है। सरकार भी इनको मदद् नहीं करती है। प्रकृति भी इनपर दया नहीं करती। वे आखिर अपना गाँव छोड के शहर चले जाते हैं। इन मूल समस्याओं पर ध्यान नहीं देते हैं। वे लोगों को हमेशा जाति के नाम पर, नस्ल के नाम पर, धर्म के नाम

---

[237] पृष्ठ संख्या, 8, पहल, संपादक, ज्ञानरंजन, jan—may, 2002

पर लड़ाना चाहते हैं और लड़ाते रहते हैं। इन समस्याओं पर इस अध्याय में चर्चा की गयी है।

4.1. धन–दौलत लूट, युद्ध और आर्थिक संस्कृति

"मालाबार तट पर रहने वाले लोगों और अरबों में बहुत व्यापार होता था। वास्तव में भारत में सबसे पहले इस्लाम अरब व्यापारियों के जरिए ही आया। बहुत से तटीय राजाओं ने इन व्यापारियों तथा इनके संपर्क से अस्तित्व में आए स्थानीय मुसलमानों द्वारा इबादत के लिए मस्जिदें बनवाईं।"[238]

विश्व स्तर पर एक देश दूसरे देश से युद्ध करते थें। ये युद्ध ज्यादातर धन लूटने के लिए करते थें। यह धन लूटने की संस्कृति ही बन गयी थी। एक नयी इस्लाम कौम बनी थी। यह अरब थी। जब अरब में रेत के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता था। इसी समय में भारत धन–दौलत से भरपूर था। वे भारत पर आक्रमण करने आए और यहाँ धन–दौलत लूटना चाहते थें। भारत में धन–दौलत और खजाना मन्दिरों में और मन्दिरों के नीचे गुप्त रूप से रखते थे। धन को लूटते समय मन्दिरों को गिराना पड़ा। ये मज़हब को फैलाना नहीं जानते थें बल्कि मंजूर करना जानते हैं।

4.1.1. युद्ध

एक धर्म–सम्प्रदाय के अनुयायी दूसरे धर्म–सम्प्रदाय के अनुयायियों पर हमला या उसकी गलत व्याख्या करता है, साथ ही उसके प्रति नफरत और घृणा की भावना रकता है तो वह साम्प्रदायिकता होती है। आखिर ये ऐसा क्यों करते हैं ? ये इसलिए करते हैं कि इस समाज पर सिर्फ उनका ही अधिकार हों और सत्ता में लगे रहें। उसी प्रकार एक देश या कुछ देश जो आर्थिक रूप से सुसम्पन्न हैं मिल के दूसरे या कुछ देश जो आर्थिक रूप से गरीब के ऊपर हमला या युद्ध करता है। उन गरीब देशों को अपने वशीभूत कर लेता है

---

[238] पृष्ठ संख्या, 35, अंक 79, उद्भावना, (सं.), अजेय कुमार,(साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) अगस्त-2008

या उन पर कब्जा कर लेता है। अपनी आर्थिक संस्कृति को फैलाना चाहते हैं। आर्थिक संस्कृति यानी अन्य देशों को आर्थिक रूप से शोषण करना है। प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध हुए हैं। इस दौरान कई तरह के नुकसान भी हुए हैं। आर्थिक शोषण के साथ–साथ वे अपनी संस्कृति और धर्म–सम्प्रदाय को भी फैलाना चाहते हैं।

इन युद्धों के दुष्परिणाम के कारण विश्व समाज में कई तरह की समस्याएं आयी हैं। जैसे हिरोसिमा और नागासाकी क्षेत्र में जो बम फेंका गया था, उस जगह पर आजतक घास–फूस का भी जन्म नहीं हुआ है। उस के आस–पास कोसों दूर तक गाँवों पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। कई लोग व्याधिग्रस्त हुए हैं। कई लोगों को कैन्सर रोग हुआ। अनेक लोग अंधे हो गये। युद्धों के कारण देशों का विभाजन हुआ है। यह एक तरह कहना चाहिए कि अंधा इतिहास है। यह इतिहास धर्मांध विश्वास को भी जन्म दिया है। ऐसे युद्धों की परम्परा आज भी जारी है। इसलिए हर देश का सामान्य आदमी और उनकी संस्कृति का नाश हो रहा है। नदियों का पानी भी प्रदूषित हो रहा है। इनके खेतों में विषैली धतूरों की कांटेदार फसल उगने लगी है। लोग मनोरोग–ग्रस्त हुये हैं। स्त्रियाँ विकलांग बच्चों को जन्म देने लगी हैं। यह युद्ध अगर जारी रहेंगे तो पूरा का पूरा विश्व समाज विकलांग बन जाएगा। ऐसे युद्धों को रोकने, विविध देशों के बीच में समन्वय स्थापित करने और विश्व शांति बनाए रखने के लिए ही 'राष्ट्रों का संयुक्त लोकतंत्र' बनाया गया है। इसे कोफी अन्नान को सौंपा गया है। इन समस्याओं को इस उद्धरण में भी देख सकते हैं।

"–तो अस्पताल में जाकर कोफ़ी अन्नान से कहो कि दुनिया की छाती में जो तेज़ दर्द बार–बार उठता है...और उसे साँस लेने में जो तक़लीफ लगातार हो रही है, उसके इलाज के लिए उन्हें इस दुनिया का कामकाज सौंपा गया था, लगता तो यहाँ तक है कि एक ध्रुवीय शक्ति के पक्ष में उन्होंने अपने वह नैतिक हथियार भी डाल दिए हैं, जो बड़ी उम्मीद से उन्हें सौंपे गए थे...इसीका नतीजा है विभाजन और दुर्दान्त दमन का यह दौर... अगर कोफी अन्नान भूल गए हैं तो उन्हें याद दिलाओ कि आर्थिक संस्कृतियों के संघर्ष के नाम पर जो युद्ध चले और चल रहे हैं वे हर देश और संस्कृति के आम आदमी के विनाश का कारण बन रहे हैं...वे अंधेरे इतिहास और धर्मांध विश्वास को जन्म देकर जन और

जातिसंहार के वाहक बन गए हैं। जब तक ये युद्ध चलते रहेंगे, तब तक विकलांग जातियाँ जन्म लेती रहेंगी...जाने के लिए अवैध और अनैतिक संसाधनों की दुनिया कायम होती चली जाएगी...डैन्यूब जैसी नदियों की मछलियाँ बार–बार मरती रहेंगी। मानव रक्त से सिंचित खेतों में अन्न नहीं, विषैले धतूरों की काँटेदार फसलें उगेंगी। उन जातियों की स्त्रियाँ व्यभिचार और बलात्कार के लिए अभिशप्त होंगी...सन्तानें मनोरोग और व्याधियों से ग्रस्त होंगी। धर्म के नाम पर अधर्म की आंधियाँ चलेंगी और सत्ता के एकीकृत सिंहासन पर नरमुंडों की माला पहने कोई निरंकुश एकाधिकारी शासक विद्यमान हो जाएगा ! कोफी अन्नान से जाकर पूछो, क्या इसी भविष्य के लिए उन्हें राष्ट्रों का संयुक्त लोकतंत्र सौंपा गया था ?”[239]

यह आर्थिक संस्कृति वाला युद्ध...आदि से आज यानी बीसवीं सदी में भी होते आ रहें हैं और इसके दौरान कई दुष्परिणाम हुए हैं। इन दुष्परिणामों को समाप्त करना है तो पहले युद्धों का अंत होना चाहिए और शांति बनाए रखनी चाहिए। इसके लिए विश्व स्तर पर संस्था की स्थापना की गयी जो 'राष्ट्रों का संयुक्त लोकतंत्र' के रूप में कार्य रत है।

4.1.2. धन–दौलत और मज़हब

मुसलमानों का कबीला अभी अभी बना था। वे पूरे अरब थें। इन कबीले के मालिक रहते थे। उन दिनों में अरब में कुछ नहीं था। अगर कुछ था तो खजूर, रेत और रेतीली आंधियों के सिवा कुछ नहीं था। लेकिन उन दिनों में भारत में धन–दौलत की कुछ भी कमी नहीं थी। अभी अभी, नया–नया मुसलमान बना, इनको सिर्फ यह मालूम था कि मज़हब को मंजूर किया जाता है। लेकिन ये यह नहीं जानते हैं कि मज़हब को फैलाया जाता है। धर्मांतरण करना भी ये नहीं जानते थे। लेकिन मुसलमानों पर यह आरोप है कि वे तलवार के बल पर अपनी मजहब को फैलाये हैं। लेकिन उनका कहना है कि वह इल्जाम बिल्कुल

---

[239] पृष्ठ संख्या, 46–47, कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, प्रकाशन, राजपाल एण्ड सन्स 2000

बेबुनियाद और गलत है। इन आदि समस्याओं को उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया गया है।

"–हुजूरे अदब ! मैं बाअदब कहना चाहता हूँ कि मैं अरब हूँ। मेरे कबीले का मालिक हज्जाज था। जनबा अलवालिद हमारे ख़लीफा थे। उन दिनों हिन्द की धन–दौलत की दास्तानें हवा में तैरती थीं। हमने खजूर, रेत और रेतीली आंधियों के सिवा कुछ देखा नहीं था, हमारा कबीला नया–नया मुसलमान बना था। हमें तो सिर्फ यह मालूम था कि मज़हब को मंजूर किया जाता है। मज़हब को फैलाया जाता हैं, यह हमें तब पता भी नहीं था। मैं तो तब खुद सत्रह साल का था। धर्मांतरण कैसे किया जाता है, इस का मुझे इल्म तक नहीं था, इसलिए यह इल्ज़ाम कि मैं तलवार के जोर पर हिन्दुओं को मुसलमान बनाने आया था, बिल्कुल बेबुनियाद और ग़लत है !"[240]

इससे यह पता चलता है कि मुसलमान भारत में धन कमाने या धन लूटने के लिए आये थे, न कि अपने धर्म को फैलाने।

4.1.3. खजाना और मन्दिर

नया–नया मुसलमान कौम बना था। यह अरब में बना था। अरब में खजूर के पेड़ और रेत, रेतिली आँधी के सिवा और कुछ नहीं था। इनके कबीले के मालिक अपने आस–पास के देशों में धन, दौलत और खजाना तलाशने लगे थे। उन दिनों में भारत आर्थिक रूप से सम्पन्न था। तो उनकी नज़रें भारत पर पड़ी। उनके मालिक हज्जाज अपने लोगों को भारत लूटने के लिए भेजा था। वे उनको उधार में पैसे भी दिये थे और निर्देश किए कि हिन्द यानी भारत में अपनी सत्ता भी बना लेना। भारत को जीतने का रास भी वे अच्छी तरह से जानते थे। क्योंकि भारत में वर्ण व्यवस्था है। इसके अनुसार यहाँ केवल क्षत्रिय ही लड़ सकते है। यदि क्षत्रिय हार गये तो भारत हार जायेगा। लेकिन मुसलमानों में तो

---

[240] पृष्ठ संख्या, 152, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

बच्चा–बच्चा लड़ता है। उस युद्ध में मुसलमानों की विजय हुई। वहीं ब्राहमणों और बौद्धों ने मान लिया कि भारत हार गया। इन्ही के द्वारा पता चला है कि किस मन्दिर में और किस मन्दिर के नीचे कितना खजाना छुपा हुआ है? भारत में खजाना, धन, दौलत आदि मन्दिरों में छुपाते हैं। उन्होंने धन को लूटने के लिए मन्दिरों को तोड़ा था। उन्ही ब्राहम्मणों के द्वरा पता चला कि कश्मीर के महाराजा ने एक तालाब में मन्दिर बनवाया है जिस के नीचे सोने का चूरा छुपा के रखा है। उस को लूटना है तो मन्दिर और मूर्ति को तोड़ना आवश्यक है। वे तो आये लूटने के लिए ही थे, इसलिए उस मन्दिर को तो़ड़ना पड़ा। इन आदि समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। जो नीचे उद्धृत है।

"–हुजूर ! मुझे तो मेरे मालिक हज्जाज ने हिन्द को लूटने भेजा था। इसके लिए उन्होंने पैसा उधार दिया था। इस शर्त पर कि उनका दिया हुआ पैसा तो मैं वापस करूँगा ही, साथ–साथ हिन्द नदी के उपजाऊ इलाके में हुकूमत कायम करके मैं उन्हें लगातार पाँच लाख दीनार की सालाना लामगुज़री भी देता रहूँगा !...इसी के साथ–साथ उन्होंने एक ख़ास राज़ मेरे हवाले किया था...हुजूर ! जंग के वक्त हमारा तो बच्चा–बच्चा लड़ता है, लेकिन हज्जाज ने हमें यह रास बताया था कि हिन्द में पूरी कौम नहीं लड़ती। रवायत के मुताबिक वहाँ सिर्फ क्षत्रिय लड़ता है। क्षत्रिय हारता था तो सब हार जाते थे । यह बात सच साबित हुई हुजूर ! राजा दाहर हारा तो सब हार गए ! सारे हिंदू ब्राह्मणों और बौद्धों ने भी शिकस्त मंजूर कर ली...इन्हीं हिंदू ब्राह्मणों के मंदिरों और बौद्धों के विहारों में अकूत धन दौलत का खजाना था। मैंने इन्हें लूटा। फिर मुझे इन्हीं ब्राह्मणों से जानकारी मिली थी कि वह जीबावन, जो कश्मीर के महाराजा का सूबेदार था हुजूर ! उसने मुलतान की कस्ती के पूरब तरफ बड़े तालाब में एक मंदिर बनवा रखा है। हिन्दुओं के ख़ज़ाने मन्दिरों के नीचे ही ज़मींदोज़ रहते थे। तालाब वाले उस मन्दिर के नीचे उसने ताँबे के चालीस कोठारों में सोने का चूरा छिपा रखा था। कोठार तोड़ने से पहले मैंने मूर्तियों को तोड़ा था। मूर्तियाँ तोड़ कर मुझे तीन सौ मन सोना मिला था...फिर जब तालाब के अन्दर मन्दिर के नीचे वाले

चालीस कोठारों को मैंने तोड़ा तो तेरह हज़ार दो सौ मन सोना मेरे हाथ आया था !...तब मैं मन्दिरों को क्यों न तोड़ता अदीबे आलिया ?”[241]

मुसलमानों का मुख्य लक्ष्य था धन और खजाना लूटना। इस के दौरान मन्दिरों को तोड़ना पड़ा लेकिन मन्दिरों को तोड़ना ही इनका लक्ष्य नहीं था। इसके बाद मुसलमान यहीं अपना राज्य भी बना लिये। हजारों साल से यहाँ रह रहे हैं। इनके साथ इनक धर्म–सम्प्रदाय भी आया। आज इस्लाम भारत में एक प्रमुख धर्म बन गया है।

4.2.धर्म(हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई...) और आर्थिक हैसियत

“मुस्लिम समुदाय के अभिजान भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गए। मुख्य रूप से गरीब मुसलमान, कुछ व्यावसायिक लोग और व्यापारी यहां रह गए। इससे मुसलमानों की दशा और भी खराब हो गई। मुसलमान रूढ़िवादी आगे आ गए। उन्हें इस समुदाय की ''वास्तविक'' समस्याओं से कुछ लेना देना नहीं है, यह समुदाय मुख्य रूप से गरीब और पिछड़ा हुआ है तथा रूढ़िवादी तत्वों के शिकंजे में है।

कुल रोजगार में उनकी स्थिति तथा अन्य मानदंडों से उनके सामाजिक स्तर की वास्तविकता साफ हो जाएगी।

मुस्लिम अल्पसंख्याकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को समझने के लिये सरकार ने सच्चर कमेटी की नियुक्ति की थी। इस कमेटी की रिपोर्ट चौंकाने वाली है। इसके अनुसार भारत में उनकी आर्थिक स्थिति पहले से बद्तर हुई है और समाज के सब क्षेत्रों में उनका प्रतिनिधित्व पहले से खराब होता जा रहा है।

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में मुसलमानों को नौकरियों में जगह नहीं मिली है। निम्नस्तरीय नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व काफी कम है, करीब 6 प्रतिशत।

[241] पृष्ठ संख्या, 152, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

जैसे ही हम उच्चस्तरीय नौकरियों में जाते हैं, यह प्रतिशत कम होकर 0.5 प्रतिशत रह जाता है, जबकि जनसंख्या में वे 13.4 प्रतिशत हैं।

मुसलमानों को ज्यादातर स्वरोजगार पर आश्रित होना पड़ता है। बैंक सुविधाएं भी उन्हें कम मिलती हैं।”[242]

हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन और बौद्ध कोई भी धर्म हों इनमें गरीब हैं और अमीर भी हैं। इन धर्मों के अमीर और पूँजीपति सब एक ही हैं। इनका काम है गरीबों को लूटना। लेकिन इन धर्मों को अलग अलग की आर्थिक विकास, शिक्षा, रोजगार और स्वस्थ्य आदि में इनके विकास को अगर देखें तो सबसे आगे उँची जाति के हिन्दुओं का विकास हुआ है इसके बाद हिन्दू–छोटी जातियों के लोगों का विकास हुआ है। 'सच्चर कमीटी' के रपट के अनुसार भारतीय मुसलमानों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। इस प्रकार हर धर्म के गरीब लोग आर्थिक रूप से वंचित हैं। इसमें धर्म और आर्थिक स्थिति को लेकर चर्चा की गयी है।

4.2.1. गरीबी और धर्मांतरण

हिन्दुओं में गरीबी ज्यादा है। हिन्दुओं में ही गरीबी ज्यादा क्यों हैं ? इस पर सोचने से हमें यह पता चलता है कि हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय के मूल में वर्ण व्यवस्था है। वर्ण के बाद जाति व्यवस्था प्रमुख है। इनमें कई जातियों को धन कमाने का हक नहीं हैं। धन ज़मा करने का हक भी नहीं है। कुछ जाति तो ऐसी हैं कि जिन की परछाई पड़ने से ही निर्जीव पदार्थ सहित अपवित्र हो जाते हैं। इन आदि जातियाँ सदियों से राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से उपेक्षित की गयी है। एक अछूत जाति के होते हुए किसी भी तरह के व्यापार या धंधा नहीं कर सकता था। इस्लाम में बराबर का सिद्धांत था और आज भी है। इसको देख के कई गरीबों ने इस्लाम को कुबूल किये हैं। एक ईसाई होते हुए कोई भी काम या धंधा कर सकते हैं। इस अच्छे सिद्धांत को देख के हिन्दू गरीबों और

[242] पृष्ठ,74-75, अंक 79, उद्भावना,(सं.),अजेय कुमार,(साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक)अगस्त-2008

छोटी जातियों के लोग ईसाई में तब्दील हुये हैं। लेकिन यह जो आरोप है कि हिन्दू गरीबों को ईसाई और मुसलमानों ने पैसे दिए और धर्मांतरित किया, यह कहाँ तक ठीक है? इस पर सोचना चाहिए। यदि किसी ने गरीब को कुछ मदद कर रहा है तो क्या बुराई है ? अगर हिन्दुओं में जिनको एतराज है वो ऐसा करें कि उन गरीबों के पास जा के, ये अपना पैसा दें और कहें कि ईसाई और मुसलमानों के पास पैसे न लें। ऐसा नहीं करते हैं। ये ऐसे हैं कि गरीबों को ये तो मदद नहीं करते और जो करते हैं उनको भी नहीं करने देते हैं। तो गरीबों के प्रति इनका उद्धेश्य क्या हो सकता है! इन समस्याओं को 'उन्माद' उपन्यास में देखा जा सकता है।

" हिंदुओं में ग़रीबी सबसे अधिक है। गरीब हिंदुओं को फुसलाकर, बहकाकर, पैसे देकर ईसाई और मुसलमान बानाया जा रहा है। इसके लिए प्रतिवर्ष 7 अरब रुपया विदेशों से आ रहे है।"[243]

गरीब हिन्दू को दूसरे धर्मावलम्बी से पैसा लेना अमीर हिन्दू को अगर अच्छा न लगता है तो, वो स्वयम गरीबों की मदद करनी चाहिए। अगर नहीं करना चाहते हैं, तो करने वाले को करने देना चाहिए। गरीब को मदद और उनकी सेवा करना, उससे बढ़ कर भला और क्या हो सकता है।

4.2.2. गरीब हिन्दू और सेवा

वास्तव में देखा जाए तो हिन्दुओं में सेवा भाव न के समान है। अगर कहीं है तो वह उन्हीं के बीच हैं, अर्थात् अपने ही सम्प्रदाय के बीच है। उदाहरण के लिए वैष्णव सम्प्रदाय के लोग अपने ही वैष्णव गरीब को मदद करता है। फिर ये हिन्दू नाम से चिल्लाते हैं क्यों? वे हिन्दू नाम से सेवा नहीं करना चाहते हैं बल्कि हिन्दू नाम से वे राजनीति करना चाहते हैं। यदि इनको यानी हिन्दू अमीरों और हिन्दू ऊँची जाति के लोगों को सचमुच गरीब और

---

[243] पृष्ठ संख्या, 146, उन्माद, भगवान सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1999

नीची जाति के लोगों की सेवा करना हो तो इनको पहले यह सीखना होगा कि ईसाई से सेवा का पाठ और मुसलमानों से सेवा और एकता का पाठ सीखे । इसके लिए हिन्दू व्यापारी और ऊँची जाति के लोग अपने स्वार्थ को थोड़ा त्याग करना होगा और जाति अहंकार को भी त्यागना होगा तब गरीबों के बारे में बात करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। इन समस्याओं को नीचे दिये गये उद्धरण में भी देख सकते हैं।

"हिंदुओं को एकता का पाठ मुसलमानों से और सेवा का पाठ ईसाइयों से सीखना चाहिए। गरीब हिंदुओं, विशेषकर हरिजानों की सेवा करना प्रत्येक हिंदू का धर्म है। इसके लिए धन और साधन जुटाना हिंदू व्यापारियों का कर्तव्य होना चाहिए।"[244]

उनकी गिनती के हिन्दू अलग हैं। उनके नज़र में हिन्दू वो हैं कि जो हिन्दुत्व के अनुसार चलता है। लेकिन हिन्दू वो नहीं हैं। हिन्दू का मतलब है कि हिन्दुस्तान या भारत में जितने जी रहे हैं सभी हिन्दू होते हैं।

4.2.3. हिन्दुत्व और भारतीय

आज राजनीतिक पार्टी और इसके साथी संगठन आर. एस. एस, बजरंग दल, विश्वहिन्दू परिषद, शिव सेना आदि हिन्दू–हिन्दू कह कर चिल्ला रहे हैं। कहते हैं कि अगर इन हिन्दुओं का उद्धार होना है तो वह केवल भाजपा ही कर सकती है। ये हिन्दूवादी अपने हिन्दुओं का कल्याण सचमुच करना चाहते हैं तो किसने मना किया है ? आख़िर इनके हिन्दू कौन होते हैं जिनके बारे में ये सोचते हैं और कुछ भी करने को, मर–मिटने को तैयार हो जाते हैं। वे इन हिन्दुओं के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं जो अपनी ऊँची जाति के होते हैं। लेकिन इस देश में वे भी तो हिन्दू ही हैं जो सदियों से दबाए गए हैं। आज भी उनकी दिशा खराब है। इनमें बेहद गरीबी है। पेट भर खाना नहीं मिलता है। तरह तरह की बीमारी से ग्रस्त हैं। इनको दवा नहीं मिल पाती है। ये काम भी तलाशते हैं तो

---

[244] पृष्ठ संख्या, 147, उन्माद–भगवान सिंह

काम नहीं मिलता है। इनको रहने को घर नहीं है। यदि इनको हिन्दू समाज से प्रेम होता तो इन गरीब हिन्दुओं के बारे में सोचते होते। दीन–हीन, अशिक्षा और दवा से वंचित व्यक्ति न रहते। इसके लिए इन हिन्दूवादियों के पास कुछ कार्यक्रम होता। इनके पास ऐसा कोई कार्य–क्रम नहीं हैं। इनको उन हिन्दुओं से प्रेम नहीं हैं। इनकी गिनती में हिन्दू वो नहीं और उनकी गिनती में वे हिन्दू नहीं हैं। ये हिन्दू का नारा इसलिए देते हैं कि उनकी वोट चाहते हैं। सत्ता में आना चाहते हैं। हिन्दू नाम से राजनीति करना चाहते हैं। इन समस्याओं पर 'उन्माद' उपन्यास में चर्चा हुई है। इसको इस उद्धरण से समझ सकते हैं।

"इन बाकी बचे हिंदुओं में बहुत से हैं जो बेहद ग़रीब हैं। भूखमरी के कगार जीते हुए। ऐसे जो भरपेट भोजन नहीं पाते। ऐसे जो बीमार पड़े ंतो उन्हें दवा नहीं मिल पाती। जो काम तलाशने चलें तो उन्हें काम नहीं मिल पाता। और फिर वे तो हैं ही जो समाजव्यवस्था से इस हद तक सताए जाते रहे हैं कि असह्य दरिद्रता के साथ कदम–कदम पर अपमान भी झेलते रहे। यदी तुम्हें हिंदू समाज से प्रेम होता तो सबसे पहले इस चिन्ता से कातर होते कि कम–से–कम इस समाज में कोई दीन–हीन, कातर, अशिक्षित, रोग से घिसटता हुआ और दवा से वंचित व्यक्ति न रहे। तुम्हें उनसे भी प्रेम नहीं हैं। होता तो उनके लिए तुम्हारे पास कोई ठोस कार्यक्रम होता। वह नहीं है। इसकी झलक तुम्हारे पोस्टरों से नहीं मिलती, तुम्हारी बातचीत से नहीं मिलती, तुम जिस संगठन से जुड़े हो उसके कार्यक्रमों से भी नहीं मिलती। तो तुम न तो इनसे प्यार करते हो, न हिंदुओं की समस्यों पर सोचते समय, तुम्हारी नज़र इनकी समस्याओं की ओर जाती है। केवल वोट की टुच्ची राजनीति के कारण तुम इन सभी को हिंदू कहकर, उनका वोट बटोरना चाहते हो। इसलिए तुमने क्या–क्या विशेषण स्वयं लगाए थे इस प्रवृत्ति के लिए ? खैर जो भी लगाए हों, वे तुम्हारे ऊपर अधिक चस्पाँ होते हैं। लेकिन वे जिनके लिए तुम इन विशेषणों का प्रयोग कर रहे थे, वे इन हिंदुओं से प्रेम करते हैं। इनके लिए काम करते हैं। इनकी दशा सुधारने के लिए मरने–कटने को भी तैयार रहते हैं। इस तरह तुम्हारे हिंदू दूसरे हैं और

उनके हिंदू दूसरे हैं। तुम उनकी गिनती के हिंदू नहीं और वे तुम्हारी गिनती के हिंदू नहीं।”[245]

ये अपने ही लोगों को हिन्दू मानते हैं। हिन्दुस्तान के जितने हैं उनकी गिनती में हिन्दू नहीं हैं। वे जो भी उद्धार और कल्याण करना चाहते हैं अपने ही हिन्दू का करना चाहते हैं। न कि हिन्दुस्तान के हिन्दू का। इनका मुख्य लक्ष्य है वोट बटोरना और सत्ता प्राप्त करना।

4.2.4. भूखमरी–नौकरी और भगवान

आदि काल से आज तक भारत धन–दौलत के लिए प्रसिद्ध कहा जाता है। इसीलिए अनेक देशों से लोग भारत आए हैं। इस देश में भूखमरी किन जातियों में हैं ? इस पर गौर करें तो भारत अनेक जातियों से भरा हुआ है। इनमें देखा जाए तो कुछ जातियों में भूख क्या होती यह भी पता नहीं है। इनमें नौकरियों के लिए कोई कमी नहीं हैं। इनके घरों में जितने सदस्य होते हैं उतने नौकरी पर रहते हैं। भारत में कुछ ऐसी जातियाँ भी मौजूद हैं कि जिन को पेट भर खाना नहीं मिलता है। इनको शिक्षा से वंचित किया गया है। एक दो कहीं पढ़े–लिखे हो तो भी उनको नौकरी नहीं मिलती है। आखिर क्यों ऐसा होता है? इसका जवाब होता है कि अपने पूर्व जन्म के कर्म के अनुसार फल भोगना होता है, नहीं तो भगवान पर थोपा जाता है। यहाँ की मौजूदा राजनीतिक पार्टियाँ कभी यह नहीं सोचती कि भूख से मरे लोगों को खाना कैसे दिलाया जाए ? जिनको नौकरी नहीं है और करने को काम भी नहीं मिलता है उनके बारे में कभी नहीं सोचते हैं। ये केवल यह सोचते हैं कि एक जाति से दूसरी जाति को कैसे लड़ाया जाए? और एक धर्म के लोगों को दूसरे धर्म के लोगों से कैसे लड़ाया जाए ? और अपनी सत्ता बनाए रखा जाए। इन आदि समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं।

---

[245] पृष्ठ संख्या, 208–209, उन्माद–भगवान सिंह

"कितनों को ? " दीवान का हिचकोला रुकता है। फिर भरता है। "भूखमरी कैसे घटे? नौकरियाँ कैसे बढ़ें ? भगवान तो दे नहीं रहा, नंग महाराज को देने दो !"[246]

भगवान के नाम पर, जाति के नाम पर, छुआछूत के नाम पर गरीब और नीची जाति के लोगों को आर्थिक रूप से वंचित किया गया है।

4.2.5. बहुपत्नी–इस्लाम

बहुपत्नी वाली संस्कृति लगभग हरेक मजहब में दिखाई देती है। यह संस्कृति आज के युग में उचित नहीं है। यह उन राजा–महाराजाओं के काल में शोभा देती थी। समाज में मान–सम्मान भी मिलता था। इसलिए हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में दशरथ महाराज की चार पत्नियाँ थी। वैसे ही इस्लाम में पैगम्बर मुहम्मद साहब भी बहुपत्नीत्व थे। उसी परम्परा को मुसलमान मानते आ रहे हैं। बीसवीं सदी में भी एक मुसलमान चार निकाह करना चाहें तो यह कहाँ तक सहमत हो सकता है ? क्योंकि केवल निकाह कर लिया और चार बीबियों को घर ला लिया, उनके लिए हो सकती हैं खुशी की बात। पर उनको अलग अलग घर और उनके लिए खाना, कपड़ा...आदि सब दिलाना होगा। यहाँ एक बीबी के लिए ठीक तरह नहीं है तो चार चार बीबियों के लिए कहाँ से लाते हैं ? इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में देखा जा सकता है।

"अन्यायी, तेरा जैसान्ने तो या दीन की ऐसी–तैसी कर राखी है, तोहे सरम ना आ री है ई कहते बखत के हमारा दीन में चार निकाह जाइज हैं.....मामा, एक का पेट भारणा में तो नानी याद आ जावे है और तू चार–चार निकाह करेगो..... ।"[247]

---

[246] पृष्ठ संख्या, 58, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

[247] पृष्ठ संख्या, 238, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

आज सदियों पुरानी धर्म की किताबों में विश्वास करना कहाँ तक सही है? समय के अनुसार उसमें बदलाव लाना आवश्यक है। बहुपत्नीत्व का जमाना गुजर गया है।

4.2.6. अमीरी–ग़रीबी और धर्म

इस विश्व में अनेक धर्म हैं। धर्म का जन्म लग–भग मनुष्य के जन्म के साथ साथ ही विकसित मालूम पड़ता है। इनके कई अच्छे सूत्र और सिद्धांत बताए जाते हैं। सबसे अच्छी और आकर्षक बात यह है कि भगवान के सामने सब बराबर हैं। धनी लोगों को अपने धन में से कुछ प्रतिशत गरीबों को बाँटना है। दान करना। आदि आदि...हैं। लेकिन धर्म के जन्म से लेकर आज तक लोगों में धर्म की व्याप्ति है। लोग सबसे ज्यादा धर्म का पालन करते हैं। लेकिन धर्म आज तक किसी गरीब को अमीर नहीं बना सका है। उल्टे धर्म के ठेकेदार और पुजारियों ने गरीबों को निचोड़ निचोड़ कर और गरीब बना दिया है। इस प्रकार इस दुनिया में कोई भी धर्म गरीबी को नहीं मिटा सका और उल्टे गरीब बना दिया है। गरीब और अमीरों में जो अंतर है उसे और बढ़ा दिया गया है। इन सबके विरोध में बौद्ध धर्म आया था। इसने अमीर और गरीब के बीच के अंतर को मिटाने की कोशिश की। लेकिन यह भी वर्ग के अंतर को मिटा न पाया। कोई भी धर्म–सम्प्रदाय हों यह कभी भी गरीबी और अमीरी के अंतर को नहीं मिटाएगा। इसको और बढ़ावा देता है। इन समस्याओं को नीचे दिए गए उद्धरण में देख सकते हैं।

“और इन्हें देखो। ये उन ग़रीब आदमियों के नैवेद्य हैं जो भगवान बुद्ध के चरणों में उससे ज़्यादा क़ीमत भेंट नहीं चढ़ा सकते थे। कोई भी धर्म अब तक अमीरी और ग़रीबी का फ़र्क़ नहीं मिटा सका। बौद्ध धर्म ने अपने समय के सत्ता–धारी और धनी वर्ग पर ज़ोरदार प्रहार किया था लेकिन वह भी वर्गभेद को खत्म नहीं कर सका।”[248]

---

[248] पृष्ठ संख्या, 98–99, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

धर्म और धर्म के ठेकेदारों ने धर्म के नाम पर लोगों को बाँटते हैं और धार्मिक अंध विश्वास को फैलाते हैं। सभी तरह के अंतरों का कारण धर्म और धर्म के ठेकेदार हैं। कोई प्रश्न करें तो भगवान पर थोप देते हैं।

4.2.7. जन्नत और आर्थिक स्थिति

आज हम बीसवीं सदी में जी रहे हैं। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय के अनुसार हो या कोई और धर्म–सम्प्रदाय के अनुसार हो उनका अपना एक विधि विधान होता है वह उसी के अनुसार चलते हैं। धर्म कहता है कि वर्तमान जिंदगी का महत्व नहीं है। मरने के बाद आदमी जन्नत में जा के जीता जो जिंदगी ही जिंदगी हो सकती है। ऐसा सोचते हुए भगवान के नाम स्मरण में ही लगे रहते हैं। लेकिन आस–पास क्या हो रहा है यह नहीं जानते हैं। सदियों पुरानी कही हुई बात में और आज बीसवीं सदी के अंतिम दशक में जो प्रासंगिक बात है उन में फर्क करना आवश्यक होता है। अंग्रेज इस देश में आने के बाद और यहाँ अपनी सत्ता बना लिया था। जबतक जो भारतीय भाषाएं और उर्दू प्रचलन में थीं, इनका महत्व घट गया है। अंग्रेजी का महत्व बढ़ गया है। शुरुआत में बंगालियों ने अंग्रेजी सीख ली हैं। अंग्रेजों के दफ्तरों में बंगाली लोग नौकरी पाई हैं। इसके बाद बिहारी लोग भी अंग्रेजी सीख ली, नौकरी करने लगे हैं। अंग्रेज इस देश छोड़ के जाने के बाद भी इस देश में अंग्रेजी शिक्षा का महत्व घटा नहीं बल्कि बढ़ गया है। आजाद भारत में जिनको शिक्षा अंग्रेजी में मिली उनको नौकरी मिलने लगी थी। मुसलमान लोगों को पता ही नहीं कि क्या हो रहा है। ये धर्म नाम का अफीम खा के सोए हुए हैं। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में देखा जा सकता है।

"बंगालियों से मुसलमानों को सबक़ हासिल करना चाहिए। हम लोग तो ऐसा अफ़ीम खाकर सोए हुए हैं कि आसपास का कोई होश नहीं है। हम लोगों से कहीं अच्छे तो हमारे बिहार के हिन्दू भाई हैं जो बंगालियों की देखा–देखी तरक़्क़ी के रास्ते पर चल पड़े हैं। माना की वे अभी बंगालियों से बहुत पीछे हैं लेकिन उन्हें कम–से–कम अपनी हालत को बेहतर बनाने का एहसास तो है। मुसलमान भाइयों की तरह वे हाथ–पर–हाथ धरे बैठे तो

नहीं हैं। अगर मुसलमान भाई भी स्कूलों और कालेजों में ज़्यादा–से–ज़्यादा तादाद में जाने लगें, सरकारी दफ्तरों में और वकालत और डाक्टरी जैसे पेशों में वें भी उसी तरह भरें दिखाई दें जिस तरह बंगाली भरे हुए हैं तो सोचो मुसलमानों की हालत में कैसा इंक़लाब आ जाएगा। खुशहाली, फ़राग़त, इज़्जत–सब कुछ उनको मिल जाए। दुनिया में किसी जन्नत का तसव्वुर किया जा सकता है तो यक़ीनन ऐसी जन्नत उनको इस दुनिया में मिल सकती है। लेकिन इसके लिए उन्हें उस रास्ते पर चलना होगा जो सर सैयद ने बताया है। दूसरे तमाम रास्ते दोज़ख़ की तरफ़ जाते हैं।"[249]

समय के साथ साथ चलना चाहिए। अनदेखा जन्नत के बारे में सोचने से अच्छा है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके नौकरियाँ पाएं। आर्थिक रूप से मजबूत बने और इसी दुनिया में जन्नत का अनुभव करें। खास कर मुसलमानों को इसको ध्यान में रखना आवश्य होगा।

4.2.8. हिन्दू–मुस्लिम और आर्थिक हैसियत

हिन्दू धर्म में बड़े भाई को छोटा भाई आदर्श मानता है। जैसे राम और लक्ष्मण। इस आधुनिक समाज में दो मज़हबों को भाई के रूप देखा जा रहा है। साम्प्रदायिक भाजपा और उसके साथी संगठन के नेताओं का कहना है कि मुसलमानों को इस देश में रहना है तो छोटे भाई की तरह रहना होगा। उन्हीं के अनुसार अगर हम सोचेंगे तो वह तो बहुत ही अच्छी बात है। छोटा हो या बड़ा हो भाई, भाई ही होता है। इसमें क्या फर्क पड़ता है ? लेकिन यह तो ज़रूर होगा कि एक बाप यानी पिता की दृष्टि में तो अपने दोनों बेटे बराबर होते हैं। अपनी जायजाद में भी दोनों को समान हिस्सा देता है। इसमें ज़रा भी इधर–उधर हुआ तो भाई–भाई ही एक दूसरे का दुश्मन बन जाते हैं। हिन्दुओं ने मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करना चाह रहे हैं। यह परोक्ष रूप से हो रहा है। आज सच्चर कमेटी के रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि मुसलमानों की हैसियत क्या है ? आज मुसलमान राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से हिन्दुओं से कई गुना पीछे हैं।

---

249 पृष्ठ संख्या, 228–229, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

उनकी संस्कृति को नुकसान पहुँचाया जा रहा है। अगर इस देश में हिन्दू और मुसलमानों में भाई चारा बनाए रखना हो तो, इस देश की सम्पत्ति में अपना बराबर यानी जनसंख्या के हिसाब से जितना संख्या, उतना भाग देना होगा। इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं–

"दो सगे भाइयों में भी मेल–जोल और मुहब्बत तभी क़ायम रह सकती है जब दोनों की हैसियत में ज़्यादा फ़र्क़ न हो और दोनों में से किसी को भी यह अंदेशा न हो कि कोई एक– दूसरे के हक़ को हड़पने की नीयत रखता है। बदक़िस्मती से मुसलमान अपनी मौजूदा हालत में हिन्दुओं से बहुत पीछे हैं और गुज़िश्ता ज़माने में उनको जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ा है उनकी वजह से वह इतने कौफ़–ज़दा हो गए हैं कि फ़ूँक–फ़ूँककर क़दम रखना उनके लिए ज़रूरी हो गया है। अगर उनके दिल में यह अंदेशा पैदा होता है कि हिन्दू उनके कलचर और समाजी हैसियत को तहस–नहस कर देना चाहते हैं और इस अंदेशे की तस्दीक कुछ वाक़यात और हिन्दुओं के रवैये से भी हो जाती है तो मुसलमानों का अपने तहफ़्फ़ुज़ के खयाल से पेशबंदी की तदबीर करना किसी भी लिहाज से ग़लत नहीं कहा जा सकता। मेल–जोल और भाईचारा बनाए रखने के लिए अगर कुरबानी देनी ही पड़ी तो इंसाफ़ का तक़ाज़ा यही है कि कुरबानी उसे ही देनी चाहिए जो ऐसी कुरबानी ज़्यादा आसानी से दे सकता है। मुसलमान ऐसी कुरबानी पहले ही दे चुके हैं और अब उनके पास देने को कुछ रहा ही नहीं है। ऐसी सूरते हाल में हिन्दुओं का बड़े भाई की हैसियत से फ़र्ज़ हो जाता है कि कुरबानी उनकी जानिब से ही दी जाए। लेकिन फ़िलहाल ऐसी कोई तवक्क़ो रखनी फ़िज़ूल होगी। ऐसी तवक़्क़ो दरअसल एक तरह की ख़ुदफ़रेबी होगी क्योंकि बंगाल की तक़सीम के मामले में हिन्दुओं का रवैया इस बात का सबूत है कि मुसलमानों की भलाई और बहबूद का उन्हें ज़रा भी ख़याल नहीं है।"[250]

---

[250] पृष्ठ संख्या, 241, सभा पर्व, बदीउज़्ज़माँ, प्रकाशन, शब्दकार 1994

मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करने का नारा दिया जा रहा है। गुजरात राज्य में गुजराती भाषा में जो पर्चा निकाले गए हैं उस में लिखा हुआ है कि मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करो। उनके दुकान पर कुछ खरीदो मत। मुसलमान के पास शिक्षा ग्रहण नहीं करना। उनके सिनेमा नहीं देखना... आदि लिखा हुआ है। अंत में लिखा हुआ है कि इसकी जेराक्स करवा के जो वितरण करेगा उसे श्री राम जी और हनुमान जी का अशीर्वाद मिलेगा।

4.2.9. सुन्नी–शिया और गरीबी

"वैसे हमारी राय में दूसरे दर्जेवाली बात भी एक अतिरंजना है। एक सरकारी रिपोर्ट के मद्देनजर बड़े–बड़े शहरों में आबाद मुसलमानों में सिर्फ 38 प्रतिशत ऐसे लोग हैं, जिनकी प्रतिव्यक्ति आमदनी 135 रुपये माहवार है। बाकी 62 प्रतिशत मुसलमान इतना भी नहीं कमा पाते। इस आमदनी के दायरे में आनेवाले हिंदुओं की संख्या सिर्फ 24 प्रतिशत है। दूसरे लफ्जों में इसका मतलब यह हुआ कि शहरों में बसी मुस्लिम आबादी हिंदुओं के मुकाबले अधिक गरीब है।" [251]

किसी भी देश की जनता शत प्रतिशत शिक्षित हों तो मान लीजिए कि वहाँ की सरकार कितनी अच्छी है। अपने देश के प्रति और अपने प्रजा के प्रति उस सरकार का सेवा भाव अपूर्व होगा। आज के जामाने में यदि देखा जाय तो हमारे ही देश में जितने ब्राह्म्मण पढ़े–लिखे हैं उतने और कोई नहीं दिखेंगे। इनके बाद ऊँची जाति के हिन्दू पढ़–लिखे हैं। अंतिम स्थान पर हैं अनुसूचित जाति और जन जाति के लोग। इनकी तुलना में आज मुसलमानों की स्थिति पढ़ाई–लिखाई में बहुत खराब हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है? इससे पता चलता है कि कोई भी सरकार किसी न किसी के पक्ष में रहती है। इस देश में कहने के लिए सरकार सब की हैं। लेकिन वास्तव में नहीं हैं। इसीलिए कुछ जाति के लोग पढ़ने–लिखने में आगे हैं। जो पढ़े–लिखे हैं, नौकरी भी उन्ही को मिलती है। उसी

---

[251]पृष्ठ 97, मुसलमान क्या सोचते हैं, चयन एवं सम्पादन राजकिशोर और अशोक भारद्वाज, वाणी प्रकाशन 1995

प्रकार जब मुसलमान इस देश में नवाब थें तो उनके लोग पढ़ने–लिखने में आगे थें। उसमें भी सुन्नी के नवाब रहा तो सुन्निओं को प्रोत्साहन मिलता था। शिया के नवाब रह तो शियाओं को। अवध के शिया नवाबों के संरक्षण के कारण शिया ज्यादा पढ़े–लिखे थें और नौकरी पर भी थें। निम्न वर्ग के सुन्नी मुसलमानों में विपन्नता और गरीबी ज्यादा ही दिखाई देती थीं। इन आदि समस्याओं को लेकर 'सभा पर्व' उपन्यास में चर्चा की गई है।

"लेकिन तक़रीबन सबके सब पढ़े–लिखे और ख़ुशहाल थे। जैसी विपन्नता और ग़रीबी निम्न वर्गों के सुन्नी मुसलमानों में दिखाई देती थी वैसी इन शीया मुसलमानों में नहीं थी। शायद यह स्थिति अवध के शीया नवाबों के संरक्षण के कारण थी।"[252]

जिनके पक्ष में सरकार होती है उनके लिए सब कुछ है। इसलिए इस समाज में बदलाव आना चाहिए।

4.2.10. मुसलमान और नौकरी

इस देश में पढ़ने–लिखने और नौकरी करने का अधिकार सब को नहीं था। कुछ ही ऊँची जाति के लोगों का काम कहा जाता था। नीची जाति के लोगों को पढ़ने–लिखने का अधिकार नहीं था। मुसलमान इस देश में आने के बाद थोड़ा सा मौका उन गरीबों को और नीची जाति के लोगों को मिला था। आज लोकतंत्र में हम जी रहे हैं। हिन्दूवादी लोग और पार्टियाँ सामने आ रही हैं। ये लोग मुसलमानों को आर्थिक बहिष्कार करना चाहते हैं। इसके लिए उनको पढ़ने और लिखने का मौका नहीं दे रहे हैं। कुछेक पढ़े–लिखे हैं तो भी उनके लिए नौकरी मिलना मुश्किल हो रही है। इन समस्याओं को 'मुसलमान' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है–

[252] पृष्ठ संख्या, 326, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

" 'मेरा अक़ीदा अब मज़बूत होता जा रहा है कि इस मुल्क में मुसलमानों के लिए अब एक अच्छी नौकरी की तलाश एक गम्भीर समस्या बन गयी है...' "[253]

आज के जामाने में पैसे के बिना कोई काम चलता ही नहीं। मुसलमान लोग सूबह से शाम तक अल्लाह अल्लाह करते रहें और खुश्बू सूँघते बैठने से काम नहीं चलता है। सबसे जरूरी है कि पैसे कमाने के लिए प्रैक्टिकल बनना चाहिए। इन आदि समस्याओं पर 'बयान' उपन्यास में चर्चा की गयी है जो नीचे उद्धृत है।

"लो...मुन्ना की सुनो...कहता है....खुश्बू सूँघने से अल्लाह मियाँ पैसे थोड़े ही बरसा देंगे... अरे, प्रैक्टिकल बनिये अब्बा मियाँ प्रैक्टिकल । सबसे जरूरी चीज आज के जमाने में पैसे कमाना है..."[254]

पैसे में ही परमात्मा है। इसलिए उनका कहना है कि पैसे कमाने के लिए प्रैक्टिकल बनना होगा। जीने के लिए कुछ न कुछ पैसा कमाना ही है, लेकिन जिन्दगी का मक्सद केवल पैसा कमाना ही है, यह ठीक नहीं है।

4.2.11. मुसलमान–दहेज और आर्थिक स्थिति

एक जमाना ऐसा था जो मुसलमानों की हवा चलती थी। वे राजा थे। उनका राज्य था। उस राज्य में हर एक वस्तु पर उनका अधिकार था। रहने के लिए बड़े बड़े मकान बनाए करते थे। कुछ सालों के बाद इनकी नवाबगिरी चली गई है यानी इनका राज नहीं रहा। बीच में अंग्रेज आये अपना राज्य बनाए है। इसके बाद भारत को आज़ादी मिली। देश साम्प्रदायिकता के नाम पर यानी धर्म के नाम पर तक्सीम हुआ है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बनें हैं। लगभग यानी अधिक मुसलमान पाकिस्तान चले गये हैं। कुछ लोग

[253] पृष्ठ संख्या, 96, मुसलमान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

[254] पृष्ठ संख्या, 20, बयान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

भारत छोड़ना नहीं चाहते हैं जो यहाँ ही रह गये हैं। अब हिन्दुओं का राज्य बनगया है। ये अल्पसंख्यक बन चुके हैं। इनकी आर्थिक परिस्थिति बहुत बुरी हो चुकी है। घर में लड़की जन्मी तो डरने लगते हैं। बड़ी होने के बाद शादी में दहेज देना होता है। इनके पास तो नौकरी नहीं हैं। कुछ काम करके कामाये तो कितना कमाये! खाए क्या और जमा करे क्या?। तो लेखक मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी का कहना है कि इस देश में मुसलमानों को आर्थिक रूप से वंचित किया जा रहा है। इन समस्याओं को 'बयान' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है जो नीचे उद्धृत है।

"मुन्ना गुस्से में उठा। एक तो लड़की हुई। खर्चे का घर बढ़ती ख़ानादारी और महँगाई। क्या खाये, क्या जमा करे आदमी। आपको सोचना चाहिए अब्बा। दो दुकानें भी उठ गयीं तो निश्शी के दहेज के वास्ते बैंक में कुछ पैसे जमा हो जाएंगे। क्लर्की ले मिलता क्या है जो बड़ा होने पर उसके दहेज में दूँगा। दो दुकानों से घर की रौनक नहीं खत्म हो जाएगी। और घर में है क्या ? मोटी–मोटी दीवारें। बेसलीका कमरे। पुराने लोगों को कोई सऊर ही नहीं था मकान बनाने का सिर्फ खाने–पीने का शौक था।"[255]

उक्त उद्धरन से यह पता चलता है कि मुसलमानों की बुरी हालत है। आर्थिक रूप से वे वंचित है, ऐसा करने से सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक...आदि रूपों से वंचित अपने आप हो जाते हैं। यही करना चाहते हैं।

4.3. चुनाव, वायदे, दंगे और आर्थिक राजनीति

"हिंदुत्व हमले को कुछ रूढ़िवादी विचारों से भी समर्थन मिलता है। वह अतीत के कुछ चुने हुए मूल्यों को निकाल कर वर्तमान पर थोपना चाहता है। वह धार्मिक प्रवचनों का प्रयोग करता है, हिंदू राजाओं के स्वर्णिम अतीत को महिमा मंडित करता है, स्त्रियों को पैतृक नियंत्रण में रखना चाहता है और जीवन पद्धति पहनावे आदि में अपने निर्देशों को

[255] पृष्ठ संख्या, 37, बयान, मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी, प्रकाशन, साशा पब्लिकेशन्स 1998

थोपना चाहता है। अपने राजनैतिक आधार को मजबूत बनाने के लिए इसने दूसरे धार्मिक व्यवसायिकों का प्रयोग किया है। यह राष्ट्रवादी उन्माद पैदा करने के लिए धर्म का बड़े प्रभावी ढंग से प्रयोग करता है। इसी वजह से गुजरात में नरेंद्र मोदी तीसरी बार सत्ता में आ गए हैं।"[256]

अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक सन्दर्भ को लेकर देखने से हमको यह समझ में आता है इन उपन्यासों में चित्रित क्षेत्रों में लोग गरीब हैं। अशिक्षित हैं। बेरोजगार हैं। गाँव के लोग कृषि पर आधारित होते हैं, लेकिन यहाँ कृषि भी नहीं होती हैं क्योंकि सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था नहीं होती है। यहाँ के राजनीतिक नेता यह कभी नहीं सोचते हैं कि उक्त समस्याओं का हल करें। चुनाव के समय में आते हैं और बड़े बड़े वायदे करते हैं, चले जाते हैं। यदि राजनीतिक नेता को अपनी जीत की शंका होती तो वे धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे करवाते हैं। बल्कि उस इलाके को आर्थिक रूप से विकास नहीं करवाते हैं।

4.3.1. नौकरी और राजनीतिक नेता

मेवात एक ऐसा क्षेत्र है कि वहाँ पूरे के पूरे गरीब जनता हैं। उस क्षेत्र में कोई उद्योग नहीं हैं। खेती करने के लिए सिंचाई नहीं है। व्यापार करने के लिए तो वह उतना बड़ा शहर भी नहीं है। वहाँ के लोगों को शिक्षा भी नसीब नहीं है। दूसरी तरफ से सूखा पड़ता जा रहा है। लोग भूखे मर रहे हैं। इन समस्याओं से कौन बचा सकता है ? वे लोग ही बचा सकते हैं जो राजनीतिक नेता हैं और उस क्षेत्र के विधायक। भारत सरकार से बातचीत करके उस इलाके में रोजगार दिलाने हेतु कुछ उद्योग खुलवा सकते हैं। लेकिन ये जब भी चुनाव आता तब अनेक वायदे करते हैं। अनेक वचन देते हैं। लेकिन कुछ भी नहीं करते हैं। चुनवों में धर्म और नस्ल के नाम पर राजनीति करते हैं और वोट बटोर लेते हैं। दिल्ली पहुँच जाते हैं। एक मेवात का लाला नामक गरीब, बेरोजगार अपने क्षेत्र के

---

[256] पृष्ठ, 81, अंक 79, उद्भावना,(सं.) अजेय कुमार,(साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) अगस्त–2008

विधायक के पास जाके निवेदन करता है कि उनको एक छोटी–मोटी नौकरी दिला दी जाए। विधायक उनको अपने घर पर बुला लेता है। अपने ही घर में काम करवाता है। नौकरी कब मिलती, क्या ? यह कुछ भी नहीं बताता है। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

"ठीक है लाला, फिर तो तेरा बारा में कुछ सोचणी पड़ेगी......।" पहले करीम हुसैन ने फ़रर्शी की नै से लंबा कश खींचा और कुछ पल सोछने के बाद फिर बोला, " अच्छो ऐसो करियो, धेरे नौ बजे तू मेरी कोठी पे आ जाइयो लत्ता–कपड़ा लेके.....समझ ले धेरे सू तेरी नौकरी लग्गी......।"[257]

राजनीतिक नेताओं ने जनता के हित के लिए कभी काम नहीं किये। ये हमेशा देश को और देश की जनता को लूटते ही रहे हैं। ये धर्मों के बीच लड़ाई करवाते रहे हैं। जातियों के बीच लड़ाई करवाते रहे हैं। वे तनाव उत्पन्न इसलिए करते हैं कि फिर से सत्ता में आ सके हैं।

4.3.2. चुनाव–वायदे

आज़ादी के पहले हमारा देश विदेशियों के कब्जे में था। विदेशियों ने यहाँ से हर तरह की सम्पत्ति लूट कर ले गये तथा पूरे भारतवासियों को अपना गुलाम बनाए। वे इस देश के लिए और यहाँ के गरीब और गरीब किसान के लिए कुछ नहीं किये। उनके अमानवीयता के विरोध में पूरा भारत एक हुआ और उनको इस देश से भगाया गया। परिणामस्वरूप भारत देश को आजा़दी मिली है। तब लोग सोच रहे है कि अभी तक तो विदेशियों के पालन में थे, जिससे देश के गरीब से गरीब किसान भूखा मर रहा। लेकिन उनको यह आशा थी कि कम से कम आजा़दी के बाद इन गरीब किसानों को पेट भर खाना मिलेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ जैसे भारतीय किसान सोच रहे थे। आजा़दी मिले छः

[257] पृष्ठ संख्या, 76, काला पहाड़, भगवानदास मोरवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन 1999

दशक हो गए हैं। किसान और गरीब मजदूरों में उतना बदलाव नहीं आया है जितना आना चाहिए था। आजाद भारत के नेता हर पाँच साल में एक बार आते हैं, बड़े बड़े वायदे करते हैं, वोट बटोर लेते हैं, फिर वापस चले जाते हैं। फिर पाँच साल के बाद आते हैं वायदे करते हैं कि जैसे नहर खुदवाने, रेलवे लाइन बिछवाने का वायदा, किंतु चुनाव खत्म होने के बाद वे गायब हो जाते हैं। इनके दिए गए वायदे हवा में उड़ जाते हैं। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में देखा जा सकता है।

"आज़ादी से लेकर आज तक इन पाँच दशकों में यही सब तो देखने–सुनने को मिलता आ रहा है। चुनावों में हर बार बड़े–बड़े वायदे किए जाते हैं–नहर खुदवाने का वायदा, रेलवे लाइन बिछवाने का वायदा, किंतु चुनाव खत्म होते ही नहर और रेलवे लाइन या तो महज कल्पना की सलाइयों में उलझ कर रह जाते हैं, या फिर बरसात में रेत की गीली देह पर अँगुलियों से उकेरी गई लकीरें, जो धूप लगते ही धूल से फिर दब जाती हैं।"[258]

राजनीतिक नेता अपने फायदे के लिए और सत्ता में बने रहने के लिए धर्म का इस्तेमाल करते हैं। साम्प्रदायिक दंगे करवाते हैं। जाति और नस्ल के नाम पर लोगों को बाँटते हैं। आर्थिक समस्याओं से लोगों का ध्यान को धर्म और जाति के तरफ आकर्षित करवाते हैं।

4.3.3. दंगे और गरीब–बेरोज़गार

साम्प्रदायिक पार्टियाँ और उनके साथी संगठन हिन्दुत्व सिद्धांत को सामने लाते हैं। हिन्दुत्व के नाम पर और उसकी रक्षा के नाम पर मुसलमानों को खत्म करने की साजिश रचनाते हैं। भाजपा, आर. एस. एस और बजरंगदल...आदि संगठनें इसी काम में लगी हैं। गुजरात में मुसलमानों की जनसंख्या ज्यादा थी। वे आर्थिक रूप से भी आगे थे। गुजरात में मुसलमानों का व्यापार और धंधा भी अच्छा चल रहा था। कुल मिलाकर मुसलमान खुशहाली

---

[258] पृष्ठ संख्या, 159, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

में जी रहे थे। इसे देखकर साम्प्रदायिक लोगों को बरदाश्त नहीं हुआ। हिन्दू और मुसलमानों में साम्प्रदायिक दंगे इसलिए करवाया गया। जहाँ–जहाँ मुसलमान हैं वहाँ–वहाँ दंगे करवाये गये। उनकी दुकानें लूटी गयीं। घरों में आग लगई गयी। उनकी स्त्रियों पर अत्याचार किया गया। इस प्रकार जहाँ–जहाँ मुसलमान आर्थिक रूप से आगे और खुशहाली से जी रहे थे, वहाँ– वहाँ दंगे करवाते हैं। और आर्थिक बहिष्कार करते रहे। इन समस्याओं को नीचे दिये गये उद्धरण में देख सकते हैं–

“देख लेना, यहाँ भी जमकर फ़साद होगा। यहाँ मुसलमानों की आबादी अच्छी–ख़ासी है। मुसलमान खुशहाल हैं। तिजारत में भी आगे हैं। आर.एस.एस जैसी जमाअतों की आँखें तो बस ऐसी ही शहरों पर टिकी रहती हैं––दंगे करवा दो मुसलमानों को गरीब और बेरोज़गार बना दो। आर्थिक तौर पर उन्हें इतना कमज़ोर कर दो कि वे सर ही न उठा सकें।”[259]

दंगे करवाने का मकसद सिर्फ इतना रहा है कि उनको बेरोजगार बना दिया जाए और आर्थिक तौर पर इन्हें इतना कमज़ोर कर दिया जाए कि वे सर उठा कर भी न जी सके। इस वजह से उनका आर्थिक बहिष्कार भी कर रहे हैं।

4.4. गरीब–पिछड़ा वर्ग, बेरोजगार–उद्योग और सरकारी आर्थिक योजना

“कुल रोजगार में उनकी स्थिति तथा अन्य मानदंडों से उनके सामाजिक स्तर की वास्तविकता साफ हो जाएगी।

मुस्लिम अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति को समझने के लिये सरकार ने सच्चर कमेटी की नियुक्ति की थी। इस कमेटी की रिपोर्ट चौंकाने वाली है। इसके अनुसार भारत में उनकी आर्थिक स्थिति पहले से बद्तर हुई है और समाज के सब क्षेत्रों में उनका प्रतिनिधित्व पहले से खराब होता जा रहा है।

---

[259] पृष्ठ संख्या, 46, मुसलमान–मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में मुसलमानों को नौकरियों में जगह नहीं मिली है। निम्नस्तरीय नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व काफी कम है, करीब 6 प्रतिशत। जैसे ही हम उच्चस्तरीय नौकरियों में जाते हैं, यह प्रतिशत कम होकर 0.5 प्रतिशत रह जाता है, जबकि जनसंख्या में वे 13.4 प्रतिशत हैं।मुसलमानों को ज्यादातर स्वरोजगार पर आश्रित होना पड़ता है। बैंक सुविधाएं भी उन्हें कम मिलती हैं।"[260]

हमारे देश को आज़ाद हुए साठ साल हो चुके हैं। आज भी इस देश में गरीबी है। अंधविश्वास है, इसी कारण लोग पिछड़े हैं। शिक्षा की व्यवस्था ठीक नहीं हैं। मेवात के इलाके में कोई उद्योग नहीं है। शिक्षा और उद्योग जहाँ नहीं रहता वहाँ रोजगार नहीं रहता है। जहाँ बेरोजगारी है वहाँ और उस समाज में पिछड़ापन है। इन सभी समस्याओं का हल सरकार को करना चाहिए, लेकिन आज सरकार भी कुछ नहीं कर रही है।

4.4.1. गरीब–पिछड़ा वर्ग

दुनिया का कोई भी देश हों वहाँ किसानों का महत्व सबसे ज्यादा होता है। अगर किसान नहीं हैं तो कृषि नहीं है। कृषि नहीं है तो अनाज नहीं है। अनाज नहीं है तो खाना नहीं है। इसीलिए कहा जाता है कि किसान उस देश की रीढ़ है। किसानों को खेती करने और अनाज़ उगाने के लिए सिंचाई की जरूरत है। कुछ इलाके में नदी पर डैम बनवा के पानी को खेतों में सिंचाई के लिए उपयोग करते हैं। कुछ इलाकों में बड़े–छोटे तालाब रहते हैं जिससे वहाँ के गरीब–किसान अपनी खेत की सिंचाई करते हैं। लेकिन मेवात एक ऐसा इलाका है जहाँ गरीबी ही गरीबी नजर आती हैं और पिछड़ा हुआ है। इस इलाके में कई सालों से बारिश नहीं होती है। परिणामस्वरूप वहाँ के जोहड़ और तालाब सूख गए हैं। मटर, जौ, चना, जैसी फसलें पैदा होती थी वह भी अब बंद हो गई हैं। इन समस्याओं से मेवात के लोग चिंता ग्रस्त हैं। ये सब मिल कर प्रधान मंत्री को एक निवेदन पत्र में लिखते

---

[260] पृष्ठ संख्या, 74–75, अंक 79, उद्भावना, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) अगस्त–2008

हैं कि हमारी समस्याओं का हल करें और सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ कराई जाएँ। 'मेवात नहर' का निर्माण जल्दी करवाएँ। इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं।

"माननीय प्रधामंनत्री जी, जैसा कि आप जानते हैं हमारा यह इलाका बेहद गरीब और पिछड़ा हुआ है। यहाँ पिछले कई सालों से न के बराबर बारिश हो रही है जिसके कारण सारे जोहड़ और तालाब सूख चुके हैं। मटर, जौ, चना जैसी फसलें पैदा होनी बंद हो गई हैं। इसलिए इलाके की ओर से चौबीसी की पहली माँग यह है कि मेवात में सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएँ मुहैया कराई जाएँ और बरसों से मंजूर 'मेवात नहर' का निर्माण जल्दी शुरू कराया जाए......।" [261]

वास्तव में मेवात के राजनीतिक नेताओं ने कभी वहाँ के गरीब किसानों के बारे में नहीं सोचा। चुनाव के समय आकर साम्प्रदायिक राजनीति करते हैं। नस्लवादी, जातिवादी राजनीति करते हैं। वहाँ की जनता की वोट बटोर लेते हैं। फिर वापस दिल्ली चले जाते हैं। इसलिए वहाँ के गरीब–किसान बेहद चिंताग्रस्त हैं।

4.4.2. बेरोजगार–उद्योग

देश के विकास के लिए कृषि का बड़ा महत्व होता है। इसके बाद उद्योग का बड़ा महत्व होता है। किसी भी देश में गरीबी हटाना हों और रोजगार दिलाना हों तो ये दोनों यानी कृषि और उद्योगों का साथ साथ विकास होना ज़रूरी है। स्वतंत्रता के बाद इस देश में केंद्र सरकार के द्वारा कुछ उद्योग खोले गये हैं और राज्य सरकार के द्वारा भी कुछ उद्योग खोले गये हैं। ये भी बड़े बड़े नगरों में खोले गये हैं। लेकिन बीसवीं सदी के आठवे दशक से ही उद्योग का निजीकरण धीरे से शुरु हुआ था, नब्बे दशक में आते आते इस की गति में ज्यादा तेजी आ गयी है। आज सरकारी उद्योगों को तो उँगली पर गिना सकते हैं। सब के सब प्राईवेट उद्योग हैं। इनमें नौकरी भी उनके अपने रिश्तेदारों को ही दिलायी

---

[261] पृष्ठ संख्या, 18, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

जाती हैं। इस देश के गरीब और किसानों के युवकों को नौकरी नहीं मिलती हैं। इसका उदाहरण मेवात है। यहाँ के गरीब और किसान के युवकों को नौकरी नहीं हैं। भगवानदास मोरवाल अपने 'काला पहाड़' उपन्यास के माध्यम से भारतीय सरकार को निवेदन करते है कि मेवात इलाके में उद्योग लगाया जाय और बेरोजगार युवकों को रोजगार दिलाय जाय। इन समस्याओं को इस उद्धरण में देख सकते हैं–

"......हमारी तीसरी माँग है कि यहाँ के बेरोजगार युवकों को रोजगार दिलाया जाए। इसलिए आपसे माँग की जाती है कि देश के इन निर्माताओं के भविष्य को ध्यान में रखते हुए इस इलाके में शीघ्र ही उद्योग लगाने की योजना तैयार की जाए ताकि बेरोजगार....... "[262]

जैसा उपन्यास में चित्रित किया गया है कि मेवात एक ऐसा इलाका है जहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति बड़ी विचित्र लगती हैं। यहाँ के राजनीतिक नेताओं ने सत्ता प्राप्त करने के लिए धर्म का, नस्ल का, जाति का इस्तेमाल करते हैं। वहाँ के गरीबों और बेरोजगारों के बारे में नहीं सोचते हैं।

4.4.3. सिपाही–लूटना

एक धर्म–सम्प्रदाय के अनुयायी दूसरे धर्म–सम्प्रदाय के अनुयायिओं पर द्वेष, नफरत, घृणा, उनपर हमला या दंगे करते हैं तो वह साम्प्रदायिकता होती है। आखिर ये एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायिओं पर हमला क्यों करते हैं ? ये इसलिए कि दूसरे धर्म और उसके अनुयायिओं को राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से वंचित करके गरीब बनाना चाहते हैं। इसीलिए इन दंगों के समय में लूट–पाट ज्यादा होता हैं। इसको रोकने के लिए भारत सरकार सिपाहियों को भेजती हैं। लेकिन यही सिपाही लूट–पाट करने में सहयोग देते हैं, तो ऐसे में, आम जनता को कौन बचा सकता है ? मेवात के नघीणा में

---

[262] पृष्ठ संख्या, 19, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

साम्प्रदायिक दंगे हुए। वहाँ के सिपाही दुकान और घर लूटने को कहता है। इससे पता चलता है कि साम्प्रदायिकता को फैलाने वालों में प्रथम स्थान पर सरकार और उनके कर्मचारी और राजनीतिक नेता हैं। इन सभी समास्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास के माध्यम से देखा जा सकता है।

"सिपाई–विपाई तो घणाई हैं ताऊ.......पर वे तो मजा सू तमासो देख रा हैं और मैंने तो एक सिपाई का मूँ सू ई भी सुणी ही के, ऊ एक आदमी सू कह रो हो अरे, तम या बड़कली पे काँई लू धूमस कर रा हो हून् नघीणा में जाओ और कुछ दुकान–वुकान लूटो।"[263]

सरकार और सरकारी कर्मचारियों साम्प्रदायिकता को फैलाते हैं। सत्ता में बने रहने के लिए राजनीतिक नेता धर्म का इस्तेमाल करते हैं। दूसरे धर्म के लोगों को गरीब बनाते हैं।

4.5. राजनीतिक नेता–पूँजीपति और गरीब जनता

"हाल के दिनों में मौजूदा सत्ताधारी कांग्रेस ने जिस तरह देश को बड़े पूँजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों गिरवी रखने के लिये करार किये हैं और कलिंगनगर, सिंगूर, नन्दीग्राम, लालगढ़, बस्तर और झारखण्ड के आदिवासियों को बेदखल करना शुरू किया है, वह किसी भी तरह की आलोचना को सहन करने के मूड में नहीं है।"[264]

राजनीतिक नेता और पूँजीपति दोनों आपस में समझौता कर लेते हैं। दरअसल पूँजीपति देश और जनता को लूटते हैं। राजनीतिक नेता जनता के द्वारा चुने जाते हैं। इनका काम है कि जनता की सेवा करना और जिस क्षेत्र से चुने गये हैं, उस क्षेत्र को राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से समृध्दि लाए। आज के राजनीतिक नेता क्या कर रहे हैं ? ये सब के सब भ्रष्टाचारी बने हैं। पैसे देकर वोट खरीदते हैं।

[263] पृष्ठ संख्या, 420, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[264] पृष्ठ संख्या, 64, सबलोग, जुलाई–2011

लाखों–करोड़ों रुपये चुनाव पर खर्चा करते हैं। ये इतने सारे पैसे कहाँ से लाते हैं ? ये पूँजीपतियों के पास लाते हैं। चुनाव जीतने के बाद वह विधायक जनता के लिए काम नहीं करता बल्कि पूँजीपतियों के लिए काम करता। ये दोनों मिल कर गरीबों और उनकी रोटी से खेलते हैं।

4.5.1. एक रोटी बेल रहा है, दूसरा रोटी से खेल रहा है

आज हमारे भारतीय समाज की ऐसी स्थिति है जो एक रोटी बना रहा है तो, दूसरा रोटी से खेल रहा है। यह दूसरा न तो रोटी खाता है न दूसरे यानी भूखे को खाने देता है। यहाँ की गरीब जनता भूख से मर रही है। दूसरी ओर अमीर और धनवान लोग पूरे समाज के धन, दौलत और अनाज को इकट्टा करके अपने पास रखे हुए हैं। लोगों के पास कुछ नहीं है। करने को काम भी नहीं हैं। स्वतंत्र भारत में प्रजातंत्र अगर है तो प्रजा के द्वारा जो चुने गये प्रतिनिधि यानी विधायक क्या कर रहे हैं ? ये तो जनता को गुमराह करके चुनाव में जीत जाते हैं फिर वापस मुड़के जनता की तरफ नहीं देखते। ये पूँजीपतियों के साथ हाथ मिला लेते हैं। ये नेता लोग और पूँजीपति लोग मिल के वहाँ के गरीब और नीची जाति के लोगों को और गरीब बनाना चाहते हैं। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में चर्चा किया गया है जो इस प्रकार है–

"ई तो अपना–अपना भाग्य की बात है.....अरे, कुछ तो रोटीन की बाट में मर रा हैं, और कुछ रोटीन्ने खाके मर रा हैं..... ।"[265]

मेवात के लोग सपना देख रहे हैं। कई सालों से वहाँ के राजनीतिक नेताओं ने यह वादा किया था कि मेवात की गरीबी हटायेंगे और इसके लिए यहाँ फैक्टरी खुलवायेंगे, रेल की पट्टी बिछवायेंगे। मेवात लोग इसी का सपना देख रहे हैं। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में चर्चा किया गया हैं, जो इस प्रकार हैं।

---

[265] पृष्ठ संख्या, 163, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

"होएगो कहा, अन्यायी यहा इलाका में फैकटरी खुलेंगी......रेल की पटड़ी बिछेंगी......फिर हम भी रेल में बैठ के जाए करेंगा दिल्ली.......हमारा बाल–बच्चा भी फैकटरीन् में जांगा नौकरी करण...... ।"[266]

राजनीतिक नेताओं ने कभी भी तहे दिल से प्रजा के बारे में नहीं सोचा। मेवात में गरीब लोग जैसे के वैसे हैं। इन के सपने, सपने ही रह गए हैं।

4.6. रिश्वत खोरी आर्थिक व्यवस्था

"सारा आंदोलन भ्रष्टाचार को पूरे परिप्रेक्ष में देखने में असमर्थ है। या यह कहा जा सकता है कि यह उसकी सीमा है। मध्यवर्ग के नेतृत्व में चलनेवाले इस अ–राजनीतिक आंदोलन के कर्णधार यह समझने को तैयार नहीं हैं या फिर जानबूझ कर इससे बचना चाहते हैं कि यह भ्रष्टाचार आर्थिक नीतियों में पिछले दो दशकों में बड़े पैमाने पर हुए परिवर्तनों का हिस्सा है। न ही यह समझने की कोशिश हो रही है कि इस का कोई संबंध चुनाव की खर्चीली प्रक्रिया से भी हो सकता है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि हमारे समाज में भ्रष्टाचार पहले भी था पर 1990 के बाद के उदारीकरण के दौर में यह कई गुना बढ़ गया है।"[267]

आज भारत देश में रिश्वत खोरों का साम्राज्य बन गया है। आज़ादी के पहले इस देश को गोरों ने लूटा है। आज़ादी के बाद इस देश को भारतीय ही लूट रहे हैं। यहाँ के राजनीतिक नेता और व्यापारी लोग मिलके लूट रहे हैं। विदेश यानी स्वीस बैंकों में काला धन सबसे ज्यादा भारत से ही जमा हुआ है। भ्रष्टाचार के विरोध में अन्ना हजारे जैसे लोग संघर्ष कर रहे हैं। रिश्वत या भ्रष्टाचार यह क्या आज की ही समस्या है ? नहीं यह तब से आ रहा है जब से इस पृथ्वी पर भगवान की कल्पना की गयी हैं। पहले यह चढ़ावा, इनाम

---

[266] पृष्ठ संख्या, 167, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[267] पृष्ठ संख्या, 2, समयांतर, (सं.), पंकज विष्ट, मई, 2011, दिल्ली

... आदि नामों से प्रचलित हैं। उन दिनों में पहले काम हो बाद में रिश्वत दिया जाता था। आज पहले रिश्वत बाद में काम हो गया है।

4.6.1. पहले दाम, पीछे काम

आज–कल की दुनिया में रिश्वत बढ़ गयी है। रिश्वत के बिना कोई काम नहीं करता। तो क्या यह रिश्वत की परम्परा आज से ही शुरु हुई है ? नहीं, इस पर गौर करने से यह पता चलता है कि जब से ईश्वर की कल्पना की गयी है तब से यह रिश्वत का लेन देन शुरु हुआ है। तो इसका नाम सीधा रिश्वत नहीं रहा है। इसके अच्छे अच्छे नाम दिये गये हैं। जैसे इनाम, बख़्शीस, दस्तूरी, चढ़ावा और मनौती कहते थे। इस तरह के नाम कुछ भी हों लेकिन रिश्वत ली जाती है। लेने का तरीका भी कुछ अच्छा था। उन दिनों में पहले काम होता था, बाद में रिश्वत लिया जाता था। कालांतर में यह हुआ कि रिश्वत पहले दो काम बाद में। क्योंकि पहले काम कर देने से कई बार रिश्वत नहीं देते। मजबूरन छोड़ देना पड़ता और खाली हाथ मलते रह जाना पड़ता है रिश्वत खोरियों को। इसलिए पहले कमीशन बाद में आर्डर। पहले चढ़ावा, बाद में फैसला। आते आते ऐसा हो गया है कि पहले दाम पीछे काम। इन समस्याओं को 'उन्माद' उपन्यास में देख सकते हैं–

"मैं न तो किसी अदालत में हाज़िर हूँ न किसी एक अदालत की अवमानना कर रही हूँ। मैं न्यायव्यवस्था की सच्चाइ बता रहा हूँ जिस का कच्चा चिट्ठा मुझे तुमसे अधिक मालूम है। दूसरी बात यह कि रिश्वत कह–कहकर इसका झूठ ही नाम ख़राब कर दिया है। पहले इसे इनाम, बख़्शीस, दस्तूरी, चढ़वा और मनौती कहते थे। तरीक़ा इस माने में भी ठीक था कि काम पहले हो जाता था और रिश्वत बाद में देनी पड़ती थी। जब रिश्वत लेनेवालों की लॉबी मज़बूत हो गई तो उन्होंने कहा, काम के बाद नहीं, काम के पहले लाओ। बाद में देने पर उसका रेट हम बढ़ा नहीं पाते हैं और कई बार हाथ मलते रह जाते

हैं। पहले रिश्वत, फिर काम। पहले कमीशन, फिर आर्डर। पहले चढ़ावा, फिर फ़ैसला। अंतर सिर्फ 'पहले दाम, पीछे काम' में आया है।"[268]

यह रिश्वत सबसे पहले मन्दिरों में शुरु हुई थी चढ़ावे के रूप में। बाद सभी जगह में फैल गयी है। न्ययालयों में और हर तरह की सरकारी दफ्तरों में रिश्वत के बिना काम ही नहीं चलता है। इसके वजह से ही इस देश में गरीब लोग और गरीब बनते जा रहे हैं। ये रिश्वत दे नहीं पा रहे हैं और इनका काम भी नहीं हो पा रहा है।

4.6.2. बड़े–बूढ़े और पेंशन

आदमी जन्म लेता है और मरता भी है। इस बीच में कई अवस्थाओं से गुजरना होता है आदमी को। इन अवस्थाओं में बुढ़ापा में ज्यादा समस्याएं झेलनी पड़ती है। उनके अपने बेटे बड़े हो जाते हैं और बेटियों की शादी हो जाती है। वे सब अपने अपने घर चले जाते हैं और बेटे अलग हो जाते हैं। सभी अपने अपने स्वार्थ के लिए सोचते हैं। लेकिन इन बड़े–बूढ़े लोगों के बारे में कोई नहीं सोचता है। इस अवस्था में उनको दवाओं की जरूरत पड़ती हैं और कुछ छोटे–मोटे खर्च भी होते हैं। इसके लिए पैसों की जरूरत पड़ती है, लेकिन पैसे उनके पास नहीं रहते हैं। क्योंकि उनकी उम्र कुछ काम करके पैसा कमाने की उम्र नहीं होती। मेवात एक ऐसा प्रदेश है वहाँ कुछ राजनीतिक नेताओं को छोड़ के सबके सब गरीब लोग ही हैं। इनमें बूढ़े लोग ज्यादा ही हैं। इनको सरकार के तरफ से पेंशन दी जाती है। यह भी बहुत कम रकम दी जाती है। इसमें भी पोस्ट मेन को अपना हिस्सा देने के बाद बहुत कम बचता है। इस विषय को लेकर प्रधानमंत्री के पास जाना चाहते हैं। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में चर्चा की गयी है जो इस प्रकार है–

"प्रधानमंत्री जी भूड़ से पटे इस महू गाँव में क्यों तशरीफ़ ला रहे हैं, उसका तो कुछ पढ़े –लिखों के अलावा किसी को कोई ख़ास पता नहीं। किंतु पचास से ऊपर वाले गूँठा

[268] पृष्ठ संख्या, 233, उन्माद–भगवान सिंह

टेक और दो–चार अलिफ़ बे पे पढ़े बड़े–बूड़े, जिनकी जिल्द में तेजी़ से सिलवटें पड़ती जा रही हैं, उनके लिए प्रधानमंत्री जी के आने का बस एक ही मतलब समझ में आता है, और वह है पेंशन। इसलिए कुछ बड़े–बूढ़ों ने तो यहाँ तक तय कर लिया कि प्रधानमंत्री जी से यह ज़रूर कहना है कि उनकी पेंशन कभी मिलती है और कभी नहीं। अगर ऐसा है तो क्यों है ? कुछेक ने यह कहने का मन बना लिया कि प्रधानमंत्री जी के कानों तक यह बात पहूँचानी है कि उनकी पेंशन की रकम बढ़ाई जाए क्यों कि इस समय मिलने वाली पेंशन की रकम इतनी कम है कि पोस्टमैन और पोस्टमास्टर को उनका हिस्सा देने के बाद, उन्हें जो रकम मिलती है उससे गुजा़रा करना बेहद मुश्किल है।"[269]

वे रकम बढ़ाने के लिए निवेदन करना चाहते हैं। लेकिन सरकार को इन पूरे बूढ़े लोगों को पालने की योजना बनानी चाहिए यानी हर बूढ़ा यानी साठ साल के बाद इनको सरकार की तरफ से ही सब कुछ दिया जाए।

4.7. तालीम–नौकरी और आर्थिक विकास

"भारतीय मुसलमान शिक्षा में देश के अन्य समूहों से पीछे हैं। यह एक स्थापित सत्य है। इस स्थिति को मुसलमानों के पिछड़ेपन का एक महत्त्वपूर्ण कारण बताया जाता है। हालांकि यह प्रश्न भी विचारणीय है कि मुसलमानों का आर्थिक रूप से पिछड़ा होना, उनके शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए ज़िम्मेदार है। यूं शिक्षा में आगे नहीं होने के कारण वे आर्थिक सामाजिक रूप से पीछे रह जाते हैं। बहरहाल मुसलमानों में शिक्षा की स्थिति ठीक नहीं है।"[270]

कोई भी देश और उस देश की जनता, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक, आदि क्षेत्रों में वृद्धि या विकास पाना है तो सबसे पहले इस पर निर्भर करता हैं

---

[269] पृष्ठ संख्या, 11, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[270] पृष्ठ, 43, हंस (भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य, विशेषांक) (सं.), राजेद्र यादव, अगस-2003

कि उस देश की जनता कितने प्रतिशत साक्षर हैं। इसके साथ साथ कितनी आधुनिक और आधुनिक शिक्षा लागू की गयी हैं उस पर भी निर्भर करता है। हमारे भारत में शिक्षा कुछ ही लोगों को मिलती हैं। मुसलमानों को आधुनिक या अंग्रेजी शिक्षा पयाप्त नहीं मिल पाई है, वे भी उतनी जल्दी अपनाएं नहीं। वे अपनी मजहबी शिक्षा विधान से बाहर नहीं आये हैं। जिन्होंने अंग्रेजी को तुरन्त सीखा उन्होंने नौकरी पाई। वे ही लोग आर्थिक रूप से मजबूत हुए हैं। इन समस्याओं को अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक सन्दर्भ में देख सकते हैं।

4.7.1. अंग्रेजी तालीम–नौकरी

“मुसलिम शहरी आबादी का 51 प्रतिशत हिस्सा बिल्कुल अशिक्षित है, जबकि इनके मुकाबले हिंदुओं में 33 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। इसी तरह महज 17 प्रतिशत शहरी मुसलमान प्राइमरी से ले कर सेकेंडरी कक्षाओं तक पहुँच पाते हैं। इनके मुकाबले में 42 प्रतिशत हिंदू सेकेंडरी कक्षा तक पहुँच चुके हैं। ध्यान रहे कि ये तमाम आँकड़े उन लोगों द्वारा उपलब्ध नहीं कराये गये हैं, जिन्हें श्री आडवाणी छद्म धर्मनिरपेक्ष कह कर लोगों को गुमराह करते हैं। ये आँकड़े 'नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाइजेशन' ने उपलब्ध करये हैं।”[271]

दुनिया का कोई भी देश हर दृष्टि से विकास करना चाहता है तो सबसे पहले उनको आर्थिक दृष्टि से मजबूत होना पड़ेगा। यह अर्थ कहाँ से आता है? अर्थ या पैसे कमाने के तरीके बहुत हैं, जैसे कृषि के द्वारा विकास कर सकते हैं। व्यापार करके विकास कर सकते हैं। नौकरी करके भी कमा सकते हैं। कृषि से कमाना हो तो जमीन की जरूरत है। जमीन सबके पास नहीं है इस देश में यानी कुछ ही लोगों के पास है जिन्हें जमीनदार कहते हैं। व्यापार भी कुछ ही लोगों के हाथ में है। व्यापार करना हो और कृषि करना हो तो भी शिक्षा की जरूरत है। भारत में अंग्रेज आने के पश्चात् शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बन

---

[271] पृष्ठ संख्या 98, मुसलमान क्या सोचते हैं, चयन एवं सम्पादन राजकिशोर और अशोक भारद्वाज, वाणी प्रकाशन 1995

गया। सबसे पहले इस अंग्रेजी को बंगाल के लोगों ने सीखा। इनको पूरे उत्तर भारत में जगह जगह पर नौकरी पर लिए गये। यदि सम्प्रदाय के हिसाब से देखा जाय तो हिन्दू अंग्रेजी सीखने में आगे हैं, मुसलमान अंग्रेजी को सीखना ही मना कर दिये। इसका परिणाम मुसलमान बेरोजगार हुए। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में देखा जा सकता है–

" 'बंगालियों से हम बहुत कुछ सीख सकतें हैं। यह अंग्रेजी तालीम की ही तो बरकत है कि आज तमाम सरकारी दफ़्तर बंगालियों से भरे दिखाई देते हैं। बंगाल तो ख़ैर उनका अपना मुल्क है। बिहार और यू0पी0 में भी वे तमाम नौकरियों पर छाए हुए हैं। गया शहर को ही ले लीजिए। जिस इजलास में जा कर देखिए बंगाली मेजिस्ट्रेट नज़र आएगा। जो भी मुक़दमा होगा होगा बंगाली वकील उसे लड़ता दिखाई देगा। शहर में जितने भी डॉक्टर हैं एक–दो को छोड़कर सब–के–सब बंगाली हैं।' "[272]

समाज हमेशा बदलता रहता है। इसके साथ साथ सांस्कृतिक, आर्थिक पहलूओं में भी परिवर्तन आते रहते हैं। इसके साथ आदमी को भी अपने आपको बदलना होगा नहीं तो पीछे पड़ जाते हैं।

4.7.2. हिन्दू–मुस्लिम और तालीम–नौकरी

अंग्रेज इस देश में जब से आये हैं तब से भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बन चुका है। अगर कहीं नौकरी करना है या अच्छी नौकरी पाना है तो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना अवश्यक हो गया है। बंगाल के हिन्दुओं ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किया लेकिन बंगाली मुसलमानों ने अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त नहीं किया। इसके कई कारण हो सकते हैं। इसलिए बंगाल में मुसलमान नौकरी पर बहुत कम संख्या में हैं और हिन्दू ज्यादा संख्या में। मुसलमानों की औरतें भी बाहर नहीं निकलती काम के लिए। मुसलमान मर्द नौकरियों में नहीं हैं। समाज में इनकी हैसियत हिन्दुओं की तुलना में कुछ भी नहीं है।

[272] पृष्ठ संख्या, 228, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

आर्थिक रूप से मुसलमान कमजोर हैं। इन समस्याओं को 'सभा पर्व' उपन्यास में चर्चा किया गया हैं–

"आप ज़रा आँखें खोलकर देखिए। और सूबों की बात जाने दीजिए। सिर्फ़ बंगाल में ही कितने बंगाली मुसलमान सरकारी नौकरियों में हैं। हिन्दुओं के मुक़ाबले में उनकी क्या हैसियत है, यह आप मुझसे बेहतर जानते हैं। मौजूदा बंगाल में सौ साल तक भी मुसलमान तालीम और नौकरी के लिहाज़ से हिन्दुओं के बराबर नहीं आ सकेंगे।" [273]

समाज के साथ साथ हमको भी बदलना होगा। मुसलमान लोग आज भी मदरसों में पढ़ते हैं। वहाँ मज़हबी किताबों को उर्दू और फारसी के माध्यम से रटते और रटवाते रहते हैं। तो इस पर कम ध्यान दें और आधुनिक शिक्षा पाने की कोशिश करना होगा।

4.8. सूखा–भूखा और आर्थिक परिस्थिति

"सरकार के वरीयता क्रम में हमेशा से उद्योग/सेवा को दिए जाने वाले उच्च स्थान की तुलना में खेती को चलताऊ दर्जे पर ही रखा गया है। हमारे देश में व्यापार शर्तें कृषि के खिलाफ हैं। 1990 के दशक के अंत से व्यापार शर्तें 5 से 6 प्रतिशत कृषि के खिलाफ मुड़ी हैं। ग्रामीण अधिरचना विकास निधि को दी जाने वाली रकम की तुलना में औद्योगिक अधिसंरचनात्मक ढांचे में 400 गुना ज्यादा निवेश किया जा रहा है। कृषि अधिसंरचना पर सरकार द्वारा किया जाने वाला खर्च 1986 में 14.5 प्रतिशत से घटकर 2000 में मात्र 6 प्रतिशत रह गया था और अब वह उससे कहीं ज्यादा घट गया है और सरकार अधिसंरचना में निवेश के लिए भारी छूट देकर कारपोरेट कंपनियों को बुला रही है।"[274]

राजनीतिक नेता और उनकी सरकार हमेशा जनता को धोखा देती रही है। इसी परिणामस्वरूप मेवात के लोग हर तरह की सुविधा से वंचित रहे हैं। मेवात के लोग

---

[273] पृष्ठ संख्या, 238–239, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

[274] पृष्ठ संख्या 5, समकालीन जनमत, (सं.), रामजी राय, इलाहाबाद, मई–2010

अशिक्षित हैं। बेरोजगार हैं। कृषि करने के लिए सिंचाई की सुविधा नहीं है। इसके साथ प्रकृति भी इन पर दया नहीं करती है, बारिश नहीं होती हैं। कई दिनों से मेवात में बारिश न के बराबर हैं। सूखा पढ़ गया है। लोग भूख से परेशान हैं। खाने कमाने लोग अपना गाँव छोड़ कर शहर चले जाते हैं। इन समस्याओं पर अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में देख सकते हैं।

4.8.1. सूखा एवं कृषि

मेवात एक ऐसा प्रदेश है जहाँ गरीबी अधिक है। वहाँ के राजनीतिक नेता उस प्रदेश के विकास के बारे में कभी नहीं सोचे हैं। ये हमेशा उस प्रदेश में साम्प्रदायिकता को फैलाने में लगे रहते हैं। लोग भूखे मर रहे हैं। रोजगार नहीं है। करने को धंधा नहीं है। इसके साथ प्रकृति भी इन पर प्रकोप करने लगी है। कई दिनों से बारिश न के बराबर है। सारे मौसम एक हो गये हैं। गर्मी और ठंढ़ में अंतर ही नहीं दिखाई देता है। बारिश न होने के कारण वहाँ के ढोर–डंगर को भी खाने को घास–हरियाली नहीं है। जमींदार भी अपनी ढोरों को खूँटों से ढीले कर दिए हैं। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में देखा जा सकता है–

"सलेमी, या गाँओं में रह के कोई भूखो थोड़ेई मरणे है। न कोई रुजगार, न धंधा...... लावणी भी अब न रही.......जब पेट ही भरणो मुसकल हो जाए तो आदमी यही करोगे..।"[275]

"और इस साल तो बिलकूल ही ऊपर वाले ने जैसे नज़रें फेर लीं। चौमासा कहा जाने वाला महीना दो–चार हलकी बारिश के अलावा कुछ लाया ही नहीं। इस महीने को देखकर लगता है जैसे सारे मौसम एक–से हो गए हैं। अब न तो जाड़ों में जाड़ों जैसी ठंड पड़ती है और नहीं गर्मियों में गर्मी। हार कर ज़मींदारों ने भी ढोर–डंगर धीरे–धीरे खूँटों से

---

[275] पृष्ठ संख्या, 30, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

ढीले कर दिए। जब पेट भरने वाले नाज से महँगी खल–चूरी हो जाए तब ख़ुद का पेट भरें या ढोर–डंगरों का ?”[276]

एक तरफ राजनीतिक नेता, लोगों में साम्प्रदायिकता फैलाते हैं। मजहबों और जातियों के बीच घृणा, द्वेष और नफरत पैदा करते हैं। दूसरी तरफ प्रकृति भी उनका साथ नही देती। बारिश भी नहीं होती है। लोग भूखे मरने लगते हैं। ढोर भी भूख से तिलमिलाती हैं।

4.9.गाँव से शहर की ओर पलायन और आर्थिक परिस्थिति

“इस कृषि–संकट का प्रतिफल 1991 और 2001 की दो जनगणनाओं के बीच 80 लाख से अधिक किसानों द्वारा खेती छोड़ देने की परिघटना में दिखाई पड़ता है। उस के बाद, इस सदी में तो खेती छोड़ने की प्रवृत्ति में और भी तेज गति से इजाफा हुआ है। पंजाब जैसे इलाकों में बिहार, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा से खेत मजदूरों का भारी पलायन तो होता ही था, और आज भी वह बढ़ रहा है। लेकिन अब केरल जैसे इलाकों से, जहां पहले कॉफी बागानों में बाहर से मजदूर आते थे, स्थानीय लोगों का पलायन हो रहा है, वाणिज्यिक फसलों के संकट से बेरोजगारी फैली और मजदूर ही नहीं छोटे व सीमांत किसानों का भी पलायन हो रह है। प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता भी घटी है। 1996–97 में जो उपलब्धता 503.1 ग्राम प्रतिदिन थी, 2004–05 में गिरकर वह 444 ग्राम प्रतिदिन हो गई।”[277]

दरअसल लोग क्यों स्थानांतरित या अपना गाँव छोड़ के जीने के लिए शहर चले जाते हैं। जाहिर सी बात है कि लोग जहाँ जी रहे हैं वहाँ उनका जीना मुश्किल हो जाता और इनको राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित किया जाता है,

---

[276] पृष्ठ संख्या, 50, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[277] पृष्ठ संख्या, 5, समकालीन जनमत, मई, 2010

तब वे अपना गाँव छोड़ के जीने के लिए शहर चले जाते हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में चित्रित मेवात लोगों की राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति को देखने से यह स्पष्ट होता है कि लोग क्यों अपना गाँव छोड़ते हैं।

4.9.1. बेरोजगार एवं गाँव

दरअसल में मेवात का इतिहास बहुत बड़ा है। यह राजा और राजपूतों का इलाका था, यह मिली–जुली संस्कृति का प्रतीक है। यहाँ के राजनीतिक नेताओं ने इस इलाके को गरीब बना कर रखा है। वे कभी विकास का योजना नहीं बनाते। हमेशा अपने फायदे के लिए ही राजनीति करते हैं। नस्ल, जाति, सम्प्रदाय आदि के बीच दिवारें पैदा करते हैं। चुनावों के समय में साम्प्रदायिकता फैलाते हैं। चुनाव में जीत के दिल्ली चले जाते हैं। इस इलाके में लोगों को शिक्षा नहीं हैं। नौकरी भी नहीं हैं। यहाँ कोई उद्योग खुलवाया नहीं गया है। सिंचाई के लिए पानी भी नहीं है। कुछ दिनों के बाद खाने को खाना मिलना भी मुश्किल हो जाता है। वे यह सोचने लगते हैं कि इस गाँव में रह कर जियें तो कैसे जियें ? आखिर इनको अपना पेट भरने के लिए अपना गाँव छोड़ के शहर जाना पड़ा है। इनमें छोटी–मोटी जाति से लेकर थोड़ी–बहुत जमीन वाले मेव भी गाँव छोड़ रहे हैं। और कुछ लोग तो उधार (कर्जा) लेकर खाने लगे हैं। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में चर्चा किया गया है–

"देख ले, ई और कह रो है के मेवात आज खुसाल है.....।"

"मेरा मूँ में सू गाली खाए......कौन–सी खुसाली है मेवात में......अरे, छोटी–मोटी जात सू लेके थोड़ी–बहोत जमीन वाला मेव तो खाण–कमाण कू गाँवन्ने छोड़ छोड़ के जा रा हैं और ई कह रो है इलाका खुसाल है.....।"[278]

---

[278] पृष्ठ संख्या, 86, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

"ना–ना, मैं या मारे कह रो हूँके कदी तू ई ना समझ बैठे के उधारी ना पटेगी ......अरे, पेर में ताख़ड़ी–बाट लेके आ जाइयो और ब्याज समेत तेरो जितनो मूल बने, उतनी नाज की बौरी उठवा लीजो......बावला, छोरा को ब्याह कर रो हूँ...... ।"[279]

युवकों की शादी करने के लिए भी अनाज नहीं मिलता है। यहाँ के लोग हर एक तरह से वंचित किये गये हैं। शिक्षा से वंचित, रोजगार से वंचित और सिंचाई के लिए पानी से भी वंचित किये गये हैं। आख़िर प्रकृति भी उनका साथ नहीं देती है। उन्हें आख़िर जीने के लिए अपना गाँव छोड़ना पड़ता है।

4.9.2. दलितों की आर्थिक स्थिति

गरीब और दलित अब धीरे धीरे परम्परागत काम को त्याग रहे हैं। वे भी शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। उसी तरह दूसरी जाति के लोग भी यह सोचने लगे हैं कि हम यहाँ रह कर क्या करें ? यहाँ के लोग तो ऐसे हैं कि मन्दिर बनवानी हो या मस्जिद बनवानी हो इसके लिए हमेशा आगे रहते हैं। मन्दिर और मस्जिद बनाने के लिए कई दिनों से इकट्टा किये हुये पैसे भी भगवान के नाम पर दे देते हैं। लेकिन इनके और इनके बच्चों के भविष्य के लिए कुछ करने को आगे नहीं आते हैं। वे मन्दिर और मस्जिद के बदले एक स्कूल और कॉलेज बनवा सकते हैं। वे ऐसा नहीं करते हैं। वे यह समझते हैं कि स्कूल और कॉलेज बनवाना तो सरकार का काम है। सरकार और वहाँ के राजनीतिक नेता यह नहीं चाहते कि मेव के लोग शिक्षित हों और अच्छी अच्छी नौकरियाँ करें। इन समस्याओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में चर्चा की गयी है–

"बात ई है ताऊ, चिमार–चुहड़ा तलक तो हौले–हौले अपनी पुस्तैनी धंधान्ने छोड़–छाड़ के दिल्ली मऊँ भगा जा रा हैं.....फिर हम कद तलक एक ही खूँटा सू बँधा रहेंगा......!"[280]

[279] पृष्ठ संख्या, 108, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

"मेरी समझ में धीरे–धीरे अब आ री है के बनवारी ने जो ई बात कही ही के ताऊ अब तो या इलाका को कोई भरोसा ना है, झूठ ना कही.....अरे, मंदर–महजतन् लू तो हमारी जेब सू फट नोट निकल जावे हैं, और जब इन इस्कूल कोलजन की बात आवे है जिन में पढ़–लिख के हमारा बालकन्ने नौकरी मिले है, उनकी जिंदगी बणे है, उनका नाम पे हम झट कह देवे हैं के ऊ सरकार को काम है।"[281]

हमारे देश में अंधविश्वास ज्यादा है। वैज्ञानिक व विवेकयुक्त दृष्टि न के बराबर है। भगवान, साधु, संत, भक्त, बाबा, स्वामी, मन्दिर, मस्जिद आदि में ज्यादा विश्वास करते हैं। जो कुछ इनके पास धन है वे धर्म के लिए खर्चा कर देते हैं। लेकिन वे अपने बच्चों के भविष्य के लिए नहीं सोचते हैं और सरकार भी नहीं सोचती हैं। परिणामतः आधुनिक शिक्षा का अभाव दिखाई देता है।

4.10. धर्म जनमानस का अफीम है और गरीबी–आर्थिक व्यवस्था

"जटिल चुनौतियों का सामना करती सैकड़ों साल पुरानी विशिष्ट मदरसा–शिक्षा आज गंभीर आरोपों के घेरे में है। मस्जिदी पाठशालाओं से लेकर उच्च स्तरीय शिक्षा की भव्य इमारतों तक की यात्रा कर आए मदरसों को जहां एक ख़ास विचारधारा के लोग आतंकवाद व धार्मिक उग्रवाद का उत्पादन केंद्र घोषित कर रहे हैं, वहीं यह धारणा बहुत आम है कि मदरसे, उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों, किशोरों को धर्मान्ध, रूढ़िवादी, जड़, प्राचीनतावादी, तथा आधुनिकता का विरोधी बनाने का काम करते हैं। तलीबान की गतिविधियों ने इस धारणा को विस्तार और दृढ़ता दी है। धारणा यह भी है कि यह पिछड़ी

---

[280] पृष्ठ संख्या, 260, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

[281] पृष्ठ संख्या, 306, काला पहाड़–भगवानदास मोरवाल

हुई शिक्षा व्यवस्था उतनी ही पुरानी और अपरिवर्तित है, जितनी कि पुराने समय में हुआ करती थी, यानी कि आधुनिक ज्ञान या परिवर्तन से उसका दूर का भी वास्ता नहीं।"[282]

कार्लमार्क्स ने कहा है कि 'धर्म जनमानस का अफीम है'। कोई भी धर्म क्यों न हों वह लोगों को पीछे की ओर ही ले जाता है। धर्म आधुनिकता और आधुनिक शिक्षा को अपनाने में संकोच व्यक्त करता है इसीलिए आज हमारा भारत और भारतवासी अंधविश्वासी, गरीबी एवं पिछड़े होने का मुख्य कारण धर्म है। धर्म के नाम पर कई लोगों को सामाजिक बहिष्कार हुआ है। इनके साथ आर्थिक बहिष्कार भी किया जाते हैं और आज भी किये जा रहे हैं।

4.10.1. रोटी की पुकार

मार्क्सवादी लोग किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करते हैं। क्योंकि ये भगवान को नकारते हैं यानी भगवान में विश्वास नहीं करते हैं। ये भौतिक जगत में विश्वास करते हैं। प्राणी का मूल पदार्थ को मानते हैं। मार्क्सवादी जाति में विश्वास नहीं करता है। इन्होंने विश्व समाज को दो वर्गों में बाँटा है। एक मज़दूर वर्ग और दूसरा पूँजीपति वर्ग। ये हमेशा मज़दूरों के हित के लिए संघर्ष करते हैं। लोगों को शिक्षा दिलाने के लिए संघर्ष करते हैं। रोजगार दिलाने के लिए संघर्ष करते हैं। उद्योग खुलवाने के लिए संघर्ष करते हैं। मज़दूरों के हित के लिए काम करते हैं। कृषि और खेत की सिंचाई के लिए सरकार के विरोध में संघर्ष करते हैं। इन समस्याओं को 'उन्माद' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया हैं–

"अच्छा छोड़ो। मैं ही हार मानती हूँ। पर इन दुष्टों के लिए मान इतना कड़वा हो गया है कि इनके लिए कोई अच्छी बात मुँह से निकलती ही नहीं । ये मुए तो मुसल्लों से भी गए बीते होते हैं। मुसल्लों का अपना धरम–इमान तो होता है। वे अपने माँ–बाप का आदर तो करते हैं। उनका कोई देश भले न हो, जाती तो होती है। इन मरों का तो कुछ भी नहीं होता। इनके पास सिर्फ पेट होता है। जब देखो रोटी–रोटी की पुकार लगाते रहते

---

[282] पृष्ठ संख्या, 92, हंस (भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य) अगस्त, 2003

हैं। अरे इनकी हालत तो भिखमंगों से भी गई–बीती है। भिखमंगों को जो रोटी देता है उसे वे दुआ तो देते हैं। ये तो अपने को रोटी देनेवाले को भी गालियाँ देते रहते हैं। जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करते हैं। इन्होंने ही मेरे बेटे को बहकाकर हमारा सत्यानाश किया।”[283]

भूखे आदमी के लिए दुनिया में सबसे महत्व रोटी की है। रोटी से ही आदमी का पेट भरता है। मार्क्सवाद गरीबों के हित के लिए काम करता है। गरीबों को कम से कम पेट भर रोटी दिलवाना चाहते हैं। ये देश के आर्थिक विकास के लिए सोचते हैं।

4.11. निष्कर्ष

एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से युद्ध, एक देश का दूसरे देश से युद्ध, एक धर्म–सम्प्रदाय का दूसरे धर्म–सम्प्रदाय से युद्ध करने की संस्कृति पहले भी थी और आज भी है। आखिर यह युद्ध किसलिए हैं ? यह युद्ध इसलिए करते हैं कि उस देश को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से नाश करना चाहते हैं तथा उसको अपने वश में रखना चाहते हैं। सातवीं सदी के शुरूआत में इस्लाम कौम का उदय हुआ था। यह कौम नया नया बना था। इनका मूल अरब था। अरब में रेत के अलावा कुछ नहीं था। ये धन–दौलत के शिकार में थे। उस समय भारत देश धन–दौलत से भरा हुआ था। वे यह सोचे कि भारत से धन–दौलत कैसा लूट के लाएं ? इसी क्रम में वे भारत आये धन लूटने। हमारे भारत में धन–दौलत मन्दिरों में और मन्दिरों के नीचे गुप्त रूप से रक्खे जाते थे। इन अरबों को धन लूटना हो तो, हिन्दुओं की मन्दिरों को तोड़ना पड़ा था। लेकिन उस समय इनका काम मज़हब को फैलाना नहीं था। इनको मज़हब फैलाना नहीं आता था बल्कि मज़हब को मंजूर करना मालूम था। भारत आये मुसलमान यहीं रह गये हैं। कालांतर में यहाँ के लोग भी इस्लाम को कुबूल करते हैं। इसके बाद ईसाई आये। फारसी लोग भी आये। इसी भूमि से उपजी है बौद्ध, सिख और जैन।

---

[283] पृष्ठ संख्या, 51–52, उन्माद–भगवान सिंह

मुसलमानों ने सैकड़ों साल राज किया। ईसाइयों ने सैकड़ों साल राज किया। बहुत बड़ा स्वतंत्रता आंदोलन हुआ जिसके परिणाम अंग्रेजों को भारत छोडना पड़ा। वे जाते जाते साम्प्रदायिकता को बढ़ाके और उसके नाम पर भारत देश को भारत और पाकिस्तान में तकसीम कर के चले गये। कई मुसलमान पाकिस्तान चले गये। लगभग आधे तो भारत छोड़ के जाना ही नहीं चाहते थे। वे भारत में ही रह गये। भारत आज़ाद हुए साठ साल से ऊपर हो चुका है। भारत की आर्थिक परिस्थिति जैसी की वैसी ही है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि क्या सचमुच भारत में विकास नहीं हुआ ? हाँ हुआ है लेकिन किनका विकास हुआ ? उन्ही लोगों का विकास हुआ जो हर धर्म के अमीर और ऊँची जाति के लोग हैं। ऊँची जाति और अमीरों को छोड़ कर बाकी लोगों की आर्थिक परिस्थिति को अगर हम देखें तो हिन्दू लोग शिक्षा में आगे हैं। उन्होंने आधुनिक शिक्षा को जल्दी से जल्दी अपनाया है। लेकिन मुसलमान आज तक उतना नहीं अपनायें हैं जितना अपनाना चाहिए। हिन्दू लोगों को अंग्रेजी सीखने के कारण नौकरियाँ भी मिली हैं। हिन्दुओं से मुसलमान कम है नौकरियों में। ईसाइयों में भी दलित ईसाई की आर्थिक स्थिति जैसी की वैसी ही है।

आख़िर इन लोगों के आर्थिक वृद्धि या विकास नहीं होने का कारण क्या हो सकता है ? इसका सबसे पहला कारण धर्म हो सकता है, इसके बाद राजनीति, सरकार और प्रकृति है। धर्म लोगों में अंध विश्वास पैदा करती है। अंधविश्वास के कारण आदमी आगे नहीं जा सकता हैं। आज भूमण्डलीकरण का दौर चल रहा है। आज भी कुछ धर्म के लोग आधुनिक शिक्षा को नकारते हैं तो वह धर्म का अफीम ही है। राजनीतिक नेता भी, आर्थिक विकास न होने के पीछे महत्वपूर्ण कारण हैं। क्योंकि वे चुनाव के समय में ही आते हैं बड़े बड़े वायदे करते हैं और चुनाव जीत के जाते हैं। बल्कि वे किये हुए वायदे और वादें कभी नहीं पूरी करते हैं। अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में खास कर मेवात पर लिखा गया उपन्यास 'काला पहाड़' में यही दिखाई देता है। राजनीतिक नेता लोग धर्म को इस्तेमाल करते हैं। ये जाति, नस्ल और सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिक दंगे करवाते हैं। लोगों को धर्म के नाम पर तकसीम कर देते हैं। सरकार भी इनकी आर्थिक विकास में दिल्चस्पी नहीं रखती है। उद्योग नहीं खुलवाती है। कृषि या सिंचाई की सुविधा नहीं दिलापाते। इसके साथ प्रकृति भी

इनका साथ नहीं देती है। सूखा पड़ जाता है। लोग भूखे मरने लगते हैं। खाने को कमाने यानी जीने के लिए वे अपना गाँव छोड़ के शहर चले जाते हैं। मार्क्सवादी तो इसके विरोध में संघर्ष करते रहते हैं। इन समस्याओं को 'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों' में देखा गया है।

साम्प्रदायिकता के स्रोतों में से संस्कृति को भी एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता हैं। इस के बारे में आगे चर्चा की जाएगी।

अध्याय—पाँच

अध्याय–पाँच

5. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सांस्कृतिक सन्दर्भ

5.1. हिन्दुत्व साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

5.1.1. देव संस्कृति और मनुष्य संस्कृति में अंतर

5.1.2. ब्राह्मणवादी सभ्यता और मिस्र सभ्यता

5.1.3. उपनिषद् और बदलाव

5.1.4. वैदिक सभ्यता

5.1.5. वर्णवाद और जन्म

5.1.6. वैदिक आर्य बनाम बौद्ध

5.1.7. बौद्ध–जैन बनाम शैव सम्प्रदाय

5.1.8. भक्ति और चिंता

5.1.9. गायन–भजन और प्रदूषण

5.1.10. धर्मांतरण एवं विवाह

5.1.11. दिन–रात प्रवचन

5.1.12. धर्म और संस्कृति

5.1.13. यूनिफ़ार्म कोड

5.1.14. हिन्दू और मुसलमान

5.1.15. सम्प्रदाय और मांसाहार

5.1.16. स्त्री और हिन्दू धार्मिक

5.2. धार्मिक साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

5.2.1. धार्मिक कट्टरता

5.2.2. धर्म और बच्चे

5.2.3. संस्कार और ऊँच–नीच

5.3. इस्लाम साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

5.3.1. इस्लाम (शिया–सुन्नी–सूफी)

5.3.2. बच्चों के संस्कार

5.3.3. धर्मनिरपेक्षता और भारतीय मुसलमान

5.3.4. दावत और भारतीय संस्कृति

5.3.5. शिया–सुन्नी

5.3.6. परिवार नियोजन

5.3.7. विदेशी मुसलमान–भारतीय मुसलमान

5.3.8. अपनी–अपनी संस्कृति

5.3.9. परिवार नियोजन और इस्लामिक धर्म–सम्प्रदाय

5.4. हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति बनाम बहुला भारतीय संस्कृति

5.4.1. हिन्दुस्तान और देश विभाजन

5.4.2. इस्लाम–धर्म परिवर्तन

5.4.3. मन्दिर–मस्जिद

5.4.4. सहिष्णुता का मार्ग सूफी

5.4.5. अपने–अपने दुःख और अपने–अपने ईश्वर

5.4.6. हिन्दी एवं उर्दू और भारतीय भाषा

5.4.7. रिश्ता एवं भारतीय संस्कृति

5.4.8. प्रेम विवाह

5.4.9. शैव बनाम बौद्ध

5.4.10. मिट्टी से है लगाव

5.4.11. हर धर्म–सम्प्रदाय के दो रूप

5.4.12. इस्लाम बनाम दरगाह संस्कृति

5.4.13. छुआछूत

5.4.14. पूजा सामग्री–मुसलमान

5.4.15. हिन्दू–मुस्लिम एवं भेद–भाव

5.4.16. धर्मनिरपेक्षता और उर्दू भाषा

5.5. मिश्रित भारतीय संस्कृति बनाम आर्य संस्कृति

5.5.1. पुनर्जन्म

5.5.2. अंतिम संस्कार

5.5.3. मिली–जुली संस्कृति

5.5.4. होली और मुहर्रम

5.5.5. अंध विश्वास

5.5.6. शिया–सुन्नी और रोटी–बेटी का रिश्ता

5.5.7. जलाना–दफनाना

5.5.8. भीख माँगना और कबीर

5.6. बाजारी पूँजीवादी संस्कृति बनाम संगठित भारतीय संस्कृति

5.6.1. संगठित संस्कृति और विभाजित संस्कृति

5.7. वैज्ञानिक संस्कृति बनाम हिन्दू धार्मिक संस्कृति

5.7.1. भगवान बनाम विज्ञान

5.8. निष्कर्ष

अध्याय–पाँच

5. बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर (1990-2000) : सांस्कृतिक सन्दर्भ

"भारतीय समाज में बहुत विविधता रही है। आर्यों के आने के समय से ही विभिन्न सांस्कृतिक या धार्मिक धाराओं में पारस्परिक क्रिया, संघर्ष, सहयोग और मिश्रण होता रहा है। ब्राह्मणवाद ने समाज पर वर्जनाओं पर आधारित कड़ी वर्ण व्यवस्था लागू की। लेकिन जैनधर्म, बौद्धधर्म जैसी धाराओं, कबीर, नानक तथा ज्योतिबा, खड़ोबा, तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु और तंत्र जैसे दूसरे स्थानीय संतों ने स्थानीय संस्कृतियों में मेलजोल पैदा किया। राजाओं, जमींदारों और उच्च जातियों ने धर्म का ध्यान किए बगैर शोषण किया। नीची जातियों के लोग आपस में खुलकर मिलते थे। इससे सामाजिक परंपराओं का विकास हुआ।"[284]

समाज पूरा का पूरा सम्प्रदायों में बँटा हुआ है। सम्प्रदाय दो प्रकार होते हैं। एक महापुरुषों के द्वारा स्थापित होता है। उनका अपना एक ग्रन्थ होता है। उस ग्रन्थ के अनुसार उस सम्प्रदाय के विधि–विधान रहते हैं। ये सब पढ़े–लिखे लोग होते हैं। दूसरा सम्प्रदाय है लोक सम्प्रदाय या मौखिक सम्प्रदाय जो अपने दादा और परदादाओं से चली आ रही है। इनके भी कुछ अपने विधि–विधान होते हैं, बल्कि कहीं लिखित नहीं रहता हैं। अर्थात् सम्प्रदाय अनेक होते हैं। हर सम्प्रदाय के अपने अनुयायी होते हैं। इनको साम्प्रदायिक कहते हैं। इनके बुरे कार्यों की वजह से ही साम्प्रदायिकता होती है।

सम्प्रदाय अनेक होते हैं, वैसे ही संस्कृतियाँ भी अनेक होती हैं। श्रेष्ठ संस्कृति है तो निकृष्ट संस्कृति भी हो सकती है। लेकिन संस्कृति संस्कृति ही होती है, इसमें श्रेष्ठ और

---

[284] पृष्ठ, 35, उद्भावना, अंक 79, (सं.), अजेय कुमार (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) अगस्त 2008

निकृष्ट की भावना नहीं आनी चाहिए। अपसंस्कृति की बात भी होती है, जिस की वजह से मुख्यधारा की संस्कृति को अपनाने की भावना महसूस होती है। लेकिन एक संस्कृति की वजह से दूसरी संस्कृति का अपमान नहीं होता क्योंकि वह भी एक संस्कृति ही है। इसलिए संस्कृतियाँ कोई श्रेष्ठ और निकृष्ट नहीं होती, बल्कि सब बराबर होती हैं। संस्कृति समय और प्रदेश के साथ–साथ बदलती रहती है और नयी संस्कृति का जन्म होता रहता है।

"मुझे लगता है कि कम–से–कम आज के माहौल में देश में आर्थिक लड़ाई भी संस्कृति के क्षेत्र में ही लड़ी जा रही है। संस्कृति अब स्वीटनेस और लाइट यानी माधुर्य और प्रकाश की दुनिया नहीं रह गई है, बल्कि एक युद्ध का क्षेत्र है। युद्ध का यह क्षेत्र कभी–कभी लगता है कि धर्मक्षेत्र–कुरुक्षेत्र है जिस में इसी देश के कौरव और पांडव लड़ रहे हैं। एक तरह से वह पानीपत भी है, जहाँ शायद ये चौथी लड़ाई लड़ी जा रही है, जहाँ तथाकथित नव उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी विदेशी आक्रमणकारियों और सांस्कृतिक आक्रान्ताओं के हमलों के विरुद्ध आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर यह देश संघर्ष कर रहा है।"[285]

भारत देश को उपमहाद्वीप कहते हैं। इसलिए कहते हैं कि इस देश में लगभग सारे संसार की संस्कृतियाँ मौजूद हैं। वैदिक संस्कृति, ब्राह्मणिक संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, हिन्दुस्तानी संस्कृति, हिन्दू संस्कृति, हिन्दुत्व संस्कृति आदि... हैं। इन हिन्दू में फिर से सवर्ण, अवर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र संस्कृतियाँ हैं। इन शूद्रों में अनेक जातियाँ हैं जिनकी अपनी संस्कृति हैं, जैसे ऊँची जाति की संस्कृति, नीची जाति की संस्कृति, पिछड़ेवर्ग की संस्कृति है। दलित संस्कृति, आदिवासी संस्कृति है। बावजूद इसके इस देश में इस्लाम, फारसी, ईसाई आदि सम्प्रदाय आये हैं। इनके साथ अपनी संस्कृति आई। यहाँ की संस्कृतियों से मिली है, जिसकी वजह से बहुला संस्कृति यानी मिली–जुली संस्कृति का जन्म हुआ है। जिसके कारण लोग सब मिल–जुल के रहने लगे। यह कुछ साम्प्रदायिक संस्कृति लोगों को बर्दाश्त नहीं हो रही है। आज की संस्कृति परिभाषा वाली संस्कृति नहीं

---

[285] पृष्ठ संख्या, 61, ज़माने से दो दो हाथ, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन 2010

रही है। आज संस्कृति के नाम पर युद्ध ही हो रहा है। सूफी और मिश्रित संस्कृति को ध्वंस करके हिन्दुत्व संस्कृति का या हिन्दू राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए 1992 में बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया। गोधरा काण्ड हुआ है। गुजरात में 2000 मुसलमानों को मौत की घाट उतारा गया। कई, बहुल संस्कृति के प्रतीक सूफी दरगाहओं को तोड़ दिया गया। तो बीसवीं सदी का अंतिम दशक, साम्प्रदायिक हिन्दुत्व संस्कृति और बहुल भारतीय संस्कृति के बीच में युद्ध होता हुआ नजर आता है।

5.1. साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

"जति–प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में एक महान् आन्दोलन का आरम्भ किया जो, प्रायः, गाँधी तक चलता आया है और आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण–कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर नहीं, कर्म पर अवलम्बित हैं। इसलिए, ब्राह्मण भी पतित हो सकता है और शूद्र भी अपने को पूजा योग्य बना सकता है। इसी प्रकार, वेदों ने यज्ञ का अधिकार केवल द्विजों को दिया था और जब उपनिषद् बढ़े, तब ब्राह्मणों ने उन्हें भी ब्रह्म–विद्या का नाम देकर, शूद्रों और स्त्रियों की पहुँच से बाहर कर दिया। इसके विपरीत, बुद्धदेव ने चारों वर्णों और स्त्रियों को धर्म का अधिकार, समान रूप से, दे दिया। यह ब्राह्मण धर्म के खिलाफ सबसे बड़ी बगावत थी और बौद्धों का ब्राह्मणों ने जो भी विरोध किया, वह, मुख्यतः, उनके इसी विद्रोह के कारण।"[286]

वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत...आदि आर्य–ब्राह्मण संस्कृति के प्रतीक हैं। यह उस समय से लेकर आज तक अपनी सांस्कृतिक आधिपत्य के लिए, भारतीय–द्रविड़ संस्कृति को और इसके महा पुरुषों को नाश किया है और कर रहे हैं। कई महा पुरुषों ने

[286] पृष्ठ, 155, संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, नवीन संस्करण 2009

इसका विरोध किया है। जैसे गौतम बुद्ध, जाबाली, शंबूक, एकलव्य, पेरियार रामस्वामी, नारायण गुरु, ज्योतिबा फूले, बाबा साहेब आम्बेडकर...आदि हैं।

5.1.1. देव संस्कृति और मनुष्य संस्कृति में अंतर

दरअसल संस्कृति हो या सभ्यता हो और आज की आधुनिक तकनीकी हो, इन सभी को मनुष्यों ने ही सृजन किया हैं। संस्कृति और नदी का सम्बन्ध कुछ ज्यादा ही है। विश्व की कोई भी संस्कृति हो, वह नदी के आस–पास जन्मी है। इस का कारण यह है कि मनुष्य नदी के ही आस–पास अपना जीवन यापन करता था क्योंकि मनुष्य को जल की ज़रूरत सबसे अधिक है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में संस्कृति से सम्बन्धित तथ्यों को निकाले गये हैं। वैसे ही डैन्यूब, फ़रात, दज़ला आदियों के आस–पास भी संस्कृति के जन्म के तथ्य मिलते हैं।

कालान्तर में मनुष्य ने अपनी संस्कृति में बहुत प्रगति पायी है। सबसे पहले आदिम मनुष्य की संस्कृति को आदिम संस्कृति कहा गया है। जिसमें मनुष्य के बीच हर तरह की समानता रहती थी। जिस में केवल दो तरह के लोग दिखाई देते थे। वे हैं एक तो पुरुष, दूसरी स्त्री। अगर खाने को कुछ मिलता है, तो वे सब मिल बाँट के खाते थें। कालांतर में समय के साथ–साथ उनके खान–पान में, रहन–सहन में, ओढ़–पहन में बहुत बड़ा बदलाव आया। मनुष्य अपने आप को सभ्य बना लिया हैं। एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव से रहने लगे हैं। इन की संस्कृति में स्त्री को समुचित स्थान दिया गया है। दरअसल देवी–देवता और आस्था का सृजन भी मनुष्य ने ही किया है। लेकिन कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि इस धरती के साथ जितनी भी चीजे हैं, उन सभी का भगवान ने यानि देवी–देवता ने ही सृजन किया हैं। इस लिए कुछ आर्य देव संस्कृति को मानते हैं और मानने को कहते हैं कि देव संस्कृति ही सबसे श्रेष्ठ संस्कृति हैं। किसी भी देवी देवता को और उन के इतिहास को लीजिए, हमे ऐसा प्रतीत होता है कि वे, व्यक्तिवादी हैं। घमन्डी हैं। एक दूसरे के प्रति वे प्यार के बदले नफरत को बाँटा हैं। वे स्त्री को मात्र भोग्या वस्तु माना है। इनकी संस्कृति में प्रजनन की प्रक्रिया नहीं दिखाई देती है। वे अवतरित होते हैं, जो सहज प्रकृति के खिलाफ हैं। इस

प्रकार देव संस्कृति से मनुष्य की संस्कृति ही समोन्नत संस्कृति है। देवी–देवता की कल्पना भी मनुष्य ने ही की है। इस उद्धरण में द्रष्टव्य है।

"–दज़ला, फ़रात और डैन्यूब की परा–धरती के समस्त देवताओं ! तुम सब आज चिन्तित हो क्योंकि मनुष्य ने प्रेम तथा मित्रता जैसे नए तत्वों को खोज लिया है, लेकिन तुम्हें किस ने रोका था ? तुम सब घोर अहंकारी हो ! तुम यह भूल गए कि मनुष्य ने ही तुम्हें सिरजा है। मनुष्य के बिना तुम्हारी और हम जैसी देवियों की कोई औक़ात या अस्तित्व नहीं है। तुम समस्त देवता लोग प्रेमविहीन और एकांगी व्यक्ति हो। तुम सब स्त्री पर आसक्त होकर उसका शीलभंग कर सकते हो...अवैध सन्तानें पैदा कर सकते हो, क्योंकि तुम अहंमन्य हो । तुम नितान्त व्यक्तिवादी हो। तुम्हारे पास मित्रता का मूल्य नहीं है। तुम एक दूसरे के पूरक़ नहीं हो। तुम हमेशा एक दूसरे से स्पर्धा करते हो । तुम्हारे सारे आचरण अवैध हैं इसीलिए तुम किसी वैध सभ्यता या संस्कृति का निर्माण नहीं कर सके हो। तुम सब भूल रहे हो ...धरती के मनुष्य ने प्रेम और मित्रता के अलावा प्रजनन की वैध परम्परा का आविष्कार भी कर लिया है, इसीलिए उन्हें संस्कार जैसी महाशक्ति भी प्राप्त हो गई है...तुम्हारे पास केवल वासना है, प्रेम नहीं है। केवल वैयक्तिक श्रेष्ठता का द्वेष है इसलिए मित्रता नहीं ! तुमने स्त्री को मात्र भोग्या मान कर अवैध संतानों का देवलोक स्थापित कर लिया है, पर इस देवलोक के पास कोई संस्कार या परम्परा नहीं है..."[287]

आज देव संस्कृति और मनुष्य संस्कृति में बहुत अंतर है। देवता अहंकारी हैं। इनके पास प्रेम नहीं हैं। इनके पास मित्रता नहीं हैं। ये स्त्री को केवल भोग वस्तु मानते हैं। ये केवल व्यक्तिवादी हैं। ये अवैध संतानों को उत्पन्न किए हैं। देवता यह भूल गये हैं कि इनको मनुष्य ने ही गड़ा है। लेकिन मनुष्य की संस्कृति, देवताओं की संस्कृति से बिलकुल अलग है, क्योंकि मनुष्य के पास प्रेम और मित्रता की भावना है। इनके पास प्रजनन की परम्परा है। इसलिए इनके पास संस्कार भी है।

---

[287] पृष्ठ संख्या, 29, कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2000

5.1.2. ब्राह्मण वादी सभ्यता और मिस्र सभ्यता

विश्व में जहाँ–जहाँ मनुष्य पैदा हुआ, वहाँ–वहाँ मनुष्य ने, वहाँ की भौगोलिक, सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार भगवान की कल्पना की हैं। भगवान और भक्त के बीच जो पुजारी का काम करते हैं, वे हर सभ्यता में रहे हैं। हर धर्म में ब्राह्मण वाद का जन्म हुआ था। मिस्र सभ्यता में भी पुरोहितवाद और ब्राह्मणवाद पैदा हुआ है। यह जड़ता का प्रतीक था। ये सामाजिक परिवर्तन के खिलाफ रहते थे। देवताओं के नाम पर लोगों द्वारा जितना भी चढाया जाता था उतना पुरा पुजारियों के पेट में ही जाता था। पुजारी लोग मन्दिरों में ही रहते हुए सम्मान और वैभव से जीते थे। वे समाज के खतरे वाले कामों से मुक्त थे। फौजी और कर देना आदि कामों से मुक्त थे। सुमेरियन सभ्यता में भी यही हुआ है। भारत मे यह संस्कृति बहुत देर से आई है। ब्राह्मणीय संस्कृति ही मिस्र संस्कृति का पतन किया है। इन समस्याओं को रचनाकार कमलेश्वर जी अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया हैं।

"देखो...हर जाती, हर धर्म में ब्राह्मणवाद पैदा हुआ। भारत में वह बहुत देर से आया, पर मिस्र की सभ्यता में भी पुरोहितवाद और ब्राह्मणवाद पैदा हुआ। यह जड़ता का प्रतीक था...मेरे मिस्र में भी देवताओं के नाम पर जो प्रसाद चढाया जाता था, वह वहाँ के मन्दिरों के पूजारियों के पेट में जाता था। वे पुजारी उन मन्दिरों में वैभव से रहते थे। वे श्रम, फौजी सेवा और करों से मुक्त थे ! ये पुरोहित–पुजारी और ब्राह्मण ही मिस्र की सभ्यता के पतन का कारण बने ! यही सुमेरियन सभ्यता में हुआ, जो सूर्य के नहीं, चन्द्र के पूजक थे, जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बहुत महत्व देते थे..."[288]

इससे यह प्रतीत होता है कि आर्य ब्राह्मण भारत देश में देर से आये हैं। भारतीय मिस्र की सभ्यता में भी पुरोहितवाद और ब्राह्मणवाद पैदा हुआ है। ये समाज और संस्कृति में बदलाव के विरोध में थें जो आज भी जारी हैं। ये सदियों से उन मन्दिरों में वैभव से रहे

[288] पृष्ठ संख्या, 85–86, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

हैं। ये हर एक समस्या से मुक्त रहे हैं जैसे श्रम, फौजी सेवा और कर आदि। इन ब्राह्मणों के ही वजह से मिस्र की सभ्यता का पतन हुआ है।

द्विज यानी दूसरी बार जन्म लेने वाला होता है। दूसरी बार जन्म लेने का दूसरा अर्थ यह होता है कि एक बार इस पृथ्वी पर जन्म लिया और उनका अपना देहान्त हो गया। वही आदमी फिर से जन्म लेता तो वह हुआ उनका दूसरा जन्म, उसी को कहते हैं द्विज। लेकिन आर्य हिन्दू साम्प्रदायिक सम्प्रदाय में केवल ब्राह्मण और ब्राह्मणों के बच्चे ही द्विज हो सकते हैं, क्योंकि इनको जन्म से पाँच साल के अंदर ही उपनयन संस्कार कराते हैं। इस संस्कार से वे जनेऊ पहनने लगते हैं, तब से वे द्विज होते हैं। इस संस्कार मात्र से ये द्विज एवं श्रेष्ठ होते हैं और अन्य लोग द्विजेत्तर होते हैं। इनके ग्रन्थों के अनुसार द्विजों को वेदाध्ययन और शास्त्राध्ययन करने का अधिकार होता है, अन्य लोगों को वेदाध्ययन और शास्त्राध्ययन करने का अधिकार नहीं हैं। लेकिन इन नियमों को तोड़ कर वैदिक यज्ञ–विधान और कर्मकांड के विरुद्ध ब्रह्मचिंतन और आत्मज्ञान की एक धारा आयी है। इनमें वाल्मीकि है, जाबालि जैसे तत्त्वविद है। जाबालि का गोत्र, कुल खुद को भी पता नहीं हैं। जाबालि स्वयं एक परिचारिका का पुत्र था। इन्होंने अपने बचपन में पहली बार दूसरे बच्चों की देखा–देखी करके, वह भी अपनी 'माँ' से कहता है कि 'मैं भी ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा और शिक्षा ग्रहण करूँगा'। तो उनकी 'माँ' मना करती है। लेकिन इन्होंने उन सभी का विरोध करके शास्त्रों का अध्ययन करता है और बड़ा तत्त्वविद बनता है। निम्न उद्धरण से यह स्पष्ट होता है।

"हाँ वही। वर्ण और जाति की श्रेष्ठता पर आधारित वैदिक यज्ञ–विधान और कर्मकांड के विरुद्ध ब्रह्मचिंतन और आत्मज्ञान की लहर नहीं आई होती तो भला कहाँ उत्पन्न होते जाबालि जैसे तत्त्वविद और वाल्मीकि जैसे सिद्ध मुनि ! जाबालि स्वयं एक परिचारिका का पुत्र, जिसके वर्ण और गोत्र का कोई ठिकाना ही नहीं ! जब पहली बार दूसरे बच्चों की देखा–देखी उसने भी हठ किया था कि 'माँ, मैं भी ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, मैं भी शिक्षा ग्रहण करूँगा', तो माँ ने झिड़क दिया था, 'नासमझ, कौन करेगा तेरा

उपनयन ? कौन देगा तुझे दीक्षा ? यह सब तो द्विजों के लिए है। तेरी जाति और कुल का तो कोई ठिकाना ही नहीं।' "[289]

भारतीय संस्कृति विशेष एवं मिली–जुली है। इस के ऊपर आर्य ब्राह्मणवादी संस्कृति का आधिपत्य सदियों से जारी रहा है और आज भी है। इनके वैदिक यज्ञ–विधान और कर्मकाण्ड, प्रधान संस्कृति है। ये द्विज माने जाते हैं। इनके उपनयन संस्कार होते हैं। इसके बाद वे शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरुकूल में जाते हैं। लेकिन इन सभी का विरोध करते है जाबाली। जाबाली स्वयं एक परिचारिका का पुत्र थे। यह छोटी जाति के थे। इनका कोई गोत्र नहीं है। इनका उपनयन संस्कार नहीं होता था। तो इस संस्कृति का विरोध करते हुए ब्रह्मचिंतन और आत्मज्ञान की लहर आई, इसी के कारण जाबाली और वाल्मीकि जैसे सिद्ध मुनिओं का जन्म हुआ है और एक नयी संस्कृति का जन्म हुआ।

5.1.3. उपनिषद् और बदलाव

उपनिषद् को कौन लिखा है ? उपनिषद को आर्यों ने ही लिखा है। वे आर्य ही ब्राह्मणवादी, वर्णवादी हैं। वे धर्म के नाम पर पूरी दुनिया को गुमराह किये हैं और कर रहे हैं। वे जितने भी ग्रन्थ लिखे हैं, वो पूरे के पूरे उनके अपने स्वार्थ और लोगों के ऊपर सत्ता प्राप्त करने के लिए ही लिखे गये हैं। वे विश्व की बदलती हुई संस्कृति को नकारते हैं। वे धर्म के नाम पर मज़हबी काम करते रहते हैं। वे बदलती संस्कृति का विरोध करते है। वे संस्कृति को धर्म की ओर खींचना चाहते हैं।

दरअसल बदलती संस्कृति को रोकना सम्भव नहीं हैं। समाज हमेशा परिवर्तनीय है। समाज के साथ धर्म, सम्प्रदाय, संस्कृति का भी परिवर्तन नितान्त आवश्यक है। जो समय के साथ परिवर्तित नहीं होता, उसका पतन हो जाता है। भारत में ब्राह्मणवादी संस्कृति पतनशील में जब थीं, तो उसकी रक्षा के लिए ही धर्म–सम्प्रदायवादी पार्टीयाँ बनाई गयी हैं। ये लोग सांस्कृतिक दरोगा पन दिखाते हैं। वे वेलेंटाइन डे का विरोध करते हैं। बगीचों में

[289] पृष्ठ संख्या, 24–25, अपने अपने राम, भगवान सिंह

जाकर लोगों को भय–भीत करते हैं। राम सेना के नाम पर, पबों में महिलाओं पर हमला करते हैं। इन समस्याओं को इस उद्धरण से समझेंगे।

"–तुम्हारे उपनिषद और कुछ नहीं...वे ब्राह्मणवादी अत्याचारों, वर्णवादी अनाचारों और ईश्वरवादी आस्था को स्थापित करने वाले पश्चाताप के ग्रंथ हैं...उन्होंने तुम कुलीन आर्यों को ज़रूर संभाला, पर वे विश्व के बदले हुए मानसिक मानचित्र को नहीं सँभाल सके... दुनिया की सच्चाई बदल गई थीं, पर तुम आर्य इन बदली हुई सच्चाइयों को आत्मसात नहीं कर पाए! यही तुम्हारे पराभव का कारण है ! धर्म के आधार पर संस्कृतियाँ बनती हैं... पर कालांतर में वे धर्म से मुक्त होकर मानव–संस्कृतियों में तब्दील हो जाती हैं...पर तुम और तुम्हारे लोग बार–बार संस्कृति को धर्म की ओर खींचते रहे..."[290]

समाज में बदलाव यानी परिवर्तन अनिवार्य होता है। जो समाज और संस्कृति बदलते समय के साथ–साथ यदि अपनाते हुए आगे बढ़ती है तो वह संस्कृति संपूर्ण एवं महान हो सकती है। यदि बदलते समय के साथ–साथ, बदलती संस्कृति को आत्मसात नहीं करते हैं तो वह संस्कृति संकट में पड़ जाती है और जड़ संस्कृति बन जाती है। इस देश में उपनिषदों से लेकर आज तक, ब्राह्मणों ने संस्कृति को धर्म की ओर खींचते रहे हैं। धर्म से संस्कृति बनती तो है, बावजूद इसके कालांतर में संस्कृति धर्म से अलग होकर मानव संस्कृति में परिवर्तित हो जाती है।

5.1.4. वैदिक सभ्यता

वैसे तो अपने–अपने दुःख हैं। मेरे मस्तिष्क में बार बार यह प्रश्न उठता है कि ये अपने अपने दुःख क्या हैं ? और इन दुःखों के कारण कौन से, और कौन है ? हम अब पहला प्रश्न का उत्तर देंगे। अपने–अपने दुःख ये हैं कि सबसे ज्वलन्त दुःख है वर्णवाद। दूसरा है जातिवाद। तीसरा है छुआछूत। सभी मनुष्य एक जैसे होते हुए भी कुछ सवर्ण हैं और कुछ

---

[290] पृष्ठ संख्या, 103, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

अवर्ण हैं। इन वर्णों में भी जातिवाद है। कुछ जातियाँ ऊँची हैं और कुछ जातियाँ नीची हैं। इन जातियों में भी कुछ जातियाँ छूत हैं और कुछ अछूत हैं। इस दुनिया में अछूत से बढा दुःख और कुछ नहीं हो सकता है। तो इन दुःखों का कारण वही हो सकता है जो वर्णवाद को, जातिवाद को, छुआछूत को जन्म दिया है। इन सभी का कारण वही 'वैदिक सभ्यता' हैं। वैदिक सभ्यता का जनक ब्राह्मण और उनकी ब्राह्मणवादी संस्कृति है। इस वैदिक सभ्यता का विरोध करते हैं। कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में वैदिक सभ्यता का विरोध करते हैं, जो निम्न प्रकार है।

"–वैदिक सभ्यता !

–मुर्दाबाद।

–अत्याचारी वर्णवाद !

–मुर्दाबाद ! मुर्दाबाद !

–वैदिक ब्राह्मणवाद !

– मुर्दाबाद ! मुर्दाबाद !

–दुःख का कारण !

–वर्णवाद ! वर्णवाद !"[291]

इससे यह समझ में आता है कि वैदिक सभ्यता अत्याचारी थी। वैदिक काल से आज के आधुनिक काल तक भी उनका वर्णवाद जारी है। आज आधुनिक काल में भी कई सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का कारण वर्णवाद है। इस लिए वैदिक वर्णवादी सभ्यता और संस्कृति का विरोध करते हैं।

---

[291] पृष्ठ संख्या, 256, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

5.1.5. वर्णवाद और जन्म

इस धरती पर वर्ण व्यवस्था सबसे बड़ा खतरनाक है। इस खतरनाक वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति कहाँ हुई है ? इतिहास बताता है कि इस वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति वैदिक सभ्यता में हुई है। इस के जनक ब्राह्मण हैं, यह संस्कृति ब्राह्मणीय वैदिक संस्कृति है। वे बताते हैं कि पूरे मनुष्यों के चार वर्ण हैं। वे ब्रह्मा के शरीर में से जन्में हैं। यथाः ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघ से वैश्य, पादों से शूद्र जन्में हैं। ये ही चार वर्ण बने हैं।

दरअसल मनुष्य का जन्म शरीर के हर अंग से नहीं होता है। वह भी पुरुष के शारीरिक अंगों सें तो कतही नहीं है। मनुष्य का जन्म एक स्त्री से होता है। हर स्त्री को मासिक धर्म से गुजरना पड़ता है। ब्राह्मण की स्त्री को भी मासिक धर्म से गुज़रना पड़ता है। ये स्त्रियाँ भी बच्चों को जन्म देती हैं। अपने परिवार को चलाना ही है। इस प्रकार सभी मनुष्य करते हैं। लेकिन ब्राह्मणों का कहना है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण जन्में हैं। यह सरासरी झूठ है, क्योंकि ब्रह्मा के मुख में गर्भाशय नहीं है। गर्भाशय तो स्त्री के कोख में होता है। इन समस्याओं को हम उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में देख सकते हैं।

"–आर्यों का वर्णवाद एक अप्राकृतिक सिद्धान्त है, क्योंकि ब्राह्मणों की पत्नियों को भी मासिक धर्म के चक्र से गुज़रना पड़ता है। वे भी गर्भवती होती हैं। वे भी बच्चों को जन्म देती हैं, उन्हें दूध पिलाती और उनका पालन पोषण करती हैं...इतने पर भी यह आर्य ब्राह्मण, जिनका जन्म स्त्रियों की कोख से होता है, यह दावा करते हैं कि वे ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए हैं...ब्रह्मा के मुख में गर्भाशय नहीं है..."[292]

इस धरती पर जानवरों से लेकर मनुष्य तक के जन्म की प्रक्रिया एक ही तरह की होती है। मनुष्य में भी ब्राह्मण से लेकर नीची से नीची जाति यानी अछूत जाति के लोगों

---

[292] पृष्ठ संख्या, 256–257, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

का जन्म भी एक ही तरह की प्रक्रिया से होता है। तो ब्राह्मणों का जन्म ब्रह्मा के मुख से पैदा होना अवैज्ञानिक है।

5.1.6. वैदिक आर्य बनाम बौद्ध

वैदिक आर्य संस्कृति के जनक ब्राह्मण हैं। वे ब्राह्मणवाद, ईश्वरवाद, पुनर्जन्म, वर्णवाद, जातिवाद, छुआछूत आदि सिद्धांतों की परिकल्पना किये हैं। ईश्वरवादी सत्ता के नाम पर ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता लागू की है। पुनर्जन्म तो मनुष्य विरोधी सिद्धांत है। वर्णवाद के नाम पर मनुष्य को बाँटा है। किसी को श्रेष्ठत्त्व सिद्ध किया है, तो किसी को निकृष्ट बनाया है। जातिवाद के आधार पर ऊँच–नीच की भावना को फैलाया है। कुछ जातियों को अछूत बनाया है। वे मुट्ठी भर ब्राह्णों ने पूरे समाज को सताया है।

वैदिक आर्य और ईश्वरीय सत्तावादी संस्कृति के विरोध में बुद्ध आये है। इन्होंने बौद्ध–सम्प्रदाय को स्थापित किया है। इस सम्प्रदाय के माध्यम से वर्णवाद का विरोध किया है। सार्वजनिक रूप से घोषित किया है कि वर्णवाद को तोड़ो। शरणार्थी होने से इंकार कियें हैं। ईश्वर की सत्ता को न स्विकार करें। पुनर्जन्म सिद्धांत को नामंजूर करें। इन ग्रन्थों को आर्य अहंकार के ग्रन्थ समझें। किसी आदमी के भीतर से कोई भगवान नहीं बोलता। कोई देवता का अस्तित्व नहीं है। उनके ग्रन्थ को दासता के परिसूचक मानना चाहिए। इन्होंने कहा है कि तुम स्वयं अपने दीपक हो। तुम स्वयं को सांसारिक यथार्थ से मुक्त कर सकते हो। इस प्रकार बुद्ध ने वैदिक आर्य और ब्राह्मणीय सत्तावादी संस्कृति का विरोध किया और मनुष्य संस्कृति का समर्थन किया है। इन समस्याओं को कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया हैं जो निम्नप्रकार है–

"तभी बोधगया से गौतम बुद्ध की आवाज़ आने लगी–तोड़ो ! तोड़ो ! वैदिक आर्यों के वर्णवाद को तोड़ो...मैं खुद आर्य हूँ...पर वैदिक आर्यों के वर्णवाद और ब्राह्मणवाद ने हमें अपनी सभ्यता में शरणार्थी बना दिया है। हम शरणार्थी होने से इनकार करते हैं...हम ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करते हैं। पुनर्जन्म के मनुष्य विरोधी आकर्षक सिद्धान्त को नामंजूर

करते हैं। हम आर्यों के उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म की परिकल्पना को बेकार और व्यर्थ समझते हैं। यह उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद लिखे गए आर्य–अहंकार के ग्रन्थ हैं...हम घोषणा करते हैं कि कोई परासत्ता नहीं है, इसलिए यह कर्मकाण्डी पुरोहित हमारे लिए आवश्यक नहीं हैं...पुनर्जन्म मिथ्या है...तुम स्वयं अपने दीपक हो। तुम स्वयं को सांसारिक यथार्थ से मुक्त कर सकते हो। किसी के भीतर से कोई देवता नहीं बोल सकता। देवता का अस्तित्व नहीं है। देवता और उनके ग्रन्थ दासता के परिसूचक हैं...जो बुद्धी और मन को सन्तुष्ट न करे वह त्याज्य है।"[293]

वैदिक ब्राह्मण आर्य संस्कृति, समाज में तरह–तरह के धार्मिक अन्धविश्वासों को फैलाई है और स्थापित की। पुनर्जन्म, स्वर्ग और नरक, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, छुआछूत...आदि को बढ़ावा दिया है, इनका विरोध करते हुए, गौतम बुद्ध ने अपने सम्प्रदाय की स्थापना की। इसमें संघ यानी समाज केन्द्र में है। बुद्ध के अनुयायी समाज में जाते थे। ये कोई भेद–भाव नहीं मानते थे। इनका कहना था कि 'संघम् शरणम् गच्चामि, धमम् शरणम् गच्चामि।'

5.1.7. बौद्ध–जैन बनाम शैव सम्प्रदाय

क्रान्तिकारी एवं समाज सुधारक कबीरदास ने कहा है कि 'जहाँ दया तहाँ धर्म, जहँ लोब वहाँ पाप' अर्थात कोई धर्म हो तो वहाँ दया होनी चाहिए। दबे, कुचले लोगों पर, अमीर लोगों की दया होनी चाहिए। अमीर लोग गरीबों के प्रति दया दिखानी चाहिए और दया करनी चाहिए। लेकिन इतिहास में हुआ क्या ? धर्म के नाम से लोगों को दबाया गया हैं। धर्म के नाम से छुआछूत की भावना फैलायी गयी। धर्म के नाम से जातिवाद को जन्म दिया गया। इनको हर सुविधा से वंचित रखा गया है। इन सब के विरोध में एक सम्प्रदाय खड़ा होता है, वह है बौद्ध सम्प्रदाय। बौद्ध सम्प्रदाय को भगवान बुद्ध ने स्थापित किया था।

[293] पृष्ठ संख्या, 257, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

इन्होंने हिन्दू धर्म के हर बुराई का विरोध किया है। उन्होंने उपदेश दिया है कि 'तुम स्वयं दीपक हो'। कबीरदास ने कहा है कि–

"जो तिल में तेल है, जो चकमक में आग है

तेरे साई तुझ में है, जाग सके तो जागिए।"[294]

अतः बुद्ध और कबीर की लेखनी में और विचार में समानता दिखाई देती हैं। जैन सम्प्रदाय भी हिन्दू धर्म के बुराइओं के विरोध में ही काम किया था। ये सब हिन्दू ब्राह्मणों को हज़म नहीं हुआ था। वे बौद्धों और जैनों के मन्दिरों को ध्वंश करके शैवों और अन्य हिन्दू देवी–देवताओं के मन्दिर बनाये हैं। इन्हीं समस्याओं को गीतांजलि श्री अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में प्रस्तूत की है।

"बौद्ध और जैन स्थलों पर शैव मन्दिर दिखेंगे। उन पर और उनके आस–पास इस्लामी मीनारें।"[295]

आर्य ब्राह्मण संस्कृति का विरोध करती हुई बौद्ध एवं जैन संस्कृति आई थी। परिणामतः यह हुआ कि ब्राह्मणों को और उनके मन्दिरों में चढ़ावे रुक गये थे। परिणाम स्वरूप ब्राह्मण लोगों को खाने को खाना मिलना भी मुश्किल हो गया था। ब्राह्मणों ने यह सोचा कि बौद्ध और जैन उनके लिए खतरा है। तो ब्राह्मणों ने बुद्ध और जैन सम्प्रदाय और उनकी संस्कृति को मिटाना चाहा और मिटा दिये। उनके ऊपर हिन्दू देवी–देवताओं के मन्दिर बना दिए गये।

[294] पृष्ठ संख्या कबीर वाणी, कबीरदास, तुलसी साहित्य पब्लिकेशन्स, मेरठ
[295] पृष्ठ संख्या, 55, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

5.1.8. भक्ति और चिंता

भगवान हैं तो भक्त भी हैं। भगवान के सत्कार्य को लेकर, भक्ति के ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। जैसे वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, भगवतगीता आदि। हमारे पूर्वज इन ग्रन्थों को कंठस्थ करते थे। लोगों को सुनाते थे। उन ग्रन्थों की पूजा भी करते थे। लोगों से कहते कि वैसा ही करे जैसा वे खुद कर रहे हैं। लेकिन ये सब क्यों करते हैं ? इस लिए करते हैं कि भगवान के प्रति भक्त की भक्ति कितनी हैं ? लेकिन कालांतर में भक्ति एक दिखावा हो गयी। भगवान के प्रति एकाग्र हो या ना हो, पूजा करते रहो। यह बात, भगवान के साथ धोखा और ढोंग है। कुछ लोग ऐसे हैं कि उनके अपने माता–पिता के पूजा–पाठ करने पर, उन के बेटी–बेटें और नाती–पोतें भी पूजा–पाठ करने लगते हैं। बल्कि उन लोगों को भगवान पर विश्वास और एकाग्र बिलकुल नहीं रहता है। जिसके कारण उनको लगता था कि पूजा करना भगवान से दूर भागना ही होता है, क्योंकि पूजा करते समय भगवान की मूर्ति को जितना मन में लाने की कोशिश करता हूँ, उतना ही दूर भागता है भगवान। अतः उन्होंने अपने मन के विरुद्ध काम कर रहा है। इस लिए करते हैं कि लोग क्या कहें ? अंत में उन को यह एहसास हुआ कि जो काम सही लगे उसे लोगों की हँसी की चिंता किए बिना करें या छोड़ सकूँ। यह समस्या नीचे दिये गये उद्धरण में भी देख सकते हैं।

"गीता कंठस्थ करने पर पता नहीं क्यों मन में आया कि मुझे पूजा भी करनी चाहिए। अब मैं माँ के पूजा से उठने के बाद स्वयं धूप–दीप जलाकर, भगवान का ध्यान लगाकर, गीता के श्लोक पढ़ने का प्रयत्न करता। मुझे विस्मय इस बात पर होता कि मैं भगवान की मूर्ति की मन में कल्पना करके जितना ही ध्यान लगाता, मन भगवान से उतना ही दूर भागता। इस समय मुझे ऐसी सारी उल्टी–सीधी बातें याद आतीं, जिन्हें मैं बुरा समझता था। मुझे कुछ ही समय बाद यह समझ में आने लगा कि पूजा करना भगवान से दूर भागने का सबसे सरल उपाय है। मैंने सोचा जब तक मन एकाग्र न हो पूजा करना एक ढोंग है। यह सोचने के बाद भी मैं कुछ दिनों तक इस डर से पूजा करता रहा कि लोग कहेंगे कि पूजा का नियम मुझसे निभ नहीं पाया और मेरी हँसी उड़ाएँगे। फिर सोचा कि मुझमें इस बात

का नैतिक साहस होना चाहिए कि जो काम सही लगे उसे लोगों की हँसी की चिंता किए बिना कर या छोड़ सकूँ। इसके बाद पूजा करनी छोड़ दी। "[296]

भक्ति दो तरह की होती हैं। एक अंतर्मुखी भक्ति, दूसरी बहीर्मुखी भक्ति। कुछ लोग ऐसे हैं जो भगवान को मन ही मन स्मरण करते हैं और कुछ ऐसे लोग हैं भक्ति के नाम पर दिखावा करते हैं। पुजा–पाठ करते हैं, घंटी बजाते हैं, तिलक लगाते हैं। लेकिन उनका मन दूसरी जगह पर रहता है। एकाग्र नहीं रहता है। यह केवल दिखावा ही है और कुछ नहीं।

5.1.9. गायन–भजन और प्रदूषण

वृद्धावस्था में बूढ़े–बूढ़ियों नें भगवान के शरण में होते हुये और भगवान के भजन–कीर्तन करते हुए जीवन की आखरी दशा को गुज़ारना चाहते हैं, ताकि वे जीवन में जो भी पाप किये हैं वह मिट जाएँ और पुन्य मिलें, मृत्यु के बाद स्वर्ग मिलें। यह भगवान के प्रति सच्चा भक्ति भाव रखनेवाले करते हैं। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं कि भक्ति और भजन के आड़ में ऐसे काम करते रहते हैं कि समाज़ को हानिकारक होता है और तकलीफ पहुँचाता है। भजन और कीर्तन के लिए दूर–दूर से साधू और संतों को बुला लेते हैं। पूरे मोहल्ले में, जगह–जगह में बिजली के खंभों पर, मैक बँदवा देते हैं। यह चौबिस घंटे और सात दिन लगातार ऊँची आवाज में भजन–कीर्तन गाते रहते हैं। जिसकी वजह से अस्पताल में डाक्टर एवं मरीजों को डिस्ट्रब होता है। परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों को परेशानी होती है। इन सभी समस्याओं से उनको कोई मतलब नहीं हैं। इस तरह की समस्याएँ 'उन्माद' उपन्यास में भी देखने को मिलती हैं यथा–

"अब बूढ़ी हो चली तो पूरी तरह राधारमण की ओर लौट गई और साधूओं और सन्तों को बुलाकर भजन कराने लगी। पहले जो काम खुद करती थी, वह तीनों बच्चियों से

[296] पृष्ठ संख्या, 89, उन्माद–भगवान सिंह

कराने लगी। इसलिए भक्तिसंगीत, मधुरसंगीत, और जीवनसंगीत तीनों के आयोजन इस केन्द्र से होने लगे। जिन दिनों बुकिंग नहीं होती है उन दिनों अपने यहाँ ही हफ्ते दस दिन का कीर्तन और पाठ रखती है। हरिद्वार, ऋषीकेश, वृंदावन, काशी, जाने कहाँ–कहाँ से वह साधुओं और संतों को इन अवसरों पर बुलाती है। गानेवाले कम, बजानेवाले अधिक। इस दौर में बिजली के खंबों पर बँधे चित्कार यन्त्रों से पूरे मुहल्ले की दिवारों से लेकर लोगों के कान के पर्दे तक 'जय राधे राधे' की ध्वनि से काँपने लगते हैं। भजन और चीत्कार के यौगिक में परीक्षा देनेवाले बच्चे अपनी तैयारी करना बंद कर देते हैं। पढ़ने–लिख़नेवालों के सिर किन्हीं उत्तेजक विचारों से नहीं, चीत्कार–ब्रह्म की महिमा से फटने लगते हैं।"[297]

हिन्दू समाज में असली भक्ति तो कम है बल्कि दिखावा ज्यादा है। अपनी भक्ति को दिखाने के लिए गाना–भजन का आयोजन करते हैं। दूर–दूर तक बिजली के खंबों से लाउडस्पीकर सेट बांधते। जोर–जोर से आवाज बढ़ाकर भजन कीर्तन करते हैं जिसके कारण लोगों के कान फटते हैं। परीक्षा की तैयारी करने वाले बच्चों को बहुत परेशानी होती है। इस प्रकार भगवान के नाम पर, संस्कृति के नाम पर समाज में सांस्कृतिक प्रदूषण होता जो सभी के लिए हानिकारक है।

5.1.10. धर्मांतरण एवं विवाह

हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में अच्छाई से ज्यादा बुराई है। ऊँच–नीच की भावना है, छुआछूत की भावना है, जाति की समस्या है। इन सभी के कारण लोगों ने इस्लाम कुबूल किया हैं। इसलिए किया हैं कि हिन्दू सम्प्रदाय से इस्लाम में कुछ ज्यादा ही समानता है। जिस समानता को खोजते हुये लोग इस्लाम को कुबूल किये थे, उन को फिर से हिन्दू सम्प्रदाय में लाने के लिए आर. एस. एस. ने कोशिश की। बहुत सारे लोगों को जो अन्य सम्प्रदायों में थे, उन की शुद्धि करके उनको फिर से हिन्दू बनाया। वे हिन्दू बनने के बाद, जब इनकी

[297] पृष्ठ संख्या, 285–286, उन्माद, भगवान सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1999

बेटी–बेटों से नाता–रिश्ता करना चाहें तो कोई भी हिन्दू इनके साथ रिश्ता जोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। कई कोशिश करने पर यह कहने लगे कि उन की बेटियों को ले जाने के लिए तैयार थें लेकिन उनके बेटों को अपनी बेटी देने के लिए तैयार नहीं थें। जब उक्त समस्या उत्पन्न होती है तो ये शुद्धीकरण करने वाले पता नहीं कहाँ चले जाते हैं ?। ये ऐसे उन्मादी लोग हैं कि किसी भरे डिब्बे में सवार होते हुए, जो यात्रियो को कहते हैं कि हमारे डिब्बे में आजाओ। पास आने के बाद कहते हैं कि हमारे पास जगह नहीं हैं। दरवाजा, खिडकियाँ बंद कर लेते हैं और कहते हैं कि इस डब्बे के बाहर लटके रहो। इन समस्याओं को भगवान सिंह ने अपने 'उन्माद' उपन्यास में प्रस्तुत किया हैं।

" 'क्यों नहीं गया इसका पता तुम्हें न होगा। अब बताता हूँ। जिन लोगों की शुद्धि हमने कराई थी उनके शादी–ब्याह का प्रश्न आया तो पता चला दूसरे हिन्दू उनकी लड़कियाँ लेने को तो तैयार हैं, पर उन्हें अपनी लड़की देने को तैयार नहीं। हिन्दू होने के बाद वे अपने गोत्र में तो विवाह कर नहीं सकते थे। इसलिए जब उन्होंने यह समस्या हमारे सामने रखी तो मैंने कहा, 'आप लोग जैसे थे, वैसे ही रहें। इस जड़ समाज़ में किसी को अपनाने की शक्ति नहीं। यह किसी भरे ड़िब्बे में सवार उन्मादी लोगों जैसा है जो यात्रियों को देखकर कहते हैं–आ जाओ भाई, हमारे ड़िब्बे में आ जाओ, पर उनके पास आते ही फाटक और खिड़कियाँ बंद कर लेते हैं और कहते हैं डिब्बे के बाहर लटक जाओ, इससे अधिक रियायत हम नहीं कर सकते।' "[298]

इससे हमें यह समझ में आता है कि एक बड़ा तबका, मौजूद बुराइयों के कारण, हिन्दू धर्म को त्याग कर अन्य धर्म में धर्मांतरित हुआ है। ये धर्मांतरित हो कर कई सदियाँ गुजर चुकि हैं। तो आज भाजपा और इसके शाखाएं जैसे आर. एस. एस., बजरंगदल...आदि ने अपनी स्वार्थ, राजनीति के लिए, उनका शुद्धीकरण करना शुरू किया हैं। इनको वापस अपने धर्म में लाने के लिए धर्मांतरित ज़बर्दस्ती से करवा रहे हैं। यदि ये वापस आ जाते हैं,

[298] पृष्ठ संख्या, 316, उन्माद–भगवान सिंह

तो इनकी लड़की–लड़कों की शादी–ब्याह की तकलीफ हो सकती है। इनको जिन्होंने वापस लाना चाहते हैं, वे इनको अपने गोत्र में क्यों नहीं ले लेते हैं या इनको ब्राह्मण क्यों नहीं बना देते हैं।

5.1.11. दिन–रात प्रवचन

कितना भी पवित्र कार्य क्यों ना हों, पूजा–पाठ हों, प्रार्थना हों, मन्दिर हों, चर्च हों, लेकिन वे अस्पताल और स्कूलों के पास नहीं होना चाहिए। क्योंकि इनके पास रहने से स्कूल और अस्पतालों को व्यवधान होता है। बल्कि हिन्दुओं के मन्दिरों में जो भी कार्य करते हैं, वह कई कोसों दूर तक सुनाई देता हैं। कहीं तो, मन्दिर से लेकर किलोमिटरों दूर तक ध्वनी बाक्स और मैक, बिज़ली के खम्बों पर बाँध देते हैं। दिन–रात प्रवचन गाये जाते हैं। जिससे, स्कूलों में और विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों को और पढ़ाने वाले अध्यापकों को व्यवधान होता है। इससे लोगों को शान्ति नहीं मिलती बल्कि गड्डमड्ड गूँथ जाते हैं जरूर। इसी तरह की समस्या को 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में भी देख सकते हैं–

"जहाँ झाड़ियाँ हुआ करती थीं, लाउडस्पीकर लग गए हैं और यूनिवर्सिटी में उनकी आवाज़ गूँजती है। दिन–रात प्रवचन गाये जाते हैं, जो टीचरों और छात्रों की क्लास में गडड्मड्ड गूँथ जाते हैं।"[299]

दरअसल यह होना चाहिए कि जहाँ अस्पताल हो और जहाँ स्कूल यानी पाठशाला, विश्वविद्यालय हो, वहाँ मठ, मन्दिर, चर्च, मस्जिद...आदि नहीं होने चाहिए, क्योंकि यह धर्मनिरपेक्ष देश है। यदि इस तरह का कानून है तो उसका पालन करना चहिए और नहीं है तो उस तरह का कानून बनाना चाहिए। ताकि सांस्कृतिक प्रदूषण से लोगों को बचा सखे।

---

[299] पृष्ठ संख्या, 53, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

5.1.12. धर्म और संस्कृति

कहा जाता है कि हिन्दू धर्म सबसे अच्छा धर्म है और सबसे बढ़ा धर्म भी हैं। लेकिन संत कवि कबीरदास ठीक ही कहा है कि–

“बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर

पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर”[300]

वैसे ही हिन्दू धर्म कितना बड़ा हो तो क्या फायदा है ? जिस धर्म के छाया–छत्र में लोगों को कभी भी समानता नहीं मिली। वैसे ही कुछ लोग बेबुनियाद नारा लगाते हैं कि हम सब हिन्दू हैं। लेकिन यही हिन्दू धर्म के नाम पर यहाँ के मूल वासियों को कई जातियों में बाँट दिये हैं। इन मूलनिवासियों के परम्परा को और उनकी संस्कृति को नाश कर दिये हैं। उनकी संस्कृति को निकृष्ट, दमघोंटू और संकीर्ण बना दिये हैं। वैसे तो हिन्दू संस्कृति के मूल में ही विवाद है। इन सभी समस्याओं को, गीतांजलि श्री ने, अपने उपन्यास में चर्चा की है।

“तुम अपने आपको हिंदू कहते हो? “शरद शांत स्वर में ताप लेकर बोल रहा था,” विवाद तो हिंदू धर्म और संस्कृति के मूल में है। खंडन–मंडन की परंपरा, शास्त्रार्थ का रिवाज़, क्या तुम लोग नहीं मानते ? कोई एक मत है हिंदू जाति में ? विपुल मत हैं। और रहेंगे। मेरी सुनो और जवाब दो कि जिस महान जाति के लिए तुम चिंतित हो, उसकी संस्कृति, परंपरा, धर्म को इतना निकृष्ट, दमघोंटू, संकीर्ण बनाकर तुम इसमें हिंदू छोड़ ही क्या रहे हो ?”[301]

---

[300] पृष्ठ संख्या, 38, कबीर वाणी, कबीरदास, तुलसी साहित्य पब्लिकेशन्स, मेरठ

[301] पृष्ठ संख्या, 237, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस समाज में जितनी भी समस्याएं हैं, ये सब हिन्दू धर्म और संस्कृति के मूल में ही हैं। इसलिए हिन्दू धर्म–संस्कृति का विरोध करते आ रहे हैं। हिन्दू धर्म–संस्कृति में और बहुत सारे बदलाव आना चाहिए।

5.1.13. यूनिफ़ॉर्म कोड़

साम्प्रदायिक लोग कहते हैं कि यूनिफ़ार्म कोड होनी चाहिए। कुछ सम्प्रदाय के लोग ही यूनिफ़ार्म कोड को अपना रहे हैं। दरअसल युनिफ़ार्म कोड क्यों अपनाते हैं ? इसलिए अपनाते हैं कि उनके अपने सम्प्रदाय में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समानता हों। दुनिया को यह दिखाना चाहते हैं कि हमारे कौम में सब बराबर हैं। इस्लाम में यूनिफॉर्म की परम्परा आज भी लागू है। बावजूद इसके इस्लाम में भी शत प्रतिशत समानता नहीं है बल्कि कुछ प्रतिशत समानता दिखाई देती हैं। जैसे मस्जिद में नमाज़ पढतें समय गरीब और अमीर बराबर खडे होकर नमाज़ पढते हैं। वैसे ही हिन्दू सम्प्रदाय को छोड़ कर बाकी सम्प्रदायों में कुछ–कुछ समानता दिखाई देती है। लेकिन हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय में बिलकुल समानता नहीं है। वैसे तो हिन्दू कोई मज़हब नहीं है। हिन्दू वे हैं, जो हिन्दुस्तान यानी भारत के मूलवासी हैं। इनकी कोई एक संस्कृति नहीं हैं। इनका कोई एक सम्प्रदाय नहीं है। ये अपने– अपने सम्प्रदायों में बँटें हैं। भारत में कई जातियाँ हैं। इनमें भी ऊँच–नीच की भावना है। इन में छुआछूत की प्रथा है। इन जातियों में विवाह अपने–अपने तरीके से होते हैं। दक्षिण भारत में मामा भानजी से विवाह कर लेता है। इसी हिन्दुस्तान में आदिवासी भी हैं। कई कबीले हैं। इन कबीलों में विवाह के अलग–अलग तरीके हैं। कुछ तो बिना विवाह के भी संबंध रखते हैं। इन सभी समस्याओं के कारण हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय ही है। सब रूढ़ीवादों के कारण भी वही है। फिर कहते हैं कि हिन्दुओं के लिए यूनिफ़ार्म कोड़ होना चाहिए! यह कैसे सम्भव है ? इन समस्याओं को 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में चर्चा की गयी है।

"यूनिफ़ार्म कोड़ तो होना ही चाहिए, मगर हमारी चिढ़ के कारण नहीं। अभी कहीं यूनिफ़ार्म कोड़ नहीं है। हिंदूओं का भी अपना कोड़ है। उसमें भी पूरी समानता नहीं है।

पुराने, प्रचलित, रीति–रिवाजों को मान्यता दी गई है। तभी दक्षिण में मामा–भांजी शादी कर सकते हैं, तभी कुछ हिंदूओं में बग़ैर सप्तपदी के भी विवाह संपन्न हो सकते हैं, आदिवासियों–कबीलों के अपने तौर–तरीके हैं, बिन विवाह संबंध भी हैं, तब तो हम नहीं भड़कते। इस देश में न जाने कितनी रूढ़ियों का निवारण होना है, नई सोच के मुताबिक, कि कहाँ एक–सा क़ायदा लागू होना चाहिए, कहाँ विभिन्नता रहने दी जाए, देश की सांस्कृतिक राशि को उज्ज्वल रखने के लिए, मगर यह बातें दुश्मन–भाव से नहीं तय होंगी, दोस्ताना वाद–विवाद से, सभी की भागीदारी में तय होंगी।"[302]

भारतीय संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है जो विश्व में कहीं नहीं दिखाई देती है। यहाँ कई संस्कृतियों की एक मिली–जुली संस्कृति है। हर एक संस्कृति की अपनी पहचान है। हर एक संस्कृति का अपना रहन–सहन, ओड़–पहन, खान–पान, रीति–रिवाज,...आदि हैं। इन विभिन्नता में एकता भी है उसी को कहते हैं भारतीय संस्कृति। इसके लिए किसी एक यूनिफार्म कोड लागू करना असंभव है।

5.1.14. हिन्दू और मुसलमान

कोई भी आदमी किस घर में या किस धर्म–सम्प्रदाय में जन्म लेता कौन जानता है। शायद खुदा भी नहीं जानता होगा। इसलिए नवजात शिशु को यह नहीं पता कि उसने कौनसी जाति, कौनसे सम्प्रदाय में जन्म लिया है। लेकिन ये जैसे–जैसे बड़े होते हैं, वैसे–वैसे इन को अपने घर वालों के द्वारा पता चलता है। ये बचपन में हमउम्र वालों से खेलते हैं। हमउम्र वाले सब हो सकते हैं यानी इन में सभी जाति के, सभी सम्प्रदाय के बच्चें आते हैं। ये खेलतें हैं जिस समय खेल–खेल में मारापीटी भी हो जाती है। यह झगड़ा जब घर वालों को पता चलता है तो घर वाले कहते हैं कि उस मुसलमान के बच्चे से झगड़ा क्यों करता ? वह मुसलमान है, तू हिन्दू है, यह याद रखना। उनसे झगड़ा करने से दंगें हो जाएंगे। उक्त तरह कहकर मासूम बच्चों और लोगों के मन में हिन्दू–मुस्लिम के

[302] पृष्ठ संख्या, 238, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

बीज डालते हैं घर वाले। इन्ही समस्याओं को मुशर्रफ़ आलम जौ़की ने अपने उपन्यास 'मुसलमान' में प्रस्तुत किया हैं।

"मेरा एक दोस्त रशीद कहता है, जब वह बहुत छोटा था, अपने हमउम्र हिन्दू दोस्तों के साथ मुहल्ले में खेलता था तो उसके माँ–बाप ख़ौफ़ज़दा रहते थे। हिन्दुओं के साथ क्यों खेलते हो ? ––वह पीटकर घर आता था तो माँ के दो चपत लग जाते थे––क्यों खेलते हो––लेकिन जब वह पीटकर आता था और यह बात मालूम हो जाती तो भी उसकी अम्मा कहती थी ––क्यों रे कम्बख़्त, दंगा करवायेगा। तुम हिन्दू हो, तुम मुसलमान हो, यह बीज तो घर वाले डालते हैं अफरोज़...हम सोते रहते हैं और भीतर ही भीतर वह नन्हाँ–सा बीज दरख़्त बनता रहता है..."[303]

दरअसल जाति का बीज मनुष्य समाज में कौन डालता है? जब छोटे–छोटे बच्चे, अपने बचपन में सभी एक साथ ही खेलते हैं। सब मिल कर एक ही कक्षा में बैठते हैं। सब मिल कर एक ही कक्षा में पढ़ते हैं। इनके बीच कोई जातिगत एवं धार्मिक भेद–भाव नहीं आता है। इन भेद–भाव का बीज तो घरवाले डालते हैं।

5.1.15. सम्प्रदाय और मांसाहार

वेदों में, इतिहासों में, यह कहा गया है कि ब्राह्मण भी गोमांस खाते हैं। कहा जाता है और पाठशालों में पढ़ाया भी जाता है कि रंथी देव ने यज्ञ करते समय दिन में एक हजार गायों को बलि देते थे। खाते हैं तभी तो बली देते हैं। इस से स्थापित हुआ है कि ब्राह्मण गोमांस खाते थें। वैसे ही उस समय का पूरा समाज गोमांस खाता था। कालांतर में ब्रह्मणों और आम जनता में कोई अंतर नहीं रहा था। पूरी आम जनता से अपने आप को अलग यानी श्रेष्ठ स्थापित करने के लिए, ब्राह्मणों ने अपने खान–पान में बदलाव लाया हैं। परिणाम इन में कुछ लोग ही मांसाहार को छोड़े हैं। अब वे मांस खाने वालों को म्लेच

---

[303] पृष्ठ संख्या, 66, मुसलमान, मुशर्रफ़ आलम जौ़की़, साहित्य भारती 1990

स्थापित करना चाहते हैं। वे गो–रक्षा का नारा लगाते हैं। वे शाखाहार और मांसाहार के नाम से राजनीति करते हैं। ये ब्राह्मण, पण्डे आज भी मांस–मचली खाते हैं। वोरिसा में पण्डे लोग मांस–मचलि खाते हैं। बंगाल में, बंगाली ब्राह्मण मचलि ज्यादा खाते हैं, और मांस भी खाते हैं। आदि समस्याओं को शिवमूर्ति जी ने, अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में चर्चा की है।

"दरअसल, मिसराइन 'सरजूपारी' हैं। उनका मायका सरयू के उत्तर बस्ती गोरखपुर या देवरिया जिले के किसी अंचल में है जहाँ ब्राह्मणों में मांसाहार आम है। मिसराइन बचपन से मछली खाती आ रही हैं। चाट पड़ गई है। इधर मिसराजी ठहरे सरयू और गंगा के बीचवाले भू–भाग के, जहाँ ब्राह्मणों के मांसाहारी होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कम–से–कम चौके में। खुलेआम। इस भू–भाग के तो चौथे वर्ण के खूँखार मांसाहारी भी अगर अयोध्या जाकर राम–राम सुन लेते हैं, कंठी–धारी 'भगत' हो जाते हैं तो मांसाहार को तिलांजलि दे देते हैं। मिश्राजी ठहरे शुद्ध शाकाहारी।"[304]

यदि इतिहास में जा कर देखे तो बहुत सारे तथ्य हमारे सामने आते हैं। सब से पहले शुरुआती के समाज को आदिम समाज कहते हैं। इस समाज में कोई ऐसा आदमी नहीं है कि जो मांस नहीं खाता हो, क्योंकि उस समय तो जन्तु का शिकार करके यानी मार के ही खाते थे। वेद काल में भी ब्राह्मण लोग गो–मांस खाते थे और आज भी कई ब्राह्मण लोग मांस–मछलि खाते हैं। उदाहरण के लिए बंगाली ब्राह्मण मछलि खाते हैं। कुछ राजनीतिज्ञ इसके नाम पर राजनीति करना चाहते हैं।

5.1.16. स्त्री और हिन्दू धार्मिकता

हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय के मूल में ही असमानता है। इस धर्म के अनुसार जन्म ही असमानता से होता है। इन के धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य का जन्म ही ब्रह्मा के

---

[304] पृष्ठ संख्या, 18–19, त्रिशूल–शिवमूर्ति

विविध अंगों से हुआ है। ये अंग एक ही शरीर के होते हुए और ब्रह्मा भगवान होते हुए भी ऊँच–नीच की भावना है। इन के अनुसार ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँगों से वैश्य, पैरों से शूद्र का जन्म हुआ हैं। स्त्री का जन्म कहाँ से हुआ यह नहीं बता पाएं हैं। इन में सब से नीचा दर्जा शूद्रों को दिया गया है। इन में सब से श्रेष्ठ और ऊँचा स्तर ब्राह्मण को दिया गया है बल्कि ब्राह्मण स्त्री की स्थिति सोचनीय है। दूसरा स्तर क्षत्रियों को दिया गया है, लेकिन उनकी स्त्रियों की स्थिति भी बिल्कूल शूद्रों से बदतर हैं। हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय में स्त्री को एक बाजारी वस्तु मानकर चलते हैं। इतिहास में एक बार जा कर देखने से पता चलता है। महाभारत में कौरव और पाण्डवों में अधिकार प्राप्त करने के लिए युद्ध होता है। एक सन्दर्भ में 'धर्मराज' अपनी पत्नी को दाँव पर लगा देता है। रामायण में राम को भगवान माना जाता है। रामायण हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदायिओं का पवित्र ग्रन्थ भी है। इसी ग्रन्थ को आदर्श माना जाता है। और यह भी है कि राम–सीता की जोड़ी, हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदायिओं में आदर्श जोड़ी मानी जाती है। वह आदर्श राम ही अपनी गर्भवती पत्नी को जंगल में छोड़ आता है। ऐसा आदमी भगवान कैसे बनता है ? यह सोचनेवाली बात है। आदि समस्याओं को लेखक ने अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किया हैं।

"इसी तरह मैं अवाक् रह गया था, जब एक बार मेरे एक ईसाई मित्र ने हँसते हूए पूछा था–कैसा है आपका धर्म जिसमें साझे की पत्नी को दाँव पर लगानेवाला 'धर्मराज' होता है। गर्भवती पत्नी को जंगल में निष्कासित कर देनेवाला 'भगवान' कहा जाता है।"[305]

हिन्दू धर्म में स्त्री को कोई महत्व नहीं दिया गया। महाभारत में धर्मराज अपनी पत्नी को दाँव पर लगा देता है। रामायण में गर्भवती पत्नी को निष्कासित कर देता है। इस धर्म में स्त्री को प्रेम की दृष्टि से नहीं बल्कि एक भोग वस्तु के दृष्टि से देखते हैं। इस हिन्दू धर्म–संस्कृति में स्त्री और दलित इन दोनों का दर्जा एक ही समझा जाता हैं।

---

[305] पृष्ठ संख्या, त्रिशूल, शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन 1995

5.2. धार्मिक साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

"सारे सूफी–संत, साधु–फकीर और दरवेश मनुष्यता, मज़हबी एकता और भाईचारे की बात करते रहे हैं, करते रहते हैं। किंतु, धर्म की राजनीति करने वाले तथा धार्मिक कट्टरपंथी उनकी सारी बातें भुला कर अपना तथा अपने गिरोह का वर्चस्व स्थापित करने के लिए मनमाना करते रहते हैं।"[306]

धर्म शब्द को सम्प्रदाय शब्द के स्थान पर इस्तेमाल कर रहे हैं। अर्थात् धर्म ही सम्प्रदाय है और सम्प्रदाय ही धर्म हो गया, ऐसा लगता है। सम्प्रदाय से साम्प्रदायिक होता है। हर सम्प्रदाय की अपनी संस्कृति होती है। वैसे ही हर साम्प्रदायिकता की अपनी साम्प्रदायिक संस्कृति होती है। इस को धर्म के नामसे इस्तेमाल करते रहते हैं। धर्म यानी इसके अंदर कोई भी धर्म आ सकता है। जैसे हिन्दू धर्म संस्कृति, इस्लाम धर्म संस्कृति, ईसाई धर्म संस्कृति...आदि। अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में धार्मिक साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर, जो इस प्रकार हैं।

5.2.1. धार्मिक कट्टरता

साम्प्रदायिक संस्कृति को चलाने वाले भी होते हैं। क्योंकि हर सम्प्रदाय की अपनी संस्कृति होती है। इस को अभ्यास करने वाले लोग होते हुए भी, इस को अभ्यास कराने वाले अपने–अपने सम्प्रदाय के पूजारी, पादरी, मुल्ला होते हैं। ये लोग यानी पंडित, पादरी, मुल्लाओं में, कट्टरता को अपनाने में, कोई कम नहीं हैं। लेकिन समाज में एक ऐसी धारणा बन गयी है कि केवल मुल्ला लोग ही कट्टर होते हैं, बाकी के लोग उतना कट्टर वादी नहीं हैं। ऐसा नहीं है। कोई भी धर्म–सम्प्रदाय क्यों न हों, वह कट्टर ही होता है। इन समस्याओं को लेकर गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में चर्चा की है।

---

[306] पृष्ठ संख्या, 46, सबलोग, सं., किशन कालजयी, अप्रैल 2009, दिल्ली

"और यह क्यों कह रहे हो कि मुल्लाओं ने नाक में दम कर दिया है, वही पंड़ित–पादरी भी कर रहे हैं। धार्मिक कट्टरता हर धर्म में है, मगर उसके ख़िलाफ़ बोलनेवाले भी।"[307]

इससे यह समझमें आता है कि कोई भी धर्म–सम्प्रदाय हो, उसमें कट्टरपन रहता ही है। धर्म–सम्प्रदाय को चलाने वाले पूजारी, पंडित, पादरी, मुल्ला...आदि लोग होते हैं। ये बहुत ही कट्टर होते हैं। लेकिन समाज में इस कट्टरता का विरोध करती हुई कई धर्म–संस्कृतियाँ आई हैं। जैसे बौद्ध धर्म–संस्कृति।

5.2.2. धर्म और बच्चे

धर्म के नाम पर कई पाठशालाएं हैं। सरस्वती शिशु मन्दिरें हैं जो हिन्दू ब्राह्मण धर्म के छत्र छाया में चलती हैं। जिन पाठशालाओं में प्रेम करना नहीं सिखाते बल्कि नफरत करना सिखाते हैं। यहाँ यह सिखाते हैं कि केवल अपने ही सम्प्रदाय और अपने ही कौम के बच्चों से खेलें, दूसरे बच्चों से मिलकर खेल–कूद नहीं करें। इस्लाम सम्प्रदाय के बच्चों के लिए है, 'मदरसा' जिन में बच्चों को इस्लाम धर्म संबंधित तालिम दी जाती है। इस में भी इस्लामिक धर्म ज्ञान के साथ–साथ इन को यह पढ़ाया जाता है कि दूसरे सम्प्रदाय के बच्चों से दूर कैसा रहना चाहिए। इन पाठशालाओं में लोगों को मिलाने के बदले, दूर–दूर रहने के लिए कहते हैं। लेकिन इस सन्दर्भ में लेखिका गीतांजलि श्री, अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' के माध्यम से, धर्म को लेकर बताती हैं कि बच्चों के लिए धर्म का मतलब होता है कि खाना, खेलना, त्योहार मनाना। धर्म में मुख्यतः यही होता है कि एक दूसरे से मिलना, मिलाना और लोगों–मुहल्लों को जोड़ना। बाकी जो पूजा–नमाज़ अपना–अपना निजी मामला है।

---

[307] पृष्ठ संख्या, 105, हमारा शहर उस बरस, गीतांजलि श्री, राजकमल पेपर बैक्स 1998

"हम बच्चों के लिए धर्म का मतलब खाना, खेलना, त्योहार होता। धर्म में असल चीज़ यही है, मिलने मिलाने के रंग–ढंग, जो लोगों–मोहल्लों को जोड़ते हैं। बाकी पूजा–नमाज़ तो सब का अपना निजी मामला है, दिन भर करो न करो..."[308]

बच्चों के लिए धर्म का मतलब क्या होता है ? धर्म कहने से ही बच्चे खुश होते हैं। क्योंकि उस दिन तरह–तरह के मिठाई, खाना...बनते हैं। बच्चे सब एक जगह इकट्ठा होकर खेलते हैं। त्योहार मनाते हैं। बच्चों के लिए धर्म का मतलब यही है। लेकिन नमाज़, पूजा, प्रार्थना आदि सब का अपना निजी मामला हैं।

5.2.3. संस्कार और ऊँच–नीच

आज हमे कई धर्म–सम्प्रदाय दिखाई देते हैं। जैसे हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय, इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय, ईसाई धर्म–सम्प्रदाय, सिख धर्म–सम्प्रदाय, बौद्ध धर्म–सम्प्रदाय, जैन धर्म–सम्प्रदाय आदि। इन में फिर से हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय में, शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय हैं। इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय में, सुन्नी सम्प्रदाय, शिया सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय हैं। ईसाई धर्म–सम्प्रदाय में, क्योथोलिक सम्प्रदाय है, प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय और अपने–अपने समूह हैं। बौद्ध सम्प्रदाय में, हिनयान सम्प्रदाय, महायान सम्प्रदाय हैं। और भी सम्प्रदाय हैं। इन सम्प्रदायों के अपने–अपने विधि–विधान होते हैं। इनके अपने–अपने अनुयायी भी होते हैं। इन के इसमें अनुष्ठानों के अलग–अलग तरीके होते हैं। इन के संस्कार करने का तरीका भी अलग होता है। जब इन के अलग–अलग सम्प्रदाय हैं तो संस्कारों में भी अंतर हो सकता है। यहीं से उत्पन्न होती हैं, ऊँच–नीच की भावना। अच्छाई और बुराई भी यहीं से तो सीखते हैं। आज हम आधुनिकता में जी रहें हैं। बच्चों को यह सब अपने माता–पिता से सीखना कोई ज़रूरी नहीं हैं। टी. वी की दुनिया है। पॉप म्यूजिक है। पब की संस्कृति है। कम्प्यूटर है, नेट है, क्या क्या नहीं हैं? सब कुछ हैं। उन दिनों में सत्रह–अठारह साल तक

[308] पृष्ठ संख्या, 262, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

कुछ पता नहीं होता था। आज के छोटे–छोटे बच्चें सब कुछ जानते हैं। इन बदलती संस्कृति को मुशर्रफ आलम जौ़की़ ने, अपने उपन्यास 'बयान' में चर्चा की हैं।

"सब संस्कार का फर्क है...हम थे तो संस्कार भी थे...और जब संस्कार सीखते थे तो ऊँच–नीच भी सीखते थे...अदब और तहजीब भी सीखते थे। नए बच्चे उड़न खटोले पर सवार हैं। नई–नई चीजें...रेडियो वगैरह तो पुराने पड़ गए मियाँ...अब केबल है, स्टार है, जी. टी.वी. है ए.टी.एम है हम तो बस बच्चों से सुनते रहते हैं, पॉप म्युजिक है...तुम ही कहो बालमुकुन्द, कल को हम घर में जरा ज़ोर से बोल सकते थे, चीख सकते थे, तहजीब को ताक पर रख सकते थे...तुम्हें एक वाकया सुनाऊँ...एक बार छोटा था, छोटा क्या उम्र होगी सतरह–अठारह की ...आज के बच्चे तो इस उम्र में अलिफ से ये तक सब सीख जाते हैं। क्या नहीं जानते और हम ? गबदू रहते थे। बुद्धू–बेवकूफ...हम सिर्फ पढ़ना जानते थे। नमाज़ का वक्त हो गया तो वजू बनाओ । नमाज़ में देर नहीं हो । पढ़ने का वक्त हुआ तो पढ़ने बैठ जाओ। हर काम असूल से, ज़िम्मेदारी से ...सतरह साल की उम्र कम नहीं होती बालमुकुन्द। अब्बा ने बुलाया तो सहमे–सहमे उनकी खिदमत में हाजिर हुए...जी अब्बा जान.. ."[309]

ऊँच–नीच का फर्क संस्कार से ही प्रतीत होता है। धर्म है तो धार्मिक संस्कार भी है। ब्राह्मण हिन्दू धर्म में दलित शूद्रों को छोड़ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य लोगों में उपनयन संस्कार करते हैं। ईसाइयों में, इस्लाम में, भी संस्कार करते हैं। इससे ये अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को निकृष्ट समझते हैं।

5.3. इस्लाम साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर

"धार्मिक स्तर पर इस्लाम और स्थानीय हिंदू परंपराओं में संपर्क हुआ तथा सूफी संत तक भक्ति पंथ मजबूत हुए। ये दोनों ही गरीबों में बहुत लोकप्रिय थे।

[309] पृष्ठ संख्या, 23, बयान, मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी, साशा पब्लिकेशन्स 1998

सूफियों का झुकाव इस्लाम के आध्यात्मिक पक्ष की ओर था। उनका कट्टरवादी इस्लामी उलेमाओं से विरोध था। ये उलेमा समाज के अभिजन और सत्ता केद्रों के नजदीक थे। सूफी ईसाई और यहूदी रहस्यवाद और कुछ हिंदू संप्रदायों की आध्यात्मिकता के नजदीक थे। मोइनुद्दीन इब्न वजूद ने वहादत्त–उल–वजूद (तत्व की एकता) का सिद्धांत दिया।"[310]

संस्कृतियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। इन में कुछ संस्कृतियाँ अपने आपको श्रेष्ठ मानती है, दूसरी संस्कृति को निकृष्ट समझती है। तब इन दोनों के बीच संघर्ष होता है। खासकर संस्कृति सम्प्रदाय से जुड़ी होती है। तो दो संस्कृति के बीच का संघर्ष, अर्थात् दो सम्प्रदायों के बीच का संघर्ष होता है। इस्लाम संसार में एक सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों को साम्प्रदायिक कहते हैं। इस्लाम सम्प्रदाय के अंतर्गत अनेक सम्प्रदाय मिलते हैं, जैसे शिया सम्प्रदाय, सुन्नी सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय हैं। इन सम्प्रदायों की अपनी संस्कृति होती हैं। सम्प्रदाय से साम्प्रदायिक होता है, तो सम्प्रदाय संस्कृति से साम्प्रदायिक संस्कृति भी होती है। साम्प्रदायिक संस्कृति, हमेशा प्रजातांत्रिक संस्कृति पर हमला करती रहती है। उसी अनुपात से प्रजातांत्रिक संस्कृति किसी भी साम्प्रदायिक संस्कृति का विरोध करती है। अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में इस्लाम साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोधी स्वर, इस प्रकार हैं।

5.3.1. इस्लाम (शिया–सुन्नी–सूफी) और संस्कृति

7वीं सदी में इस्लाम का उदय हुआ है। इस को मुहम्मद पैगम्बर ने रचा था। इस्लाम कुछ ही वर्षों में विश्व के कोने–कोने में फैल गया। यह मुहम्मद पैगम्बर के द्वारा ही हुआ था। कालांतर में यह विश्व का बड़ा, मज़बूत एवं सुसंघटित मज़हब बन गया था। पैगम्बर ने वहाँ के समय एवं परिस्थितियों के अनुसार कुरान में मनुष्य के जीवन के लिए विधिविधान की रचना की है। समय के साथ या बदलते समय के साथ उन विधि–विधानों

---

[310] पृष्ठ संख्या, 36, उद्भावना, अंक 79, सं., अजेय कुमार(साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) दिल्ली 2008

में बदलाव आना चाहिए था, लेकिन बदलाव के स्थान पर और कट्टरपन आ गया। इसका कारण बड़े–बड़े मुल्ला और मौलवी ही माने जाते हैं। मुहम्मद पैगम्बर की मृत्यू हुई। उनकी मृत्यू के बाद, इन के अनुयायियों में फूट पड़ गई। वे सुन्नी और शिया नाम से दो सम्प्रदायों में बंट गये। इन में भी एक से बड़कर एक कट्टरपन को अपनाने लगे थें। इन के कट्टरपन का विरोध करते हुए सूफी–संत आये। इन सूफियों ने इस्लाम के दैरा या कट्टरपन को तोड़ के बहार आये। और समस्त इनसान को प्रेम और मुहब्बत बाँटना शुरू करदिया है। भारत में तो इन सूफियों की वजह से ही इस्लाम पूरे देश में फैल गया था। ये सब देख कर, मुल्लाओं को बर्दाश्त नहीं हुआ था। वे सूफी–संतों पर हमला करने लगे। इन को काफिर सिद्ध करने का हर सम्भव प्रयास किया गया। जबकि वे काफिर नहीं हैं, क्योंकि काफिर वह होते हैं, जो किसी देवी–देवता या अल्लाह में आस्था नहीं रखते हैं। वे शिया मुसलमानों को भी उसी तरह सताते हैं। रचनाकार कमलेश्वर ने इस तरह की समस्या को, अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। इस में सूफी–संतों नें पैगम्बर के जन्मदिन पर गाए जानेवाले उनके 'भजनों' पर पाबन्दी लगाते हैं। सूफी फकीरों पर हमला करवाते हैं।

"–हुजूर ! हम सूफी हैं...इस पागल शहंशाह ने हुज़ूर पैग़म्बर के जन्मदिन पर गाए जानेवाले हमारे भजनों पर भी पाबन्दी लगादी...तब हम सूफी–सन्तों को इसके गुर्गे और दरोग़ा मिर्जा बाक़र के खिलाफ गालबंद हो कर निकलना पड़ा...इसके दरोग़ा ने हम फकीरों पर क़तिलाना हमला किया। यह अहमदाबाद के हमारे बुजुर्ग और पवित्र सूफी सन्त शेख़ याहिया चिश्ती की ख़ानकहा में हुआ...क्योंकि इसके दरबार में बैठे कठ–मुल्लाओं ने इसे अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया था...यह खुद के सिवा सब को काफ़िर मानने लगा था..."[311]

इस्लाम में भी ऊँच–नीच की संस्कृति है। इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय में से तीन सम्प्रदाय अलग–अलग हुए हैं, यथाः सुन्नी सम्प्रदाय, शिया सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय...आदि। इन में से

[311] पृष्ठ संख्या, 162, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

एक सम्प्रदाय दूसरे को अपने से नीचा मानता हैं। लेकिन सूफी सम्प्रदाय, इस्लामिक कट्टरता का विरोध करते हुए प्रेम की भावना को समाज में फैलाने का कार्य किया है।

"–इसके अलावा इसने हम शियाओं के मोहर्रम के त्योहार पर भी पाबन्दी लगा दी ! इसने बड़े–बड़े सूफी–सन्तों को नहीं बख़्शा...यह बंगाल के दरवेश सैय्यद नियामत अल्लाह, मियाँ मीर के चेले कश्मीर के मुल्ला शाह बदख़्शी और इलाहाबाद के शेख मुहीब–अल्लाह जैस साधुओं को बेइज्ज़त करने से बाज़ नहीं आया...इनसे सैंकड़ों मुसलमानों के सिर कलम करवा दिए... हुजूर! ठसके दौर में दहशत छाया रहा...हर सुबह हमारा दिल धड़कते रहते थे कि कहीं आज पागलपन से भरा कोई और हुक्मनामा न आ जाए ! इसके दरबार में घटिया मुल्लाओं और मौलवियों का जमावड़ा था...इस पर उन छिछले और उथले धर्मशास्त्रियों ने घेरा डाल रखा था जो इस्लाम के बड़प्पन को भूल कर हमारे धर्म को स्वार्थी सीमाओं में क़ैद कर रहे थे। और यह कठपुतला उनकी हर बात को आँख मूंद कर मंजूर करता जाता था। जुल्म के हर क़दम पर अपनी मुहर लगाता जाता था...इसका इस्लाम हम मुसलमानों को भी नहीं बख़्शता था... पता नहीं हुजूर, इसका इस्लाम कौन–सा और कैसा था !"[312]

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार यह समझ में आता है कि इस्लाम के अंतर्गत तीन सम्प्रदाय हैं। इनमें भी एक दूसरे के प्रति नफरत का भाव दिखाई देता है। सुन्नी शिया को दबा कर रखते हैं। इन की संस्कृति पर हमला करते हैं।

5.3.2. बच्चों के संस्कार

घर में कोई बच्चा जन्म लेता है तो नवजात शिशु के जन्म की खुशियाँ मनाई जाती है। और कई तरह के संस्कार भी किये जाते हैं। लेकिन कोई बच्चा दलित अथवा गरीब के घर जन्मा हो तो वे भी खुशियाँ मनाते हैं, लेकिन ये अपने तरीके से मनाते हैं। दलित समाज

---

[312] पृष्ठ संख्या, 162, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

में यह नहीं करते कि कोई आके कान में मंत्र पढ़ें। वैसे ही पिछड़ी जाती में जन्में बच्चे के कान में भी कोई मंत्र नहीं पढ़ा जाता है। आदिवासी शिशु के कान में भी कोई मंत्र नहीं फूका जाता है। लेकिन ब्राह्मण के घर में बच्चा पैदा होता है तो उन के कान में गायित्रि मंत्र ज़रूर पढ़ा जाता है। मुसलमान के घर में शिशु का जन्म होता है तो उस बच्चे के कान में कलमा पढ़ते हैं। अतः ब्राह्मण और मुसलमान लोगों ने अपने बच्चों को जन्मताः सम्प्रदायिक बनाते हैं। समाज में साम्प्रदायिकता फैलाने वाले भी यही लोग होते हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में शिशु के कान में कलमा फूकते हैं, जो इस प्रकार है।

"चद्दर में लिपटे हुए मासुम बच्चे के चेहरे से दादा भरपूला ने चद्दर हटाई और होंठों ही होंठों में कलमा बुदबुदाने लगा, 'ला इला ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूल्लुल्लाह....अश्हदु अल्लाइला–ह इल्लल्लाहु वहदूह ला शरी–क लहू व अश्हदुअन–न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह..... |"[313]

भारतीय संस्कृति कोई एक संस्कृति यानी कोई एक खास जाति या वर्ग की संस्कृति नहीं है। भारतीय संस्कृति कई संस्कृतियों का मिश्रण है। यहाँ के दलित एवं ऊँची जाति के लोग भी इस्लाम को कुबूल किए हैं। कलमा पढ़ कर इस्लाम को कुबूल कर लिए हैं। इस्लाम में छोटे बच्चों के कान में कलमा पढ़के सुनाते हैं। यह बच्चों के लिए संस्कार भी है।

5.3.3. धर्मनिरपेक्षता और भारतीय मुसलमान

भारतीय मुस्लिम की संस्कृति धर्मनिरपेक्ष है। भारतीय मुसलमान नब्बे प्रतिशत भारत के मूलवासी है। इस्लाम भारत में आने के बाद, यहाँ के मूलवासियों ने इस्लाम को कुबुल किया हैं। इस्लाम को इस लिए कुबुल किये हैं कि हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में, इन लोगों को मान–सम्मान नहीं मिला था। वे अब मुसलमान होते हुए भी, हिन्दू संस्कृति का अनुगमन

---

[313] पृष्ठ संख्या, 58, काला पहाड़–भगवानदास मोवाल

करते हैं। अर्थात ये सिर्फ एक ग्रन्थ के अनुसार नहीं चलते हैं। वे रामायण पढ़ते और सुनते हैं, साथ–साथ कुरान को भी पढ़ते और सुनते हैं। इस लिए यहाँ के मुसलमानों को मजहब में खास दिलचस्पी नहीं है। आदि समस्यओं को 'काला पहाड़' उपन्यास में देख सकते हैं।

"चौधरी साहब, हम चाहते हैं कि मेवात के मुसलमानों को इस्लाम की तालीम दी जाए......हमने पूरे इलाक़े में घूम कर देखा है और यह गौर किया है कि यहाँ के मुसलमानों में मज़हब में कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं है.....।"[314]

कुछ भारतीय परिवार कम से कम दो धर्मों को तो अपनाते ही हैं। कई दलित, हिन्दू है, ईसाई भी हैं। कई आदिवासी तो तीन–तीन धर्मों का पालन करते हैं। अर्थात ये कोई एक ही धर्म में ज्यादा दिलचस्पी नहीं रखते हैं। यही स्थिति को मेवाड़ में देख सकते हैं, जो उपरोक्त हैं।

5.3.4. दावत और भारतीय संस्कृति

भारतीय मुसलमान के घर में कोई विवाह के समय एवं किसी अन्य तरह के दावत–फंक्शन होता है तो, हिन्दुओं को भी बुलाते हैं। हिन्दू भी मुसलमान को बुला लेते हैं। चाहें तो मुसलमान लोगों ने हिन्दू के लिए, अलग से व्यवस्था करते हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में मुसलमान की महिला ने अपने बंधू वर्ग को अपने घर पर दावत के लिए बुलाती है।

"तैयार रहियो, चाँद की पाँच तारीख है.....तिहारी मावस सू छः दिन पीछे पड़ेगी.....अपणा मुहल्ला में सबन्ने संझा दीजो के मैंने हिन्दून को इंतजाम अलग कर राखो है....वैसे मैंने भी सब सू कह दी है ....ठीक है न, चाँद की पाँच तारीख.....भूल मत जाइयो.....।"[315]

---

[314] पृष्ठ संख्या, 79, काला पहाड़–भगवानदास मोवाल

[315] पृष्ठ संख्या, 116, काला पहाड़–भगवानदास मोवाल

भारतीय मुसलमान नब्बे प्रतिशत यहाँ के ही हैं। जब नया–नया इस्लाम इस देश में आया था तब यहाँ के कई लोगों ने इस्लाम धर्म को अपनाया हैं। इसलिए इन लोगों के मन में कहीं न कहीं हिन्दुओं के प्रति अपनेपन की भावना है। इसलिए इधर हिन्दुओं में और उधर मुसलमानों में कोई तीज–तौहार, शादी–ब्याह, दावत होता तो वे एक दूसरे को आमंत्रित करते हैं। यदि हिन्दू चाहें तो उनके लिए अलग से खाने–पीने की व्यवस्था करते हैं। इस तरह की संस्कृति मेवाड़ में ज्यादा दिखाई देती है।

5.3.5. शिया–सुन्नी

इस्लाम विश्व में बहुत बड़ा सम्प्रदाय माना जाता है। जिसका प्रवर्तक मुहम्मद पैगम्बर हैं। इनके मृत्यु के बाद मुसलमान लोगों में यह समस्या सामने आयी कि आगे का पैगम्बर कौन बनें ? इस विषय को लेकर मुसलमान दो वर्गों में बँट गये हैं। वे एक सुन्नी और दूसरा शिया हैं। इस के बाद तीसरा भी एक सम्प्रदाय निकलकर सामने आया है, वह है सूफी वाद। तब से इन शिया और सुन्नी के मन में, एक दूसरे के प्रति, घृणा, द्वेश, की भावना रखने लगे हैं। शियाओं ने हर साल त्योहार के दिन अलम का जुलूस निकालते हैं। उस जुलूस को सुन्नी रोकना चाहते हैं। शिया आगे बढ़ना चाहते हैं। यहाँ इन के बीच साम्प्रदायिक झगड़ा छिड़ जाता है। मार–पीट हो जाती है। इन समस्याओं को लेकर रचनाकार 'बदीउज़्ज़माँ' अपना उपन्यास 'सभा पर्व' में प्रस्तुत किया है।

"कहते हैं कि उस वर्ष जब अलम का जुलूस निकला था तो उसमें थोड़े से शियों को छोड़कर को भी नहीं था। जिस जुलूस में हज़ारों की तादाद में सुन्नी मुसलमान और हिन्दू शामिल होते थे उसमें एक भी गैर–शिया मौजूद नहीं था। जुलूस दो–चार क़दम ही आगे बढ़ा था कि सुन्नी मुसलमानों के गिरोह ने रास्ता रोक लिया। शीयों ने आगे बढ़ने की कोशिश की। दोनों गिरोह एक–दूसरे के ख़िलाफ़ ज़ोर–ज़ोर से नारे लगाने लगे। इस बीच कुछ सुन्नियों ने झपट कर अलम को शीयों से छीन लिया। अलम के छिनते ही शीया लोग

आपे से बाहर हो गए और अपनी छोटी तादाद की परवाह किए बग़ैर वे सुन्नियों पर पिल पड़े। दोनों में मार–पीट हो गई।"[316]

सुन्नी और शिया दोनों भी कुरान में विश्वास करते हैं। पैगम्बर मुहम्मद के देहांत के बाद इसमें से दो सम्प्रदाय अलग–अलग हो कर सामने आये हैं। इसमें भी राजनीति थी। भारतीय मुसलमानों में राजनीति के कारण सुन्नी और शिया के बीच नफरत को बढ़ावा मिला है। शियाओं के जुलूस पर सुन्नी आक्रमण करते हैं। इन के बीच मार–पीट, खून–खराबा भी होता है। ये सब साम्प्रदायिक राजनीति के कारण होता है।

5.3.6. परिवार नियोजन

ऐसा नहीं हैं कि केवल मुसलमान ही परिवार नियोजन का पालन नहीं करते हैं। बहुत सारे हिन्दू भी परिवार नियोजन का पालन नहीं करते हैं। केवल मुसलमान ही अधिक संतान प्राप्त करना चाहते हैं यह धारणा गलत हैं। हिन्दुओं में भी पाँच पाँच दस–दस संताने हैं। केवल मुसलमान ही चार–चार को शादी नहीं करते बल्कि हिन्दू भी करते हैं। हिन्दू नाम के लिए तो एकही ब्याह करते हैं। लेकिन कई को रखेल बना कर रखते हैं। लेकिन मुसलमान शादी कर लेते हैं। इन में कौन इमानदार है ? इमानदार वही हो सकता है, जो शादी करता है। ये शादी करता है, तो इन की बिवियाँ दिखती हैं। जो छुप–छुप कर रखते हैं, उन की बिवियाँ नहीं दिखती हैं। तलाक की प्रथा जो बहुत ही अच्छी है क्योंकि शादी के बाद उनकी देख भाल ठीक नहीं रहती तो उनको मज़बुरन उन के साथ ही जीवन बिताना नहीं पड़ता है। वह तलाक देकर फिर से एक नई जिन्दगी की शुरूआत कर सकती है। यह हिन्दुओं में बहुत मुश्किल होता है। इन समस्याओं को अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है, गीतांजलि श्री ने।

---

[316] पृष्ठ संख्या, 331, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

“ताक़त उनकी बढ़ रही है, जिन पर परिवार नियोजन की ज़बर्दस्ती नहीं है, जो कीड़े–मकोड़ों की तरह बच्चे पैदा करते हैं, जो शादी–ब्याह के अपने कानून बनाते हैं और तीन बार तलाक़ कहकर जीवन भर बीवियाँ बदलतें हैं और एक साथ चार रखते हैं और पराई औरतों का शील भंग करते हैं तो उनके बड़े–बूढ़े आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हें शबाब नसीब होगा और गाय काटते हैं...”[317]

परिवार नियोजन के कई तरीके हैं। एक तो सरकार के द्वारा किया जाता है, आपरेशन जैसे ट्यूबेक्टमि और वैसेक्टमि। इसके अलावा और कई तरीके हैं। ऐसा नहीं हैं कि जो आपरेशन नहीं करवाया तो परिवार नियोजन को नहीं अपना रहा है।

5.3.7. विदेशी मुसलमान–भारतीय मुसलमान

इस्लाम धर्म अरब देशों में जन्मा है। वहाँ से विश्व के अनेक देशों में फैला है। वैसे ही भारत में भी फैला है। लेकिन भारत के मुसलमानों में और विदेशों के मुसलमानों में बहुत अंतर दिखाई देता हैं। विदेशी मुसलमानों में सजावट ज्यादा दिखाई देती है। वे चाहें तो दिन में एक समय खाना छोड़ देते हैं लेकिन सजावट में कोई कमी नहीं आने देते हैं। उनके रहने का तरीका अलग होता है। एक भारतीय मुसलमान का रहन–सहन, तौर–तरीका, सोच–विचार विदेशी मुसलमान की तुलना में भारतीय मुसलमान अच्छे हैं। भारतीय मुसलमान बिलकुल भारतीयों के जैसे हैं। विदेशी मुसलमानों की तरह सजावट को उतना महत्व नहीं देते हैं। ये अगर रोजी–रोटी के लिए किसी विदेश भी गए तो उन का दिल अपने देश में ही रहता है। इसका कारण यह भी है कि ये भारतीय मुसलमान, भारत के ही भूमि पुत्र हैं। यहाँ के हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय में जो बुराई के कारण वे इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय को कुबूल कियें हैं। इन समस्याओं को मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी ने अपने उपन्यास ’मुसलमान’ में प्रस्तुत किये हैं।

---

[317] पृष्ठ संख्या, 120, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

"यह मौलवी नज़ीर के भाई थे——बहन का घर था...नज़ीर एक दम से चौंक गये। वह सिर्फ इन इल्ज़ामात को सुनते रहे, क्या कहते...कि भाई...तुम सब जगह हो—पेरिस में, कुवैत में, लन्दन में, लेकिन पाकिस्तान में कब हो—हम अपने वतन में हैं, बाहर भी अगर हैं तो दिल अपने वतन में है—हाँ हमें सजावट नहीं आती। रहने का तरीक़ा नहीं मालूम। लेकिन इस खुदनुमाई की रस्म में हम घर का सुकून नहीं बेचते। तुम्हारी तरह दो वक़्त खाकर भूखे नहीं रहते—हमें सजावट नहीं आती इसलिए कि हम अपने ड्राइंग रूम को लन्दन और पेरिस के सामानों से नहीं भरते—हम हिन्दुस्तानी हैं—दिल हिन्दुस्तानी है और ... „[318]

भारतीय मुसलमान विदेश जाने पर भी, यहाँ तक कि अरब देश जाने दो, फिर भी वह भारतीय मुसलमान ही होता है। इनके घरों की सजावट में, भारतीय संस्कृति ही दिखाई देती है। लेकिन विदेशी मुसलमानों में, उनकी सजावट में, उनके घरों में भारतीय संस्कृति नहीं दिखाई देती है। इनके घरों में और रहन—सहन में, ओड़—पहन में लन्दन और पेरिस की संस्कृति दिखाई देती है। आर्थात भारतीय मुसलमान कहीं रहने पर भी वे हिन्दुस्तानी हैं, उनका दिल भी हिन्दुस्तानी हैं।

5.3.8. अपनी अपनी संस्कृति

ऐसा नहीं है कि इस्लाम को या अल्लाह को मानने वाले सब का सांस्कृतिक स्तर एकसा है। ऊपरी तौर पर तो दिखाई देता है कि जो—जो अल्लाह को और इस्लाम को मानते हैं, ये सामाजिक, सांस्कृतिक से, इन में कोई अंतर नहीं हैं। लेकिन वास्तविक परिस्थिति वैसी नहीं है। ये एक ही खुदा को मानते हुए भी, इन के काम—काज में, रहन—सहन में अंतर भी है। अपने—अपने सम्प्रदाय में बँटें हुएं हैं। सुन्नी, शिया, सूफी और

---

[318] पृष्ठ संख्या, 82, मुसलमान—मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

फ़कीर आदि में बँटें हुए हैं। इन सभी की संस्कृति एक होते हुई भी, एक नहीं है। इन के बीच रोटी–बेटी का रिस्ता नही है। काम–धंधे में भी फ़र्क है। अगर इन में कईं एक दो प्यार–मुहब्बत से शादी कर ही लेते हैं तो, उनकी बिरादरी, उनको अपने में मिलने नहीं देती है। सात आसमान उपन्यास में भी यही देखने को मिलता है। अब्बू साहब वहाँ के कुएँ का पानी पी कर वहाँ से जाना ही नहीं चाहते हैं। उनको वहीं नौकरी दे कर एक खपरैल वाला घर बनवा देता है। तो उनको दिक़्क़त होती है, अपनी फरमाईस खाने की। खाना बनाने के लिए अज़ीमन बुआ मिल जाती है। अज़ीमन बुआ का रिश्ता पहले ही टूटा हुआ रहता है। अब्बू साहब और अज़ीमन बुआ, एक दूसरे से प्यार करने लगते हैं। शादी भी कर लेते हैं। लेकिन दिक़्क़त यह थी कि अज़ीमन बुआ जाति की फ़क़ीर थीं। गैरजाति के आदमी के साथ हुई शादी को मान्यता नहीं दे रहे थे। बिरादरी का कहना था कि अब्बू साहब कम–से–कम पाँच घरों में भीख माँगकर फ़क़ीर बिरादरी में आ सकते हैं। अब्बू साहब ने वैसा ही किया था। तब उन में मिला लिए हैं। अर्थात् एक भीख माँगने वाली जाति के लड़की से शादी करना हो तो, शादी करने वाले को भीख माँगने के काम को कुबूल करना होगा। असगर वजाहत ने अपने उपन्यास 'सात आसमान' में इन समस्याओं पर चर्चा की है।

"अब्बू साब की शादी तो हो गयी थी लेकिन दिक़्क़त ये थी कि अजीमन बुआ ज़ात की फ़क़ीर थीं और उनकी बिरादरी अब्बू साब की शादी को मान्यता नहीं दे रही थी। बिरादरी का कहना था कि अब्बू साब कम–से–कम पाँच घरों में भीख माँगकर फ़क़ीर बिरादरी में आ जायें तो उनकी बात बन सकती है। अब्बू साब को पाँच घरों में भीख माँगने में कोई एतराज़ न था। आख़िरकार अजीमन बुआ और अब्बू साब की शादी को बिरादरी ने सिर्फ़ माना ही नहीं बल्कि अब्बू साब को अपना चौधरी बना लिया।"[319]

[319] पृष्ठ संख्या, 9, सात आसमान, असगार वजाहत, राजकमल प्रकाशन 1996

इस्लाम में भी अपनी–अपनी संस्कृति है। ऐसा नहीं है कि इस्लाम धर्म है और इसको मानने वालें सब की एक ही संस्कृति है। इस्लाम धर्म में भी कई शाखाएं दिखाई देती हैं जिन की अपनी–अपनी संस्कृति हैं। जैसे सुन्नी, शिया, सूफी, फकीर...आदि हैं।

रामवृक्ष पाण्डे, उस गाँव के बड़े आदमी माने जाते हैं। वैसे तो तभी देश को आजादी मिली थी। सब यही सोच रहे थें कि अब अंग्रेजों के हर तरह के दमन से मुक्त हो गयें हैं। आजादी के साथ–साथ सम्प्रदाय और संस्कृति के आधार पर देश का भी विभाजन हो चुका था। गाँधी को छोड़ कर नेहरू और पटेल ये दो बड़े नायक थें। इनके अनुयायी भी होते थें। बलापुर गाँव में रामवृक्ष पाण्डे रहते हैं। वे पटेल के सिद्धाँतों को मानते थे। इसलिए मानते थे कि पटेलजी हिन्दूवादी थे। नेहरू का विरोध इसलिए करते थे कि नेहरूजी थोडा–सा लिबरल थे। रामवृक्ष पाण्डे की बेटी की शादी होती है। जिस पर उस गाँव का मुसलमान चुड़िहार को चुड़ियाँ लाने के लिए आदेश देता है, रामवृक्ष पाण्डे। लेकिन कुछ समस्याओं के कारण चुड़िहार चुड़ियाँ नहीं लाता है। पं. रामवृक्ष पाण्डे चुड़िहार को मारते हैं। उसी गाँव के बड़े मुसलमान के पास जाते है चुड़िहार। और फरियाद करते है। लेकिन वह कुछ नहीं करता है। इसलिए नहीं करता है कि वे दोनों रामवृक्ष पाण्डे और जमींनदार मुसलमान दोनों की संस्कृति एक ही है जो लोगों को लूटने की है। वैसे ही नेहरू का परिवार मुसलमानों के घरों में शादी–ब्याह का है। उस स्तर पर हिन्दू ब्राह्मण और मुसलमानों में प्यार–मुहब्बत हुआ है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह किसी बडे घराने के मुसलमान से शादी की तो एक निचली जाती के मुसलमान–चुड़िहार की समस्या को महत्व दें और उस का हल करें। उन की संस्कृति और इनकी संस्कृति में अंतर है। उनकी संस्कृति ज़मीनदार की संस्कृति है। इनकी संस्कृति निचली जातिओं की संस्कृति है। कहना चाहिए कि सीधी–साधी संस्कृति है। इन समास्याओं को रचनाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास 'मुखड़ा क्या देखें' में प्रस्तुत किया है।

" 'सुनेंगे काहे नहीं। तुम्हें एक भेद की बात बताएँ? मुसलमानों को ऊ बहुत चाहते हैं। का है, जानते हो ?' अली अहमद ने सिर हिलाकर इनकार किया। 'अरे उनकी बिटिया

मुसलमानै के हियाँ न ब्याही हैं। फीरोज नाम है दमाद का। अउर सुनो। हमरे भाई रहते हैं मिर्जापुर में । ऊ बताते रहे कि मिर्जापुर के रईस यूसुफ इमाम से उनके बाप मोतीलालजी की बड़ी दोस्ती रही। अब उनके बेटे हैं अजीज अमाम, उनसे इनकी दोस्ती है। परधानमंत्री बनने के बाद मिर्जापुर गये तो तकरीर करने के बाद सीधे उनही के घर गए। उनके परोगराम में रहा सर्किट हाउस जाना, सो चौराहे पर सिपाही ने उन्हें रोका, मगर ऊ कार से कूदके पैदलै चल दिए। बोले, अब मैं परधानमंत्री नहीं हूँ। इस कार को ले जाओ सर्किट हाउस। फिर हुवाँ अजीज इमाम की अम्माँ ने जब उन्हें सर्बत बनाके दिया तो डाक्टर लगा चेक करने। इस पर बिगड़ गए ऊ डाक्टर पर। बोले, ई हमारी अम्माँ हैं, का ई जहर देंगी हमें। अउर सर्बत गटागट पी गए। तो इस तरह की मुहब्बत है उनके दिल में मुसलमानन के वस्ते। तुम तो कल ही चले जाओ सहर। सारी बम्हनौटी को न बँधवा दे ंतो कहना।"[320]

हमारे भारत देश में हिन्दू और मुसलमानों में उतना भेद–भाव नहीं था, और नही है। आज जो भी भेद–भाव है वह केवल राजनीतिक है। हमारे प्रथम प्रधानमंत्रि जवाहरलाल नेहरु जी के परिवार और मुसलमान के परिवार इतना घुल–मिल गए थे कि इंदिरा गांधी फिरोज से प्यार की और शादी भी करली थी। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों में भाईचारा रहा है और आज भी है, आगे भी रहेगा।

5.3.9. परिवार नियोजन और इस्लामिक धर्म–सम्प्रदाय

परिवार नियोजन भारत सरकार का कानून है। इसके अनुसार कोई भी विवाहित पति–पत्नि, एक या दो संतानों से ज्यादा नहीं होना चाहिए। यह होने के बाद, परिवार नियोजन का पालन करना पड़ता है। यह भारत संविधान का कानून है, सभी भारतीयों के लिए है। इस कानून के अनुसार सभी विवाहित चलते हैं या नहीं चलते हैं, वह उन्हीं पर निर्भर करता हैं। लोग अधिकतर अपने सम्प्रदाय के पण्डितों की बात मानते हैं। वे जो कहते

---

[320] पृष्ठ संख्या, 35, मुखड़ा क्या देखे, अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल प्रकाशन 1996

हैं, वही उनके लिए दैव वाक्य है। वे कभी भी जनता की भलाई के लिए नहीं सोचते हैं। वे यह मानते हैं कि संतान खुदा की देन हैं। खुदा की दी हुई संतान को रोकना महा पाप है। इसलिए लोग जो सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, वे परिवार नियोजन का पालन नहीं करते हैं बल्कि सम्प्रदाय के बड़ों के पालन ज़रूर करते हैं। इन में मुसलमान मुल्लाओं के ही बातों को ज्यादा मानते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है ये शिक्षित नहीं हैं। ये यह नहीं जानते हैं, कि क्या बुरा है और क्या अच्छा है। हमारे देश का संविधान, धर्मनिरपेक्ष है। इसके अनुसार किसी एक सम्प्रदाय के लोगों को ही महत्व दिया जाता है, ऐसा नहीं है। आदि समस्याओं को लेखक शिवमूर्ति अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किये हैं।

"...एक–एक 'मुसल्ला' चार–चार शादी कर रहा है और एक–एक से चौदह–चौदह बच्चे निकाल रहा है। परिवार नियोजन इनके लिए हराम है। यही रफ़्तार जारी रही तो पचास साल बाद देश की दो–तिहाई आबादी मुसलमान होंगे। तब दो–तिहाई बहुमत से देश का संविधान बदला जाएगा। और भारतवर्ष 'इस्लामिक कंट्री ' घोषित होगा। देश के सारे मंदिरों को तोड़कर मस्जिदें बनाई जाएंगी। हजारों हजार बाबरी मस्जिदें। भारत माता जार–जार रोयेगी। मैं साफ–साफ देख रहा हूँ, देश फिर बाबर की संतानों की गुलामी में जकड़ा जानेवाला है।"[321]

इनमें मुसलमान, मुल्लाओं की बातों को ज्यादा मानते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इनमें शिक्षा का अभाव हैं। ये यह नहीं जानते हैं, कि क्या बुरा है और क्या अच्छा है। किसी वर्ग की जनसंख्या अधिक रहने पर देश पर उनका अधिकार होगा यह निराधार तर्क है। हमारे देश का संविधान, धर्मनिरपेक्ष है। इस के अनुसार किसी एक सम्प्रदाय के लोगों को ही महत्व दिया जाता है, ऐसा नहीं है। आदि समस्याओं को लेखक शिवमूर्ति अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में प्रस्तुत किया है।

---

[321] पृष्ठ संख्या, 23, त्रिशूल–शिवमूर्ति

5.4. हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति बनाम बहुला भारतीय संस्कृति

"इसके विपरीत हमारी संस्कृति बहुलता लिए हुए है। यह देश की विविधता को अपने में समेटे हुए है। इसने यहाँ पर आकर बसे लोगों से बहुत कुछ लिया है। हिंदुओं के भी बहुत से सम्प्रदाय हैं और उनकी संस्कृति एक रूप नहीं है। केवल अभिजनों की संस्कृति को हिंदू संस्कृति कहा जाता है इसमें से दलितों की संस्कृति को बाहर निकाल दिया जाता है"[322]

अपने–अपने सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक लोग, अपनी साम्प्रदायिक संस्कृति को विस्तार से फैलाना चाहते हैं। इस क्रम में बहुला या प्रजातांत्रिक भारतीय संस्कृति पर साम्प्रदायिक हमले होते हैं। तथा ये दो संस्कृतियाँ एक दूसरे के विरोध में संघर्ष करने लगती है। भारत किसी एक संस्कृति वालों के लिए पंजीकृत नहीं है। वैसे तो किसी भी समाज में एक ही संस्कृति नहीं होती है, अर्थात् अनेक संस्कृतियों का एक समाज हो सकता है। वैसे तो भारत में कई देशों से, आए लोग अपने सम्प्रदाय एवं संस्कृति को साथ लेकर आये हैं। मूल संस्कृति एवं बाहरी सांस्कृतिक तत्वों के योग्य सामंजस्य से भारत में मिश्रित संस्कृति का उदय हुआ। अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति बनाम बहूला भारतीय संस्कृति का संघर्ष इस प्रकार है।

5.4.1. हिन्दुस्तान और देश विभाजन

यदि कोई एक निश्चित प्रदेश में जी रहे हो। वहाँ अपना मकान, थोड़ी बहुत ज़मीन भी हों। उस ही तरह आस–पास के लोग, पूरे गाँव के साथ, दो–तीन पीढ़ियाँ गुज़र गई हों तो कौन चाहता है कि उस गाँव को छोड़ कर और कहीं चला जाए, वह भी अन्य देश। दरअसल कोई भी परिवार के सदस्य को , उनके अपने गाँव की संस्कृति से लगाव रहता है। वहाँ की मिट्टी पेड़–पौधें आदि के साथ उनका लगाव रहता है।

---

[322] पृष्ठ संख्या, 35, उद्भावना, अंक 79, (साम्प्रदायिकता विरोधी विशेषांक) अगस्त, 2008

हिन्दुस्तान की संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है, जो अनेक संस्कृतियों का सामंजस्य रूप है। भारत में कोई एक धर्म, एक संस्कृति, एक आस्था है, ऐसा नहीं है। कुछ मुठ्ठी भर लोगों के स्वार्थ के लिए इस मिली–जुली संस्कृति का पतन करना चाहते थें। इसके चलते भारत का विभाजन हुआ। जिस समय में मज़बूरी से मुसलमानों को पाकिस्तान जाना पड़ा था। पाकिस्तान में बसे भारतियों को भी मज़बूरी से भारत आना पड़ा था। लेकिन कुछ ऐसी परिस्थिति हमें दिखाई देती हैं कि विभाजन के समय में मुसलमान होते हुए भी, भारत में आ रहे थे। इस से पता चलता है कि जो विभाजन हुआ, वह जनाधारों पर नहीं हुआ है। इस विभाजन के पीछे स्वार्थ और सत्ता प्राप्त करने की चाल थी। इन समस्याओं कमलेश्वर जी ने अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में प्रस्तुत किया हैं।

"अदीब ने उसे आश्चर्य से देखा, फिर धीरे से अटक–अटक कर कहा–यह तो अजीब बात है कि जब लाखों मुसलमान हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान आ रहे थे, तब आप के अब्बा और अम्मी ने ...मुसलमान होते हुए भी ...हिन्दुस्तान जाने का फैसला लिया...दो मुसलमान...

–नहीं...नहीं...तीसरी मैं ! अम्मी की कोख में मैं भी तो थी...अदीब ! तुम मुसलमान की इस रूहानी तकलीफ को नहीं समज़ सकते। अगर तुम हिन्दू हिन्दुस्तान के क़दीमी बाशिंदे हो, तो हम भी यहीं की क़दीमी औलादें हैं...हम मुसलमान हो गए तो क्या हुआ...मज़हब बदलने से मिट्टी तो नहीं बदल जाती!"[323]

अंग्रेजों ने हमारे भारत देश का सम्प्रदाय के आधार पर विभाजन किया है। भारत और पाकिस्तान अलग–अलग देश बने हैं। मुसलमानों के लिए पाकिस्तान बना है। भारत में से ज्यादात्तर मुसलमान पाकिस्तान चले गए। लेकिन विशेष बात यह है कि कुछ लोग पाकिस्तान से हिन्दुस्तान की ओर आ रहे थें। क्योंकि हिन्दुस्तान उनका अपना देश है। वे अपना मूल धर्म बदल कर मुसलमान बने थे। इससे मिट्टी थोड़ी बदलेगी ? अर्थात् भारतीय

---

[323] पृष्ठ संख्या, 102–103, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

मुसलमान विदेशी नहीं है बल्कि भारतीय ही हैं। वैसे भी भारतीय संस्कृति ही बहुला संस्कृति है।

5.4.2. इस्लाम–धर्म परिवर्तन

मुहम्मद गौरी ने भारत पर हमला किया था। उसका सामना करते हुये, पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी से युद्ध किया। इस युद्ध में कई लोग मारे गयें हैं, कुछ लोगों ने तो अपने आप को मुहम्मद गौरी के सामने समर्पित कर दिया। बहुत सारे अपने धर्म से परिवर्तित होकर इस्लाम को कुबूल कर लिये। कई लोग राजस्थान छोड कर देश के कोने–कोने में फैल गये। वे आज भी उनकी अपने दादा, परदादाओं की संस्कृति को नहीं भूल पाए हैं। इनके रहन–सहन, खान–पान, में दो संस्कृतियाँ दिखाई देती हैं। वे मुसलमान के साथ राजपूत मुसलमान कहलाते हैं। वे सिसोदिया मुसलमान भी कहलाते हैं। वे इस बात को मानते हैं कि धर्म बदलने से खून नहीं बदलता है। इसलिए वे अपने को एक ही वंश के मानते हैं। हिन्दू और मुसलमान–दोनों ही सिसोदिया राजपूतों के लिए देहरा एक वंशगत केन्द्रबिन्दु है, क्योंकि उन दिनों में राजपुतों नें डेरा डाला था। उस डेरे से ही देहरा नाम प्रचलित हुआ है। राजपुतों के लिए देहरा एक वंशगत केन्द्रबिन्दु है। इन समस्याओं को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में देख सकते हैं।

"इन लोगों का मानना है कि धर्म परिवर्तन से रक्त नहीं बदल जाता। वे अपना परिचय दोहरा मानते हैं कि वे केवल मुसलमान नहीं हैं, वे मुसलमान राजपूत हैं। साठ गाँवों के साठे में से साढ़े आट गाँवों में सिसोदिया मुसलमान हैं, बाकी में हिन्दू सिसोदिया, लेकिन ये सभी अपने को एक ही रक्त और एक ही वंश का मानते हैं। इन के पूर्वज पृथ्वीराज चौहान की मुहम्मद गौरी से हुई लड़ाई में ये राजस्थान से यहाँ आए थे। यहीं इन राजपूतों का डेरा पड़ा था, इसी 'डेरा' को आज देहरा कहते हैं। हिन्दू और मुसलमान–दोनों ही सिसोदिया राजपूतों के लिए देहरा एक वंशगत केन्द्रबिन्दु है।"[324]

---

[324] पृष्ठ संख्या, 181, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

उपरोक्त संदर्भ के अनुसार यह प्रतीत होता है कि मेवाड़ के मुसलमान राज पुत थे। वे अपने को पृथ्विराज चौहान के वंशज मानते हैं। उन दिनों बहुत सारे राजपुतों ने इस्लाम कुबूल किये थे। वे आज भी अपने वंश को नहीं भूले हैं। वे स्वयं राजपूत मानते हैं और मुसलमान भी मानते हैं। ये राम को मानते है और रहिम को भी मानते हैं। अर्थात् किसी एक धर्म सम्प्रदाय को नहीं बल्कि अनेक धर्म सम्प्रदाय को मानते हैं। इससे यह स्थापित होता है कि भारतीय संस्कृति धर्मनिरपेक्ष संस्कृति है।

5.4.3. मन्दिर–मस्जिद

इस्लाम इस देश में आने के बाद, यहाँ के लोग उस की तरफ आकर्षित हुये हैं। भारत के हर तबके के लोग आकर्षित हुये हैं। राजपुतों से लेकर दलितों तक भी आकर्षित हुए हैं। इन में सबसे ज्यादा दलित लोग आकर्षित हुये और इस्लाम मजहब को कुबुल किये हैं। इस लिए आज हिन्दुस्तान की संस्कृति एक ही संस्कृति नहीं हैं। हिन्दुस्तान की संस्कृति मिली–जुली संस्कृति है जिसे कहते हैं बहुला संस्कृति। वे दोनों संस्कृतियों को अपनाते हैं। वे मस्जिद जाते हैं और मन्दिर भी। रमजान मनाते हैं और दशहरा भी। उन को जरूरत लगी तो मन्दिर के दीवार के सहारे मस्जिद का निर्माण भी करलिया। इन की शादियों में मुसलमान की बहने रघुवीर के नाम से गाना गाती हुई नज़र आती हैं। कमलेश्वर जी के उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में लिखा है कि 'आज भी मुसलमान बहन अपनी सन्तान की शादी के समय भइया को भात लाने के लिए बुलाने जाती है तो यही लोकगीत गाती है–'भैया रघुवीर भात हमारो लइयो'। इन विशेषताओं का चित्रण दिये गये उद्धरण में हुआ है।

"धर्म परिवर्तन के कारण जरूरत पड़ी तो मन्दिर की दिवार के सहारे ही हमने मस्जिद खड़ी कर ली है। आज भी मुसलमान बहन अपनी सन्तान की शादी के समय भइया को भात लाने के लिए बुलाने जाती है तो यही लोकगीत गाती है– 'भैया रघुविर

भात हमारो लइयो...' इस मुसलमान बहन के ओठों पर रघुवीर उनकी संस्कृति का शब्द है... विधर्म का नहीं !"[325]

उन दिनों बहुत सारे राजपुतों ने इस्लाम कुबूल किये थे। वे आज भी अपने वंश को नहीं भूले हैं। वे स्वयं राजपूत मानते हैं और मुसलमान भी मानते हैं। ये राम को मानते है और रहिम को भी मानते हैं। ये जरूरत पड़ने पर मन्दिर के सहारे मस्जिद को भी खड़ा कर लिए हैं। इनके घरों में शादी के दिन, रघु वंश को ले कर गीत गाती हैं। अर्थात् किसी एक धर्म सम्प्रदाय को नहीं बल्कि अनेक धर्म सम्प्रदाय को मानते हैं। इससे यह स्थापित होता है कि भारतीय संस्कृति धर्मनिरपेक्ष संस्कृति है।

5.4.4. सहिष्णुता का मार्ग सूफी

हिन्दू में जो कट्टरता और बुराई, उस का विरोध करते हुये वाणी के डिक्टेटर कबीरदास ने प्रमुख भूमिका निभाई है मध्यकाल में, जो आज भी प्रासंगिक हैं। उसी तरह इस्लाम में, मुल्ला–मौलियों के वजह से इस्लाम में भी कट्टरपन बहुत ज्यादा आ गया था। जिसका विरोध करते हुये, इन्सानियत और प्रेम के धरातल पर सूफी वाद खडा हुआ है। साम्प्रदायिक समस्या से उथल–पुथल हो रही थी भारत में। उसी समय में सूफियों ने सहिष्णुता का मार्ग दिखाया था। एक मिली–जुली नई संस्कृति का जन्म हुआ था। इन विषयों को कमलेश्वर जी ने 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में दर्शाया हैं।

"–अदालते आलिया ! मैं ने यही चाहा था कि भारत में समझदारी और सहिष्णुता की एक नई संस्कृति जन्म ले...वह संस्कृति जिसे सूफी सन्तों ने मंजूर किया था...ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ही हमारे मुगल वंश के संरक्षक सन्त थे। मैं उन्हीं का मुरीद था। मेरी बहन

---

[325] पृष्ठ संख्या, 182, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

जहाँआरा भी उन्हीं ही मुरीद थी ...उसने तो 'मूनिसुल–अर्बा' नाम की ख़्वाजा की जीवनी भी लिखी थी! दारा अभी बोलही रहा था कि औरंगज़ेब ने उसे टोका–"[326]

हमारा देश संस्कृतियों की माला है। इस देश में अनेक जातियाँ हैं। इस देश में अनेक धर्म हैं। इस देश में अनेक धर्म संस्कृतियाँ हैं। इन सभी को एक साथ और सहिष्णुता से चलाने वाली एक संस्कृति होनी चाहिए। ये गुण सबसे ज्यादा सूफी संस्कृति में मौजूद है। आज के सन्दर्भ में, साम्प्रदायिकता को यदि मिटाना है तो सूफी संस्कृति का विकास होना आवश्यक है।

5.4.5. अपने–अपने दुःख और अपने–अपने ईश्वर

"Normative Pluralism may conceivable hold important lessons for countries such as India, which are multi-religious as well as multi-lingual. For one, asempirical pluralism tells us, different cultural and religious groups go about the business of forming and revising their beliefs in different ways."[327]

समाज में कई सम्प्रदाय, कई संस्कृतियाँ, कई आस्थायें हैं। इनके अपने–अपने ईश्वर भी हैं। लेकिन इस धरती पर मनुष्य सभी एक जैसे ही है। ये एक जैसे होते हुए भी इतने सम्प्रदाय, इतनी संस्कृतियाँ और आस्थाएं क्यों ? इन में से कोई एक क्यों नहीं ? शुरूआत से आज तक इनकी कोशिश वहीं थी और है कि पुरी दुनिया का ईश्वर एक हों। पुरी दुनिया का धर्म एक हों। पुरी दुनिया का सम्प्रदाय एक हो। पुरी दुनिया की संस्कृति एक हो। इस की स्थापना के लिए अपने–अपने धर्म–सम्प्रदाय वाले, अपने–अपने तरीके से इस प्रतियोगिता में भाग लेते आ रहे हैं। भारत एक बहु धर्म–सम्प्रदायिक देश है। ये अपने

---

[326] पृष्ठ संख्या, 182–183, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

[327] P no 132, 'Communalism Civil Society & The State' Reflections on a Decade of Turbulence (Articl 'Pluralism and Cultural Diversity in India' by NEERA CHANDHOKE) Edited by KN Panikkar and Sukumar Muralidharan, SAHMAT, 2002

ब्राह्मण सम्प्रदाय को हिन्दू नाम से चलाते हैं। वे भारत को एक हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते हैं। इस को सफल करने के लिए वे कई संघों की स्थापना की हैं। यहाँ तक कि एक राजनीतिक पार्टी की भी स्थापना की हैं। लेकिन कुछ नहीं करपाई है। वे जितना कोशिश किये थे, उतना यानी उसी अनुपात में धर्म–सम्प्रदायें और जाति–सम्प्रदायें ज्यादा हुई हैं बल्कि कम नहीं। एक धर्म–सम्प्रदाय तब होगा जब पूरे मनुष्य का दुःख–दर्द एक होगा। इसीलिए अपना–अपना दुःख है तो अपना– अपना धर्म–सम्प्रदाय और अपना–अपना ईश्वर है। इस समस्या को कमलेश्वर जी ने बड़े अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

"–तहज़ीब के तहत इंसान फिर भी एक दूसरे के लिए सहिष्णु और एक होने की कोशिश में कामयाब हो सकता है, लेकिन इंसान का ईश्वर कभी एक नहीं हो सकता ! इंसान का ईश्वर तब एक होगा, जब इंसान का दुःख एक होगा ! यह शोषण, अन्याय और विषमता की दुनिया, जो हर पल हज़ारों तरह के दुःख पैदा करती है, यह न तो मनुष्य के सुख को सन्तुलित और हमवार होने देगी और न कभी उसके दुःख को एकात्म होने देगी !...जिस दिन इंसानियत का दुःख एकात्म हो जाएगा, उस दिन पूरी दुनिया के बाशिंदों का ईश्वर भी एक हो जाएगा !...और तब वह ईश्वर शिकायतों की अदालत का अमुर्त निर्णायक नहीं, वह मानवता के युख का अंतिम केन्द्र बन जाएगा और वह अमूर्तता के दार्शनिक सिद्धान्तों की उलझी सच्चाइयों से मुक्त होकर खुद एक खुशनुमा और मूर्त सच्चाई में तब्दील हो जाएगा ! तब ईश्वर मशवरा देनेवाले बुजुर्ग की तरह हर घर का हिस्सा बन जायेगा। "[328]

हर एक व्यक्ति का अपना दुःख है। किसी दो व्यक्ति के दुःख में समानता कभी नहीं हो पाएगी। जब दुःख अपने–अपने हैं तो, इनके ईश्वर भी अपने–अपने हैं। इन सभी को एक साथ और सहिष्णुता से चलाने वाली एक संस्कृति होनी चाहिए। ये गुण सबसे ज्यादा सूफी संस्कृति में मौजूद है। आज के सन्दर्भ में, साम्प्रदायिकता को यदि मिटाना है और देश

[328] पृष्ठ संख्या, 226, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

की जनता को प्यार रूपी पानी से सींचना हो, तो सूफी संस्कृति का विकास होना आवश्यक है।

5.4.6. हिन्दी एवं उर्दू और भारतीय भाषा

इस देश में मुसलमानों ने लम्बे समय तक राज किया हैं। ये जब आये थें, तो इन के साथ अपनी संस्कृति, संप्रदाय और उनकी भाषा आदि लेकर आये थे। उनकी भाषा और भारतीय भाषाओं का मिला जुला रूप ही उर्दू मानी जाती है। हमारे भारत में कोई ऐसी भाषा नहीं थी कि पूरे भारत में बोली जाती थी। संस्कृत भाषा थी बल्कि वह लोक की भाषा नहीं थी। संस्कृत केवल ब्राह्मणों और पंडितों की भाषा थी। मुसलमानों के यहाँ आने के बाद ही पूरे देश में उर्दू भाषा का विस्तार हुआ। मुसलमान लम्बे समय तक अपनी सरकार चलाने के कारण, सरकारी भाषा बनी। वही भाषा आम लोगों की ज़बान भी बनके रही है। इस देश में अंग्रेजी आने के बाद ही हिन्दी और उर्दू का अपना रूप सामने आता हैं। उसी उर्दू में कुछ ज्यादा संस्कृत के शब्द मिला लिए और कहने लगे कि यह हिन्दी है। उसी उर्दु में कुछ अरबी, फारसी के शब्द जोड़ कर कहने लगें कि यह उर्दू है। इन भाषागत समस्या को नीचे दिए गए उद्धरण से समझ सकते है।

“वही इस तरह की भाषा बोलता था। मैं तो इसे हिन्दी मानती ही नहीं। मैं उसे चिढ़ाने के लिए कहती, 'तुम हिन्दी नहीं, भारत–भारती बोलते हो। दूसरे किसी को इस तरह बोलते सुनती तो बहुत कोफ्त होती थी। पहले उससे भी होती थी। फिर आदत पड़ गई। दूसरा कोई बोलता तो लगता वह कोशिश करके लोगों की ज़बान पर चड़े हुए उर्दू के शब्दों को बाहर कर रहा है, पर जब वह बोलता था तो इतनी स्वभाविक लगती थी कि लगता उसमें से एक भी शब्द बदल दिया जाए तो वाक्य चीख़ उठेगा। चीख़ नहीं, चीख़ नहीं, यह मैं क्या बोल गई । चीत्कार कर उठेगा। अंतर्नाद करने लगेगा। इस भाषा में सहज वह भी नहीं लगता था, पर बिना किसी आयास के कुछ ऊपर उठा हुआ लगता था।”[329]

---

[329] पृष्ठ संख्या, 123, उन्माद–भगवान सिंह

हमारे भारत देश में कई भाषाएं दिखाई देती हैं। इसलिए भारत बहु भाषाई देश माना जाता है। वैसे तो संस्कृत केवल ब्राह्मणों के घरों में ही बोली जाती थी। मुसलमान इस देश में अपना राज्य स्थापित किए थे। तो उर्दू भाषा प्रचलित हुई। कालांतर में उर्दू जनता की भाषा के रूप प्रसिद्ध हुई।

5.4.7. रिश्ता एवं भारतीय संस्कृति

विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जिस में विश्व के कई सम्प्रदाय के लोग आये हैं। इन में से कुछ तो जिस काम के लिए आये वह काम होने के बाद चले गये हैं। लेकिन मुसलमान वापस नहीं गये। मुसलमान इस देश में अपना राज्य स्थापित किया। यहाँ के लोगों से घुल–मिल गये हैं। यहाँ के कईं राजपूत लोगों ने इस्लाम को कुबुल किये हैं। कईं दलितों ने और पिछड़ी जाति के लोगें ने भी इस्लाम को कुबूल किये हैं। कई धर्मांतरित विवाह भी हुये हैं। एक दूसरे से प्यार–मुहब्बत से जीवनयापन करते थे और कर रहे हैं। लडकी–लडका मित्र होते हैं। हिन्दू का लडका मुसलमान की लडकी दोनों। दोस्त होने से, हिन्दू का लडका अपनी दोस्त मुसलमान की लड़की के घर जाता है, तो वहाँ उन के माता–पिता से बात करते समय अम्मीं, अब्बा कहकर संबोधित करते हैं। वे भी ऐसा महसूस करते हैं कि यह खुद अपना हो। बात करते समय 'बेटा' कहकर बुलाते हैं। कुलमिलाकर भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है कि जो सभी सम्प्रदायों की मिली–जुली है। इसी संस्कृति को प्रतिबिंबित करता हुआ 'उन्माद' उपन्यास के रचयिता भगवान सिंह ने लिखा है।

"आबिदा के घर तो वह कई बार जा चुका है। आबिदा के अब्बा उसे प्यार भी करते थे। उसकी माँ को भी वह अच्छा लगता था। आबिदा कहती थी–'रतन को और कोई संबोधन नहीं सुझा तो वह अब्बा और अम्मी को, मेरी ही तर्ज़ पर, अब्बा और अम्मी कहने

लगा। बस इतनी–सी बात पर वे इतने फ़िदा रहते कि उन्हें सचमुच लगता कि उनकी बेटे की साध पूरी हो गई हैं।"[330]

सदियों से इस देश में हिन्दू और मुसलमानों के बीच में सद्भावना रही है। इन के बीच अच्छे रिश्ते रहे हैं। भाई चारा रहा है और आज भी है। इन रिश्तों को उपरोक्त संदर्भ में भी देख सकते हैं।

5.4.8. प्रेम विवाह

कहा जाता है कि प्यार करने वाले को किसी जाति तथा सम्प्रदाय से मतलब नहीं होता है। यह कुछ प्रतिशत सही है। युवाओं एवं युवतियों में बिना जात–पांत और बिना सम्प्रदाय देखे ही प्यार हो जाता है। पर वह प्यार शादी तक पहुँचना मुश्किल होता है। यदि पहूँच भी जाएं, तो इन दोनों में एक को उनकी इच्छा के बगैर अपनी सम्प्रदाय एवं संस्कृति को छोड़ना और दूसरे की सम्प्रदाय और संस्कृति को कुबूल करना ज़रूरी होता है। 'उन्माद' उपन्यास जिसे भगवान सिंह जी ने लिखा है। इस में भी इसी समस्या को प्रस्तुत किया है। इसमें आबिदा मुसलमान की लड़की है और रतन सिंह हिन्दू लड़का है। इन दोनों में प्यार हो जाता है। एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं। जब शादी का समय आता तो आबिदा रतन से कहती है कि इस्लाम कुबूल करलें। रतन कहता है कि कोई किसी को कुबूल नहीं करेंगे। अब जैसे हैं वैसे ही रहेंगे और शादी कर लेंगे। बच्चों को छूट दे देंगे कि वे चाहें तो दोनों में किसी को भी कुबूल कर सकते या तो उनकी मर्जी से जी सकते हैं।

"आबिदा की ज़िद को देखकर उन्होंने कहा, 'तुमने रतन से पूछा भी है ?' "ग़लती यहीं हुई थी। उसने रतन पर ज़रूरत से अधिक भरोसा कर लिया था। जब उससे पूछा तो वह पीछे हट गया, 'धर्म–परिवर्तन की ज़रूरत ही क्या है। हम इसी तरह रहेंगे, हिंदू और

---

[330] पृष्ठ संख्या, 297, उन्माद–भगवान सिंह

मुसलमान और अपनी संतान को छूट देंगे कि वह इनमें से कोई धर्म मानना चाहे तो माने या दोनों से बाहर रहे।' "[331]

मनुष्य है तो इन के बीच प्रेम भी है। युवती और युवाओं में एक दूसरे से प्यार हो जाता है। उस समय यह नहीं पता होता कि उनकी जाति कौनसी है, कौनसा धर्म है। उन दोनों को धर्म से कोई लेना–देना नहीं है। धर्म इनके विवाह प्रक्रिया में बाधक बनता है। उनको अपनी इच्छानुसार जीने और रहने देना चाहिए।

5.4.9. शैव बनाम बौद्ध

विश्व में कोई ऐसा देश नहीं है जिसमें वर्ण, जाति, जातियों में ऊँच–नीच और छुआछूत आदि होता है। मनुष्य होते हुए भी पशु से बदतर जिन्दगी जीने को मज़बूर कर दिया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को छोड़ कर बाकी 95 प्रतिशत जनता को पीने का पानी, खाना, रहने के लिए झौपड़ी भी नहीं रहने दिये थें। उसी समय में बुद्ध आये। वे इन समस्याओं को देख कर दुःखित हुये। इसके कारणों को खोज निकाला। उन्होंने मनुस्मृति का विरोध किया था। भगवान की सत्ता का विरोध किया था। पुनर्जन्म एक ढ़ोंग साबित किया था। उन्होंने कहा है कि किसी व्यक्ति के भीतर से कोई भगवान नहीं बोल सकता है। इस तरह पूरे हिन्दू सम्प्रदायों का विरोध किया था। इन हिन्दू सम्प्रदायों में शैव भी एक हिन्दू सम्प्रदाय है। शैव सम्प्रदाय ने प्रतिरोध करके, बौद्ध सम्प्रदाय को विनाश किया है। बौद्धौं के विहारों और मठों को तोड़ कर उस जगह पर शिव के मन्दिर बनाये हैं। इन्ही समस्याओं को उपन्यास 'सभा पर्व' में देख सकते हैं।

"बोध गया का यह मठ शैव सम्प्रदाय का मठ है। शैवों ने बौद्ध धर्म और बौद्ध विहारों का जितना विनाश किया उतना किसी और ने नहीं किया।"[332]

---

[331] पृष्ठ संख्या, 316, उन्माद–भगवान सिंह

[332] पृष्ठ संख्या, 99, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म की बुराइयों का विरोध करता आया है। बौद्ध धर्म के केन्द्र में समाज है। शैव धर्म के केन्द्र में भगवान शिव हैं। शैवों और बौद्धों के बीच साम्प्रदायिक लड़ाई हुई है। जिसमें बहुत सारे बौद्ध मारे गये थे। इनके बौद्ध विहारों का विनाश किया गया है। उसी स्थान पर शैव मठ और मन्दिर बनाए गये।

"यही पर कभी बौद्धों का 'समाज' भी होता होगा। ऐसी ही चहल–पहल, ऐसा ही धूमा–धड़ाका ! ग़ौर से देखो तो कुछ भी नहीं बदला है। सब कुछ उसी तरह हो रहा है।"[333]

जहाँ–जहाँ बौद्ध आलय का ध्वंस करके हिन्दू देवताओं के लिए मन्दिर बनाया गया वहाँ–वहाँ वर्तमान में भी वहीं माहौल नजर आता है। आसानी से पहचान सकते हैं कि वह कौनसा क्षेत्र था और वर्तमान किस क्षेत्र में बदल गया हैं।

5.4.10. मिट्टी से है लगाव

इस धरती पर कई धर्म–सम्प्रदाय मिलते हैं। कई संस्कृतियाँ मिलती हैं। कई तरह–तरह के देश प्रेमी मिल जाते हैं। लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए धर्म–सम्प्रदायों की कल्पना की। उसी का परिणाम है कि विश्व में अनेक सम्प्रदाय उत्पन्न हुए। वैसे संस्कृति भी है। कोई एक संस्कृति नहीं हैं। हर एक की अपनी–अपनी संस्कृति है। किसी की संस्कृति श्रेष्ठ है तो किसी की संस्कृति निकृष्ट है। देश–प्रेम भी अपने स्वार्थ का नारा है। लगता है, ये सब अपने–अपने स्वार्थ के चादर ओढ़े हुए है। लेकिन यह सच है कि किसी भी व्यक्ति को उनकी अपनी मिट्टी से लगाव रहता है। जिस मिट्टी के साथ उनका बचपन गुज़रा है, उस मिट्टी से प्यार करता है। वह लगाव जो है, वह उनके खून में और रग–रग में बसा हुआ रहता है। जिससे उस को अलग नहीं कर सकते हैं। इसी तरह की समस्याओं का 'सभा पर्व' उपन्यास में लेखक बदीउज़्ज़माँ ने चित्रण किया है।

---

[333] पृष्ठ संख्या, 171, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

“मुझे लगता है कि धर्म, संस्कृति, देश–प्रेम––ये सब इंसान की ओढ़ी हुई चीजें हैं। ये उसके खून के साथ जुडी हुई नहीं हैं। लेकिन एक चीज ज़रूर है जो उसके खून में घुली–मिली है। यह है मिट्टी से उसका लगाव। उस मिट्टी का लगाव जिसके साथ उसके बचपन की स्मृतियाँ जुड़ी हुई है, जो सचमुच उसके ख़ून में इस तरह जज़्ब हो जाती है कि दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। इंसान इस लगाव के बारे में कभी कोई घोषणा नहीं करता लेकिन यह उसके रग–रेशे में, उसके पूरे अस्तित्व में इस तरह पैवस्त रहती है कि वह इससे अपना रिश्ता कभी ख़त्म नहीं कर सकता।”[334]

कोई भी संस्कृति अपने क्षेत्र, अपने प्रदेश, अपनी जाति, अपने सम्प्रदाय, अपने देश की पहचान होती है। एक देश की जनता को, चाहें उनका कौम कोई भी क्यों न हों, उस देश की संस्कृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। क्योंकि उस देश की मिट्‌टी से अपना गहरा लगाव रहता है। भारतीय संस्कृति उसी का प्रतीक है।

5.4.11. हर धर्म–सम्प्रदाय के दो रूप

विश्व में हर एक चीज़ के दो पहलू होते हैं। एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। गणित में प्लस और माइनस होते हैं। न्याय शास्त्र में न्याय और अन्याय होते हैं। वैसे ही समाज में अच्छा और बुरा होता हैं। उसी तरह धर्म के भी दो रूप होते हैं। धर्म का रूप एक वह है जो शास्त्रों में लिखा गया है। धर्म का दूसरा रूप वह जिसे आम आदमी अपनाता है। इन दोनों में बहुत अंतर होता है। जो आम आदमी का धर्म वह बहुत ही सीधा–साधा और अच्छा धर्म है। जो शास्त्रों में लिखा हुआ धर्म में स्वार्थ होता है। इन दोनों के बीच सहमती कभी नहीं रहती है। इन समस्याओं को बदीउज़्ज़माँ ने भी अपने उपन्यास ’सभा पर्व’ में प्रस्तुत किया हैं।

---

[334] पृष्ठ संख्या, 105, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

"शायद हर धर्म के दो रूप होते हैं। एक वह जो शास्त्रों में लिखा होता है, जो किसी विशेष वर्ग का होता है। लेकिन धर्म का एक और रूप भी होता है जो शास्त्रों से बिल्कुल अलग होता है। यह वह रूप है जिसे आम आदमी अपनाता है। दोनों में बड़ा अंतर है। अक्सर दोनों एक–दूसरे के विरोधी भी होते हैं।"[335]

एक अनपढ़, सीधा–साधा व्यक्ति एवं आम जनता भला क्या समझती है कि शास्त्रों में क्या लिखा हुआ है। अर्थात् ये कुछ नहीं जानते हैं। फिर भी इनका अपना धर्म–सम्प्रदाय है जो शास्त्रों से अलग है। इससे यह समझ में आता है कि हर एक धर्म–सम्प्रदाय के दो रूप होते हैं।

5.4.12. इस्लाम बनाम दरगाह संस्कृति

इस्लाम में कट्टरता और किसी एक वर्ग के आधिपत्य के कारण ही फूट पड़ी है। वैसे तो कोई भी पूँजीवादी धर्म–सम्प्रदायों में, अंतर से ज्यादा समानता होती है। इन में समानता वह है कि वे सभी धर्म–सम्प्रदाय वाले, मृत्यु के बाद स्वर्ग की खोज में रहते हैं। तत्कालीन समस्याओं को भूल जाते हैं। इन सभी समस्याओं के जो कारण है पूँजीवाद। वे जनता को हर तरह से शोषण करते हैं। ये यह चाहते हैं कि जनता को यह नहीं मालूम होना चाहिए कि शोषण कौन कर रहा है। इस के लिए पूँजीवादी लोगों ने आम आदमी के दिल में बसे हुए धर्म–सम्प्रदाय को अपने मुठ्ठी में बंद करके रखते हैं। धर्म–सम्प्रदाय के नाम पर लोगों को बाँट देते हैं। इनको यह बोध कराया जाता है कि 'भूखमरी से ज्यादा है स्वर्ग में जाना' यानी तुम भूखे मर रहे हो तो यह कोई उतनी ज्वलंत समस्या नहीं हो सकती है। सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि तुम्हे स्वर्ग प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए ? उस के लिए सोचना होगा।

---

[335] पृष्ठ संख्या, 171, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

इस्लाम में इन जैसे कट्टर, धर्म–सम्प्रदायिक पूँजीवादी लोगों का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं। ये ही लोग हैं, जो सूफी कहलाते हैं। ये अपने पूर्वजों को पूजते हैं। अपने पूर्वजों की समाधि बनाते हैं। उन समाधियों को दरगाह कहते हैं। यह दरगाह संस्कृति भारत में बहुप्रचलित है। इन दरगाहों के पास न केवल मुसलमान जाते हैं बल्कि हिन्दू कहलाने वाले भारतीय जनता ही अधिक जाती हैं। इन्ही की वजह से हिन्दू और मुसलमानों में भाई चारा पन बड़ा है। यह संस्कृति स्वर्ग आसमान को नहीं मानती बल्कि ज़मीन पर ही स्वर्ग मानती है, मुझे ऐसा लगता है। इन जैसी सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण लेखक ने 'सभा पर्व' उपन्यास में किया है।

"यह जहालत है। बहुत बड़ा गुना है। तुम दरगाहों को पूज़ते हो। क्या तुम नहीं जानते? अल्लाह ताला ने मना किया है अपनी ज़ात में किसी और को शरीक करने से । जो कुछ माँगना है खुदा से माँगो। तुम क़ब्रों को खुदा का दर्जा देते हो। इनके आगे अपना सिर झुकाते हो जैसे ये क़ब्रें ही खुदा हों। अल्लाह के अज़ाब से डरो। उस दिन को याद करो जब तुम्हें अल्लाह के सामने जाना होगा। तुम्हारा खुदा तुम से कहेगा, 'जाओ तुम उन्हीं क़ब्रों के पास और कहो उनसे कि बचाएँ वे तुम को दो ज़ख़ की आग से ।' वह रास्ता शिर्क का है जो तुम ने इख़तियार किया है और जो शिर्क करता है वह मोमिन नहीं है। इसलिए डरो अल्लाह के अज़ाब से और छोड़ दो वह रास्ता जो तुम्हें गुमराही की तरफ़ ले जाता है।"[336]

इस्लाम से अलग–अलग सम्प्रदायों का उद्भव हुआ। जैसे सुन्नी, शिया, सूफी...आदि हैं। इन में दरगाह में विश्वास करने वाले हैं। दरगाह संस्कृति का विरोध करने वाले भी हैं। लेकिन दरगाह संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है जो सभी भारतीयों को एक जगह पर ला सकती है। इस में सूफियों का बड़ा योगदान रहा है। दरगाह और सूफी संस्कृति ही भारतीयों में भाईचारा ला सकती है।

[336] पृष्ठ संख्या, 172, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

5.4.13. छुआछूत

"जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान

मोल करो तलवार की, पड़ा रहने दो म्यान।"[337]

अर्थात् सम्प्रदाय और जाति से लोगों को पहचानना गलत है। व्यक्ति को ज्ञान से पहचानना चाहिए। वह किसी भी सम्प्रदाय और जाति का क्यों न हों। आदि से आज़ तक हर एक काम, घर में हों, बाहर हों, छोटी जाति के ही लोग करते हैं। इन में कई सम्प्रदाय के लोग होते हैं। छोटी–मोटी होटल से लेकर, पाँच सितारें–होटलों तक में, पूरे के पूरे काम करने वाले कौन है ? वहीं लोग हैं जो निचली जातिवाले हैं। इन में कई सम्प्रदाय के लोग भी होते हैं। वे खाना पकाने से लेकर, साफ–सफाई और धोना वगैरह काम तक करते हैं। लेकिन इन बड़े–बड़े होटलों में खाने के लिए कौन जाते हैं ? जाहीर–सी बात हैं कि वहीं लोग जाते हैं जो अमीर और ऊँची जात के कहलाते हैं। ये होटल में खा रहे हैं, इस का मतलब हुआ कि वे इनके हाथ का छूआ हुआ खा रहें हैं।

हम एक जगह से दूसरी जगह या एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश का सफर करते हैं। रेल गाड़ी में, बस में और हवाई जहाज में, सफर करते समय, पकौड़ी–कचौड़ी और क्या–क्या नहीं खरीद कर खाते हैं ? ये कई सम्प्रदायों के हाथों का छूआ हुआ रहता है। वैसे गाँवों में तो हिन्दू–मुसलमान, मिल–जुल के रहते हैं। तीज़–त्योहार, जलसे गाँव वाले सब मिल कर मनाते हैं। हिन्दू लोग अपने मुसलमान मेहमान लोगों के लिए तामचीनी के बर्तन रखते हैं। कोई मुसलमान मेहमान आये तो उस में खिलाते हैं। इस तरह हिन्दू और मुसलमानें में अपना पन बहुत था और आज भी है। इन समस्याओं को व्यक्त किया है गीतांजलि श्री ने।

"हमारे गाँव में ही थे बहुत से मुसलमान परिवार। चलो, आज तुम्हें एक बात बताता हूँ। तुम लोग आए दिन ढाबों–रेस्त्राओं में खाते हो, कौन जाने बगैर लोग किस जात के हों, उनके हाथ का छूआ–पकाया बेधड़क खा लेते हो। रेलगाड़ी में, बस में, किसी भी

---

[337] पृष्ठ संख्या 76, कबीर वाणी, कबीरदास, तुलसी पब्लिकेशन्स, मेरठ

संप्रदायवाले से पकौड़ी–कचौड़ी खरीद लेते हो। मिल–बाँटकर बैठते हो, छुआछूत नहीं मानते हो। और तो और, तुम लोग हिन्दू–मुसलमान में ब्याह भी रचा रहे हो। हमारे गाँव इस सब का सवाल ही नहीं उठता था। जलसों–त्योहारों का साथ होता और तमाम अनुष्ठानों में दोनों का मिलकर उठना–बैठना मगर नाश्ता–पानी अलग–अलग कराया जाता। पूरे गाँव की बात कर रहा हूँ। मैं तो जल्दी ही इस अलग–अलग के हिसाब से अलग हो गया, मगर तब तक मुसलमान के घर जाता तो हिन्दू लड़का हिंदू हलवाई की दुकान से मेरे और मेरे पिता के लिए पत्तल के दोने में खाने को लाता। पिताजी और गाँव भर ऐसे ही रहे। हमारे घर में तामचीनी के बर्तन थे, जो मुसलमान मेहमानों के लिए ही रखे हुए थे! और इन बातों का हममें से कोई बुरा नहीं मानता था। तुम भेदभाव नहीं करते, हम करते थे, मगर हम हिंदू–मुसलमान में कहीं ज़्यादा अपनापा था।"[338]

भारतीय समाज में छुआछूत थी। आज हम आधूनिक समाज में जी रहे हैं। समाज में, संस्कृति में बहुत बदलाव आ गया है। जगह–जगह पर होटलें, रेस्त्राँ...आदि बढ़ गये हैं। इन में काम करने वाले लगभग नीची जाति के लोग ही रहते हैं। रेल में, बस में...आदि में भी यही लोग रहते हैं। इनके हाथ का बनाया हुआ खाना ही सभी लोग खाते हैं। तो यहाँ छुआछूत की भावना नहीं दिखाई देती है। फिर भी इस समाज में छुआछूत की भावना है, केवल रूप बदला है।

5.4.14. पूजा सामग्री–मुसलमान

हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में कई देवी–देवताएं हैं। कुछ लोग ऐसे हैं सप्ताह में सातों दिन अलग–अलग देवी–देवताओं की पूजा–पाठ करते रहते हैं। हिन्दू सम्प्रदाय के त्योहार आते रहते हैं। इन त्योहारों पर कुछ खास पूजा–पाठ होती है। मकर संक्रांति त्योहार आता है तो सब लोग और बच्चे मिलकर पतंगे उड़ाते हैं। खासकर हिन्दू ब्राह्मण धर्म–सम्प्रदाय में ब्राह्मण जनेऊ पहनते हैं। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में धार्मिक चित्र भी बनाएं जातें हैं। जिन्हें

[338] पृष्ठ संख्या, 59–60, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

धार्मिक चित्रकार कहते हैं। उक्त सब चीजों को मुसलमान बनाते हैं। पूजा–पाठ सामग्री की दुकाने ही मुसलमानों की हैं। उन पतंगों को मुसलमान ही बनाते हैं। मुसलमान जनेऊ बनाते हैं। हिन्दू ब्राह्मण धर्म चित्रकार मुसलमान हैं। इस से पता चलता है कि हिन्दू और मुसलमान के बीच कितना सहिष्णुता है?। कई त्योहारों को ये मिलकर मनाते हैं। अतः भारतीय संस्कृति एक मिली–जुली संस्कृति है। इन ही विषयों को गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में प्रस्तुत किये हैं।

"द्वारका के मन्दिर की पूजा सामग्री की दुकानें मुसलमानों की हैं, पर उनका अंदर जाना मना है, और मकर संक्रांति की पतंगे मुसलमान बनाते हैं गुजरात में और जयपुर में वे जनेऊ बनाते हैं कि बंगाल के पटुआ, जो हिन्दू धार्मिक चित्रकारी करते हैं, सब मुसलमान हैं...ऐसे लेख पढ़–पढ़कर लोग अनदेखा करने लगे हैं..."[339]

भारतीय संस्कृति ही बहुला संस्कृति है। कई मुसलमान हिन्दू की पूजा सामग्री बेचते हैं। संक्रांति के दिनों में पतंगे बेचते हैं। कई जगहों पर मुसलमानों की जरुरी चीजें हिन्दू भी बेचते हैं। लेकिन राजनीति और आधिपत्य के कारण साम्प्रदायिकता होती है।

5.4.15. हिन्दू–मुस्लिम एवं भेद–भाव

यह प्रथा कई बरसों से चली आ रही है, कि किसी गरीब हिन्दू के बच्चों को किसी अमीर मुसलमान के घर में काम–काज़ कारने के लिए नौकर के रूप में रखे जाते हैं। वैसे ही किसी गरीब मुसलमान के बचों का भी, एक अमीर हिन्दू के घर में काम–काज़ के लिए नौकर के रूप में रहते हैं। उसी तरह 'त्रिशूल' उपन्यास में, एक गरीब मुसलमान का लड़का, एक हिन्दू के घर में काम–काज़ करने के लिए नौकरी करता है। यह कई सालों तक उसी घर में रहता है। यह एक नौकर की तरह नहीं बल्कि घर के सदस्य की तरह ही एक बच्चा बनकर रहने लगता है। घर में जो सब खाते हैं वही खाना यह भी खाता है। वे

[339] पृष्ठ संख्या, 169, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

जो पहनते हैं, यह भी पहनता है। दीवाली आई तो अन्य बच्चों की तरह पटाखे फोड़ता है। दीवाली के दिन दीपक जलाता है। जन्माष्टमी के दिन ऊँगली पर मिट्टी का गोवर्धन सजाता है। जब रमजान का महीना आता तो, हिन्दू होते हुए भी बड़े सवेरे हलूआ, बौर, पूए, बच्चे के लिए बनाती थी। ईद में तो उस घर में जितने भी बच्चे हैं, उतने पूरे दुपल्ली टोपी लगाए सब के सब मिलकर ईदगाह जाते हैं। इन विशेषताओं को 'त्रिशूल' में देख सकते हैं।

"कितने बरस बीत गए इस बात को । घर के अन्य बच्चों–जैसा ही एक बच्चा बनकर रहता आया। वही खाना, वही पहनना। न कोई भेद–भाव न दुराव–छिपाव। दीवाली के दिन अन्य बच्चों के साथ पटाखे फोड़ता रहा। दीयों और मोमबत्तियों की पंक्तियाँ सजाता रहा । बल्बों की झालरें लटकाता रहा। जन्माष्टमी के दिन ऊँगली पर मिट्टी का गोवर्धन सजाता रहा। रमजान के महीने में पत्नी उसकी सहरी के लिए बड़े सवेरे हलूआ बौर पूए बनाती रहीं। ईद में बेटा दुपल्ली टोपी लगाए उसके साथ सायकिल के आगे बैठकर ईदगाह जाता रहा।"[340]

दरअसल देखा जाए तो हिन्दू–मुस्लिम में कोई भेद–भाव नहीं दिखाई देता है। तीज़–तौहार और ईद–रमजान के दिनों में एक दूसरे के घर जाते हैं। खाते हैं। कई मुसलमानों के बच्चे हिन्दूओं के पास काम करते हैं। वैसे ही हिन्दूओं के बच्चे मुसलमानों के पास काम करते हैं।

5.4.16. धर्मनिरपेक्षता और उर्दू भाषा

समय किसी के लिए इंतज़ार नहीं करता है। समाज हमेशा परिवर्तनशील है। इसलिए बदलते समाज़ के साथ–साथ हमको भी बदलना होगा। लेकिन कोई साम्प्रदायिक संस्कृति क्यों न हों वह जड़ बनकर रहना चाहती है। बदलाव का विरोध करती हैं। इस

[340] पृष्ठ संख्या, 45, त्रिशूल–शिवमूर्ति

बदलाव के साथ–साथ हर एक विषय में बदलाव आता है। रहन–सहन में, सोच–विचार में, कानून–कायदे...आदि में भी परिवर्तन आता है। आज एक उर्दू की ही नहीं बल्कि भारतीय कई भाषाओं की स्थिति भी सोचनीय है। अपने अपने राज्यों में भाषाओं की स्थिति भी वैसी ही है। इन सभी भाषाओं पर अंग्रेजी का प्रभाव है। आज का ज़माना भुमण्डलीकरण का ज़माना है। रोज़गार के लिए देश–विदेश जाना पड़ता है। इस सन्दर्भ में केवल उर्दू अथवा तेलगु या अन्य भारतीय भाषाओं से काम नहीं चलता। यह कैसा तर्क है मुझे समझ में नहीं आता कि देश की जनता विविध सम्प्रदायों में बँटी हैं। ये साम्प्रदायिक बनकर रहना चाहती हैं, लेकिन सरकार सेक्यूलर बनाना चाहती हैं। यह कैसे संभव है ? यह तभी संभव होता है कि देश के नागरिक भी धर्मनिरपेक्ष हों। ऐसा नहीं है कि भारत के मुसलमान किसी देश चले गये जहाँ इस्लाम हों, वहाँ के मुसलमान इनको, उन के समूह में तुरन्त मिलाले। भारतीय मुसलमान पाकिस्तान जाते हैं। कहते हैं, हम मुसलमानों का देश पाकिस्तान, लेकिन वास्तविक परिस्थिति कुछ भिन्न है। भारतीय मुसलमान वहाँ कई सालों रहते हुए, उर्दू बोलने पर भी 'मुहाजिर' ही कहलाते हैं। अतः उर्दू के साथ–साथ अंग्रेजी पढ़ना चाहिए। समय के साथ हम को भी चलना होगा। नहीं तो हम ही पीछे रह जाते हैं। इन समस्याओं को मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी ने अपने उपन्यास 'बयान' में प्रस्तुत किया है।

"बरकत हुसैन आह खींचते हैं...बालमुकुन्द जोश मियाँ...तुम सच कहते हो...हम उर्दू बोलते हैं। इसलिये हम इस मुल्क के तीसरे दर्जे के शहरी हैं। उन्हें हक हासिल है हमें कोफजदा करके हमारे घरकी तलाशी ले सकते हैं। कानून–कायदे अब हमारे लिये नहीं रहे जोश मियाँ...लगता है...धीरे–धीरे मुसलमानों के लिये मुल्क की तहजीब और सेक्यूलर तहजीब के तौरतरीके सब उठते जा रहे हैं...इसलिये अब अगर मुन्ना बिगड़ता है कि कल आप पाकिस्तान क्यों नहीं चले गये...तो उसे जवाब दिये नहीं बनता। यह भी नहीं कह सकता कि वहाँ कौन से खुश हो तुम...वहाँ भी मुद्दतों–बरसों रहकर उर्दू बोलकर मुहाजिर ही कहला रहे हो तुम...बलूची हो, सिन्धी, पठान हो...मगर मुसलमान कहाँ को...पाकिस्तान में कौन सा मारकाट कम है जो वहाँ जाता...कौन सी खुशी है वहाँ मगर जोश मियाँ...जिस

मुल्क पर नाज था, उसके बासियों और फौज ने हम पुराने लोगों को जख्मी कर दिया है... ।"[341]

"जबान पर किसी का हक़ थोड़ा है। "है कैसे नहीं ?..." पत्नी का चेहरा संजीदा था——उर्दू पढ़ा कर मोलवी बनाना है क्या...?

बच्चे को भूखे मारना है। वक्त बदल गया है। अब कोई अपने बच्चों को उर्दू नहीं पढ़ाता——हम भी नहीं पढ़ायेंगे।"[342]

इतिहास के कालचक्र में कई भाषाएं मर चुकी हैं और कई भाषाएं जन्म ली हैं। जैसे कम्प्यूटर की भाषाएं हैं। आज दुनिया की बढ़ी से बढ़ी भाषाएं सीखने पर भी निरक्षर ही कहलाते हैं, जब तक कम्प्यूटर का ज्ञान और भाषा न जाने। इसे जानने के लिए अंग्रेजी की जरूरत होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के साथ–साथ हमको भी बदलना होगा।

5.5. मिश्रित भारतीय संस्कृति बनाम आर्य संस्कृति

"किन्तु, इसके विपरीत, एक और समुदाय था जो जाति–प्रथा को नहीं मानता था, जो मन्दिरो, तीर्थों और पुरोहितों में विश्वास नहीं करता था तथा जिसे देवताओं की शक्तियों में विश्वास नहीं था। यह समुदाय, विशेषतः, उन योगियों और तांत्रिकों से प्रभावित था, जो यह कहते थे कि मनुष्य की सारी शक्तियाँ उसके अपने शरीर में छिपी हुई हैं तथा शरीर और चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। ये योगी व्रत, उपवास, यज्ञ, होम और शास्त्र–वचन को मिथ्या मानते थे और जनता को यह उपदेश देते थे कि धर्म के बाहरी

---

[341] पृष्ठ संख्या, 76–77, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी

[342] पृष्ठ संख्या, 132, बयान–मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी

ढकोसलों में कहीं कुछ नहीं है, अतएव, अपने मन के भीतर डूब कर असली धर्म की साधना करो।"[343]

भारत को उपमहाद्वीप कहा जाता है, क्योंकि इस देश में अनेक सम्प्रदाय–संस्कृतियाँ हैं। विदेशों से भी कई सम्प्रदाय–संस्कृतियाँ आई हैं, जैसे इस्लाम सम्प्रदाय–संस्कृति, फारसी सम्प्रदाय–संस्कृति, ईसाई सम्प्रदाय–संस्कृति...आदि। ये यहाँ के सम्प्रदाय–संस्कृति से और जातिगत सम्प्रदाय–संस्कृति से सम्पर्क यानी दूध में पानी की तरह मिल गयी हैं। धर्मांतरित विवाह, सम्प्रदायिक विवाह, प्रेम विवाह, विविध जाति के बीच प्रेम विवाह हुये हैं। ये सब मिल कर होली मनाते हैं, मोहर्रम मनाते हैं, क्रिसमस मनाते हैं। कोई मस्जिद की दीवार से मन्दिर खड़ी कर लेते हैं। अर्थात् एक मिश्रित प्रजातांत्रिक भारतीय संस्कृति का जन्म हुआ है। इस पर साम्प्रदायिक आर्य–हिन्दू संस्कृति हमला करती आई है। जिसके विरोध में मिश्रित संस्कृति अपना स्वर बुलंद करती आई हैं। इन संदर्भों को अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में इस प्रकार देखा जा सकता है।

5.5.1. पुनर्जन्म

आर्य सभ्यता या आर्य संस्कृति के लोगों ने कभी सच्चाई का प्रचार प्रसार नहीं किया हैं। वे लोगों को अपने वश में करने के लिए क्या–क्या नहीं किये हैं ? वे तरह–तरह के गलत विचारों का प्रचार किये हैं। मनुष्य का पुनर्जन्म अलग–अलग योनियों में होता है। इस का मतलब यह हुआ कि वर्तमान जन्म अगर मनुष्य की योनी से है, तो दूसरा जन्म हो सकता है, जानवर, कीड़े–मकोड़े की हो! अगर पूछा जाए कि मनुष्य योनी के बाद किस योनी में जन्म लेता है ? तो इस का समाधान हो सकता है कि उनके अपने कर्म के अनुसार योनी की प्राप्ति होती है। मनुष्य में भी किस जाति की योनी प्राप्त होती ? इस का जवाब भी वही होता है कि अच्छे कर्म करने से अच्छी जातियों में जन्म लेते हैं, बुरे कर्मों से बुरी जातियों में जन्म होता हैं। तो अब वर्तमान में जितनी भी निम्न जाती के लोग हैं, वे सब के सब पूर्व जन्म में बुरे कर्म किये हैं इसलिए, वे सब निम्न जातियों में जनमें हैं। क्या

[343] पृष्ठ संख्या, 206, संस्कृति के चार अध्याय

वे ऊँची जातियों की योनी पा सकते हैं ? अगर पा सकते हैं तो वर्तमान में इनको क्या करना चाहिए ? इसका जवाब होता है कि इन ऊँची जातियों की सेवा करो। आर्यों के पुनर्जन्म में इतना बड़ा धोखा है।

मिस्री सभ्यता मनुष्य के पुनर्जन्म को मानते हुए कहती है कि मनुष्य का पुनर्जन्म मनुष्य के ही योनी को पाते हैं। इससे यह स्थापित होता है कि मनुष्य की योनी से मनुष्य और जानवर की योनी से जानवर ही पैदा होता है। यह वैज्ञानिक सच भी है क्योंकि मनुष्य योनी को ही प्राप्त करते हुए सभ्य होते आए हैं। इस तथ्य को 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में देख सकते हैं।

"–यही मिस्री सभ्यता ने हमें बताया था और मिस्री तथा आर्य सभ्यता ने इसीलिए पुनर्जन्म को माना था...फर्क सिर्फ इतना था कि सिंधु सभ्यता ने पुनर्जन्म के सत्य को अलग–अलग योनियों में बँटा हुआ माना था, पर मिस्री सभ्यता ने मनुष्य का पुनर्जन्म मनुष्य के रूप में ही मन्जूर किया था...इसीलिए मैं मिस्री सभ्यता का समर्थक हूँ...क्योंकि हम मनुष्य योनि को प्राप्त कर लगातार सभ्य होते आए हैं..."[344]

पुनर्जन्म का सिद्धांत ही अप्रमाणिक यानी अनसैंटिफिक है। मनुष्य का पुनर्जन्म ही गलत है तो मनुष्य का पुनर्जन्म अलग–अलग योनियों से मानना महागलत हो सकता है, क्योंकि मनुष्य का जन्म तो एक प्राकृतिक प्रक्रिया है।

5.5.2. अंतिम संस्कार

दरअसल मनुष्य सब मनुष्य ही होते हैं, लेकिन अपने–अपने सम्प्रदाय के लोग कैसे पहचाने जाते हैं कि वे फलाना सम्प्रदाय के हैं। यह पहचानना आसान है कि कौन किस सम्प्रदाय का है। इसके लिए हम देख सकते हैं कि मुसलमान मस्जिद जाता है, ईसाई चर्च जाता है, हिन्दू मन्दिर जाता है। इन की मृत्यु होने पर, अंतिम संस्कार भी होते हैं। यह

[344] पृष्ठ संख्या, 87–88, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

संस्कार अपने–अपने सम्प्रदाय के अनुसार होते हैं। यथाः ईसाई के लोग दफनाते हैं। इस्लाम के लोग भी दफनाते हैं। लेकिन हिन्दू धर्म के लोग जलाते है और दफनाते भी हैं। यह आश्चर्य होगा कि जलाना और दफनाना एक साथ कैसे होता है ? तो यहाँ ऐसा है कि शादी–शुदा होकर मृत्यू हुई तो उन को जलाया जाता है। बिना शादी–शुदा यानी कुँआरा–कुँआरी की मृत्यू हुई हो, तो, इन को दफनाया जाता है। एक हिन्दू सम्प्रदाय में ही दो तरीके हैं, जो अंतिम संस्कार कर सकते हैं। इस से स्पष्ट होता है कि हिन्दू सम्प्रदाय में ईसाई और इस्लाम सम्प्रदाय के गुण हैं। एक आदमी को आधा जलाया जाए और उस जलाए हुए को दफनाए जाए तो उनका सम्प्रदाय कौनसा होगा ?। 'उन्माद' उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगों में एक मुसलमान का घर जलाया जाता है। जिस में मुसलमान उसी घर का मालिक आधा जल जाता है। कुछ घंटों के बाद अपना दम तोड़ देता है। तब उसे दफ़ना देते हैं। लेकिन वे जब मृत्यू के अंतिमावस्था में होते हुये कहते हैं–

"अब्बा बोले, 'ज़िन्दगी में तो न हिन्दू रहा न मुसलमान, और अब दोनों एकसाथ होकर मरने जा रहा हूँ। हिंदू मरते हैं तो उन्हें जलाया जाता है और मुसलमान मरते हैं तो उन्हें दफ़नाया जाता है। मुझे तो उन्होंने ही जलाया भी और, यह साँस चंद घंटों या दिनों में साथ छोड़ देगी तो, वे ही दफ़नाएँगे भी। मेरी तो समझ में नहीं आता कि उनका शुक्रिया किन लफ्जों में अदा करूँ।"[345]

एक हिन्दू सम्प्रदाय ही ऐसा है कि जिस में मनुष्य के अंतिम संस्कार दो तरह के होते हैं। जैसे अविवाहित को दफनाते हैं। विवाहितों को जलाते हैं। लेकिन दुनिया के हर एक मज़हब या धर्म में, मनुष्य को मृत्यु के बाद दफनाते हैं। इससे यह समझमें आता है कि भारतीय संस्कृति एक विशेष बहुला संस्कृति है।

---

[345] पृष्ठ संख्या, 275, उन्माद–भगवान सिंह

5.5.3. मिली–जुली संस्कृति

दरअसल मुसलमान पूजा–पाठ नहीं करते हैं। मुसलमान लोग केवल मस्जिद जाते हैं। नमाज़ पढ़ते हैं। किसी मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं। जो मूर्ति की पूजा करता है वह मुसलमान नहीं हो सकता। लेकिन भारतीय मुसलमान की संस्कृति ही कुछ अलग होती है। इन की संस्कृति मिली–जुली संस्कृति है। ये हर त्योहार मनाते हैं। रमजान मनाते हैं और दशहरा भी। ये लोग हिन्दू और इस्लाम के त्योहारों को समान रूप से देखते हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में मुसलमान होते हुए भी, चाक पूजता है। चाक एवं स्वास्तिक जो निशान हैं वह हिन्दू संस्कृति के चिह्न माने जाते हैं। इस से यह पता चलता हैं कि भारतीय संस्कृति किसी एक धर्म–सम्प्रदाय की संस्कृति नहीं है, वह एक धर्मनिरपेक्षित मानी हैं।

"चाक पर पानी से लीप कर बनाए गए चौसर हिस्से पर थाली में रखी गीली हल्दी का स्वास्तिक बनाया तथा उसके बाद चाक के चारों तरफ़ कलावा धागा बाँध कर चाक पूजने की रस्म पूरी कर दी गई। चाक पूजने की प्रक्रिया से निवृत्त हो, सुलेमी की माँ ने खरोला गुलकंदी की ओर सरका दिया। गुलकंदी ने चादर से ढके खरोला को उघाड़ कर देखा–सब ठीक था। जैसी गुलकंदी को उम्मीद थी वैसा ही सीधा था। गुलकंदी ने खरोला उठाया और उसे भीतर रख आई।"[346]

भारतीय संस्कृति मिली–जुली संस्कृति है जिसमें हिन्दू–मुस्लिम के भेद–भाव अधिक नहीं दिखाई देते हैं। हिन्दू दरगाह जाता है। कई मुसलमान हिन्दुओं के त्योहार मनाते हैं। इस तरह की मिली–जुली संस्कृति मेवाड़ और आंध्रप्रदेश, खास कर तेलंगाना में दिखाई देती है।

---

[346] पृष्ठ संख्या, 118, काला पहाड़–भगवानदास मोवाल

5.5.4. होली और मुहर्रम

भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है कि विश्व में कहीं नहीं मिलती है। यहाँ के लोग कई भाषाएं बोलते हैं। एक देश के अंतर्गत कई भाषाएं बोली जाति हैं। अनेक धर्म–सम्प्रदाय भी हैं। दरअसल भारत का मतलब ही गाँवों का भारत है। गाँधी जी ने भी यही कहा है कि भारत का मतलब 'ग्रामीण भारत है' हर गाँव में सभी सम्प्रदाय के लोग लगभग रहते हैं। हिन्दू और मुसलमान तो पक्का रहते हैं। अपने–अपने सम्प्रदाय के अपने–अपने त्योहार मनाते हैं। हिन्दू होली मनाते हैं तो गाँव के मुहल्ले के सभी लोग यानी हिन्दू, मुसलमान मिल कर होली मनाते हैं। वैसे ही मुसलमान मुहर्रम मानाते हैं। मुहर्रम के समय तो मुसलमान से ज्यादा हिन्दू लोग खुशियाँ मनाते हैं। पीर उठाते हैं। स्त्री, पुरूष, बाल–बच्चे, सभी मिल कर होली, मुहर्रम मनाते हैं। इन सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण रचनाकार बदीउज़्ज़माँ अपने उपन्यास 'सभा पर्व' में किया है।

"खाजे बाबु का ब्याह कब करबहुँ मैयाँ ?" अम्मा खिलखिला कर हँस देतीं और मैं बुरी तरह झेंप जाता। होली का त्योहार आता तो वह गुलाल, अबीर और पिचकारी लेकर पहुँच जाती और मुझे रंग में सरा–बोर करने के बाद ही घर लौटती। हमारे मुहल्ले में होली का त्योहार मुसलमान भी उसी तरह मनाते थे जिस तरह हिन्दू मनाते थे। मुहल्ले के तमाम लोग होली की हुडदंग में पूरे उत्साह से भाग लेते थे। हमारा मुहल्ला दो हिस्सों में बँटा हुआ था। एक हिस्से में मुसलमान ज़्यादा थे और हिन्दुओं के पाँच–सात घर थे। दूसरे हिस्से में हिन्दुओं की आबादी ज़्यादा थी और मुसलमान बहुत थोडे थे। होली और मुहर्रम के त्यौहार हिन्दू–मुसलमान दोनों ही पूरे जोश से मनाते थे।"[347]

भारतीय संस्कृति मिली–जुली संस्कृति है जिसमें हिन्दू–मुस्लिम के भेद–भाव ज्यादा नहीं दिखाई देते हैं। हिन्दू दरगाह जाता है। मुसलमान हिन्दुओं का त्योहार मनाते हैं। जैसे

[347] पृष्ठ संख्या, 191, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

होली। हिन्दू भी मुहर्रम मनाते हैं। इस तरह की मिली–जुली संस्कृति मेवाड़ में और आंध्रप्रदेश, खास कर तेलंगाना में दिखाई देती है।

देवी की पूजा हिन्दू करते हैं। मुसलमान मज़ार की पूजा करते हैं। मज़ार को फूल चढ़ाया जाता है। लेकिन भारतीय ग्रामीण लोग देवी की पूजा करते हैं, साथ–साथ अपने पूर्वजों के मज़ार और दरगाह की भी पूजा करते हैं। ये लोग एक ओर हिन्दू देवी–देवताओं को और दूसरी ओर इस्लाम के अनुसार उनके देवताओं को भी पूजते हैं। इससे पता चलता है कि भारतीय मुसलमान और हिन्दू कितने धर्मनिरपेक्ष होते हैं। इसी तरह का प्रसंग 'सभा पर्व' उपन्यास में मिलता है।

"इन लोगों की देवी है सरकार। सात बहनें हैं ये। और उस तरफ जो क़ब्र जैसी चीज़ है वह मुसलमान सहीद का मज़ार है हुज़ूर। अभी पूजा होगी इन सब की ।"[348]

इस देश में आर्यों के आने के पश्चात, यहाँ के मूलवासियों को पराजित किया। धर्म के नाम पर इन मूलवासियों को दबाया गया। इनके साथ छुआछूत जैसे सिद्धांत को लागू किया गया था। ये मनुष्य होते हुए भी पशु से बदतर जिन्दगी जीने लगे थे। उसी समय इस्लाम उनको नजदीक किया है और आमन्त्रित भी। इस्लाम ने उनको मान–सम्मान दिया है। वे मुसलमान बन गये हैं। इस्लामिक संस्कृति को अपना लिए हैं। लेकिन वे अपनी मूल संस्कृति को नहीं भूल पाए। इस लिए वे त्योहार के दिन पहले मुर्गा ज़िबह कर मुसलमान को खुश करते हैं। उसके बाद देवी की पूजा शुरू करते हैं। इन सांस्कृतिक विशेषता को 'सभा पर्व' उपन्यास में देख सकते हैं।

"नहीं सरकार, बहुत–से मुसलमान भी हैं, सब निचलकी जात के ही। दो आदमी जो पहले आए थे मुर्ग़ा लेकर। दोनों मुसलमान थे। पहले मुर्ग़ा ज़िबह कर के मुसलमान को

---

[348] पृष्ठ संख्या, 232, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

खुश करते हैं। इसके बाद देवी की पूजा शुरू होती है। इन लोगों का अपना ही मज़हब है सरकार!"[349]

भारतीय संस्कृति मिली–जुली संस्कृति है जिस में हिन्दू–मुस्लिम के भेद–भाव ज्यादा नहीं दिखाई देते हैं। क्योंकि बहुत सारे भारतीय दलित जाति के लोगों ने इस्लाम कुबूल किया हैं। हिन्दू दरगाह जाता है। मुसलमान हिन्दुओं का त्योहार मनाते हैं। जैसे होली। हिन्दू भी मुहर्रम मनाते हैं। इस तरह की मिली–जुली संस्कृति मेवाड़ में और आंध्रप्रदेश, खास कर तेलंगाना में दिखाई देती है।

5.5.5. अंध विश्वास

हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय मैथोलोजी पर आधारित है। यहाँ हर चीज महान मानी जाती हैं मूलवासियों यानी दलितों को छोड़ कर। चींटी से लेकर साँप तक की पूजा की जाती हैं। नाग को लेकर तो वृद्ध गाँवों में तरह–तरह की कहानियाँ सुनाते रहते हैं। नाग को देवता माना जाता है। इस के नाम पर तो साल में एक दिन त्योहार ही मनाते हैं। जिस का नाम है 'नागपंचमी। उस दिन नाग को दूध पिलाया जाता है। कच्चे अंडे खिलाते हैं। इस का मतलब यह नहीं कि खिलाते–पिलाते हैं। इस अंडें और दूध को साँप के बील में डालते हैं। जिस से उस साँप को हानि पहुँचता है। रचनाकार बदीउज़्ज़माँ अपने उपन्यास 'सभा पर्व' में उक्त तरह के अंधविश्वास को प्रस्तुत किया है।

"कोचवान और अहमदू नाना के मदद से मैं नीचे उतरा। मैं चारों तरफ़ बहुत चौकन्ना होकर देखने लगा। ख़ास तौर से मेंहदी की झाड़ियों को मैं बहुत ग़ौर से देख रहा था। मैंने सुन रखा था कि नाग–नागिन का जोड़ा मेंहदी की इन्हीं झाड़ियों में छुपा रहता है और जब लोग दूध के प्याले फ़ातिहा के बाद छोड़कर चले जाते हैं तो चुपके से आकर दूध पीने लगता है। दूध पी कर नाग–नागिन का जोड़ा फिर मेंहदी की झाड़ियों में ग़ायब हो

---

[349] पृष्ठ संख्या, 233, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

जाता है। मज़ार की तरफ जाते हुए मैं अपनी निगाहों से एक–एक झाड़ी को नाप रहा था। शायद कहीं नाग दिखाई दे जाए। लेकिन नाग तो दूर रहा कोई छोटा–मोटा साँप भी दिखाई नहीं दिया।"[350]

हमारी भारतीय संस्कृति में अन्धविश्वास ज्यादा है। यहाँ कीड़े मकौड़े से लेकर कुत्ते तक भगवान के ही रूप माने जाते हैं। लेकिन हमारे साथी मनुष्य को पेट भर खाना, पीने को पानी, नहीं मिलता है। लेकिन सांप को दूध, अंडें...आदि चढ़ाते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि सांप दूध नहीं पीता है। बील में दूध डालना सांप के लिए तो खतरा भी है। हम आधुनिक युग में जी रहें हैं। अन्धविश्वासों को छोड़ कर वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाना होगा।

5.5.6. शिया–सुन्नी और रोटी–बेटी का रिश्ता

इस्लाम की स्थापना मुहम्मद पैगम्बर ने की थी। अल्ला के आदेश से उन्होंने 'कुरान' नामक ग्रन्थ लिखा है। जिसके अनुसार इस्लामिक धर्म–सम्प्रदाय और उसके अनुयायी चलते हैं। मुहम्मद पैगम्बर के मृत्यु के बाद, इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय में फूट आया है। जिस के कारण दो सम्प्रदाय बने हैं। एक है, सुन्नी सम्प्रदाय और दूसरा है, शिया सम्प्रदाय। इन में से तीसरा भी आया था, जिसका नाम है 'सूफी' सम्प्रदाय। ये बनने से इनके संस्कृति में थोड़ा सा बदलाव आ गया था। इनके बीच रिश्ते में भी बदलाव आ गया था। जो रोटी–बेटी का रिश्ता था वह टूट गया था। इनके रहन–सहन, खान–पान, ओढ़–पहन और रोज के क्रिया–कलाप एक जैसे होते हुए भी, थोड़ासा अंतर ज़रूर होगा। एक, दो कहीं न कहीं सम्प्रदायान्तरिक प्रेम विवाह होता ही है। इस उपन्यास में शिया की लडकी, सुन्नी के लड़के से विवाह कर लेती है। सुन्नी के घर वालों को यह रिश्ता पसन्द नहीं रहता है। बात–बात पर, ससुराल ने, उस लड़की के कार्य में खोढ़ निकालते हैं।

---

[350] पृष्ठ संख्या, 290, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

"तुमरे घरवा में ई सब होवे है तो हुआ करे । लेकिन हियाँ ई सब ना होइये। समझेओ? ई सुन्नी का घर है। शीयन सबका दस्तूर हियाँ ना चलियो। कान खोलकर सुन लियो । ई सब करियो तो हियाँ गुज़ारा ना हो सके है। भदराही कहीं की !"[351]

भारतीय संस्कृति मिली–जुली होते हुए भी अलग–अलग है। क्योंकि हिन्दू सम्प्रदाय में विविध जातियों के बीच रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं हैं। वैसे ही मुसलमानों में सुन्नी और शिया में भी रोटी–बेटी का रिश्ता नहीं हैं। लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए, इस प्रथा को तोड़ना होगा। धर्मान्तर और जात्यांतर विवाह को प्रोत्साहित करना होगा। इनके बीच रोटी–बेटी के रिश्ते को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

5.5.7. जलाना–दफनाना

व्यक्ति को जन्म से लेकर हर एक अवस्था में, धर्म का ही पालन करना पड़ता है। जन्म लिया है तो किस तारिखे में लिया ? किस दिन लिया ? किस समय लिया? क्या वह समय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शुभ है या अशुभ है इन आदि समस्याओं और सवालों के माध्यम से सोचना पड़ता है। वैसे ही नामकरण के लिए भी कई सवालों का सामना करना पड़ता है। विवाह के लिए सोचना पड़ता है। किस लड़की से शादी करें। उन की राशि क्या है? जाति कौनसी है? किस सम्प्रदाय की है। हिन्दू , इस्लाम, ईसाई, सिख, जैन, बुद्ध, पारसी,। हिन्दू में शैव, वैष्णव,। इस्लाम में शिया, सुन्नी, सूफी। ईसाई में कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट। बौद्ध में हिनयान और महायान आदि को देख कर लड़की को चुनना पड़ता है शादी के लिए। आदमी की मृत्यु होती है। यह प्रकृति का धर्म है। उस मुर्दे को घर में नहीं रखा जा सकता। इस शव संस्कार के लिए अलग–अलग तरीके हैं, अलग–अलग सम्प्रदायों में अलग–अलग तरीके हैं। ईस्लाम में मुर्दे को सिर्फ दफनाते हैं। ईसाई वाले भी दफनाते हैं। हिन्दू के लोग, हिन्दू ब्राह्मण संम्प्रदाय में जलाते हैं। कालांतर में एक सम्प्रदाय का प्रभाव

[351] पृष्ठ संख्या, 321, सभा पर्व–बदीउज़्ज़माँ

दूसरे सम्प्रदाय पर पड़ा है। हिन्दू सम्प्रदाय में जलाते हैं और दफनाते भी हैं। भारत के हर राज्य में हिन्दुओं की कब्रें मिलती हैं। गुजरात में भी हिन्दुओं की कब्रें मिलती हैं। अतः हिन्दू कोई एक सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं। बल्कि कई सम्प्रदायों की मिली–जुली भारतीय संस्कृति है। इन सांस्कृतिक विशेषता को गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में चर्चा की हैं।

"थोड़ी रिसर्च कर लो पाकड़िया। इस देश में जलाने और दफ़नाने को मिलाकर बने, अलग क़ायदे भी हैं। दोनों क़ौमों ने एक–दूसरे पर असर किया है। गुजरात में आज भी हिंदुओं की क़ब्रें हैं...."[352]

एक हिन्दू सम्प्रदाय ही ऐसा है कि जिस में मनुष्य के अंतिम संस्कार दो तरह होता है। जैसे अविवाहित को दफनाते हैं। विवाहितों को जलाते हैं। लेकिन दुनिया के हर एक मज़हब या धर्म में, मनुष्य को मृत्यु के बाद दफनाते हैं। इससे यह समझमें आता है कि भारतीय संस्कृति एक विशेष बहुला संस्कृति है। वैसे भी संस्कृतियां एक दूसरे को प्रभावित की है।

5.5.8. भीक माँगना और कबीर

इस समाज़ में एक आम और प्रचलित बात है कि चोरी करने से अच्छा है भीक माँगो। भीक माँगना हिन्दू ब्राह्मणवादी सम्प्रदाय समाज में तो एक वृत्ति ही है। जिस को प्यार से कहते हैं, दान लेना। इसी दान के नाम से मूलनिवासी राजा बलिचक्रवर्ति को, वामन ब्राह्मण ने, ज़मीन में गाड़ दिया है। इसी लिए सन्त कवि कबीरदास का कहना है कि–

"माँगन मरण समान है, मति माँगो कोई भीख
माँगन ते मरना भला, यह सत्गुरु की सीखा।"[353]

---

[352] पृष्ठ संख्या, 97, हमारा शहर उस बरस–गीतांजलि श्री

कबीर का कहना है कि भीक माँगना और मरना बराबर होता है। भीक माँगने से मरना अच्छा है। इस से यह ज्ञात होता है कि कोई भी आदमी, काम करके, मेहनत करके, कमाके खाना है। जो मेहनत नहीं करता उनको खाने का अधिकार नहीं होता है। कुछ ऐसे सम्प्रदाय हैं जो कबीर के विचारों के अनूसार चलते हैं। ये भजन–कीर्तन से कुछ समय निकाल कर अपना–अपना काम करते हैं। जिससे जो पैसे मिलते हैं, उसीसे अपना खाने–पीने का खर्चा निकालते हैं। ये कबीर के विचार तक पहुँचना चाहते हैं। इन समस्याओं को उपन्यास 'त्रिशूल' में भी देख सकते हैं।

"बाबा बताते हैं–कुल सात मूर्तियाँ (लोग) रहते हैं–कुटी पर। बाहर के साधु भी आते रहते हैं। कुटी की जमीन है –तीन बीघे। उसी के पैदावर से खाते हैं। भजन–कीर्तन से समय निकालकर हरमूर्ति रोज दो–तीन घंटा रस्सी बँटने और गोनरी बनाने का काम भी करता है। जिसे बेचकर ऊपर का खर्च निकाला जाता है। भीख नहीं माँगते हमारे संप्रदाय में। कबीर साहब के विचारों के पास पहुँचने की कोशिश रहती है।"[354]

उपरोक्त संदर्भ से यह ज्ञात होता है कि भीक नहीं माँगना चाहिए। कबीर का कहना है कि भीक माँगना और मरना बराबर होता है। भीक माँगने से मरना अच्छा है। इस से यह ज्ञात होता है कि कोई भी आदमी, काम करके, मेहनत करके, कमाके खाना है। जो मेहनत नहीं करता उनको खाने का अधिकार नहीं होता है। कुछ ऐसे सम्प्रदाय हैं जो कबीर के विचारों के अनुसार चलते हैं। ये भजन–कीर्तन से कुछ समय निकालकर अपना–अपना काम करते है। जिससे जो पैसे मिलते हैं, उसी से अपना खाने–पीने का खर्चा निकालते हैं। ये कबीर के विचार तक पहुँचना चाहते हैं।

5.6. बाजारी पूँजीवादी संस्कृति बनाम संगठित भारतीय संस्कृति

"मुझे लगता है कि कम–से–कम आज के माहौल में देश में आर्थिक लड़ाई भी संस्कृति के क्षेत्र में ही लड़ी जा रही है। संस्कृति अब स्वीटनेस और लाइट यानी माधुर्य और प्रकाश

---

[353] पृष्ठ संख्या 37, कबीर वाणी, कबीरदास, तुलसी पब्लिकेशन्स, मेरठ
[354] पृष्ठ संख्या, 60, त्रिशूल–शिवमूर्ति

की दुनिया नहीं रह गई है, बल्कि एक युद्ध का क्षेत्र है। युद्ध का यह क्षेत्र कभी–कभी लगता है कि धर्मक्षेत्र–कुरुक्षेत्र है जिसमें इसी देश के कौरव और पांडव लड़ रहे हैं। एक तरह से वह पानीपत भी है, जहाँ शायद ये चौथी लड़ाई लड़ी जा रही है, जहाँ तथाकथित नव उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी विदेशी आक्रमणकारियों और सांस्कृतिक आक्रान्ताओं के हमलों के विरुद्ध आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर ये देश संघर्ष कर रहा है।”[355]

धर्म–साम्प्रदायिक संस्कृति का दूसरा रूप ही बाज़ारवादी या पूँजीवादी संस्कृति है। धर्म, लोगों को, सम्प्रदायों को, संस्कृतियों को अपने–अपने हिस्सों में बाँट देता हैं। वैसे ही बाज़ारी संस्कृति भी बाँट देता है। इसमें 'बाँटो और राज करो' वाला सूत्र काम करता है। इनको अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में, इस प्रकार देख सकते हैं।

5.6.1. संगठित संस्कृति और विभाजित संस्कृति

इस धरती पर कई तरह की संस्कृतियाँ हैं। आदि से आज तक इनके बीच कभी भी सहिष्णुता नहीं रही थी। ये हमेशा एक दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष की भावना ही रखती थी। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को नाश या ध्वंश करने के लिए सोचती है। इस प्रतियोगिता में जो ताकत वर संस्कृति ताकत हीन संस्कृति को हरा देती या तो उसको खंडित कर देती हैं। एक बार संस्कृति का खंडित हो जाने से, यह संस्कृति लाचार हो जाती है। तब खंडित हुई संस्कृति, उसका प्रदेश, वहाँ की जनता, वहाँ की सत्ता आदि अपने आपको ताकतवर संस्कृति को समर्पित कर देती हैं। तब आधिपत्य संस्कृति कब्जा कर लेती है। अपनी बाजारवादी संस्कृति की स्थापना कर देती है। बाजारवाद गरीबों का शोषण करता है।

कहा जाता है कि 'धर्मो रक्षती रक्षिताः' अर्थात पहले तुम धर्म की रक्षा करो तो तुम्हारी रक्षा धर्म करता है। इतिहास में आज तक अगर धर्म की रक्षा हो रही है तो, इस की रक्षा वही गरीब लोगों ने ही किया हैं। लेकिन धर्म और इतिहास शोषकों के हाथों खिलौना बन

---

[355] पृष्ठ संख्या, 61, ज़माने से दो दो हाथ

चुका है। यह एक असभ्य अपसंस्कृति बन चुकी है। एक बार संस्कृति में बाजारपन आजाने से मानवीयता जैसे तत्व गायब हो जाते हैं। बाजार के लिए चीजों की उत्पत्ति करना, उस के लिए प्रौद्योगिकी की स्थापना करते हैं। जिस से मनुष्य का समाज और जल, जंगल, पहाड़ आदि प्रदूषित हो जाते हैं। लेकिन ये अपसंस्कृति वाले अपना त्योहार मनाते रहते हैं।

"–अदीबे आलिया ! नियंत्रण द्वारा आत्माओं को तोड़ा जाता है...फिर उन्हें विभाजित किया जाता है...उनमें संस्कृतिक प्रतिरोध की शक्ति विखंडित की जाती है और तब बाज़ारवादी जोंकें उस विभाजित कौम का सारा रक्त चूस लेती हैं। खंडित संस्कृति के श्मशानों में तब उत्सव के बाज़ार स्थापित होते हैं ...धर्म और इतिहास शोषकों के हातों में खिलौना बन कर नाचते–गाते, जश्न मनाते अपने ही विभाति अंग के शत्रु और अपने विनाश का कारण बन जाते हैं...बड़ी सभ्यताओं को तोड़कर उन्हें बंदी बनाने के लिए विभाजन का यही रास्ता उन असभ्य अपसंस्कृतियों ने चुना है...जिनके खेतों सिर्फ बारूद और बन्दूकें उगती हैं ...इसी के चलते कोसोवो अपनी लाखों सन्तानों की मृत्यु देख चुका है और लाखों–लाख लोगों के विस्थापन के कारण वीरान हो चुका है। लाखों शरणार्थी इधर–उधर भटक रहे हैं...नटों राक्षसों के एकतरफा मिसाइली हमले जारी हैं। तेल भण्डार और रासायनिक कारखानें धू–धू करते जल रहे हैं...वायू मण्डल और आपकी प्राचीन नदी डैन्यूब का पानी विषाक्त हो गया है...मृत्यु पागलों की तरह जिन्दगी का पीछा कर रही है। सर्बिया में इस वक्त लाखों मासूम बिना मापीछा कर रही है। सर्बिया में इस वक्त लाखों मासूम बिना मौत मर रहे हैं..."[356]

भारतीय संस्कृति मिली–जुली एवं संगठित है। लेकिन जैसे–जैसे पूँजीवाद बढ़ते हैं, वैसे–वैसे संगठित संस्कृति विगठित होती जाती है। पूँजीवाद अपनी संस्कृति को स्थापित करना चाहता है। मौजूदा संस्कृति का विभाजन करना चाहता है, ताकि उनकी अपनी

---

[356] पृष्ठ संख्या, 45, कितने पाकिस्तान–कमलेश्वर

संस्कृति तुरंत फैल जाए। और उन सभी संस्कृतियों पर आधिपत्य चलाना चाहता है। इनका सिद्धांत ही बाँटो और राज करो है।

5.7. वैज्ञानिक संस्कृति बनाम हिन्दू धार्मिक संस्कृति

"किन्तु, इसके विपरीत, एक और समुदाय था जो जाति–प्रथा को नहीं मानता था, जो मन्दिरो, तीर्थों और पुरोहितों में विश्वास नहीं करता था तथा जिसे देवताओं की शक्तियों में विश्वास नहीं था। यह समुदाय, विशेषतः, उन योगियों और तांत्रिकों से प्रभावित था, जो यह कहते थे कि मनुष्य की सारी शक्तियाँ उसके अपने शरीर में छिपी हुई हैं तथा शरीर और चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। ये योगी व्रत, उपवास, यज्ञ, होम और शास्त्र–वचन को मिथ्या मानते थे और जनता को यह उपदेश देते थे कि धर्म के बाहरी ढकोसलों में कहीं कुछ नहीं है, अतएव, अपने मन के भीतर डूब कर असली धर्म की साधना करो।"[357]

अज्ञान से भगवान का जन्म हुआ है। भगवान या धर्म की भावना के साथ ही वैज्ञानिक भावना की कल्पना भी हमारे पूर्वजों के मन–मस्तिष्क में आयी थी। सनातन धार्मिक संस्कृति के साथ–साथ, परम्परागत वैज्ञानिक संस्कृति का विकास भी हुआ है। पर शुरु से ही इन दोनों के बीच संघर्ष जारी रहा है। इन दोनों में 'कौन सही और कौन गलत' के वाद–विवाद आज भी जारी है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक संस्कृति की जीत हुई है। जो धर्म से अंधों को रौशनी नहीं मिली वह विज्ञान से मिली है। जो धर्म से बहरें सुन न पाए लेकिन विज्ञान से वे सुनने लगे हैं। जो धर्म से लूले पहाढ़ न चढ़ पाएं बल्कि विज्ञान संस्कृति इनको पहाड़ चढ़ाई। विज्ञान मृत्यु को न रोक पाई। यह संघर्ष बौद्ध के समय से और ज्यादा प्रचलित हुआ है। इस संघर्ष को अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में देख सकते हैं।

---

[357] पृष्ठ संख्या, 206, संस्कृति के चार अध्याय

5.7.1. भगवान बनाम विज्ञान

विज्ञान की महिमा बड़ी है या भगवान की ? दरअसल में भगवान की कल्पना का स्रोत अज्ञान है। लोगों के अज्ञान से ही देवी–देवताओं का जन्म हुआ हैं। कहा जाता है कि लोगों को दुःख से मुक्ति दिलाने वाला हैं। सदानंद, परमानन्द देने वाला है। पापों से मुक्ति दिलाने वाला है। सर्वशक्तिमान समझते हैं। इतना ही नहीं, यह अंधों को रौशनी दिलाता है। बहरों को सुनने लायक करते हैं। लूले को चलाते हैं और पहाड़ चढ़ाता है। गूँगे को ज़बान देता है। जब भगवान की कल्पना ही अज्ञान से किया गया है, तो उक्त समस्याओं का समाधान इन के पास कहाँ है ? बावजूद इस के, इन सभी समस्याओं का कारण ईश्वर ही हैं। ईश्वर के साथ उनको मानने वाले पंडित, पुरोहित और उनके शिष्य हैं। कालांतर में ज्ञान–विज्ञान का आविष्कार हुआ। भागवान के अस्थित्व को लेकर व्याख्या करने लगा। तब भगवान और उसको मानने वाले डरने लगें। जो काम सर्वशक्तिमान भगवान ने नहीं किया, उस काम को विज्ञान ने करके दिखाया है। विज्ञान ने अंधों को ज्योति दी है। लूले–लंगढ़ों को पैर दिया। गूँगे अपने–अपने विचार को प्रकट किया हैं। ऐसी कई समस्याओं का समाधान विज्ञान ने किया हैं। अंत में मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि भगवान की महिमा से विज्ञान की महिमा ही बड़ी है। उक्त विषयों को निम्न दिये गये उद्धरण में देख सकते हैं।

“महात्माजी, आपके भगवान की कृपा से मैंने किसी अन्धे को देखते, बहरे को सुनते, लूले को पहाड़ चढ़ते तो नहीं देखा, पर विज्ञान की कृपा से असंख्य अंधों को जोत मिलजाती है, गूँगे अपने विचार प्रकट कर लेते हैं, लूले–लँगड़े भी पहाड़ की चढ़ाई चढ़ लेते हैं और ऐसे असंख्य काम कर लेते हैं जिनक़ी पहले कल्पना भी नहीं की जाती थी। ऐसे में विज्ञान की महिमा बड़ी है या भगवन की ? ज्ञान अर्जित करना उचित है या भक्ति और पूजा ?”[358]

[358] पृष्ठ संख्या, 100, उन्माद–भगवान सिंह

"महात्माजी, जिस ईश्वर की बात आप करते हैं उसका अस्तित्व ही हमारे अज्ञान पर टिका है। हमारे ज्ञान का दायरा जहाँ समाप्त होता है, ठीक उससे आगे के धुँधलके में आपके ईश्वर का निवास है। जब प्रकाश वहाँ फैलता है, विज्ञान उसकी व्याख्या कर देता है, तो आपका ईश्वर उससे पीछे सरक जाता है। जिस ईश्वर को आप सर्वज्ञ मानते हैं वह ज्ञान–विज्ञान से डरकर भागता फिरता है। वह सर्वशक्तिमान तो हो ही नहीं सकता। होता तो विज्ञान का सामना करता। जिसे आप परमानन्द मानते हैं, उसी के कारण, उसी के भक्तों के कारण, संसार में दुख ही दुख व्याप्त है। आपका ईश्वर अज्ञानस्वरूप और अज्ञानियों और मूर्खों का कमज़ोर और भागोड़ा, दुख और अपराध बढ़ानेवाला और बढ़ानेवालों का ईश्वर है। और..."[359]

अज्ञान से भगवान का जन्म हुआ है। भगवान या धर्म की भावना के साथ–साथ ही वैज्ञानिक भावना की कल्पना भी हमारे पूर्वजों के मन–मस्तिष्क में आयी थी। सनातन धार्मिक संस्कृति के साथ–साथ, परम्परागत वैज्ञानिक संस्कृति का विकास भी हुआ है। पर शुरु से ही इन दोनों के बीच संघर्ष जारी रहा है। इन दोनों में 'कौन सही और कौन गलत' के वाद–विवाद आज भी जारी है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक संस्कृति की ही जीत हुई है। जो धर्म से अंधों को रौशनी नहीं मिली वह विज्ञान से मिली है। जो धर्म से बहरें सुन न पाए लेकिन विज्ञान से वे सुनने लगे हैं। जो धर्म से लूले पहाढ़ न चढ़ पाएं बल्कि वैज्ञानिक संस्कृति इनको पहाड़ चढ़ाई। विज्ञान मृत्यु को न रोक पाई। इस संघर्ष को अंतिम दशक के उपन्यासों में देख सकते हैं।

---

[359] पृष्ठ संख्या, 103, उन्माद–भगवान सिंह

5.8. निष्कर्ष

1990 में मंडल कमीशन की सिफारिश लागू करने के लिए वी. पी. सिंह और उनकी सरकार ने हुकूमत जारी की थी। तो तुरंत बाद में पूरे देश में मन्दिर और मस्जिद की समस्या सामने आयी थी। इस गड़बड़ी में पिछड़ेवर्ग को अपने आरक्षण के बारे में कुछ समझ में नहीं आया था। साम्प्रदायिकों का कहना था, कि 'हिन्दू धर्म और संस्कृति संकट में है', तो सबसे पहले हिन्दू धर्म–संस्कृति की रक्षा की जाए। तब सभी समस्याओं का हल अपने आप हो जाएगा, इस तरह की भावनाएँ समाज में फैलाई गई थी। हिन्दू, हिन्दुत्व संस्कृति की रक्षा के लिए भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आड़वाणी ने सोमनाथ से अयोध्या तक रथयात्रा की थी। जिसमें रथ सामंती संस्कृति का प्रतीक था। उसमें आधुनिक इंधन पेट्रोल था। अर्थात् अपनी सनातनी, वैदिक आर्य हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिए आधुनिक युग का इंधन का इस्तेमाल कर रहा है। 1992 में मुसलमान और बहुला भारतीय ऐतिहासिक संस्कृति के प्रतीक बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया था। इसके तोड़ने में पिछड़ें वर्ग के युवाओं का हाथ अधिक हैं। लेकिन ये यह नहीं जान पाए कि यह भाजपा का खेल है। ये यह नहीं समझे कि हजारों, लाखों छात्रों, युवको की जिंदगी बरबाद होने जा रही है। यहाँ कार्ल मार्क्स की बात याद आती है कि 'धर्म जन मानस का अफीम है'। नहीं तो क्या है ? एक तरफ आरक्षण से इनका भाग्य खुल रहा है जिसे छोड़ कर इनके भाग्य को छीनने वालों के जाल में फस रहे हैं।

आख़िर यह कौनसी संस्कृति को स्थापित करना चाहते हैं ? कौनसी संस्कृति को तोड़ना चाहते हैं ? संस्कृति उस सम्प्रदाय के लिए कवच होती है। सनातन आर्य हिन्दू संस्कृति थी और आज भी है। इसका जो कवच था बहुत ही छोटा था और आज भी उसका साईज उतना ही है। अर्थात् इस कवच के अंदर सभी भारतीयों को रहने के लिए जगह नहीं थी। 85 प्रतिशत लोग उस रंगीन कवच से बाहर ढ़केले गये हैं। उसी समय में बाहर से मुसलमान या इस्लाम सम्प्रदाय आया है। फारसी सम्प्रदाय आया है। ईसाई सम्प्रदाय आया है। इन से पहले से भी आर्य हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोध में बौद्ध सम्प्रदायी संस्कृति का जन्म हुआ है। जैन सम्प्रदायी संस्कृति आयी है। इस्लाम सम्प्रदायी

संस्कृति में से सुन्नी, शिया और सूफी सम्प्रदायी संस्कृति का भी जन्म हुआ है। कबीर पंथ तो बौद्ध सम्प्रदायी संस्कृति को आगे चलाने वाला लगता है। इन आदि संस्कृतियों के भारत देश में आने और यहीं रह जाने के कारण भारत एक बहुला सांस्कृतिक देश बन गया है। इनके एक दूसरे से सम्पर्क से यानी एक दूसरे से, दूध और पानी के तरह घुल–मिल जाने से, मिश्रित संस्कृति बन गयी है। लोग सब यानी अस्सी प्रतिशत सांस्कृतिक भेद–भाव को छोड़ मिल–जुल कर अपना जीवनयापन कर रहे हैं।

धार्मिक संस्कृति को वैज्ञानिक संस्कृति चुनौती दे रही है। धर्म और धर्मावलम्बियों ने विज्ञान और विज्ञानावलम्बियों को हमेशा आतंक पहुँचाया हैं। फिर भी वैज्ञानिक संस्कृति कभी हार नहीं मानी। बौद्ध सम्प्रदायी संस्कृति भी वैज्ञानिक संस्कृति है। इस लिए आर्य हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति ने बौद्ध सम्प्रदायी वैज्ञानिक संस्कृति को ध्वंस किया है। इस देश से ही भगा दिया गया है। इन उपरोक्त बहुला, मिश्रित, वैज्ञानिक संस्कृतियों ने आर्य हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोध में अपना स्वर बुलंद कर रही है। तो यह आर. एस. एस., भाजपा और अपने साथी साम्प्रदायिक संगठनों को बर्दाश्त नहीं हो रहा है। तो ये लोग बहुला प्रजातांत्रिक भारतीय संस्कृति को ध्वंस करके उनकी अपनी सनातनी आर्य हिन्दू या हिन्दुत्व साम्प्रदायिक संस्कृति को स्थापित करना चाहते हैं।

उपसंहार

'धर्म' शब्द के कई अर्थ प्रचलित हैं। जैसे दया, करुणा, सत्कर्म, सत्कार्य आदि। इन अर्थों में हमें यह कभी भी बुरा नहीं लगता है। क्योंकि किसी के प्रति दया गुण दिखाते हैं, किसी के प्रति करुणित होते हैं, किसी अच्छे काम यानी गरीबोद्धार, सामाजिकोद्धार, मिश्रित संस्कृतिकोद्धार के लिए कोई अच्छे कर्म या कार्य करते हैं तो यह कोई गलत नहीं होगा। हमारे संतों ने और सूफियों ने कभी भी लोगों को बाँटने का काम नहीं किया है। इनका धर्म मानव का धर्म था। इनका धर्म मनुष्य का धर्म था। इनका धर्म सुसमाज की स्थापना करने के लिए था। लेकिन कालांतर में धर्म का अर्थ–संकोच होता गया है। ऐसा क्यों हुआ है ? इस पर गौर करने से यह पता चलता है कि जब धर्म राजनीतिक अस्त्र बन गया तब से इसका महत्व ही घट गया है। अर्थात् इसका व्यापकार्थ संकोचार्थ में बदल गया है। धर्म से सम्प्रदाय का संबंध जुड़ा है। धर्म के बिना सम्प्रदाय की कल्पना नहीं कर सकते हैं और सम्प्रदाय के बिना धर्म की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए ये दोनों अभिन्न होते हुए भी, भिन्न है, क्योंकि धर्म सब के लिए एक है बल्कि सम्प्रदाय अनेक हैं। धर्म पृथ्वी है तो सम्प्रदाय रास्तें हैं। सम्प्रदाय किसी महापुरुष के द्वारा स्थापित होता है। सम्प्रदाय देश और काल के अनुसार अपने–अपने देश में, अपने–अपने महापुरुषों के द्वारा स्थापित होता है। हर सम्प्रदाय के अपने विधि–विधान होते हैं। हर सम्प्रदाय का अपना विधि–विधान का ग्रन्थ होता है। उस ग्रन्थ के अनुसार ही सभी को चलना पड़ता है। हर सम्प्रदाय के अनुयायी भी होते हैं। इन अनुयायियों को ही साम्प्रदायिक कहते हैं। साम्प्रदायिकों के दुष्कार्य से ही साम्प्रदायिकता होती है यानी एक सम्प्रदाय के अनुयायी अन्य सम्प्रदाय के अनुयायियों पर हमला करना, गुस्सा करना, नीचा दिखाना, गलत व्याख्या करना, नफरत की भावना रखना, दंगे करना ही साम्प्रदायिकता होती है।

वे कौन से कारण हैं जिनकी वजह से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है ? इस पर गहराई से सोचने पर यह पता चलता है कि कुछ खाए–पीए–अघाए मध्यवर्ग के लोगों के निहित स्वार्थ ही सारे साम्प्रदायिकता के और साम्प्रदायिक दंगों के कारण या स्रोत हैं। अभी–अभी उभर के आ रहे इन मध्यवर्ग के लोगों को राजनीति करने की या राजनैतिक

पद प्राप्त करने का शौक है, जिसे साम्प्रदायिक संस्था, पार्टी के लोगों ने इनको अपना अस्त्र बनाना शुरु किया है। इन अस्त्रों को साम्प्रदायिकों ने अल्पसंख्यकों, गरीबों, महिलाओं और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के ऊपर इस्तेमाल करते हैं। वे धर्म के नाम पर राजनीति करते हैं। सत्ता में आना चाहते हैं। केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए ही वे क्या–क्या नहीं करते हैं। पूरे समाज को सम्प्रदाय में, जाति में बाँट देते हैं। हिन्दू के नाम से, इस्लाम के नाम से बाँट देते हैं। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बाँट देते हैं। परम्परा से आ रही मिश्रित संस्कृति को ध्वंस करना चाहते हैं। हिन्दुत्व राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए वे ऐतिहासिक प्रसिद्ध बाबरी मस्जिद को तोड़ते हैं। गुजरात में कई सूफी दरगाहें तोड़ी गयी, जिस पर मन्दिरें और मठों के निर्माण किये गये हैं। इस साम्प्रदायिकता के पीछे आर्थिक कारण छिपे हुए हैं। साम्प्रदायिक लोग मुसलमानों का आर्थिक बहिष्कार करना चाहते हैं। इसलिए मुसलमानों के दुकानों पर, घरों पर, मस्जिदों पर, दरगाहों पर दंगे करते हैं और लूट–पाट करते हैं। इस प्रकार साम्प्रदायिक लोग सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से एक दूसरे पर हमला करते हैं। इन समस्याओं को लेकर साहित्य लिखा गया है। साहित्य में उपन्यास भी एक मुख्य विधा मानी जाती है। तो साम्प्रदायिकता को लेकर कई उपन्यास लिखे गये हैं। लेकिन बीसवीं सदी का अंतिम दशक महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसी दशक में ऐतिहासिक और मिश्रित संस्कृति का प्रतीक बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया है। अंतिम दशक के अंत में और इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में गुजरात राज्य में गोधरा जनसंहार हुआ है। सांम्प्रदायिकता के मुख्य स्रोत की सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं–

> जातिवाद तभी खत्म हो सकता है जब हम
> ब्राह्मणवाद को समाप्त कर सकें। ब्राह्मणवाद
> को साम्यवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, सामन्तवाद,
> संघवाद, हिन्दूवाद और गाँधीवाद खत्म नहीं
> कर सकता, क्योंकि ये सभी ब्राह्मणवाद के

इर्द–गिर्द ही भ्रमण करते हैं। इतिहास और

पिछले सामाजिक संघर्षों के आन्दोलन के

अनुभव साक्षी हैं कि अम्बेडकरवाद ही सक्षम

है–ब्राह्मणवाद को समाप्त करने में –

भारतीय समाज बाकी देशों के समाजों से भिन्न समाज है। इसलिए भारत को उपमहाद्वीप कहा जाता है। शुरुआत में दो ही जातियाँ होती थीं। ये हैं एक देव जाति और दूसरी राक्षस जाति। यहाँ देव यानी उस समय की ऊँची जाति या ब्राह्म्मण जाति है। राक्षस जाति यानी उस समय की गैर ब्राह्म्मण जाति या यहाँ की मूल दलित आदिवासी जाति हो सकती है। इन दो जातियों के बीच जो भी संघर्ष आधिपत्य के लिए हुआ था, उसको बढ़ा–चढ़ा कर तरह–तरह की कहानियाँ लिख डाली गई। देवताओं में सबसे बड़ा देव इंद्र हैं। उसके बाद विष्णु हैं। जब भी देवता और राक्षसों में झगड़ा होता था तो, देव जाति हार जाती थी और राक्षस जाति के विरोध में दावा करते थे, विष्णु के पास जा कर। विष्णु और इंद्र हमेशा देव जाति के पक्ष में रहते थे। वे कभी संकटावस्था में भी राक्षसों का पक्ष नहीं लेते।

मनु के समय में आते–आते कालांतर में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि रूपों से जनता को वंचित और शोषण करने के लिए, मनु ने एक कानून जैसा ही लिखा है, उसी का नाम मनुस्मृति है। मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य को ब्रह्मा ने सृष्टि की है। वह भी अपने–अपने पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर वर्तमान जन्म लेता है। मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा के विविध अंगों से मनुष्य का जन्म हुआ है। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों का जन्म हुआ है। भुजाओं से क्षत्रियों का जन्म हुआ है। जांघों से वैश्यों का जन्म हुआ है। पैरों से शूद्रों का जन्म हुआ है। इन चारों को चार वर्ण ही कर दिया गया। इन सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और इसके बाद क्षत्रिय हैं। सबसे नीचे शूद्र को माना गया है। पता नहीं ऐसा क्यों ? जबकि ये सभी एक ही शरीर में से जन्में हैं। कालांतर में इन चार वर्णों में से चार हजार पांच सौ जातियाँ निर्मित की गयी हैं। इन जातियों की एक सीढ़ी जैसी

व्यवस्था का निर्माण किया गया है। इनमें हरेक जाति अपने से छोटी जाति को ढूंढ लेती है। इन जातियों का अपना–अपना जाति समाज है। इनमें एक जाति समाज के अपने विश्वास, खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज दूसरे जाति समाज से मेल नहीं खाते हैं। इन जातियों के बीच सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से ऊँच–नीच की भावना भी है।

इन सभी जातियों में छुआछूत की भावना है। ब्राह्मण जाति में कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जिनके साथ ब्राह्मण छुआछूत अपनाते हैं। उदाहरण के लिए दहन संस्कार के समय में जो ब्राह्मण मंत्र पढ़ता है, उसके साथ बाकी के ब्राह्मण छुआछूत की भावना रखते हैं। वैसे ही हर एक जाति में अपनी उपजातियों के साथ थोड़ी बहुत छुआछूत की भावना रखते हैं। लेकिन इन सभी जातियों में से कुछेक ऐसी जाति हैं कि जिनकी परछाईं पड़ने से ही निर्जीव पदार्थ सहित अपवित्र हो जाते हैं। इस भावना की वजह से इन जाति के लोगों को समाज में मान–सम्मान और आत्मसम्मान नहीं मिलता है। इसी की वजह से ये आर्थिक रूप से पिछड़े हैं। उदाहरण के लिए एक अछूत जाति का व्यक्ति दूध का व्यापार या धंधा नहीं कर सकता है, क्योंकि वह अछूत व्यक्ति है, उसके पास का दूध कौन खरीदेगा ? यह सोचने की बात है।

पूरे समाज में स्त्री की संख्या आधी है। स्त्री का अपना समाज है। स्त्री समाज को सदियों से पितृसत्ता समाज शोषित करता आ रहा है। मुख्यधारा का समाज दलित समाज को दबाता आया है, वैसे ही एक दलित समाज की स्त्री और दबाई गयी है। कोई भी धर्म–सम्प्रदाय समाज हो वह पितृसत्तात्मक समाज ही है। हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय समाज में स्त्री को एक भोग वस्तु मात्र के रूप में देखते हैं। इस्लाम में स्त्री को मजहबी हक भी नहीं दिया गया है। इनको घर से बाहर नहीं निकलने दिया जाता है। बुरका प्रथा स्त्री के साथ अन्याय ही है। ईसाई में भी पुरुषवाद है। स्त्रियों के साथ अत्याचार, बलात्कार हो रहे हैं। लड़कियों को कोख में यानी पेट में ही खत्म कर दे रहें हैं। इनके साथ दहेज की बहुत बड़ी समस्या है। दहेज के लिए एक स्त्री ही अपनी साथी स्त्री को जला देती है।

भारत देश अनेक धर्म–सम्प्रदायों के लिए प्रसिद्ध है। भारत का मूल धर्म–सम्प्रदाय शैव है। आर्य बाहर से आये हैं। इनका धर्म–सम्प्रदाय वैष्णव है। इनके अलावा कई धर्म–सम्प्रदाय हैं। बौद्ध धर्म–सम्प्रदाय, जैन धर्म–सम्प्रदाय हैं। सिख धर्म–सम्प्रदाय है। आज आर. एस. एस और भाजपा आदि राजनीतिक दल उपरोक्त सभी धर्म–सम्प्रदायों को मिलाकर 'हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय' नाम दे दिया है। जबकि यह ठीक नहीं है। इसी हिन्दू धर्म–सम्प्रदाय में ही साढे चार हजार जातियाँ हैं। इनमें कई जातियों के साथ छुआछूत अपनाते हैं। वैसे ही इस्लाम धर्म–सम्प्रदाय है, इसमें फिर से तीन सम्प्रदाय हुये हैं। जैसे सुन्नी, शिया और सूफी हैं। ईसाई धर्म–सम्प्रदाय है, इसमें से दो हुए हैं। जैसे कैथोलिक और प्रोटैस्टेंट। फारसी धर्म–सम्प्रदाय है। इन उपरोक्त धर्म–सम्प्रदायों का अपना–अपना समाज है और जातियों का भी अपना–अपना समाज है। यहाँ सामाजिक आधिपत्य या वर्चस्व के लिए, एक धर्म–सम्प्रदाय समाज या एक जाति सम्प्रदाय समाज के अनुयायी दूसरे धर्म–सम्प्रदाय समाज या जाति सम्प्रदाय समाज के अनुयायियों के ऊपर हमला करता या उनकी गलत व्याख्या करता या उनकी निंदा करता तो वह साम्प्रदायिकता होती है। धर्म–सम्प्रदाय को राजनीति के लिए इस्तेमाल कर रहें हैं। राजनीतिक नेता आग में घी डालते रहते हैं।

भारत देश में विविधता है। अनेक धर्म–सम्प्रदाय समाज हैं। अनेक जाति–सम्प्रदाय समाज हैं। इन जातियों में अछूत जाति–सम्प्रदाय समाज भी है। स्त्रियों का अपना समाज है। ये सब होते हुए भी इस देश का मानव समाज मिल–जुल कर रहता है। इनमें कहीं न कहीं भाईचारे वाली भावना इनके मस्तिष्क में है। यह आगे भी रहेगी। साम्प्रदायिकता के मुख्य स्रोतों में राजनीति भी एक है।

राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए नेता धर्म का इस्तेमाल करते हैं। जाति का इस्तेमाल करते हैं। नस्ल, फिरका, वर्ग, वर्ण...आदि का भी इस्तेमाल करते हैं। हिन्दू और मुसलमान को लड़ाते हैं। शिया और सुन्नी को लड़ाते हैं। आरक्षण को लेकर एक राजनीतिक मामला बना देते हैं। अलगाववादी राजनीति करते हैं। राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए देश का विभाजन कर देते हैं। विभाजन के लिए आंदोलन भी चल रहें हैं।

चयनित सभी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता दिखाई देती है। गाय को राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। मांसाहार और शाकाहार को भी राजनीति के लिए उपयोग करते हैं। सबसे ज्यादा मन्दिर का इस्तेमाल होता है। लेकिन साम्प्रदायिकता का विरोध भी करते हुए पात्र हर उपन्यास में दिखाई देते हैं।

साम्प्रदायिकता का और एक मुख्य स्रोत है आर्थिक। साम्प्रदायिक दंगे कई बार इसलिए करवाते हैं कि दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायियों को आर्थिक नुकसान हो। दंगे करने के लिए उन्हीं लोगों का इस्तेमाल करते हैं जो आर्थिक रूप से गरीब हैं। दंगे के समय में दुकानों, घरों को लूटते हैं। कई बार तो दुकानों में आग लगा दी जाती है। लाखों, करोड़ों रूपए का सामान जल के राख हो जाता है।

एक संस्कृति दूसरी संस्कृति पर युद्ध, एक देश दूसरे देश पर युद्ध, एक धर्म–सम्प्रदाय दूसरे धर्म–सम्प्रदाय पर युद्ध करने की संस्कृति आरंभिक दिनों में थी और आज भी हैं। आख़िर वे युद्ध क्यों करते हैं ? वे युद्ध इसलिए करते हैं कि उस देश को राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से नाश करना चाहते हैं तथा उसको अपने वश में कर लेना चाहते हैं। सातवीं सदी की शुरुआत में इस्लाम कौम का उदय हुआ था। यह कौम नया–नया बना था। इनका मूल अरब था। अरब में रेत के अलावा कुछ नहीं था। ये धन–दौलत के शिकार में थें। उस समय भारत देश धन–दौलत से भरा हुआ था। उन्होंने यह सोचा कि भारत से धन–दौलत कैसे लूट के लाएं ? इसी क्रम में वे भारत आये धन लूटने। हमारे भारत में धन–दौलत मन्दिरों में और मन्दिरों के नीचे गुप्त रूप से रखे जाते थे। इन अरबों देशों को धन लूटना हो तो, हिन्दूओं के मन्दिरों को तोड़ना पड़ा। लेकिन उस समय इनका काम मज़हब को फैलाना नहीं था। इनको मज़हब फैलाना नहीं आता था बल्कि मज़हब को मंजूर करना मालूम था। भारत आये मुसलमान यहीं रह गये। कालांतर में यहाँ के लोगों ने भी इस्लाम को कुबूल किया। इनके बाद में ईसाई आये। फारसी लोग भी आये। इसी भूमि से उपजी है बौद्ध, सिख और जैन।

मुसलमानों ने सैकड़ों साल राज किया हैं। ईसाइयों ने सैकड़ों साल राज किया हैं। बहुत बड़ा स्वतंत्रता आंदोलन हुआ जिसके परिणाम अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। वे जाते–जाते साम्प्रदायिकता को बढ़ाकर और उसके नाम पर भारत देश को भारत और पाकिस्तान में विभाजित करके चले गये हैं। कई मुसलमान पाकिस्तान चले गयें हैं। लगभग आधे तो भारत छोड़ कर जाना ही नहीं चाहते हैं। वे भारत में ही रह गये हैं। भारत को आज़ाद हुए साठ साल पूरे हो चुके हैं। भारतियों की आर्थिक परिस्थिति वैसी की वैसी ही है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि क्या सचमुच भारत में विकास नहीं हुआ ? हाँ हुआ है लेकिन किन का विकास हुआ ? उन ही लोगों का विकास हुआ जो हर धर्म के अमीर और ऊँची जाति के लोग हैं। ऊँची जाति और अमीरों को छोड़ कर बाकी लोगों की आर्थिक परिस्थिति को अगर हम देखें तो हिन्दू लोग शिक्षा में आगे हैं। वे आधुनिक शिक्षा को जल्दी से जल्दी अपना लिए हैं। लेकिन मुसलमान आज तक उतना नहीं अपनायें हैं जितना अपनाना चाहिए। हिन्दू लोग को अंग्रेजी सीखने के कारण नौकरियाँ भी मिली हैं। हिन्दुओं से मुसलमान कम हैं नौकरियों पर। ईसाइयों में भी दलित ईसाई की आर्थिक स्थिति जैसी की वैसी ही है।

आख़िर इन लोगों की आर्थिक वृद्धि या विकास नहीं होने का कारण क्या हो सकता है ? इसका सबसे पहला कारण धर्म हो सकता है, इसके बाद राजनीति, सरकार और प्रकृति है। धर्म लोगों में अंधविश्वास पैदा करता है। अंधविश्वास के कारण आदमी आगे नहीं जा सकता हैं। आज भूमण्डलीकरण का दौर चल रहा है। आज भी कुछ धर्म के लोग आधुनिक शिक्षा को नकारते हैं तो वह धर्म का अफीम ही है। राजनीतिक नेता भी आर्थिक विकास न होने देना चाहते हैं। क्योंकि वे चुनाव के समय में ही आते हैं बड़े–बड़े वायदे करते हैं और चुनाव जीत कर जाते हैं। बल्कि वे किये हुए वायदे और वादें कभी नहीं पूरे करते हैं। अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में खास कर मेवात पर लिखा गया उपन्यास 'काला पहाड़' में यही दिखाई देता है। राजनीतिक नेता लोग धर्म का इस्तेमाल करते हैं। वे जाति, नस्ल और सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिक दंगे करवाते हैं। लोगों को धर्म के नाम पर तकसीम कर देते हैं। सरकार भी इनके आर्थिक विकास में दिलचस्पी नहीं रखती है। उद्योग

नहीं खुलवाती है। कृषि या सिंचाई की सुविधा नहीं दिलाती है। इसके साथ प्रकृति भी इनका साथ नहीं देती है। सूखा पड़ जाता है। लोग भूखे मरने लगते हैं। खाने को कमाने यानी जीने के लिए वे अपना गाँव छोड़ के शहर चले जाते हैं। मार्क्सवादी तो इसके विरोध में संघर्ष करते रहते हैं। इन समस्याओं को 'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों' में देखा गया है।

साम्प्रदायिकता के स्रोतों में से संस्कृति को भी एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। 'भारतीय समाज में बहुत विविधता रही है। आर्यों के आने के समय से ही विभिन्न सांस्कृतिक या धार्मिक धाराओं में पारस्परिक क्रिया, संघर्ष, सहयोग और मिश्रण होता रहा है। ब्राह्मणवाद ने समाज पर वर्जनाओं पर आधारित कड़ी वर्ण व्यवस्था लागू की। लेकिन जैनधर्म, बौद्धधर्म जैसी धाराओं, कबीर, नानक तथा ज्योतिबा, खड़ोबा, तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु और तंत्र जैसे दूसरे स्थानीय संतों ने स्थानीय संस्कृतियों में मेलजोल पैदा किया। राजाओं, जमींदारों और उच्च जातियों ने धर्म का ध्यान किए बगैर शोषण किया। नीची जातियों के लोग आपस में खुलकर मिलते थे। इससे सामाजिक परंपराओं का विकास हुआ।'

1990 में मंडल कमीशन की सिफारिश लागू करने के लिए वी. पी. सिंह और उनकी सरकार ने हुकूमत जारी की थी। तो तुरंत बाद में पूरे देश में मन्दिर और मस्जिद की समस्या सामने आयी है। इस गड़बड़ी में पिछड़ेवर्ग को अपने आरक्षण के बारे में कुछ समझ में नहीं आया था। साम्प्रदायिकों का कहना था, कि 'हिन्दू धर्म और संस्कृति संकट में है', तो सबसे पहले हिन्दू धर्म संस्कृति की रक्षा किया जाए। तब सभी समस्याओं का हल अपने आप हो जाएगा, इस तरह की भावना को समाज में फैलाया गया। हिन्दू, हिन्दुत्व संस्कृति की रक्षा के लिए भाजपा के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी ने सोमनाथ से अयोध्या तक रथयात्रा की थी। जिस में रथ सामंती संस्कृति का प्रतीक था। उसमें आधुनिक इंधन पेट्रोल था। अर्थात् अपनी सनातनी, वैदिक आर्य हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिए आधुनिक युग का ईंधन का इस्तेमाल कर रहा है। 1992 में मुसलमान और बहुला भारतीय ऐतिहासिक

संस्कृति के प्रतीक बाबरी मस्जिद को तोड़ा गया है। इसके तोड़ने में पिछड़ें वर्ग के युवाओं का हाथ अधिक है। लेकिन ये यह नहीं जान पाए कि यह भाजपा का खेल है। वे यह नहीं समझे कि हजारों, लाखों छात्रों, युवको की जिंदगी बरबाद होने जा रही है। यहाँ कार्ल मार्क्स की बात याद आती है कि 'धर्म जन मानस का अफीम है'। नहीं तो क्या है ? एक तरफ आरक्षण से इनका भाग्य खुल रहा है जिसे छोड़ के इनके भाग्य को छीनने वालों के जाल में फँस रहे हैं।

आख़िर वे कौन सी संस्कृति को स्थापित करना चाहते हैं ? कौन सी संस्कृति को तोड़ना चाहते हैं ? संस्कृति उस सम्प्रदाय के लिए कवच सी होती है। सनातन आर्य हिन्दू संस्कृति थी और आज भी है। इसका जो कवच था बहुत ही छोटा था और आज भी उसका साईज उतना ही है। अर्थात् इस कवच के अंदर सभी भारतीयों को रहने के लिए जगह नहीं थी। 85 प्रतिशत लोग उस रंगीन कवच से बाहर ढ़केले गये हैं। उसी समय में बाहर से मुसलमान या इस्लाम सम्प्रदाय आया है। फारसी सम्प्रदाय आया है। ईसाई सम्प्रदाय आया है। इनसे पहले से भी आर्य हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोध में बौद्ध सम्प्रदाय की संस्कृति का जन्म हुआ है। जैन सम्प्रदाय की संस्कृति आयी। इस्लाम सम्प्रदायी संस्कृति में से सुन्नी, शिया और सूफी सम्प्रदायी संस्कृति का भी जन्म हुआ है। कबीर पंथ तो बौद्ध सम्प्रदायी संस्कृति को आगे चलाने वाला लगता है। इन संस्कृतियों के भारत देश में आने और यहीं रह जाने के कारण भारत एक बहुल सांस्कृतिक देश बन गया है। इनके एक दूसरे से सम्पर्क से यानी एक दूसरे से, दूध और पानी की तरह घुल–मिल जाने से, मिश्रित संस्कृति बन गयी है। लोग सब यानी अस्सी प्रतिशत सांस्कृतिक भेद–भाव को छोड़ के, मिल–जुल के अपना जीवनयापन कर रहे हैं।

धार्मिक संस्कृति को वैज्ञानिक संस्कृति चुनौती दे रही है। धर्म और धर्मावलम्बियों ने विज्ञान और विज्ञानावलम्बियों को हमेशा आतंक पहुँचाया हैं। फिर भी वैज्ञानिक संस्कृति कभी हार नहीं मानी। बौद्ध सम्प्रदायी संस्कृति भी वैज्ञानिक संस्कृति है। इस लिए आर्य हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति ने बौद्ध सम्प्रदाय के वैज्ञानिक संस्कृति को ध्वंस किया है। कालांतर में इसे देश से ही भगा दिया गया। बहुला, मिश्रित, वैज्ञानिक संस्कृतियाँ आर्य

हिन्दू साम्प्रदायिक संस्कृति के विरोध में अपना स्वर बुलंद कर रही है। आर. एस. एस., भाजपा और उसके साथी साम्प्रदायिक संगठनों को यह बर्दाश्त नहीं हो रहा है। तो ये लोग बहुला प्रजातांत्रिक भारतीय संस्कृति को ध्वंस करके उनकी अपनी सनातनी आर्य हिन्दू या हिन्दुत्व साम्प्रदायिक संस्कृति को स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन वह असंभव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ सूची

क्र. सं.	आधार ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन एवं संस्करण	
1.	अपने अपने राम	भगवान सिंह	वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली –110 002	1998
2.	उन्माद	भगवान सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली –110 002	1999
3.	काला पहाड़	भगवानदास मोरवाल	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली–110 051	1999
4.	कितने पाकिस्तान	कमलेश्वर	राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट– दिल्ली–110 006	2000
5.	बयान	मुशर्रफ़ आलम जौक़ी	साशा पब्लिकेशन्स दिल्ली–110031	1998
6.	मुखड़ा क्या देखे	अब्दुल बिस्मिल्लाह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली	1996

		—110 002	
7. मुसलमान	मुशर्रफ़ आलम जौक़ी	साहित्य भारती दिल्ली—110051	1990
8. सभा पर्व	बदीउज़्ज़माँ	शब्दकार दिल्ली—110092	1994
9. सात आसमान	असगर वजाहत	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली —110 002	1996
10. हमारा शहर उस बरस	गीतांजलि श्री	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड पेपर बैक्स नई दिल्ली	1998
11. त्रिशूल	शिवमूर्ति	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली—110032	1995

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र. सं. सहायक ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन एवं संस्करण
1. अयोध्या	भानुप्रताप शुक्ल, सम्पादक : डॉ. देवेश चन्द्र	विक्रम प्रकाशन 1998 दिल्ली–110051
2. अयोध्या और उससे आगे	राजकिशोर	वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली 110002
3. औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक और विचारात्मक संघर्ष	के. एन. पणिक्कर अनु. आदित्य नारायण सिंह	ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2003
4.आखिरी कलाम	दूधनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003
5. कबीर वाणी	कबीरदास	तुलसी पब्लिकेशन्स गांधी मार्ग, निकट ओडियन सिनेमा, मेरठ
6. खतरे अल्पसंख्यकवाद के	मुजफ्फर हुसैन	प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली 2005

7. ज़माने से दो दो हाथ	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन 2010 नयी दिल्ली
8. तमस	भीष्म साहनी	राजकमल पैपरबैक, नई दिल्ली, 1984
9. धर्म	कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, संपादक व अनुवादक रमेश सिंहा,	इंडिया पब्लिशर्स, लखनऊ दिसम्बर 1972
10. धर्म की मार्क्सवादी अवधारणा	सं. गोरख पाण्डेय गोपाल प्रधान,	समकालीन प्रकाशन, पटना, 2003
11. प्रजातंत्र में धर्म, धर्म निर्पेक्षता और सेक्यूलरिज्म,	डॉ. सी.पी. त्रिवेदी	वैदिक शोध संस्थान, रतलाम 457001
12. फासीवाद और उसकी कार्य पद्धति	पामीरो तोग्लियाती अनुवादक अनिल राजिमवाले	ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2004
13. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड–2	डॉ. अम्बेडकर	डॉ.अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
14. बाबा साहेब डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय खंड–8	डॉ. अम्बेडकर	डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
15. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण	डॉ. अम्बेडकर	डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और

वाङ्मय खंड–15		अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली–110 001
16. बीच बहस में सेकुलरवाद	अभय कुमार दुबे (सं)	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005
17. भारत में सामाजिक समस्याएँ,	प्रकाश नारायण नाटाणी प्रज्ञा शर्मा	पोइन्टर पब्लिशर्स, जायपूर
18. मुसलमान क्या सोचते हैं	चयन एवं सम्पादन राजकिशोर और अशोक भारद्वाज,	वाणी प्रकाशन 1995 नयी दिल्ली–110002
19. मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ	कांचा इलैया	सम्या, कलकत्ता 1996
20. राष्ट्रीय एकता का संकट और सांप्रदायिक शक्तियाँ,	मस्तराम कपूर	सारांश प्रकाशन प्रा.लि., 1998 दिल्ली–110091
21. राष्ट्रवाद का अयोध्याकांड : रामजन्म भूमि आंदोलन और आत्मभय की राजनीति	आशीश नंदी, शिखा त्रिवेदी, शैल मायाराम, अच्यूत याग्निक	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005
22. साम्प्रदायिकता और भारतीय समाज,	आर. एस. यादव	राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1992
23. साम्प्रदायिकता एक प्रवेशिका	विपिन चन्द्रा	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया पहला संस्करणः 2008(शक 1930)

24. साम्प्रदायिकता एक चुनौती और चेतना	डॉ. यशवन्त विष्ट,	महाम मयी प्रकाशन 1998 दिल्ली
25. संस्कृति के चार अध्याय,	रामधारी सिंह दिनकर	लोकभारती प्रकाशन नवीन संस्करणः 2009
26. साम्प्रदायिकता के स्रोत,	अभय कुमार दुबे (सं)	विनय प्रकाशन, दिल्ली, 1992
27. साम्प्रदायिकताः अतीत और वर्तमान	अरूण कुमार	प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 1996
28. साहित्य का उद्देश्य	प्रेमचंद	हंस प्रकाशन, ईलाहाबाद, जनवरी–1967
29. संस्कृतिःवर्चस्व और प्रतिरोध	पुरुषोत्तम अग्रवाल	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1995
30. सांप्रदायिकता और भारतीय राजनीति	रजनी कोठारी, अनु. ध्रुव नारायण	रेनबो पब्लिशर्स, दिल्ली, 1998
31. साम्प्रदायिक समस्या, (कानपुर दंगा जांच समिति की रिपोर्ट)	अनुवादः दिवाकर	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली 2006
32 .हिन्दी शब्द सागर	श्याम सुन्दरदास,	नागरी प्रकाशन सभा दिल्ली
33. हिन्दू होने का मतलब,	राजकिशोर	वाणी प्रकाशन, दिल्ली

34. हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय	राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली 2002

English Books

1. An Encyclopaedia of religion	M.A. canneg	Nag Publishers Delhi-7
2. An Agenda of cultural Action and other Essays, three Essays Collective	K.N. Panikkar	New Delhi, 2006
3. Babri Masijid Ram Janmabhoomi Controversy	Asghar Ali Engineer,	Ajanta Books, Delhi, 1990
4. bunch of thoughts	M.S. Golwalkar	Sahity sindhu prakasan, Banglor, 1996
5. Breaking the spell of Dharma and other Essays Three essays	Meerananda	New Delhi, 2002
6. Communalism Caste and Hindu	Ornit Shani	Cambridge University

Nationalism, The Violence in Gujarat		Press, Cambridge House New Delhi 110002, India- 2007
7. Communalism Civil Society and the State Reflections on a Decade of Turbulence	K.N. PANIKKAR and SUKUMAR MURALI DHARAN	SAHMAT Delhi 2002
8. Communalisation of Politics & 10th Loksabha Elections	Asghar Ali Engineer,	Ajanta Books, Delhi, 1991
9. Communalisam, Civil Society and the state	K.N. Panikkar and S. Muralidharan(Ed.)	Sahmat, 2nd edition
10. DEBRAHMANISING HISTORY BY	BRAJ RANJAN MANI	Manohar Puplishers 2008
11. Fascism in India: Faces, Fangs and Facts	Chetany Krishna	Manak Publication new delhi,
12. Fascinatig Hindutva (Saffron Politics and Dalit Mobilisation)	Badri Narayan	SAGE Publications India Pvt Ltd, New Delhi, 2009

13. Hindutva: Explosing the Idea of Hindu Nationalism	Jyotirmay Sharma,	Penguin Viking, 2003
14. India's Partition Process, Strategy and Mobilization	mushirul Hasan	Oxford University Press, YMCA Library Building, Jai singh Road New Delhi 110001, 2001
15. Lineages of the present: Ideology and politics in contemporary south Asia	Aijaz Ahmad	Verso
16. Sufism & Communal Hormony	Asghar Ali Engineer,	Rupa Books, Jaipur, 1991
17. to critique of Hegal's 'philosophy of Right',	karl Marx- 1844	progressive publishers Masco, Russia-1959
18. The god market How globalization Is making india More Hindu	MEERA Nanda	Random House India 2009

19. the sangh parivar: A Reader	Ed. Christophe Jalfrelot	OUP, Delhi, 2005

English Journal

1. Indian journal of secularism (A JOURNAL OF CENTRE FOR STUDY OF SOCIETY AND SECULARISM)	EDITOR	Dr. Asghar Ali Engineer,	Mumbai

पत्र–पत्रिकाएं

सहायक ग्रन्थ	संपादक एवं लेखक	प्रकाशन
1. आलोचना	नामवर सिंह (प्रधान संपादक)	नई दिल्ली
2. आजकल	सीमा ओझा	नई दिल्ली
3. आदिवासी सत्ता	के. आर. शाह	रायपुर, छत्तीसगढ़
4. उद्भावना	अजेय कुमार,	दिल्ली–95

5. उद्भावना (सांप्रदायिकता विरोधी विशेषांक अगस्त, 2008)	अजेय कुमार	दिल्ली–95
6. कसौटी	नंदकिशोर नवल	दिल्ली
7. कृति संस्कृति	सुभाष गाताड़े (प्रधान संपादक)	दिल्ली
8. कथादेश	हरिनारायण	दिल्ली–95
9. पहल	ज्ञानरंजन	दिल्ली
10. युद्धरत आम आदमी	रमणिका गुप्ता	नई दिल्ली
11. वसुधा	डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, अरुण प्रकाश	दिल्ली
12. शेष	हसन जमाल,	जोधपुर, राजस्तान
13. सबलोग	किशन कालजयी	दिल्ली
14. समकालिन जनमत	रामजी राय	इलाहाबाद
15. समयांतर	पंकज विष्ट	दिल्ली

16. संवाद (भाषा,साहित्य एवं मानविकी की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका)	प्रो0 रंगनाथ पाठक (प्रधान संपादक)	वाराणसी (उ0 प्र0)
17. हंस	राजेन्द्र यादव	नयी दिल्ली
18. हंस (भारतीय मुसलमानः वर्तमान और भविष्य विशेषांक, अगस्त, 2003)	राजेन्द्र यादव	नयी दिल्ली

शब्द कोश

1. अमर कोष– 1–4–24
2. प्रामाणिक हिन्दी कोश–आचार्य राम चन्द्रवर्मा, लोक भारती
3. विश्व सूक्ति कोश–खण्ड पॉच, प्रकाशक आर्य बुक डिपो
4. Cambridge Learner's Dictionary, Cambridge University Press